संवर्ग 1 अहिंसा-सिद्धांत एंव प्रशिक्षण
इकाई-1 : विभिन्न धर्म-दर्शनों में अहिंसा का स्वरूप

संरचना

1.0.0 प्रस्तावना
1.1.0 उद्देश्य
1.2.0 वेद
1.3.0 उपनिषद्
1.4.0 रामायण
1.5.0 महाभारत
1.6.0 गीता
1.7.0 पुराण
1.8.0 मनु स्मृति
1.9.0 जैन परम्परा
1.9.1 जैन परम्परा में अहिंसा की परिभाषा
1.9.2 अहिंसा के रूप
1.10.0 बौद्ध धर्म
1.11.0 यहूदी धर्म
1.12.0 ईसाई धर्म
1.12.1 जीसस के उपदेश
1.13.0 इस्लाम धर्म
1.14.0 गांधीजी एवं विनोबा की दृष्टि में अहिंसा चिंतन
1.14.1 गांधीजी की दृष्टि में अहिंसा
1.14.2 अभिप्राय एवं स्वरूप
1.14.2.1 बाहरी हिंसा या स्थूल हिंसा
1.14.2.2 आन्तरिक हिंसा
1.14.3 विधायक अहिंसा
1.14.4 अहिंसा के संवर्द्धक तत्त्व
1.14.5 अहिंसा की कसौटी
1.14.6 अहिंसा का प्रयोग
1.14.7 विनोबा की दृष्टि
1.15.0 गुरुदेव तुलसी का अहिंसा दर्शन
1.15.1 अहिंसा की अवधारणा
1.15.2 अहिंसक कौन?
1.15.3 हिंसा के विविध रूप

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1.15.4 अहिंसा की शक्ति
1.15.5 अहिंसा की प्रतिष्ठा
1.15.5.1 अहिंसा प्रतिष्ठा की बाधाएं
1.15.6 अहिंसा का सामाजिक स्वरूप
1.15.7 अहिंसात्मक प्रतिरोध
1.16.0 आचार्य महाप्रज्ञ का अहिंसा दर्शन
1.16.1 अहिंसा का दार्शनिक आधार
1.16.1.1 सप्रतिपक्ष
1.16.1.2 सह-अस्तित्व
1.16.1.3 स्वतंत्रता
1.16.1.4 सापेक्षता
1.16.1.5 समन्वय
1.16.2 हिंसा के कारण
1.16.2.1 हिंसा : आन्तरिक कारक तत्व
1.16.2.2 हिंसा : बाह्य कारक तत्व
1.17.0 अभ्यास हेतु प्रश्न

1.0 प्रस्तावना

मानव जाति का इतिहास निरन्तर उन्नति एवं प्रगति का रहा है, अवनति का नहीं। उन्नति की इस विकास यात्रा में समय-समय पर विभिन्न धर्म एवं दार्शनिक परम्पराओं तथा महापुरुषों द्वारा स्थापित उदात्त मूल्यों ने प्रकाश स्तम्भ की भूमिका निभाई है। अहिंसा इन्हीं उदात्त मूल्यों की श्रृंखला की आवश्यक कड़ी है। अहिंसा का इतिहास उतना ही पुराना है जितना मानव जाति का। आदिकाल से ही अहिंसा का व्यवहार मनुष्य के वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक सन्दर्भों में उल्लेखनीय भूमिका निभाता रहा। कालान्तर में मानव सभ्यता के विकासक्रम में कई परम्पराएं मील के पत्थर के रूप में प्रतिष्ठित हुई। अहिंसा सिद्धान्त एवं प्रशिक्षण के अन्तर्गत इस पाठ में इन्हीं परम्पराओं का अध्ययन किया जायेगा, जिससे छात्रों को निम्न धार्मिक एवं दार्शनिक परम्पराओं में प्रतिपादित अहिंसा दर्शन का परिचय प्राप्त हो सकेगा।

(अ) वैदिक, जैन एवं बौद्ध परम्परा

(ब) यहूदी, ईसाई एवं इस्लाम परम्परा

(स) गांधी एवं विनोबा चिंतन

(द) गुरूदेव श्री तुलसी तथा आचार्यश्री महाप्रज्ञ चिंतन।

1.1 उद्देश्य

1. अहिंसा के स्वरूप, प्रकार एवं अवधारणा को स्पष्ट करना
2. अहिंसा दर्शन के अतिरिक्त इसके प्रयोगात्मक स्वरूप से परिचय कराना
3. मानव-जाति के इतिहास में अहिंसा की संस्कृति के विकास को रेखांकित करना
4. भारतीय एवं गैर भारतीय परम्परा में प्रतिपादित अहिंसा दर्शन का परिचय देना

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

5. दैनन्दिन जीवन में अहिंसा का व्यवहार किस रूप में समाविष्ट हो सकता है, उसको स्पष्ट करना।

1.2.0 वेद

वैदिक विचारधारा का प्रतिनिधित्व करने वाले साहित्य में वेदों का स्थान सर्वोपरि है। ऐतिहासिक दृष्टि से ये मानवकृत रचनाओं में सबसे प्राचीन हैं। वेद चार हैं—ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद तथा अथर्ववेद। इनमें से प्रत्येक के चार विभाग हैं। जैसे संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद। इनके अलावा स्मृति, सूत्र, रामायण, महाभारत, गीता, पुराण आदि वैदिक परम्परा के प्रमुख ग्रंथ हैं। अहिंसा का वेदों में स्पष्ट चिंतन नहीं मिलता है किंतु अहिंसा के फलस्वरूप जिन उदात्त मूल्यों का विकास होता है उनकी चर्चा वेदों में परिलक्षित होती है। मैत्री, सद्भावना, अपराध को क्षमा करने की मांग आदि अहिंसात्मक विचार ऋग्वेद, यजुर्वेद आदि में स्पष्ट रूप से देखने को मिलते हैं। ऋग्वेद में प्रार्थना के रूप में अहिंसा शब्द का व्यवहार किया गया है। ऋषि प्रार्थना करते हुए कहते हैं—हम अभिगमन प्राप्त करें। मित्रभूत या मित्र के द्वारा दिखाये हुए मार्ग से हम गमन करें। अहिंसक मित्र का प्रिय सुख हमें घर में प्राप्त हो। अहिंसा अत्यन्त हितकारी है, आत्म-साम्य की विराट दृष्टि प्रदान करती है। ऋग्वेद में वर्णन आता है कि ''हे वरुण! यदि हम लोगों ने उस व्यक्ति के प्रति अपराध किया हो जो हमें प्यार करता है; यदि कोई गलती अपने मित्र या साथी जो कि पड़ोसी है अथवा किसी अज्ञात व्यक्ति के प्रति अपराध किया हो तो हमारे अपराधों को क्षमा करो।'' मनुष्य का यह कर्तव्य है कि वह एक-दूसरे की रक्षा करे। यजुर्वेद में उल्लेख आता है कि सभी प्राणियों को मित्रवत् देखें। इसी तरह अथर्ववेद में कहा गया है—''हम सभी एक साथ ऐसी प्रार्थना करें जिससे कि आपस में सुमति और सद्भावना का प्रसार हो।'' इतना ही नहीं, बल्कि विश्व-शांति के भाव पर बल देते हुए कहा गया है कि सूर्य की किरणें हम सभी के लिए शांति प्रदान करने वाली हों और सभी दिशाएं भी शांति दायनी हों। यजुर्वेद में तो शांति की भावना के विस्तार की कामना पृथ्वी लोक से लेकर द्युलोक और अन्तरिक्ष लोक तक की गई है। जल, औषधियां सभी देवता और ब्रह्म सब के सब शांति देने वाले हों। विश्व ही पूर्ण शांतिमय हो। इस प्रकार स्पष्ट है कि वैदिक युग में ऋषियों की वाणी में अहिंसा की स्वर लहरियां झनझना रही हैं। मानव मात्र तक नहीं, अपितु अहिंसा की विराट भावनाएं सभी प्राणियों के प्रति व्यक्त हुई हैं।

1.3.0 उपनिषद्

वेदों के पश्चात् उपनिषद् साहित्य का निर्माण हुआ। इसमें सांसारिक सुख-सुविधा की अपेक्षा मोक्ष पर बल दिया गया है। अहिंसा का सिद्धांत के रूप में सर्वप्रथम प्रतिपादन छान्दोग्योपनिषद् में ही प्राप्त होता है। आत्मज्ञान प्रदान करने के प्रसंग में कहा गया है कि नियमानुसार गुरू के कर्त्तव्य कर्मों को समाप्त करता हुआ, वेद का अध्ययन करता हुआ, पुत्र-शिष्यादि को धार्मिक कर, सम्पूर्ण इन्द्रियों को अपने अन्तःकरण में स्थापित कर, शास्त्र की आज्ञा से अन्यत्र प्राणियों की हिंसा न करता हुआ, आयु की समाप्ति पर्यन्त इस प्रकार जीवन व्यतीत करता हुआ मनुष्य निश्चय ही ब्रह्म लोक को प्राप्त होता है। इस उद्धरण में अहिंसा का जो स्वरूप प्रकट होता है, वह यह है कि सर्वप्राणी की हिंसा न करना ही अहिंसा है। लघु उपनिषदों में जैसे—प्राणाग्नि, होलोपनिषद और आरणिकोपनिषद् आदि में अहिंसा को सद्‌गुण या आत्म संयम के प्रमुख साधन के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

1.4.0 रामायण

सूत्र-साहित्य के पश्चात् वाल्मीकि रामायण में मर्यादा पुरूषोत्तम राम का पवित्र चरित्र अंकित है। उस चरित्र के माध्यम से उन्होंने जीवन में विकास के लिए सदगुणों का उल्लेख किया है। उन्होंने अहिंसा, सत्य,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

आत्मसंयम, दया, सहिष्णुता, क्षमा, आतिथ्य, शत्रुओं की सहायता, मन-वचन-कर्म की शुद्धि पर अत्यधिक बल दिया है। सामाजिक दृष्टि से अहिंसा पर चिन्तन करते हुए इसमें उल्लेख हुआ है—राजा, स्त्री, बालक, वृद्ध और शरणागत की रक्षा करनी चाहिए। उनका वध करना बहुत बड़ा पाप है। इस ग्रंथ में अहिंसा की चर्चा सीधे रूप से न करके पात्रों के गुणों का उत्कीर्तन करते हुए की गई है।

1.5.0 महाभारत

इसमें पांडव-कौरवों की कथा के माध्यम से मानव-जीवन की दैवीय और आसुरी प्रवृत्तियों का चित्रण किया गया है। अहिंसा की विराट भावना का महत्त्व बताते हुए वेदव्यास ने कहा धर्म और अर्थ दोनों ही पुरूषार्थों से अहिंसा उच्च कोटि की है। अहिंसा परमो धर्मः के अटल सिद्धान्त को सम्मुख रखकर इसमें भी अहिंसा की विवेचना की गई है। अहिंसा ही सबसे उत्तम एवं पावन धर्म है, अतः मनुष्य को कभी भी, कहीं भी और किसी भी, प्राणी की हिंसा नहीं करनी चाहिए। अहिंसामय जीवन जीने वाला व्यक्ति स्वयं शांति एवं सुख का अनुभव करता है और दूसरे को भी सुख पहुंचाता है। विश्वशांति के लिए यह आवश्यक है कि पहले व्यक्ति स्वयं अहिंसक बने, निर्भय बने तो वह दूसरे को भी, अहिंसक एवं अभय बना सकता है। अनुशासन पर्व में अहिंसा को नैतिक या धार्मिक दृष्टि से बहुत ही ऊंचा स्थान दिया गया है। यहां अहिंसा-परम-धर्म है, परम-तप है, परम-सत्य है और इसे अन्य धर्मों की उद्‌गम स्थली के रूप में स्वीकार किया गया है।

1.6.0 गीता

''श्रीमद्‌भगवत्‌गीता'' महाभारत के ''भीष्मपर्व'' का एक अंश है। भगवद्‌गीता की दृष्टि में अहिंसा वह कर्म है जिसके करने से व्यक्ति को किसी प्रकार का भय, उद्वेग नहीं होता, जबकि हिंसा वह कर्म है जिसके करने से व्यक्ति में, प्रतिपल भय तथा उद्वेग होता है। गीता सभी प्राणियों के प्रति हेतुरहित दया-भाव का उपदेश देती है और सभी प्राणियों के प्रति हेतुरहित दया-भाव रखने वाला पुरुष ही दैवी सम्पदा से युक्त माना जाता है। सर्वथा भय का अभाव, अन्तःकरण की अच्छी प्रकार से स्वच्छता, तत्वज्ञान के लिए ध्यानयोग में निरन्तर दृढ़ स्थिति, सात्विक दान, इन्द्रियों का दमन, भगवत्पूजा, अग्निहोत्रादि उत्तम कार्यों का आचरण, वेदशास्त्रों के पठन-पाठनपूर्वक भगवान के नाम और गुणों का कीर्तन, स्वधर्मपालन के लिए कष्ट सहन करना, शरीर और इन्द्रियों के सहित अन्तःकरण की सरलता, मन-वाणी-शरीर से किसी प्रकार भी, किसी को कष्ट न देना, यथार्थ तथा प्रिय भाषण करना, अपना उपकार करने वाले पर क्रोध का न होना, कर्मों में कर्तापन के अभिमान का त्याग, अन्तःकरण की उपरामता, किसी की भी निन्दा न करना, सब प्राणियों में हेतुरहित दया, इन्द्रियों का विषयों के साथ संयोग होने पर भी आसक्ति का न होना, कोमलता, लोक और शास्त्र के विरूद्ध आचरण में लज्जा, व्यर्थ चेष्टाओं का अभाव, तेज, क्षमा, धैर्य, बाहर-भीतर की शुद्धि, किसी में भी शत्रु का भाव न होना और अपने में पूज्यता के अभिमान का अभाव, ये सब दैवी सम्पदा को प्राप्त हुए पुरूष के लक्षण हैं।

1.7.0 पुराण

पुराण साहित्य में अहिंसा का विवेचन यत्र-तत्र हुआ है। वायु पुराण का मन्तव्य है—मन, वाणी और कर्म से सभी जीवों के प्रति अहिंसा का पालन करना चाहिए। अग्नि-पुराण में कहा गया है—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह ये पांचों यम मुक्ति प्रदान करने वाले हैं। मत्स्य पुराण का मन्तव्य है कि अहिंसा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

मुनिव्रतों में से एक है। ब्रह्मपुराण का भी अभिमत है— जो मन से भी किसी भी प्राणी की हिंसा नहीं करता है, वह स्वर्गवासी होता है। नारद-पुराण में कहा गया है— वे ही सभ्य वचन हैं, जिनसे किसी का विरोध न हो, किसी भी प्राणी को कष्ट न पहुंचे। यही अहिंसा का रूप है। इसी अहिंसा की निर्मल भावना से सम्पूर्ण कामनाएं पूर्ण होती हैं। ब्रह्मपुराण, शिवपुराण, वृहद्धर्मपुराण, कूर्मपुराण एवं भागवत् पुराण आदि में भी अहिंसा को महत्वपूर्ण माना है। साथ ही इसके पालन को आवश्यक बताया है।

1.8.0 मनुस्मृति

मनुस्मृति सदाचार-पालन का उपदेश देती है। मनुस्मृति का सन्देश है कि समस्त प्राणियों को पीड़ा न पहुंचाते हुए हिंसा से रहित और दान तथा धर्म आदि व्रतों की पालाना करने वाला मनुष्य स्वर्ग को जीत लेता है। मनुस्मृति में कतिपय पशु-पक्षियों के मांस-भक्षण का निषेध है। इसकी यह मान्यता है कि मांस न खाना अश्वमेघ यज्ञ करने के बराबर है। जो अपने सुख की इच्छा से अहिंसक जीवों को मारता है वह जीवन में या जन्मान्तर में कहीं सुख नहीं पाता। मनुस्मृति का कहना है कि मनुष्य को मानस-दुष्कर्म, वाणी-दुष्कर्म तथा शारीरिक-दुष्कर्म— इन त्रिविध दुष्कर्मों का फल शरीर से ही भोग्य है, और इन दुष्कर्मों से व्यक्ति विभिन्न निकृष्ट योनियों को प्राप्त होता है।

1.9.0 जैन परम्परा

जैन-धर्म में अहिंसा का बहुत ही सूक्ष्म विवेचन किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि जैन धर्म के प्रत्येक क्रिया-कलाप में अहिंसा की दिव्य-ध्वनि मुखरित हो रही है। जैन-धर्म का मूल आधार ही अहिंसा है। श्रमण भगवान् महावीर ने कहा है— ''हिंसा कभी भी धर्म नहीं हो सकती। इस विराट विश्व में जितने भी प्राणी हैं वे चाहे छोटे हों या बड़े हों, पशु हों या मानव हों, सभी की एक ही कामना है और वह है जीवित रहने की। सभी जीवित रहना चाहते हैं, कोई भी मरना नहीं चाहता। जिस हिंसक व्यवहार को तुम अपने लिए पसन्द नहीं करते, उस व्यवहार को दूसरा किस प्रकार पसंद करेगा? जिस दयामय व्यवहार को तुम पसन्द करते हो, उसे सभी पसन्द करते हैं। यही जिनशासन का सार है।'' इस लोक में जितने भी त्रस और स्थावर प्राणी हैं। उनकी हिंसा न जान कर करो, न अनजाने में करो और न दूसरों से हिंसा कराओ। क्योंकि सबके भीतर एक-सी आत्मा है। हमारी तरह सबको अपने प्राण प्यारे हैं। ऐसा मानकर किसी भी प्राणी की हिंसा न करो। जो व्यक्ति खुद हिंसा करता है, दूसरों से हिंसा करवाता है और उसका अनुमोदन करता है, वह अपने लिए वैर ही बढ़ाता है। अतः प्राणियों के प्रति वैसा ही भाव रखो, जैसा की अपनी आत्मा के प्रति रखते हो। सभी जीवों के प्रति अहिंसक दृष्टिकोण रखना चाहिए। सच्चा संयमी वही है, जो मन, वचन और शरीर से किसी की हिंसा नहीं करता। अहिंसा का मूल अधार समता है। समता से आत्मसाम्य की निर्मल दृष्टि प्राप्त होती है। भगवान् महावीर ने अहिंसा को सभी जीवों के लिए कल्याणकारी एवं मंगलकारी माना। अतः उन्होंने कहा— ''जिसे तू मारना चाहता है वह तेरे समान ही है, जिसे तू आज्ञा देने की इच्छा करता है वह भी तेरे समान ही है, तू किसी भी प्राणी को न सता, न मार, न किसी को प्रताड़ना प्रदान कर और न किसी को आकुल-व्याकुल ही कर। हिंसा के अभाव का सूचक अहिंसा है। अहिंसा का अर्थ है हिंसा का न होना, हिंसा की भावनाओं और हिंसाजन्य क्रियाओं का अभाव होना। यह है भगवान् महावीर की आत्मौपम्य दृष्टि, जो अहिंसा में ओत-प्रोत हो कर विराट-विश्व के सम्मुख एकात्मकता का महान् दर्शन प्रस्तुत कर रही है। प्रमाद या असावधानी से भी जब मनुष्य, पशु-पक्षी, लता, वृक्ष आदि स्थावरों के प्राणों का विनाश नहीं किया जाता है तो वह अहिंसा कहलाती है। जैन-दर्शन आचार की शुद्धता को विशेष महत्व देता है और उसी से

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

मोक्ष की प्राप्ति मानता है, उमास्वाति के अनुसार सम्यक् दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र ही मोक्ष का मार्ग है। सम्यक् चरित्र के लिए पांच व्रतों का पालन आवश्यक है। वे पांच व्रत हैं—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह।

1.9.1 जैन परम्परा में अहिंसा की परिभाषा

आचारांग में उल्लिखित है कि सब प्राणी, सब भूत, सब जीव और सब सत्वों को न मारना चाहिये, न अन्य व्यक्ति के द्वारा मरवाना चाहिये, न प्राणापहार-उपद्रव करना चाहिये, न बलात् पकड़ना चाहिए, न परिताप देना चाहिये, यह अहिंसारूप ही शुद्ध है। यद्यपि इस कथन के मूल में ''अहिंसा'' शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है, किन्तु वस्तु एवं विषय की स्पष्टता के लिए इसमें ''अहिंसा'' शब्द बढ़ा दिया है, क्योंकि इस कथन में जो भी बातें कही गयी हैं, वे अहिंसा पर लागू होती है, तथा इसमें जिस शुद्ध धर्म का प्रतिपादन हुआ है, उसे अहिंसा ही माना गया है।

इसी प्रकार सूत्रकृतांग में भी यह उल्लेख मिलता है कि—बुद्धिमान सब युक्तियों के द्वारा इन जीवों का जीवत्व सिद्ध करके ये सभी दु:ख के द्वेषी हैं (यानी दु:ख अप्रिय है) यह जाने तथा इसी कारण किसी की भी हिंसा न करे। ज्ञानी पुरुष का यही उत्तम ज्ञान है कि वे किसी जीव की हिंसा नहीं करते हैं। इसी ग्रंथ के प्रथम खण्ड में कहा गया है कि—मन, वचन और काय इन तीनों से प्राणियों को मारना नहीं चाहिये। इस परिभाषा में मन, वचन और काय अर्थात् तीन योग की प्रधानता दिखाई गई है। आवश्यक सूत्र में अहिंसा की पूर्ण परिभाषा करते हुए कहा गया है कि—अहो भगवन्! मैं समभाव में आत्मस्थापन करने के लिए सामायिक व्रत करता हूं, इसमें सर्व प्रकार से सावद्य योग प्रवृत्ति का यावत् जीवन तक प्रत्याख्यान करता हूं। तीन करण और तीन योग (इसमें तीन योग है—मन, वचन और काय। तीन करण-स्वयं करूं नहीं, अन्य से करवाऊं नहीं, अन्य के करने को अच्छा मानूं नहीं) के अनुसार किसी भी जीव की हिंसा न करना ही अहिंसा है। यह जैनदृष्टि से अहिंसा की वास्तविक परिभाषा है। इन तीन करण और तीन योग के नौ भेद बन जाते हैं, जो इस प्रकार हैं—

तीन योग (मन, वचन और काय), तीन करण (करना, कराना और अनुमोदन करना)

जैसे—

मन से हिंसा न करना।
मन से हिंसा न करवाना।
मन से हिंसा का अनुमोदन न करना।

वचन से हिंसा न करना।
वचन से हिंसा न करवाना।
वचन से हिंसा का अनुमोदन न करना।

काय से हिंसा न करना।
काय से हिंसा न करवाना।
काय से हिंसा का अनुमोदन न करना।

इन नव प्रकारों से किसी भी प्राणी का घात न करना ही अहिंसा है। यही जैनदृष्टि से अहिंसा का वास्तविक सिद्धांत है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

नियमसार में प्रथम व्रत अहिंसा को इस प्रकार परिभाषित किया गया है—जीव के कुल, योनि, मार्ग, स्थान आदि की जानकारी करके उसके आरंभ से बचना ही प्रथम व्रत है या अहिंसा है। योगशास्त्र में कहा है कि ''प्रमाद के वशीभूत होकर त्रस (द्वीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय) अथवा स्थावर (पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति काय के) प्राणियों का हनन न करना अहिंसा व्रत है।''

1.9.2 अहिंसा के रूप

अहिंसा के मुख्यत: दो रूप स्वीकार किये गये हैं—भाव अहिंसा—मन में हिंसा न करने की भावना का जाग्रत होना। द्रव्य अहिंसा—मन में आये हुए अहिंसा के भाव को क्रिया रूप देना अर्थात् उसका वचन और काय से पालन करना, जैसे हिंसा न करने का संकल्प करने वाला वास्तव में जिस दिन से संकल्प करता है, उस दिन से किसी भी प्राणी की हिंसा न करता है, कराता है और न करने वाले को अनुमोदन करता है।

1.10.0 बौद्ध धर्म

बौद्ध धर्म भारत का एक प्रमुख धर्म रहा है तथा इसमें अहिंसा की प्रधानता रही है। इस धर्म के प्रसिद्ध एवं मान्य ग्रंथों में अहिंसा की प्रेरणा देते हुए कहा गया है कि मन, वचन और कर्म से अन्य प्राणियों को कष्ट न दिया जाए। अहिंसा का पथिक न स्वयं किसी को कष्ट देता है, और न अन्य किसी को कष्ट देने के लिए प्रेरित करता है। स्थूलजीवों की ही बात नहीं, यह पेड़-पौधों को भी कष्ट नहीं पहुंचाता है। भिक्षुओं को उपदेश देते हुए बुद्ध ने तीन प्रकार के शील पर प्रकाश डाला और कहा—आरंभिक, मध्यम और महा ये तीन शील हैं, जो सभी भिक्षुओं के लिए आवश्यक हैं। इन शीलों में अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, सत्य तथा नशीले पदार्थों का परित्याग समाविष्ट है। बुद्ध ने मैत्री भावना, करूणा भावना, मुदिता भावना और उपेक्षा भावना पर बल दिया है। इन भावनाओं में अहिंसा की निर्मल विचार लहरियां तरंगित हो रही हैं। बुद्ध ने कहा—अपने मन को सभी दिशाओं में घुमाओ। तुम्हें अपने से प्यारा अन्य कोई भी प्राणी नहीं मिलेगा। जैसे तुम्हें अपना जीवन प्रिय है, वैसे ही दूसरों को अपना जीवन प्रिय है, अत: कभी भी दूसरों को न सताओ। विश्व के समस्त प्राणियों के साथ असीम मैत्री भावना बढ़ाई जाए। तुम सदा मन में यही भावना रखो कि विश्व के सभी प्राणी सुखी हों। अपने समान सभी प्राणियों को समझकर न किसी का वध करो न दूसरे से वध करवाओ। बुद्ध ने हिंसापरक यज्ञ को अनुचित कहा। जब राजा प्रसेनजित हिंसा परक यज्ञ करने के लिए तत्पर हुए और तथागत बुद्ध को वह वृत्त परिज्ञात हुआ तो उन्होंने राजा से कहा—राजन्! यज्ञ में हिंसा करने से फल अच्छे नहीं होते। यदि तुम्हें यज्ञ करना है, तो ऐसा यज्ञ करो जिसमें भेड़, बकरी और गायें न कटती हों। ऐसा यज्ञ ही सुमार्ग पर ले जाने वाला है। ''सुत्तनिपात'' में बुद्ध ने कहा—जंगम या स्थावर, दीर्घ या ह्रस्व, अणु या स्थूल, दृष्य या अदृष्य, दूरस्थ या निकटस्थ, उत्पन्न या अल्पमान जितने भी प्राणी हैं, वे सभी सुखपूर्वक रहें।

आर्य की व्याख्या प्रस्तुत करते हुए बौद्ध धर्म ने अहिंसाप्रिय व्यक्ति को आर्य कहा है। बुद्ध ने कहा है—प्राणियों की हिंसा करने से कोई आर्य नहीं बनता सब लोग दण्ड से डरते हैं, मृत्यु से भय खाते हैं। मानव दूसरों को अपनी तरह जान कर न तो किसी को मारे और न किसी को मारने की प्रेरणा दे। जो न स्वयं किसी का घात करता है, न दूसरों से करवाता है, न स्वयं किसी को जीतता है, और न दूसरों से जितवाता है, वह सर्व प्राणियों का मित्र होता है, उसका किसी के साथ वैर नहीं होता।

बौद्ध-धर्म अहिंसा को सर्वोच्च धर्म स्वीकार करता है। इसके मूल सिद्धान्त अहिंसा पर आधारित है तथा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अहिंसा के मार्ग पर चलने वाला कृत, कारित तथा अनुमोदित—तीनों प्रकार की हिंसा का वर्जन करता है। 'विनय पटक' में स्पष्ट उल्लेख आता है कि एकेन्द्रिय वनस्पति को भी कष्ट नहीं पहुंचाना चाहिए क्योंकि वे भी जीव हैं, सब जीव समान हैं। भगवान् बुद्ध कहते हैं जंगम और स्थावर प्राणियों का प्राणघात न स्वयं करें, न किसी अन्य से करवाएं, न करने वाले का अनुमोदन करें। 'मन्झिम निकाय' में उल्लेख आता है कि सब प्राणियों पर दया रखकर प्राणों का हनन न करें, घात न करें। 'तेविज्ज सुत्त' में भगवान् बुद्ध ने मैत्री भावना को प्रधानता देते हुए अहिंसा को प्रश्रय दिया है, तथा वैर, द्रोह आदि की उपेक्षा भावना को, अहिंसा स्वीकार किया है। 'धम्मपद' में बुद्ध ने भिक्षुओं को उपदेश देते हुए कहा, ''सबको समान समझो क्योंकि दण्ड और मृत्यु सबके लिए कष्टकारक होते हैं। प्राणी को मारना हिंसा है, प्राणीयुक्त जल को पीना भी हिंसा है। पीटना, धमकाना सभी हिंसा के अन्तर्गत आता है। मारना, मारने की प्रेरणा देना, झूठा आरोप, लांछन लगाना हिंसा है।'' ''बोधि चर्यावत'' में कहा गया है कि ''एक प्राणी का घात करके भी मनुष्य हीन बन जाता है, और जो अनेक जीवों का अहित करता है उसका तो कहना ही क्या।'' द्वेष सबसे बड़ा पाप है, तथा क्षमा सबसे बड़ा तप है। जिसका हृदय द्वेष से दूषित हो उसे कभी भी शांति एवं सुख नहीं मिलता। द्वेष से केवल दूसरों को ही कष्ट नहीं होता बल्कि स्वयं को भी अत्यधिक कष्ट होता है। इस प्रकार क्षमा एवं मित्रता के सिद्धान्त के माध्यम से अहिंसा के सिद्धान्त को प्रश्रय दिया है। बौद्ध परम्परा में अहिंसा को मैत्री भावना के पालन में एक सबल साधनरूप माना गया है। यज्ञ संबंधी हिंसा को यहां धर्मानुकूल नहीं माना है। यद्यपि इसमें मानव से लेकर एकेन्द्रिय जीव पर्यन्त हिंसा-अहिंसा का विचार किया गया है, परन्तु अपवाद स्वरूप परिस्थिति के अनुसार हिंसा को क्षम्य भी माना है, शायद इसी कारण बौद्ध परम्परा को मध्यममार्ग के रूप में भी बौद्धिक जगत् में स्वीकार किया जाता रहा है।

1.11.0 यहूदी धर्म

यहूदी धर्म विश्व के प्रमुख धर्मों में से एक है। इसका मन्तव्य है—किसी व्यक्ति के आत्म-सम्मान को चोट न पहुंचाओ। किसी के सामने किसी व्यक्ति को अपमानित न करो। उसका अपमान करना उतना ही महान पाप है, जितना कि किसी व्यक्ति का खून करना। वह व्यक्ति दुष्ट कहलाएगा जो किसी व्यक्ति को मारने के लिए हाथ उठाता है, शक्ति के अभाव में भले ही वह न मारे। यदि तुम्हारा कोई शत्रु तुम्हें मारने के लिए तुम्हारे घर आए और यदि वह भूखा-प्यासा है, तो तुम्हारा प्रथम कर्त्तव्य है कि तुम उसे भोजन कराओ और पानी पिलाओ। प्राणिमात्र के प्रति निर्वैरभाव रखने की प्रेरणा प्रदान करते हुए यह बतलाया गया है कि—अपने मन में किसी के भी प्रति वैर का दुर्भाव मत रखो। बन्धुत्वभाव को विकसित करने के लिए कहा है—बन्धुत्व का प्रेम जाति और धर्म की सीमाओं के ऊपर है। अपने पड़ोसी से प्यार करो तथा उनके प्रति तुम्हारे मन में किसी भी प्रकार की घृणा की भावना न रहे। उनसे ईर्ष्या न करो। उनसे घृणा करना ईश्वर से घृणा करने के समान है। अपने पड़ौसियों के साथ वैसा ही व्यवहार करो, जैसा तुम अपने प्रति चाहते हो। अपने साथियों की सेवा करना यह एक प्रकार का सुकर्म है, सुकृति है। यहूदी धर्म ने मानवता पर बल दिया है तथा इसे विकसित करने के लिए ईमानदारी, ब्रह्मचर्य, सत्य, भक्ति, सद्गुणों को महत्वपूर्ण माना। दया और प्रेम को उन्होंने ईश्वर माना। क्रोध, विलास, अन्याय आदि दुर्गुणों को नष्ट करने की प्रेरणा दी।

1.12.0 ईसाई-धर्म

ईसाई धर्म के प्रवर्तक महात्मा ईसा थे। वर्तमान युग में विश्व के विविध अंचलों में यह धर्म फैला हुआ है। महात्मा ईसा ने कहा है—''तू तलवार म्यान में रख ले, क्योंकि जो लोग तलवार चलाते हैं, वे सब तलवार से ही नष्ट किये जायेंगे।'' अन्यत्र भी बतलाया है—''तुम अपने दुश्मन को भी प्यार करो और जो तुम्हें सताते हैं, उनके लिए भी प्रार्थना करो। अपने शत्रु से भी प्रेम करो, जो तुमसे वैर करें, उनका भी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

भला सोचो और करो। जो तुम्हें शाप दें, उन्हें आशीर्वाद दो। जो तुम्हारा अपमान करे, उसके लिए प्रार्थना करो। जो तुम्हारे एक गाल पर थप्पड़ मारे, उसकी तरफ दूसरा गाल भी कर दो। जो तुम्हारी चादर छीन ले, उसे अपना कुर्ता भी ले लेने दो।'' ईसा का यह संदेश अहिंसा का कितना बड़ा उदाहरण है। ''यदि तू प्रार्थना के लिए धर्ममन्दिर (चर्च) में जा रहा है, उस समय तुझे याद आ जाए कि अमुक व्यक्ति से खटपट या अनबन है तो वापिस लौट जा और विरोधी से अपने अपराध की क्षमायाचना कर। अपने अपराधों की क्षमायाचना किये बिना तुझे प्रार्थना करने का अधिकार नहीं है।'' ''जैसे को तैसा, आंख के बदले आंख, दांत के बदले दांत'' और ''सिर के बदले सिर'' लेने के सिद्धांत से समस्या का सही समाधान नहीं हो सकता। इससे शान्ति प्राप्त नहीं होती। उस पर तुम स्नेह की वर्षा करो और इस प्रकार की प्रशस्त भावना करो कि उसके विचारों में परिवर्तन आ जावे।

1.12.1 जीसस के उपदेश

जीसस के उपदेश सीधे-सादे थे तथा मानव-जाति के कल्याण एवं प्रेम की भावना से ओत-प्रोत थे।

(1) ईश्वर एक सर्वोपरि और सर्वत्र है।

(2) ईश्वर की दृष्टि में सब समान है। सब भाई-भाई हैं। अत: हमें सभी के प्रति एक जैसा व्यवहार करना चाहिए।

(3) प्रत्येक मनुष्य को सेवा, प्यार और अहिंसा से दूसरों के हृदय को जीतना चाहिए और दूसरों को कष्ट नहीं पहुंचाना चाहिए। नि:स्वार्थ सेवा से स्वर्ग मिलता है।

(4) जीसस ने दीनों, दलितों एवं उपेक्षितों को असीम आशा का संदेश दिया।

(5) जीसस ने प्रेम, दया, करुणा तथा हृदय की पवित्रता पर बहुत अधिक बल दिया। उन्होंने कहा कि चरित्र वाले व्यक्तियों को ही ईश्वर के राज्य में स्थान प्राप्त होता है।

(6) जीसस ने धन इकट्ठा करने की प्रवृत्ति की भी निन्दा की। उन्होंने उपदेश दिया कि धन-संचय में विश्वास करने वाले ईश्वर के राज में प्रवेश नहीं कर सकते हैं।

(7) जीसस ने शान्ति और क्षमाशीलता पर बहुत अधिक जोर दिया। उन्होंने कहा था, ''प्रतिशोध की भावना निन्दनीय है।'' यदि कोई तुमसे घृणा करे, तो तुम उससे प्रेम करो।

(8) सहनशीलता—आत्म त्याग ही जीवन के ऊंचे मूल्य हैं।

ईसाई धर्म में शुद्धता को नैतिकता का आवश्यक अंग माना गया है तथा सदाचारपूर्ण एवं पवित्र जीवन पर बल दिया। साथ ही गृहस्थ जीवन का आनन्द उठाते हुए घृणा, असत्य, प्रतिद्वन्दिता एवं हिंसा से दूर रहने का उपदेश दिया गया है, तथा एकेश्वरवाद, विश्व बन्धुत्व, दया, सेवा, प्यार, त्याग, सहनशीलता, शान्ति, उदारता, विनम्रता तथा आन्तरिक पवित्रता आदि गुणों पर बल दिया गया है। इस प्रकार तत्कालीन निराशा भरे समाज में ईसा ने प्रेम, करुणा और आशा का संदेश दिया।

1.13.0 इस्लाम धर्म

इस्लाम धर्म का मुख्य केन्द्र अरब रहा है तथा इसके प्रवर्तक हजरत मुहम्मद की गणना विश्व के महान् पुरुषों में की जाती है।

इस्लाम का शाब्दिक अर्थ है—शान्ति। इस्लाम मुख्यत: दार्शनिक धर्म न मानकर व्यवस्था मूलक धर्म माना जाता है या ऐसा भी कहा जा सकता है कि इस्लाम स्वयं में एक व्यवस्था की आचार-संहिता है, जो

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

कि नीति-शास्त्र पर आधारित है। इस धर्म में सामाजिक समानता, दया, उदारता और विश्व-बन्धुत्व पर बहुत अधिक बल दिया गया है। इसीलिए जनसाधारण ने इस धर्म को अपना लिया। हजरत मुहम्मद ने विश्व-बन्धुत्व तथा सामाजिक समानता की शिक्षा दी। उनका यह मानना था कि इस्लाम का हर अनुयायी एक समान और भाई-भाई है। उनके बीच ऊंच-नीच का कोई अन्तर नहीं है। इस प्रकार मुहम्मद साहब ने समाज में समानता स्थापित करने का प्रयास किया। इसके अतिरिक्त मुहम्मद साहब का यह भी मानना था कि संसार के सब पुरुष एक समान है। वे सब खुदा के पुत्र हैं, इसलिए उनको एक-दूसरे के साथ भाईचारे का व्यवहार करना चाहिए।

इस्लाम में सद्गुण (virtue), और दुर्गुण (vice), का स्पष्ट विवेचन हुआ है। इस धर्म ने ईश्वर में विश्वास करने, धर्म-पथ प्रदर्शकों के विचारों पर आस्था रखने, निर्धनों और दुर्बलों के प्रति दया-भाव रखने की सीख दी है। इसमें गाली (abuse), क्रोध (anger), चुगली (backbiting), लोभ (avarice), खूनखराबा (blood-shedding), रिश्वत लेना (bibery), झूठा अभियोग (calumny), बेईमानी (dishonesty), मदिरापान (drinking), ईर्ष्या (envhy), चापलूसी (flattrey), लालच (greed), पाखण्ड (hypocrisy), असत्य (lying), कृपणता (miserliness), अभिमान (pride), कलंक (slandering), आत्महत्या (suicide), ब्याज लेना (usury), हिंसा (violence), उच्छृंखलता (wickedness), युद्ध (warfare), हानिप्रद कर्म (wrong doings) आदि को हमेशा त्याज्य माना है। इसके विपरीत भाईचारा (brotherhood), दान (charity), स्वच्छता (cleanliness), ब्रह्मचर्य (chastity), क्षमा (foregiveness), मैत्री (friegiveness), कृतज्ञता (gratitude), विनम्रता (humility), न्याय (justice), दया (kindness), श्रम (labour), उदारता (liberality), प्रेम (love), कृपा (mercy), संयम (moderation), सुशीलता (modesty), पड़ोसीपन (neighbourlihood), हृदय की शुद्धता (purity of heart), सदाचार (righteousness), धैर्य (stedfastness), सत्य (truth), विश्वास (trust) आदि सद्गुणों को ग्रहण करने का उपदेश दिया गया है। इससे स्पष्ट होता है कि इस्लाम परम्परा में उन तत्त्वों की अवहेलना की गई है, जिनसे हिंसा भाव की उत्पत्ति या वृद्धि होती है। और उन तत्त्वों को अपनाया गया है, जिनसे अहिंसा भाव की पुष्टि होती है एवं अहिंसा का विकास होता है।

इस्लाम धर्म के अन्तर्गत ही सूफी सम्प्रदाय भी विकसित हुआ। सूफी दर्शन का रहस्य है—परमात्मा सम्बंधी सत्य का परिज्ञान करना। परमात्मा-तत्त्व की उपलब्धि के लिए सांसारिक वस्तुओं का परित्याग करना। सूफी सम्प्रदाय में प्रेम के आधिक्य पर बल दिया गया है। वे परमात्मा को प्रियतम मानकर सांसारिक प्रेम के माध्यम से प्रियतम के सन्निकट पहुंचना चाहते हैं। मानवीय प्रेम ही आध्यात्मिक प्रेम का साधन है, प्रेम परमात्मा का सार है। ईश्वर की अर्चना करने का प्रेम ही सर्वश्रेष्ठ और सर्वोत्कृष्ट रूप है।

बोध प्रश्न 1:

---

1. *नारद पुराण में अहिंसा के बारे में क्या कहा गया है?*
2. *आचारांग के अनुसार अहिंसा क्या है?*
3. *इस्लाम के अनुसार सद्गुण और दुर्गुण का विवेचन करें।*

1.14.0 गांधीजी एवं विनोबा की दृष्टि में अहिंसा चिन्तन

1.14.1 गांधीजी की दृष्टि में अहिंसा

भारतीय चिन्तकों में महात्मा गांधी का अनन्य स्थान है। वे शास्त्रीय दार्शनिक नहीं, अपितु व्यावहारिक जीवन के लिए एक नवीन दार्शनिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करने वाले महान् विचारक हैं। गांधीजी की नीति-मीमांसा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

में अहिंसा का सर्वोच्च स्थान है। अहिंसा को वे परम धर्म मानते हैं। उनका कहना है कि जब आप सत्य को ईश्वर के रूप में जानना चाहें तो उसका एक मात्र उपाय प्रेम तथा अहिंसा है। प्रेम के रूप में अहिंसा सभी गुणों की जननी है। गांधीजी का विश्वास है कि हिंसा के आधार पर कोई वस्तु निर्मित नहीं की जा सकती। अहिंसा कर्मठता का दर्शन है, निष्क्रियता का नहीं। अहिंसा न केवल हमारे विरोधियों को परास्त करती है, अपितु हमें आंतरिक रूप से अधिक महान् बनाकर अन्य मनुष्यों के साथ एकता के सूत्र में बांधती है। हृदय परिवर्तन द्वारा क्रांति का सिद्धांत अहिंसा के मनोवैज्ञानिक तथ्य पर आधारित है। गांधीजी के अहिंसक विचारों की मौलिकता इस बात पर है, कि उन्होंने वैयक्तिक अहिंसा को सामाजिकता का जामा पहनाया। जन-जीवन से उसका संबंध स्थापित किया। अहिंसा को व्यावहारोपयोगी बना कर उन्होंने अहिंसा के पुरातन अर्थों की सीमाओं का विस्तार किया। गांधीजी ने अहिंसा को संगठित किया और विश्व को यह दिखलाया कि अहिंसा से समाज परिष्कृत होता है, युद्ध को रोका जा सकता है, और मानव-संस्कृति को सुरम्य बनाया जा सकता है। उनके अनुसार अहिंसा का अर्थ-प्रेम का सागर, वैरभाव का सर्वथा त्याग, दृढ़ता, वीरता, निश्छलता है। इस व्याख्या में अहिंसा की धनात्मकता दृष्टिगोचर होती है, जिसमें केवल वैरभाव को ही नहीं समाप्त किया जाता, अपितु हृदय में प्रेम को धारण किया जाता है।

गांधीजी ने सत्य की भांति ही अहिंसा-पालन पर भी बहुत बल दिया था। क्रोध, घृणा, ईर्ष्या, विद्वेष तथा स्वार्थ से प्रेरित होकर किसी प्राणी को अपने वचन अथवा कर्म द्वारा किसी प्रकार का कष्ट न पहुंचायें और कष्ट पहुंचाने का विचार न करें, यही अहिंसा है। अहिंसा के इस निषेधात्मक अर्थ के अतिरिक्त गांधी के अनुसार उसका स्वीकारात्मक अर्थ भी है, जिसमें सभी प्राणियों के प्रति प्रेम, दया, सहानुभूति आदि रखने की सलाह दी गई है। यथासम्भव प्राणियों की सेवा तथा सहायता करना अहिंसा का सकारात्मक पक्ष है। इस प्रकार गांधी ने अहिंसा-व्रत का पालन करने वाले मनुष्य हेतु स्वार्थ, क्रोध, घृणा, ईर्ष्या, विद्वेष, निर्दयता आदि दुर्भावनाओं से मुक्त रहना उचित माना है। हिंसा के संदर्भ में उन्होंने कहा है—किसी को मारना या कष्ट देना ही हिंसा नहीं है बल्कि कुविचार मात्र हिंसा है, उतावली हिंसा है, मिथ्या भाषण हिंसा है, द्वेष हिंसा है, किसी का बुरा चाहना हिंसा है। जगत् के लिए जो आवश्यक वस्तु है, उस पर कब्जा रखना भी हिंसा है। गांधीजी ने अहिंसा को साधु-सन्तों के लिए ही नहीं वरन् सम्पूर्ण मनुष्यों के लिए आवश्यक माना है। उन्होंने अहिंसा को कमजोर व्यक्तियों का अस्त्र य साधन न मानकर बलवानों का अस्त्र माना है। उनका दृढ़ विश्वास था कि सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा धार्मिक समस्याओं का स्थायी समाधान केवल शान्तिपूर्ण अहिंसात्मक उपायों द्वारा ही हो सकता है, न कि हिंसात्मक उपायों द्वारा। गांधीजी का शांतिपूर्ण अहिंसात्मक सत्याग्रह मूलतः इसी सिद्धांत पर आधारित है। उन्होंने यह स्वीकार किया है कि हिंसात्मक उपायों द्वारा किसी भी प्रकार के अत्याचार का विरोध करने से उसमें वृद्धि ही होगी, क्योंकि हिंसा और अधिक हिंसा को उत्पन्न करती है। गांधीजी के अनुसार अहिंसा का आचार मनुष्य का नैतिक अथवा आध्यात्मिक बल है, उसकी विवशता या दुर्बलता नहीं।

1.14.2 अभिप्राय एवं स्वरूप

गांधी दर्शन में अहिंसा की अवधारणा का अभिप्राय निषेधात्मक एवं विधायक अहिंसा से है। निषेधात्मक अहिंसा का आशय हिंसा का त्याग है। दूसरे शब्दों में हिंसा की अनुपस्थिति ही अहिंसा है। गांधी चिन्तन में निषेधात्मक अहिंसा को दो भागों में विभक्त किया गया है—बाहरी अहिंसा या स्थूल अहिंसा तथा आन्तरिक अहिंसा जो कि हिंसा के निम्नलिखित दो प्रकारों पर आधारित है—

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1.14.2.1 बाहरी हिंसा या स्थूल हिंसा

इसके अन्तर्गत किसी की हत्या करना या मारने का विचार एवं आचार आता है।

1.14.2.2 आन्तरिक हिंसा

आन्तरिक हिंसा को मानसिक हिंसा या सूक्ष्म हिंसा भी कहा जाता है। इसके अन्तर्गत काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, असत्य जैसे विकार आते हैं। इस दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि बाहरी अहिंसा जिसे स्थूल अहिंसा भी कहा जाता है, का अभिप्राय किसी की हत्या नहीं करना है। इसी तरह आन्तरिक अहिंसा जिसे मानसिक अहिंसा या सूक्ष्म अहिंसा भी कहा जाता है—का मतलब अक्रोध, अस्तेय, अपरिग्रह, अभय, अस्वाद, असंग, अपीड़न आदि से है।

1.14.3 विधायक अहिंसा

विधायक अहिंसा का अर्थ प्रेम का विस्तारीकरण, मैत्रीभाव की जागृति, दया-भाव का उदय एवं आचरण करने से है। विधायक अहिंसा का अर्थ करुणा, मानवता, पौरुष, भद्रता, सरलता, शान्ति, हृदय की विशालता, दया, मैत्री, सेवा, त्याग, साहस, आस्था, अपरोक्ष क्रियावादी विचार, विवेक, स्पष्ट दृष्टि, पवित्रता, विनम्रता, क्षमा, सहिष्णुता, सत्यवादिता और ईश्वरार्पण हैं।

1.14.4 अहिंसा के संवर्द्धक तत्त्व

गांधी दर्शन में संवर्द्धन करने वाले मुख्य तत्त्व निम्न हैं-

1. प्रतिरोधी प्रेम वृत्ति की जागृति
2. आत्मवत् सर्वभूतेषु भाव का प्रभाव
3. सर्वभूत हितेरत: की प्रवृत्ति की जागृति
4. प्रतिकार के पीछे दया भाव का होना
5. स्थितप्रज्ञता
6. अभयता
7. आत्मशोधन एवं आत्मशुद्धि
8. मुक्त सेवा
9. विश्वव्यापी प्रेम

1.14.5 अहिंसा की कसौटी

गांधी दर्शन में अहिंसा की कसौटी के मुख्य तत्त्व इस प्रकार है-

1. जीवमात्र के प्रति आत्मीयता का भाव
2. विरोधी के प्रति दया भाव
3. व्यवहार में राग-द्वेष का अभाव
4. विपरीत परिस्थिति में भी समत्व बुद्धि की स्थिरता
5. सबसे जरूरतमंद एवं दु:खी की सर्वप्रथम सेवा
6. प्रतिपक्षी के प्रति पक्षपात रहित वृत्ति का उदय

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

7. स्वयं किसी से न तो डरना, न डराना

8. प्रज्ञा की स्थिरता

9. पूर्वाग्रह एवं राग आदि से मुक्ति

1.14.6 अहिंसा का प्रयोग

गांधी की अहिंसा केवल कल्पना लोक की पर्याय नहीं, बल्कि व्यावहारिक जगत् का यथार्थ है। गांधीजी अपने जीवनकाल में और तत्पश्चात् विनोबा ने अहिंसा के कई अद्भुत सफल प्रयोग किए हैं, जैसे—स्वतंत्रता संग्राम के क्रम में असहयोग आंदोलन, नमक आंदोलन, स्वदेशी आंदोलन, अंग्रेजों भारत छोड़ो के साथ ही खादी, हरिजन सेवा, कुष्ठ सेवा, गौ सेवा, प्राकृतिक चिकित्सा, नौवाखाली यात्रा आदि। गांधीजी के पश्चात् विनोबा ने अहिंसा का प्रयोग करते हुए भूदान यज्ञ, ग्रामदान, जीवनदान, सम्पत्तिदान, बुद्धिदान, श्रमदान के साथ ही चम्बल के डाकुओं को आत्मसमर्पण कराया। इन प्रयोगों से यह स्पष्ट होता है कि आज भी यदि विश्वासपूर्वक अहिंसा को अपनाया जाए तो जगत् की कई समस्याओं का सहज ही समाधान निकल जाएगा।

1.14.7 विनोबा की दृष्टि

विनोबा के अनुसार अहिंसा का अर्थ है हिंसा से निवृत्त होना। हिंसा से निवृत्त होने का अभिप्राय है आत्मरक्षार्थ और आक्रामक दोनों प्रकार की हिंसा से निवृत्त होना। अहिंसा के पालन में पूर्णरूपेण हिंसा के त्याग के पीछे विनोबा की यह युक्ति है, कि हिंसा की कोई सीमा नहीं होती है। व्यक्ति विजय की लिप्सा में हिंसा की सीमा का उल्लंघन करता है। अत: सीमित रूप में भी हिंसा का वरण करना आग्रह है। विनोबा हिंसा की भाषा का भी निषेध करते हैं। किसी सेवा के कार्य के लिए संगठन की अपेक्षा रखना यह हिंसा की भाषा है। उनके विचार में संगठन में हिंसा छिपी रहती है। इसलिए जितना प्रभाव शुद्ध चित्तवाले व्यक्ति का समाज पर पड़ता है, उतना किसी संस्था जैसे—चर्च, राज्य-सत्ता, शांतिनेता इत्यादि का नहीं। उनके विचार में अहिंसा की शक्ति का प्रयोग मानवों के बीच वैरभाव हटाने, चित्त में मत्सर, क्रोध इत्यादि के हटाने में ही उचित है। ''मानवों के व्यवहार में ही हमारी अहिंसा की कसौटी होती है।'' अहिंसा न तो ''ढीली-ढीली'' सहनशीलता है और न ही असह्य नियम। अत: अहिंसा के नाम पर व्यर्थ शरीर को कष्ट देना और अन्याय को सहना उचित नही है। चाहे माता-पिता या सरकार के रूप में ही कोई क्यों न आवे, अन्यायियों का प्रतिकार आवश्यक है, परन्तु प्रतिकार के पीछे हिंसा या क्रोध का भाव न होकर दया का भाव होना चाहिए। इसलिए विनोबा ने दया, मार्दव, क्षमा, शान्ति अक्रोध, अद्रोह को अहिंसा का पर्याय माना है।

विनोबा अहिंसा के भावात्मक पक्ष को ही अधिक महत्त्वपूर्ण मानते हैं, तथा इसे सामूहिक समाधि का विषय मानते हैं। वे विज्ञान और अध्यात्म के आधार पर ''सामूहिक अहिंसा'' के पालन पर बल देते हैं। विनोबा के अनुसार भावात्मक अहिंसा—सत्य, प्रेम और करुणा का अखण्ड रूप है। प्रेम का अर्थ ''अनुरोधी'' और ''प्रतिरोधी'' दोनों प्रकार का प्रेम है। अनुरोधी प्रेम का अर्थ प्रेम करने वालों से प्रेम करना, प्रतिरोधी प्रेम का अर्थ है दुश्मनों पर, द्वेष करने वालों पर भी प्रेम करना। वस्तुत: प्रतिरोधी प्रेम के आचरण से ही अहिंसा की शक्ति बढ़ती है। अहिंसा का दूसरा अंगीभूत तत्त्व करुणा है, जो शाश्वत धर्म के अन्तर्गत आता है। इसके आधार पर ही समाज बनता है, और धर्म आगे बढ़ता है। अत: विनोबा के अनुसार विज्ञान के युग में करुणा का महत्त्व विशेषकर बढ़ गया है।

विनोबा की अहिंसा में बाहर की क्रिया से अधिक आंतरिक भावों और निष्ठाओं पर बल दिया गया है। इसे मनोवैज्ञानिक अहिंसा की संज्ञा दी जा सकती है। इसके अनुसार अहिंसा स्थितप्रज्ञता की सूचक है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

विनोबा के अनुसार विचारों का सन्तुलन कायम रखने, और बुद्धि की समता डिगने न देने का नाम ही अहिंसा है। अहिंसा सिर्फ बाहर की क्रिया नहीं, हृदय की निष्ठा है। स्थितप्रज्ञता और समत्व की प्राप्ति के लिए आत्म-शोधन, आत्मशुद्धि, मुक्तसेवा, विश्वव्यापी प्रेम और निर्भयता की मुख्य आवश्यकता है। वे यह मानते थे कि वास्तव में अहिंसा का निर्धारक आंतरिक राग-द्वेष ही है। इसलिए अच्छी और बुरी दोनों प्रकार की वासनाओं का त्याग आवश्यक है। अहिंसा व्रत का पालन व्यक्ति, संस्था, समाज, राष्ट्र और अन्तर्राष्ट्रीय जगत् सभी के लिए वांछनीय है। इसका पालन करने से व्यक्ति अपने ऊपर भरोसा कर सकता है, तथा वातावरण की बुराइयों से अपने को मुक्त रख सकता है।

1.15.0 गुरुदेव तुलसी का अहिंसा दर्शन

आधुनिक युग में आचार्य तुलसी एक ऐसे युगदृष्टा के रूप में सर्वमान्य हैं, जिन्होंने जीवन के विभिन्न पक्षों से संबंधित समस्याओं के समाधान हेतु मौलिक एवं नैतिक धरातल प्रदान किया, उनका अहिंसा दर्शन भी इसी श्रृंखला की एक सशक्त कड़ी है। आचार्य तुलसी ने इसे आधुनिक परिवेश में परिभाषित करने का प्रयत्न किया है। उनके वाङ्मय में अहिंसा की परिभाषाएं अहिंसा के विविध पहलुओं का स्पर्श करती हैं।

1.15.1 अहिंसा की अवधारणा

गुरुदेव तुलसी की कुछ अवधारणाओं को बिंदु रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है—

शुद्ध अहिंसा है—हृदय-परिवर्तन के द्वारा किसी को अहिंसक बनाना। जब तक हिंसक का हृदय परिवर्तन नहीं होता, तब तक वह किसी न किसी रूप में हिंसा कर ही लेगा। अतः साधन-शुद्धि अहिंसा की अनिवार्य शर्त है।

बड़ों की रक्षा के लिए छोटों को मारना, बहुमत के लिए अल्पमत का उत्सर्ग कर देना हिंसा नहीं है—यह मानना अहिंसा को लज्जित करना है।

अनिवार्य हिंसा को अहिंसा मानना उचित नहीं। आकांक्षाओं के लिए होने वाली हिंसा, जीवन की आवश्यकता-पूर्ति करने वाली हिंसा अनिवार्य हो सकती है, पर उसे अहिंसा नहीं कह सकते।

किसी को अहिंसक बनाने के लिए हिंसा का प्रयोग करना अहिंसा का दुरुपयोग है।

1.15.2 अहिंसक कौन?

गुरुदेव ने विभिन्न कोणों से अहिंसक व्यक्ति की विशेषताओं का आकलन किया है, उनमें से कुछ यहां प्रस्तुत हैं—

अहिंसक वही है, जो मारने की क्षमता रखता हुआ भी मारता नहीं है।

अहिंसक वही हो सकता है, जिसकी दृष्टि बाह्य भेदों को पार कर आंतरिक समानता को देखती रहती है।

अहिंसक सच्चा वीर होता है। वह स्वयं मरकर दूसरे की वृत्ति बदल देता है, हृदय परिवर्तित कर देता है।

1.15.3 हिंसा के विविध रूप

अहिंसा को समझने के लिए हिंसा के स्वरूप एवं उसके विविध रूपों को समझना आवश्यक है। आचार्य तुलसी हिंसा को बहुत व्यापक अर्थ में देखते हैं। हिंसा के स्वरूप-विश्लेषण में उनके मंथन से निकलने वाले कुछ निष्कर्ष इस भाषा में प्रस्तुत किये जा सकते हैं—

* राग-द्वेष युक्त प्रवृति से किया जाने वाला हर कार्य हिंसा है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

* हिंसा मात्र तलवार से ही नहीं होती, मिलावट और शोषण भी हिंसा है। संक्षेप में कहें तो जीवन की हर असंयत प्रवृत्ति हिंसा है।
* किसी से अतिश्रम लेने की नीति हिंसा है।
* अपने विश्वास या विचार को बलपूर्वक दूसरे पर थोपने का प्रयास करना भी हिंसा है, फिर चाहे वह अच्छी धार्मिक क्रिया ही क्यों न हो।
* जैसे दूसरों को मारना हिंसा है, वैसे ही हिंसा को रोकने के लिए आत्म-बलिदान से कतराना भी हिंसा है।

1.15.4 अहिंसा की शक्ति

अहिंसा की शक्ति अपरिमेय है, पर इसके उपयोग के लिए आवश्यक है कि उसको सही प्रयोक्ता मिले। अहिंसा के अमाप्य व्यक्तित्व में योगक्षेम की जो क्षमता है, वह अतुल और अनुपमेय है। गुरुदेव तुलसी का मानना था कि—"अगर नेता, साहित्यकार, दार्शनिक, कलाविद् और कवि हिंसा के वातावरण को फैलाना छोड़कर अहिंसा के पुनीत वातावरण को फैलाने में जुट जाएं तो संभव है कि अहिंसक क्रांति की शक्ति का उज्वल आलोक कण-कण में छलक उठे। अहिंसा में इतनी शक्ति है, कि हिंसक यदि अहिंसक के पास पहुंच जाए तो उसका हृदय परिवर्तित हो जाता है, पर इस शक्ति का प्रयोग करने हेतु बलिदान की भावना एवं अभय की साधना अपेक्षित है।"

1.15.5 अहिंसा की प्रतिष्ठा

अहिंसा की प्रतिष्ठा प्रत्येक व्यक्ति चाहता है। राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय मंच से भी आज अहिंसा की प्रतिष्ठा का चिन्तन चल रहा है। हिंसा चाहे चरम सीमा पर पहुंच जाये पर अहिंसा की मूल्यस्थापना या प्रतिष्ठा कम नहीं हो सकती, क्योंकि हिंसा हमारी स्वाभाविक अवस्था नहीं है।

1.15.5.1 अहिंसा प्रतिष्ठा की बाधाएं

गुरुदेव तुलसी की दृष्टि में अहिंसा की प्रतिष्ठा में मुख्यत: निम्न चार बाधाएं हैं—

1. अहिंसा के प्रति आस्था की कमी—अहिंसा की प्रतिष्ठा न होने का कारण, वे अहिंसा के प्रति होने वाली ईमानदारी की कमी को मानते थे।

2. साधन-शुद्धि का अविवेक—साध्य चाहे कितना ही प्रशस्त क्यों न हो, यदि साधन-शुद्ध नहीं है तो अहिंसा का, शांति का अवतरण नहीं हो सकता।

3. अहिंसा के प्रशिक्षण का अभाव—उनके अनुसार अहिंसा की परम्परा तब तक अक्षुण्ण नहीं बन सकती, जब तक उसका सफल प्रयोग, परीक्षण एवं प्रशिक्षण न हो।

4. आत्म-तुलना की भावना का विकास न होना—वे मानते थे कि अहिंसा के जगत् में इस चिन्तन की कोई भाषा ही नहीं होती कि मैं ही बचूंगा या अंतिम जीत मेरी ही हो। वहां की भाषा यही होती है—अपने अस्तित्व में सब हो और सबके अस्तित्व का विकास हो।

1.15.6 अहिंसा का सामाजिक स्वरूप

अहिंसा केवल मोक्ष प्राप्ति के लिए ही नहीं, अपितु सामाजिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में इसकी उपयोगिता निर्विवाद है। उनके अनुसार अहिंसा वह सुरक्षा कवच है, जो घृणा, वैमनस्य, प्रतिशोध, भय, आसक्ति आदि घातक अस्त्रों के प्रहार को निरस्त कर देता है तथा समाज में शांति, सह-अस्तित्व एवं मैत्रीपूर्ण वातावरण बनाए रख

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

सकता है। वे मानते हैं अहिंसा का पथ जटिल एवं कंकरीला हो सकता है, पर महान् बनने हेतु इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है। अहिंसा वह शक्ति है, जो समाज में मानव को पशु बनाने से रोके हुए है। अहिंसा का सामाजिक जीवन में प्रयोग ही नैतिकता है। जिसमें दूसरों के प्रति मैत्री का भाव नहीं होता, करुणा की वृत्ति नहीं होती और दूसरों के कष्ट को अनुभव करने क मानस नहीं होता, वह नैतिक कैसे बन सकता है?

अहिंसक समाज रचना हेतु उन्होंने अणुव्रत आंदोलन के माध्यम से सार्थक प्रयास किया। उनका स्वप्न था कि सामूहिक अशांति को जन्म देने वाली हिंसा को मिटाकर अहिंसा प्रधान समाज का निर्माण करना। उसकी आधारशिला में निम्न नियम कार्यकारी बन सकते हैं—

* जाति, धर्म, सम्प्रदाय, वर्ण आदि का भेद होने के कारण किसी मानव की हत्या न करना।
* दूसरे समाज या राष्ट्र पर आक्रमण न करना।
* निरपराध व्यक्ति को नहीं मारना, सब प्राणियों के प्रति आत्मौपम्य भाव का विकास करना।
* जीवन-यापन के लिए आवश्यक सामग्री के अतिरिक्त अन्य वस्तुओं का संग्रह न करना।
* रक्षात्मक युद्ध में भी शत्रुपक्षीय नागरिकों की हत्या न करना।

इसके साथ ही वे अहिंसक समाज की प्रतिष्ठा में निम्न प्रवृत्तियों का होना आवश्यक मानते हैं—

1. वर्तमान शिक्षा-प्रणाली की पुनर्रचना।
2. संयमी एवं त्यागी पुरुषों को महत्व देना
3. इच्छाओं का अल्पीकरण।

1.15.7 अहिंसात्मक प्रतिरोध

प्रतिरोध हिंसात्मक भी होता है और अहिंसात्मक भी। हिंसात्मक प्रतिरोध क्षणिक होता है किन्तु अहिंसात्मक प्रतिरोध का प्रभाव स्थायी होता है। गांधीजी ने इसका प्रयोग सत्याग्रह आंदोलन के रूप में किया, जो काफी अंशो में सफल हुआ।

गुरुदेव तुलसी मानते थे कि तटस्थता और विनम्रता अहिंसात्मक प्रतिरोध के आधार स्तम्भ हैं। उनकी दृष्टि में किसी भी विचार के प्रति पूर्वाग्रह या अहंभाव टिक नहीं सकता। पक्ष विशेष से बंधकर प्रतिरोध की बात करना स्वयं हिंसा है। वहां अहिंसात्मक प्रतिरोध सफल नहीं होता।

प्रतिरोध करने वाले व्यक्ति की चारित्रिक विशेषताओं के बारे में उनका मन्तव्य है कि अहिंसात्मक प्रतिकार के लिए व्यक्ति में सबसे पहले असाधारण साहस होना नितांत अपेक्षित है। जो व्यक्ति कष्टसहिष्णु होते हैं, वे विषम स्थिति में भी अन्याय और असत्य के सामने झुकने की बात नहीं सोचते। ऐसे व्यक्ति अहिंसात्मक प्रतिकार में अधिक सफल होते हैं। उनकी कष्ट-सहिष्णुता इतनी बढ़ जाती है कि वे मृत्यु तक का वरण करने के लिए सदा उद्यत रहते हैं। जिन व्यक्तियों को मृत्यु का भय नहीं होता, वे सत्य की सुरक्षा के लिए सब-कुछ कर सकते हैं। प्रतिरोधात्मक अहिंसा का प्रयोग इन्हीं व्यक्तियों द्वारा किया जाता है।

1.16.0 आचार्य महाप्रज्ञ का अहिंसा दर्शन

अहिंसा के सिद्धांत और प्रयोग की प्रतिष्ठा के संदर्भ में सामान्यत: एक धारणा बनी है कि गांधीजी की मृत्यु के साथ ही अहिंसा का विकास अवरुद्ध हो गया है। किन्तु यदि विश्लेषणात्मक अध्ययन के आधार पर यह चिन्तन करें तो निष्कर्ष आता है कि यह धारणा सम्पूर्ण सत्य नहीं है। गांधीजी की मृत्यु के उपरान्त भी भारतवर्ष में कई ऐसे दिव्य व मनीषी पुरुष हुए हैं, जिन्होंने न केवल अहिंसा की व्यवहारिकता के नये अछूते सन्दर्भ प्रस्तुत किए, अपितु व्याप्त समस्याओं के समाधान हेतु मानव एवं व्यवस्था को अहिंसक

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

बनाने के सूत्र भी प्रस्तुत किए। वैज्ञानिकता एवं आध्यात्मिकता के समन्वयात्मक व्यक्तित्व के निर्माण हेतु नवीन अर्थपूर्ण सिद्धान्त एवं तर्कपूर्ण पद्धतियों का भी सृजन किया। अहिंसा शास्त्रियों की इस श्रृंखला की कड़ी है। आचार्य महाप्रज्ञ, जिन्होंने अहिंसा के पुरातन सिद्धान्त की वर्तमान के संदर्भ में नई वैयक्तिक, आध्यात्मिक, मनोवैज्ञानिक, शरीरशास्त्रीय, राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं शैक्षणिक आदि व्याख्याएं की। हिंसा की उत्पत्ति के आन्तरिक एवं बाह्य कारणों तथा इससे उत्पन्न कार्यों की विवेचना का अनुसंधान के आधार पर अहिंसक व्यक्तित्व निर्माण हेतु अहिंसा प्रशिक्षण की अभिनव प्रयोग पद्धति का आविष्कार कर स्वस्थ समाज संरचना का एक आधार प्रस्तुत किया। प्रस्तुत पाठ में इन्हीं बिन्दुओं की विवेचना को अध्ययन, विचार एवं मंथन का विषय बनाया जायेगा।

1.16.1 अहिंसा का दार्शनिक आधार

हिंसा एवं अहिंसा दो विरोधी प्रवाह हैं। हिंसा जीवन की अनिवार्यता या अशक्यता और आत्म शक्ति के अल्प विकास की दशा में पनपने वाली बुराई है, जबकि अहिंसा आत्मा की स्वाभाविकता और जीवन की उपयोगिता है। आत्मा, शरीर, वाणी और मन की सहयोगी स्थिति का नाम जीवन है। इस सहयोगी स्थिति का जो अधिकारी होता है, वह व्यक्ति कहलाता है। जीवन स्व (आत्मा) और पर (शरीर, वाणी और मन) का संयम है। व्यक्ति भी स्व-पर संगम से बनी हुई संस्था है। जीवन का स्व-अंश स्वभाव और पर-अंश विभाव है। वास्तव में जो स्वाभिमुखता या स्वरमण है, वही अहिंसा है एवं पराभिमुखता या पदार्थाभिमुखता विभाव, विकार या हिंसा है। आचार्य महाप्रज्ञ के अनुसार जितने भी धर्म एवं दार्शनिक परम्पराएं रही हैं, उनमें धर्म को शुद्ध एवं सर्वश्रेष्ठ माना गया। सम्पूर्ण जगत् को देखने एवं परखने के उपरान्त, समस्त जीवों के भेद जानकर इस शाश्वत धर्म का प्रतिपादन किया गया, जिसमें कोई दोष नहीं निकाल सकता, मतभेद नहीं कर सकता। यह शाश्वत धर्म विशाल, अनन्त है तथा बन्धन से परे है।

भारत में अन्य परम्पराओं के अतिरिक्त मुख्यत: दो प्राचीन परम्पराएं-श्रमण एवं ब्राह्मण परम्पराएं सर्वाधिक प्रचलित हैं। श्रमण परम्परा में सम शब्द को सर्वाधिक मूल्य दिया गया। यह ''सम'' शाब्दिक रूप से समता का बोध कराता है। आचार्यश्री के अनुसार यही समता अहिंसा का मुख्य आधार है। वे स्वीकारते हैं कि अहिंसा की चेतना को जगाने के लिए समतावाद एवं एकात्मवाद ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। भेद नय की दृष्टि से विचार करें तो निष्कर्ष निकलता है कि प्रत्येक व्यक्ति की आत्मा स्वतंत्र है। जितने व्यक्ति हैं, प्राणी हैं, उतनी ही आत्माएं हैं। प्रत्येक आत्मा का अलग अस्तित्व माने तो समतावाद फलित होगा। समता का आधार है-सब जीवों के प्रति सम भाव की अनुभूति। सब जीव शरीर, जाति, वर्ण आदि नानात्व से विभक्त बने हुए हैं। विभक्त में अविभक्त को खोजना अहिंसा का मुख्य आधार है। भेद में अभेद खोजने पर ही समता का सिद्धान्त प्राणवान बनता है। हिंसा की समस्या के संदर्भ मे यदि अभेद चेतना जागृत की जाए तो समाधान का सूत्र प्राप्त हो सकता है। जिस दिन व्यक्ति के भीतर यह चेतना जागेगी उस दिन करुणा का अथाह सागर प्रवाहित होगा, सारे भेद समाप्त हो जाएंगे। तब समस्त आत्माओं को केवल समान ही नहीं अपितु एकात्मरूप में देखने की स्थिति का अवकाश मिलेगा। अहिंसा की चेतना को जगाने वाला यह सूत्र वैचारिक अहिंसा को जागृत कर सामाजिक समस्याओं, पारस्परिक व्यवहारों मे परिवर्तन लाने का एक अमोघ सूत्र बन सकता है।

पारिवारिक कलह, मानवीय संबंधों में कटुता, जातीय संघर्ष, सांप्रदायिक संघर्ष, क्षेत्रीय संघर्ष आदि हिंसा के प्रारम्भिक रूप हैं, किन्तु ये मुख्यत: मिथ्या अभिनिवेश पर आधारित होते हैं। इसी मिथ्या अभिनिवेश को कम करने के लिए अनेकांत एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है, जो वास्तव में वैचारिक अहिंसा का ही पर्याय है। अनेकांत अभिनिवेश और आग्रह से मुक्त होने का प्रयोग है, जिसके मूलभूत सिद्धान्तों यथा सप्रतिपक्ष, सह-अस्तित्व, स्वतंत्रता, सापेक्षता एवं समन्वय का संक्षिप्त परिचय निम्नानुसार है—

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1.16.1.1 सप्रतिपक्ष

इस विश्व में वही अस्तित्व है, जिसका प्रतिपक्ष है। प्रतिपक्ष अस्तित्व का अनिवार्य अंग है, सार्वभौम है। मनुष्य अपनी संवेगात्मक प्रकृति और विरोधी हितों के कारण प्रतिपक्ष के प्रति शत्रुता का भाव रखता है। प्रतिपक्ष का आदर करना अस्तित्व की सुरक्षा का महत्त्वपूर्ण पक्ष है।

1.16.1.2 सह–अस्तित्व

प्रत्येक वस्तु में अनन्त विरोधी युगल हैं। दो विरोधी विचार वाले साथ रह सकते हैं। वास्तव में यही सह–अस्तित्व का सूत्र हमारे जगत् का सौन्दर्य है। भय एवं घृणा के संवेग का परिष्कार होने से सह–अस्तित्व के मार्ग की बाधा समाप्त हो सकती है।

1.16.1.3 स्वतंत्रता

प्रत्येक पदार्थ का अस्तित्व स्वतंत्र है। सब पदार्थ अपने-अपने मौलिक गुणों के कारण अपनी विशिष्टता बनाए हुए हैं। मनुष्य की स्वतंत्रता अथवा व्यक्तिगत स्वतंत्रता का मूल्यांकन किये बिना समाज स्वस्थ नहीं रहता। सामाजिकता के महत्त्व को स्वीकार करते हुए भी वैयक्तिक-स्वतंत्रता के महत्त्व को स्वीकारना भी अपेक्षित है।

1.16.1.4 सापेक्षता

हमारा अस्तित्व यद्यपि स्वतंत्र और निरपेक्ष है किन्तु व्यक्तित्व सापेक्ष है। व्यक्तित्व की सीमा में स्वतंत्रता भी सापेक्ष है। अतः कोई भी व्यक्ति पूर्ण स्वतंत्र नहीं है, इसलिए सापेक्ष है। अनेकांत का दृष्टिकोण सर्वांगीण है। उसके अनुसार व्यक्ति और समाज—दोनों सापेक्ष हैं। वास्तव में मानवीय संबंधों में जो कटुता दिखाई देती है, उसका हेतु निरपेक्ष दृष्टिकोण है। सापेक्षता के आधार पर संबंध-विज्ञान को व्यापक आयाम दिया जा सकता है। मनुष्य, पदार्थ, विचार, वृत्ति और अपने शरीर के साथ संबंध का विवेक अहिंसा के विकास का आधार तत्त्व है। मनुष्यों के प्रति क्रूरतापूर्ण, पदार्थ के प्रति आसक्तिपूर्ण विचारों के साथ आग्रहपूर्ण, वृत्तियों के साथ असंयत, शरीर के साथ मूर्च्छापूर्ण संबंध हैं, तो हिंसा अवश्यभावी है।

1.16.1.5 समन्वय

कोई भी विचार सत्य नहीं होता, वह केवल सत्यांश होता है। अपने विचार को सत्य मानना और दूसरे के विचार को असत्य मानना एकांगी आग्रह है। यही एकांगी आग्रह मनुष्य को असत्य की ओर ले जाता है। सत्य की खोज का मार्ग है अनाग्रह। अनाग्रही मनोवृत्ति के उदय से ही समन्वयात्मकता सध सकती है।

उपर्युक्त मूल्य यदि जीवन में प्रतिष्ठित हो सकें तो अहिंसा का व्यवहार मानव के लिए अधिक सुगम एवं सहज हो सकता है। विश्लेषणात्मक दृष्टि से देखा जाए तो वास्तव में हिंसा मनुष्य का स्वभाव नहीं अपितु उसकी विवशता है, जबकि अहिंसा स्वभाव है विवशता नहीं तथा यह स्वभाव विकसित हो सकता है—आस्था के आधार पर, विवेक के आधार पर, उपयोगिता के आधार पर। किन्तु यदि अहिंसा को केवल उपयोगिता के आधार पर स्वीकार किया जाएगा तो उसका विकास संभव नहीं। इसे एक व्यवहार या प्रवृत्ति के रूप में स्वीकार किया जाएगा तब भी उसका विकास संभव नहीं है। उसकी आस्था, आत्मानुभूति, उपयोगिता और प्रवृत्ति—इस चतुष्पदी रूप में स्वीकृति ही कारगर हो सकती है। इस सारी समीक्षा के पश्चात् जो विचार उभरकर आता है, वह अहिंसा को जीवन-दर्शन के रूप में प्रस्तुत करता है। हिंसा से संतप्त मनुष्य अहिंसा की उपयोगिता अनुभव कर रहा है, पर इस तरह उसके विकास बीज अंकुरित नहीं हो सकते। उनके अंकुरण के लिए आवश्यक है—समग्र दृष्टि का निर्माण, समस्त क्रांति का आह्वान और जीवन का समग्रता से समर्पण।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

बोध प्रश्न 2 :

1. गांधीजी के अनुसार आन्तरिक हिंसा क्या है?

2. गुरुदेव तुलसी के अनुसार अहिंसा की शक्ति बताएं।

3. आचार्य महाप्रज्ञ के अनुसार हिंसा के कारण बताएं।

1.16.2 हिंसा के कारण

आचार्य महाप्रज्ञ हिंसा के कारण और परिणाम—दोनों की एकात्मकता का प्रतिवादन करते हैं। हिंसा स्वयं में प्रवृत्ति नहीं है, वह परिणाम है। हिंसा के कारण न हो तो वह निष्पन्न नहीं होती। कर्मवाद की भाषा में हिंसा का कारण है—पूर्वकृत कर्म का विपाक। विज्ञान की भाषा में हिंसा का कारण है—रसायन। आचारांग सूत्र में हिंसा के चार कारणों का निर्देश है—

1. वर्तमान जीवन के लिए, 2. प्रशंसा, सम्मान और पूजा के लिए, 3. जन्म, मरण और मोचन के लिए तथा 4. दु:ख प्रतिकार के लिए। प्रश्न व्याकरण सूत्र में हिंसा के पन्द्रह कारणों का निर्देश है, यथा—क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, वैर, रति, अरति, शोक, भोग, अर्थ, कर्म, धर्म, पराधीनता एवं मोह। आचार्य महाप्रज्ञ हिंसा के कारणों को मनुष्य के भीतर भी देखते हैं, तथा बाहर भी। वो हिंसा की उत्पत्ति के आन्तरिक एवं बाह्य दोनों कारणों को स्वीकारते हैं जिन्हें वर्गीकरण के आधार पर निम्न बिन्दुओं में व्यक्त किया जा सकता है।

1.16.2.1 हिंसा : आन्तरिक कारक तत्त्व

शरीर के स्तर पर :

1. नाड़ी, तंत्रीय असंतुलन
2. रासायनिक असंतुलन

सूक्ष्म शरीर के स्तर पर :

1. कर्म विपाक
2. धुंधला आभामण्डल

चेतना के स्तर पर :

1. मानसिक तनाव
2. भावनात्मक तनाव
3. निषेधात्मक दृष्टिकोण
4. मानसिक चंचलता का अतिरेक
5. अंध भावना
6. हीन भावना
7. वैचारिक आग्रह या मिथ्या दृष्टिकोण

1.16.2.2 हिंसा : बाह्य कारक तत्त्व

1. असंतुलित समाज व्यवस्था
2. असंतुलित राजनैतिक व्यवस्था

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

3. शस्त्रीकरण की समस्या

4. जातीय और रंग भेद की समस्या

5. सांप्रदायिक समस्या

6. मानवीय संबंधों में असंतुलन

7. आर्थिक स्पर्धा और अभाव

8. संरचनात्मक अन्याय एवं शोषण

हिंसा के कारणों की उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट होता है कि इसकी उत्पत्ति के स्रोत यदि भीतर हैं तो बाहर भी हैं। आचार्य महाप्रज्ञ ने जहां इसकी शास्त्रीय विवेचना की वहीं निराकरण हेतु सबल सूत्र एवं समर्थ तकनीक का प्रतिवादन भी किया, जिनका स्वतंत्र एवं विस्तृत विवेचन अहिंसा प्रशिक्षण के पाठ के अन्तर्गत किया जायेगा। अहिंसा की प्रतिष्ठा वैयक्तिक स्तर पर अनेकांत के आधार पर आध्यात्मिक वैज्ञानिक व्यक्तित्व का निर्माण, सामाजिक स्तर पर अहं विलय, परस्परता, त्याग एवं अर्जन के साथ विसर्जन की चेतना के जागरण के आधार पर तथा अहिंसा को वैश्विक स्तर पर प्रतिष्ठित करने हेतु अहिंसा के क्षेत्र में कार्य करने वाली संस्थाओं को संयुक्त राष्ट्र मंच के समान संगठित एवं प्रभावशाली बनाने का विचार प्रस्तुत कर अहिंसा शास्त्र के अन्तर्गत प्रायः प्रस्तुत होने वाली शंकाओं का समाधान आचार्य महाप्रज्ञ के दर्शन, चिन्तन एवं साहित्य मे यत्र-तत्र उपलब्ध होकर अशांत विश्व को शांति का संदेश देने में उल्लेखनीय भूमिका निभा रहा है।

1.17.0 अभ्यास हेतु प्रश्न

(अ) निबन्धात्मक

1. अहिंसा की अवधारणा के विकास क्रम का विस्तारपूर्वक विवेचन करें।

(ब) निम्न प्रश्नों का उत्तर संक्षेप में दें।

1. वैदिक एवं जैन परम्परा में प्रतिपादित अहिंसा का तुलनात्मक स्वरूप प्रस्तुत करें।

2. गैर भारतीय धार्मिक परम्पराओं ने अहिंसा के विकास में क्या योगदान दिया है।

3. गांधीजी एवं आचार्य महाप्रज्ञ ने अहिंसा के क्षेत्र में क्या मौलिक एवं नवीन योगदान दिया?

(स) बहुवैकल्पिक प्रश्न

1. अहिंसा के सिद्धांत का सर्वप्रथम प्रतिपादन प्राप्त होता है?
   (अ) छान्दोग्योपनिषद (ब) मनुस्मृति (स) वायु-पुराण ( )
2. ''अहिंसा परमो धर्म'' का उल्लेख आता है?
   (अ) रामायण (ब) महाभारत (स) पिटक ( )
3. तीन करण एवं तीन योग का उल्लेख किस परम्परा में प्राप्त होता है?
   (अ) वैदिक परम्परा (ब) जैन परम्परा (स) बौद्ध परम्परा ( )
4. सूफीवाद किस परम्परा के अन्तर्गत आता है?
   (अ) इस्लाम (ब) यहूदी (स) ईसाई ( )

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–2 : अहिंसा का व्यवहार

संरचना

2.0.0 उद्देश्य
2.1.0 अहिंसा और जीवन शैली
2.1.1 अहिंसा की साधना
2.2.0 अहिंसा और आहार, वस्त्र, चिकित्सा आदि
2.2.1 आहार
2.2.2 अहिंसा की ओर पहला चरण पशु पालन
2.2.3 खेती का आविष्कार
2.2.4 मनुष्य हिंसक व्यवहार क्यों करता है?
2.2.5 मनुष्य के लिए मांस स्वाभाविक भोजन नहीं
2.2.5.1 मांसाहार का दूषित प्रभाव
2.2.6 अन्न और मन का सम्बन्ध
2.2.7 वस्त्र
2.2.8 चमड़े का उपयोग और हिंसा
2.2.9 चमड़ा रंगने के लिए पशुओं के खून का उपयोग
2.2.10 चिकित्सा
2.2.11 औषधियों से हानि
2.2.12 औषधियों के आविष्कार के लिए विकराल पशु हिंसा
2.2.13 औषधियों के निर्माण में पशु वध
2.2.14 बन्दरों का घातक व्यापार
2.2.15 हिंसा से बचने के लिए औषधियों से बचिए, प्राकृतिक जीवन की आवश्यकता
2.3.0 अहिंसा और उद्योग धंधे, व्यापार और विज्ञान
2.3.1 उद्योग धंधे
2.3.2 शोषण और हिंसा
2.3.3 साम्राज्यवाद और बेकारी से होने वाली हिंसा
2.3.4 स्वतंत्रता का ह्रास
2.3.5 ग्रामोद्योगों और लघु उद्योगों की आवश्यकता
2.3.6 व्यापार
2.3.7 व्यापार में हिंसा और अहिंसा
2.3.8 पशुओं का हिंसक व्यापार
2.3.9 विज्ञान
2.3.10 विज्ञान की दीर्घकालीन परम्परा
2.3.11 विज्ञान का सदुपयोग और दुरुपयोग
2.3.12 विज्ञान और सर्वोदय
2.3.13 दूसरा पक्ष हिंसक कार्य

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2.3.14 अहिंसा की विशेष आवश्यकता
2.3.15 भौतिक परमाणु बनाम चैतन्य परमाणु
2.3.16 आध्यात्मिक और भौतिक विज्ञान का समन्वय
2.4.0 अहिंसा और शिक्षा
2.4.1 अहिंसा के शिक्षण की आवश्यकता
2.4.2 अहिंसा के शिक्षण में शारीरिक कार्य अनिवार्य
2.4.3 अहिंसा की शिक्षा कौन देगा?
2.5.0 अहिंसा और पर्यावरण
2.5.1 कष्ट सहिष्णुता एवं तपवृत्ति की कमी
2.5.2 जनसंख्या वृद्धि
2.5.3 अन्नोत्पादन
2.5.4 अहिंसक समाधान
2.6.0 अभ्यास हेतु प्रश्न

2.0.0 उद्देश्य

1. अहिंसा और आहार के सम्बन्ध को जान सकेंगे।
2. मनुष्य के लिए मांस स्वाभाविक भोजन नहीं को समझ सकेंगे।
3. अहिंसा और व्यापार के सम्बन्ध को जान सकेंगे।
4. अहिंसा शिक्षा की आवश्यकता को जान सकेंगे।
5. अहिंसा और पर्यावरण को समझ सकेंगे।

2.1.0 अहिंसा और जीवन शैली

अहिंसा की बातें बहुत होती हैं, व्याख्यान होते हैं, तर्क-वितर्क और वाद-विवाद होते हैं, निबन्ध और पुस्तकें लिखी जाती हैं। यह जान लेना ही काफी नहीं है कि अहिंसा बहुत अच्छी चीज है, यह मानव जीवन के लिए बड़ी उपयोगी है। इस ज्ञान से लाभ ही क्या, यदि इसके अनुसार आचरण न हो! आज की दुनिया में यह मान्य हो चुका है कि अहिंसा को विकसित किये बिना विश्व शान्ति कभी नहीं हो सकती। बहुत सारे व्यक्ति अहिंसक बनना भी चाहते हैं, पर वे जीवन-क्रम, जीवन शैली को बदलते नहीं, अतः वे अहिंसक बन नहीं पाते। हिंसा की कमी परिग्रह की कमी पर निर्भर है और परिग्रह की कमी भोग की कमी पर। लोग चाहते हैं—भोग-विलास जो हैं, वे चलते ही रहें। भोग विरति के बिना जो हिंसा-विरत हैं, वे बुराई की जड़ को सींचते हुए भी परिणामों से बचना चाहते हैं। जो हिंसा विरति या अहिंसा का विकास चाहते हैं, उन्हें समझ लेना चाहिए कि हिंसा के कारणों को त्यागे बिना हिंसा को त्यागने का परिणाम दम्भ होगा, अहिंसा नहीं।

अहिंसक जीवन-शैली का एक महत्त्वपूर्ण सूत्र है—सुविधावादी जीवन शैली में परिवर्तन। हम प्रदूषण से चिन्तित हैं, त्रस्त हैं। समाज सुविधा छोड़ नहीं सकता किन्तु वह असीम न हो—यह विवेक आवश्यक है। यदि सुविधाओं का विस्तार निरन्तर जारी रहे, आडम्बर और विलासपूर्ण जीवन चलता रहे तो अहिंसा का स्वप्न यथार्थ में परिणत नहीं होगा। इच्छाओं की वृद्धि से हिंसा को पल्लवन मिला है। जब तक इच्छा का संयम नहीं होगा, जीवन शैली में संयम को प्रतिष्ठा नहीं मिलेगी तब तक अहिंसा की बात का सार्थक परिणाम

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

नहीं आ सकेगा।

जीवन शैली का अनिवार्य अंग होना चाहिए—श्रम की प्रतिष्ठा। आज श्रम के प्रति थोड़ी हीन भावना पैदा हो गई है। श्रम करने वाला छोटा होता है और श्रम न करने वाला बड़ा होता है। इस दृष्टिकोण से श्रम की व्यवस्था और महत्त्व को भुला दिया गया है। हम इस सच्चाई को भुला रहे हैं कि दुनिया में जितने भी महान् आदमी हुए हैं, वे प्राय: श्रमिक हुए हैं, परिश्रमी हुए हैं। श्रम निष्ठा और स्वालम्बन का सिद्धान्त प्रत्येक व्यक्ति की जीवन शैली का मुख्य अंग होना चाहिए।

मनुष्य में लालच है, बहुत पाने की इच्छा है। वह श्रम कम करना चाहता है, धन अधिक पाना चाहता है। इस मनोवृत्ति से अपराध को बढ़ावा मिलता है। अपराध यानि बिना श्रम किये पैसा पाने की मनोवृत्ति। इस मनोवृत्ति ने अपराध को एक नया आयाम दिया है। अपराध और हिंसा को बढ़ाने में एक बड़ा निमित्त है—मादक द्रव्यों का सेवन। अहिंसा के विकास के लिए आवश्यक है—जीवन शैली व्यसन से मुक्त हो।

अहिंसक जीवन शैली के लिए संयम, स्वावलम्बन और व्यसन-मुक्त जीवन का होना अपेक्षित है। अणुव्रत की समग्र और वर्गीय आचार संहिता में स्वीकृत मूल्य अहिंसक जीवनशैली का बहुत बड़ा आलम्बन है।

2.1.1 अहिंसा की साधना

यह ठीक है कि अहिंसा का—विशेषत: मानसिक अहिंसा का—आचरण कठिन है। गांधीजी ने बतलाया है कि 'मानसिक अहिंसा की स्थिति को प्राप्त करने के लिए कठिन अभ्यास की जरूरत है। हमारे दैनंदिन जीवन में व्रत और नियमों का पालन आवश्यक है। वह अनुशासन हमें रुचिकर भले ही न हो, फिर भी वह उतना ही आवश्यक है, जितना कि एक सिपाही के लिए। परन्तु मैं यह मानता हूं कि यदि हमारा चित्त इसमें सहयोग न दे तो केवल बाह्य आचरण एक दिखावे की चीज हो जाएगी, जिससे खुद हमारा नुकसान होगा और दूसरों का भी। मन, वचन और शरीर में जब उचित सामंजस्य हो, तभी सिद्धावस्था प्राप्त हो सकती है। लेकिन यह अभ्यास एक प्रचंड मानसिक आन्दोलन होता है। अहिंसा कोई महज यांत्रिक अभ्यास नहीं है। यह तो हृदय का सर्वोत्कृष्ट गुण है और साधना से ही प्राप्त हो सकता है।'

स्पष्ट है कि अहिंसा का आचरण सरल नहीं है, परन्तु यदि यह बहुत आसान हो, इसके लिए मनुष्य को कुछ त्याग करना, कष्ट सहना आवश्यक न हो तो फिर इसे प्राप्त करने में गौरव ही क्या है! जब कि यह बहुत कल्याणकारी है, मानवता के विकास के लिए अनिवार्य है तो मनुष्य को इसके लिए सब प्रकार का प्रयास करना ही चाहिए। अस्तु, गांधीजी ने कहा है—'अहिंसा एक महाव्रत है। तलवार की धार पर चलने से भी कठिन है। देहधारी के लिए उसका सोलह आने पालना असम्भव है। उसके पालन के लिए घोर तपश्चर्या की जरूरत है। तपश्चर्या का अर्थ यहां त्याग और ज्ञान करना चाहिए।

2.2.0 अहिंसा और आहार, वस्त्र, चिकित्सा आदि

2.2.1 आहार

प्रारम्भ में आदमी यह सोचने की स्थिति में नहीं था कि कौनसा पदार्थ खाकर अपनी भूख शान्त करें। उसे खाने योग्य जो भी मिल जाता, उसे ही खा लेता। वह जानबूझ कर न फलाहारी (या शाकाहारी) था और न मांसाहारी ही। उसका भोजन इस बात पर निर्भर था कि उसके रहने की जगह खाने को क्या मिलता है। कुछ जगह कुदरती तौर पर बहुत समय तक काफी फल, शाक, मूल-कन्द आदि मिलते रहे, वहां आदमी का मांस न खाना स्वाभाविक हुआ। दूसरी जगहों में जहां कुदरती फल आदि की कमी रही, वहां आदमी के लिए मांस-मछली आदि खाने के सिवा कोई चारा न था। मांस-भक्षण में आदमी को यह सोचने का अवसर

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

नहीं था कि किस पशु-पक्षी का खाये और किसका न खाये। जिनको भी वह अपनी शक्ति या साधनों से प्राप्त कर सकता था, उन्हें खाकर अपना निर्वाह करता था।

2.2.2 अहिंसा की ओर पहला चरण; पशु-पालन

अहिंसा की दिशा में मनुष्य का पहला खास कार्य पशु-पालन था। धीरे-धीरे आदमी को मालूम हुआ कि कुछ जानवर ऐसे हैं कि उन्हें मार कर खाने की अपेक्षा उन्हें पाल कर रखना अधिक लाभकारी है। गाय, भैंस, बकरी आदि के पालने से बहुत समय तक दूध मिलता रह सकता है। घोड़ा, गधा, बैल आदि से सवारी तथा सामान ढोने का काम लिया जा सकता है। कुत्त शिकार में सहायता देने के अलावा रात को चौकसी करने या पहरा देने का काम कर सकता है। ऐसा ज्ञान प्राप्त होने पर इस तरह के जानवरों को पालने की बात चल निकली। फलस्वरूप पशु-वध एक सीमा तक कम हो गया। पशु-पालन से उनकी पशुरूपी सम्पत्ति उत्तरोत्तर बढ़ने लगी।

2.2.3 खेती का आविष्कार

अहिंसा की दृष्टि से मनुष्य के भोजन इतिहास में खेती का तो बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है। दुधारू पशुओं का पालन आरम्भ हो जाने के बाद से आदमियों को भोजन सामग्री के रूप में दूध से अच्छी सहायता मिलने लगी थी; पर उसका परिमाण बहुत सीमित ही था। आदमी को कुछ भोजन कुदरती तौर पर पैदा होने वाले फल, मूल, कन्द आदि के रूप में भी मिलता था। पर जनसंख्या बढ़ने पर मनुष्य के लिए यह सब मिलकर काफी नहीं होता था। अधिकतर आदमी पूर्ण रूप से या अंशतः मांसाहार पर निर्वाह करने को मजबूर थे। खेती का ज्ञान हो जाने पर आदमी तरह-तरह के फल, शाक के अतिरिक्त विविध अन्न पैदा करने लगा। अब उसकी भोजन-सामग्री में महत्वपूर्ण वृद्धि हुई, और यह वृद्धि स्वयं उसके अधीन थी; वह अपनी मेहनत से इसे पैदा करने में समर्थ हो गया। जिन जगहों में भूमि उपजाऊ थी, और सिंचाई के लिए यथेष्ट जल सुलभ था, वहां तो पैदावार आसानी से हो जाती थी। अन्य स्थानों में भी जहां तक सम्भव हुआ अन्न आदि पैदा करने का प्रयत्न किया गया, और उसमें कहीं कम और कहीं अधिक सफलता मिली। इस प्रकार मनुष्य की मांसाहार पर निर्भर रहने और पशु-वध करने की विवशता कम हो गयी।

2.2.4 मनुष्य हिंसक व्यवहार क्यों करता है?

आदमी जो भोजन करता है, उससे शरीर में अनेक प्रकार के रसायन बनते हैं। भोजन के द्वारा मस्तिष्क में न्यूरो-ट्रांसमीटर बनते हैं, जो तंत्रिका तन्त्र के संप्रेषक होते हैं। इनके द्वारा मस्तिष्क शरीर का संचालन करता है। वैज्ञानिकों ने चालीस प्रकार के न्यूरो-ट्रांसमीटरों का पता लगा लिया है। ये सारे भोजन से बनते हैं। भोजन के द्वारा एमिनो एसिड आदि अनेक प्रकार के एसिड बनते हैं। यूरिक एसिड जहर है। वह भी भोजन से बनता है। हमारी प्रवृति और भोजन के द्वारा अनेक विषैले तत्त्व शरीर में बनते हैं। अतः इस बात को जानना होगा कि किस प्रकार का भोजन करने पर मानसिक समस्याएं पैदा होती हैं, भावनात्मक उलझनें बढ़ती हैं, हिंसा की वृत्ति बढ़ती है।

विज्ञान आजकल एक विशेष रसायन पर अनुसंधान कर रहा है। वह है 'ट्रिप्टोफेन'। यह सेराटोनिन का निर्माण करता है। आदमी का मूड बिगड़ता है। इसका मूल कारण है ट्रिप्टोफेन की कमी या सेराटोनिन की कमी। यदि यह तत्त्व पर्याप्त मात्रा में होता है तो न हिंसक प्रवृति निर्मित होती है, न भय लगता है। इससे पीड़ा सहन करने की क्षमता भी बढ़ती है।

आजकल मांसाहार बहुत प्रचलित है। मांसाहार के विषय में एक तर्क सामने आता है कि मांस और

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अण्डे में प्रोटीन बहुत होता है। अधिक मात्रा में व्यवहृत प्रोटीन लाभप्रद नहीं होता। प्रत्येक व्यक्ति के लिए एक दिन में 10-15 ग्राम प्रोटीन आवश्यक होता है। पर मांसाहार करने वाले या अंडा खाने वाले अधिक प्रोटीन खाते हैं। वे प्रोटीन के आधार पर ही मांसाहार का समर्थन करते हैं। वे कहते हैं, शाकाहार में इतना प्रोटीन नहीं मिल सकता, इसलिए मांसाहार करना उचित है। प्रोटीन में भी प्राणिज प्रोटीन तो अत्यन्त हानिकारक होता है। वनस्पति प्रोटीन उपयोगी होता है, पर वह भी मात्रा में लिया हुआ। मांसाहारी और अण्डा खाने वाला व्यक्ति जितनी भयंकर बीमारियों से ग्रस्त होता है, उतना शाकाहारी कभी नहीं होता। आज की अनेक बीमारियों का सीधा सम्बन्ध है भोजन से। ब्लडप्रेशर, हार्टट्रबल, अल्सर, केन्सर, किडनी की विकृती—इन बीमारियों के अन्यान्य कारणों में भोजन भी एक मुख्य कारण है।

2.2.5 मनुष्य के लिए मांस स्वाभाविक भोजन नहीं

आजकल हम बहुत से आदमियों के मांसाहारी होने की बात सुनते हैं और अनेक आदमियों के नित्य मांस खाने की बात जानते हैं। इससे हमारी यह धारणा हो गयी है कि मनुष्य के लिए मांस स्वाभाविक भोजन है। पर वास्तव में यह बात नहीं है। आदमी की शरीर-रचना पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि वह मांस खाने के लिए नहीं बना है। आदमी के नख, दांत, जबड़े, आंतें या आमाशय ऐसे नहीं हैं जैसे मांसाहारी पशुओं के होते हैं, मनुष्य का शरीर शाकाहारी पशुओं से मिलता है। इस प्रकार मांस खाना उसकी प्रकृति नहीं, बल्कि धीरे-धीरे अभ्यास और संस्कार या वातावरण से उसे इसकी आदत पड़ी है। अतः मांसाहार मनुष्य के लिए अप्राकृतिक है। यह उसका स्वाभाविक भोजन नहीं है।

2.2.5.1 मांसाहार का दूषित प्रभाव

शरीर का स्वस्थ, शक्तिमान, फुर्तीला, सहनशील होना शाकाहार से ही संबंधित है। मांसाहार से क्रोध, उत्तेजना, वासना आदि की वृद्धि होती है, आदमी अशांत, चंचल, ईर्ष्यालु, झगड़ालू होता है। उसमें गम्भीरता, शान्तता नहीं आती। मन के इन विकारों का शरीर पर दूषित प्रभाव पड़ना स्वाभाविक और अनिवार्य है।

2.2.6 अन्न और मन का संबंध

आहार के तीन प्रकार हैं—राजसिक आहार, तामसिक आहार और सात्त्विक आहार। जीवन का भोजन के साथ गहरा सम्बन्ध है। इसलिए कहा गया—जैसा खावे अन्न, वैसा होवे मन। अन्न और मन का सम्बन्ध गहरा है। वर्तमान व्यक्ति में जो भावात्मक असंतुलन है, उसका आहार भी एक मुख्य घटक है। व्यक्ति के आहार में वे पदार्थ अधिक हैं जो भावात्मक असंतुलन पैदा करते हैं। दूसरे शब्दों में, अन्न और भावों का गहरा सम्बन्ध है। इसीलिए शास्त्रों एवं आगमों में भोजन सम्बन्धी अनेक वर्जनाएं की गईं।

2.2.7 वस्त्र

प्रारम्भ में व्यक्ति खेती नहीं करता था, खेती करन नहीं जानता था, जंगली अवस्था में वह अपने शरीर को वृक्षों की छाल या पत्तों आदि से ढक लिया करता था। क्रमशः आदमी ने पशु-पालन का प्रयोग किया और भेड़ों की ऊन संग्रह करके उसके डोर बनाये और उनका कपड़ा बुना। पीछे सन, पटसन के पौधों के रेशे का कपड़े के लिए उपयोग किया। फिर कपास की खेती की, रूई के सूत के कपड़े बनने लगे तो कपड़े की काफी बहुतायत हो गयी। वैज्ञानिक उन्नति होने पर अन्य पदार्थों के भी कप्ड़े बनने लगे। तब मनुष्य का वस्त्र-संकट उस समय की दृष्टि से कम हो गया। इससे पशु-वध के लिए मजबूरी न रही। परन्तु इस बीच में एक नयी बात हो गयी। अनेक आदमी सूती या ऊनी आदि कपड़ों से संतोष न कर ऐसे रेशम आदि के कपड़े पहनने लगे, जिनके लिए असंख्य प्राणी मारे जाते हैं। रेशम के कीड़े शहतूत के पेड़ पर पाले जाते हैं, जिनके पत्ते खाकर वे जीवित रहते हैं। इन

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

कीड़ों के बच्चों की रक्षा के लिए इनके चारों ओर एक कोमल पदार्थ का खोल रहता है, बच्चे बड़े होने पर अपने खोल को तोड़कर बाहर निकल आते हैं। इन टूटे हुए खोलों से भी रेशम तैयार होती है, पर वह इतना अच्छा, बढ़िया नहीं होता। बढ़िया रेशम के लिए कीड़ों के बड़े होने से पहले ही उनके खोलों को उबलते हुए गर्म पानी में डाला जाता है, इस प्रकार लाखों कीड़ों को मार कर थोड़ा सा बढ़िया रेशम तैयार होता है। स्पष्ट है कि रेशमी कपड़े पहनने वाले आदमी कितनी अनावश्यक हिंसा के लिए उत्तरदायी हैं।

खास कर यूरोप अमरीका की शौकीन स्त्रियां अपनी पोशाक में ऐसे पक्षियों के पर लगवाती हैं जो बहुत दुर्लभ होते हैं। उनके इस फैशन के वास्ते दूर-दूर तक तलाश करने पर मिलने वाले तरह-तरह के हजारों मूक पक्षियों को अपनी जान खोनी पड़ती है।

2.2.8 चमड़े का उपयोग और हिंसा

पहले आदमी अपने जूतों आदि के लिए उसी चमड़े का उपयोग करते थे, जो स्वयं, कुदरती तौर पर मरने वाले पशुओं से मिल जाता था। सभ्य आदमी तो बढ़िया मुलायम चमड़ा चाहता है, और यह पशुओं को मारने से ही मिलता है। फिर अब चमड़े का उपयोग भी बहुत अधिक होता है। आज कल सभ्यता की लहर में आदमी अपनी आवश्यकताएं बढ़ाते जा रहे हैं, और व्यापारी वर्ग इसमें उनका सहायक हो रहा है। वस्त्रों के साथ अब चमड़े की बहुत सी चीजें बनने लगी हैं—हैंडबेग, मनीबेग, दस्ताने, बिस्तर-बंद, जूते के फीते, घड़ी के फीते, चश्मों के केस, कॉपी या किताब के कवर, हंटर, टोपी की पट्टी आदि। इन चीजों के बनाने के लिए चमड़ा तैयार करने में प्रत्येक देश में कितने पशुओं की हत्या हर रोज की जाती होगी? यह सभी हत्या अनावश्यक है, कारण कि इसके बिना मनुष्य का काम चल सकता है, जो चीजें इस चमड़े से बनायी जाती हैं वे अन्य पदार्थों से ही बनायी जा सकती हैं।

चमड़े की वस्तुओं का उपयोग बढ़ने से पशु-हत्या बहुत बढ़ गयी है। इसके अलावा विचारणीय बात यह भी है कि हत्या का ढङ्ग भी बहुत बदल गया है, पशुओं को बहुत क्रूरता पूर्वक मारा जाता है। कारण यह है कि साधारण तौर से पशु को एक दम मार देने से, उससे चमड़ा इतना मुलायम और बढ़िया नहीं मिलता, जितना आज का सभ्य और शौकीन आदमी चाहता है। जिस चमड़े से बूट, चप्पल और हंटर आदि बनाये जाते हैं, उसको प्राप्त करने के लिए बूढ़े बैलों, गाय, भैंस आदि पशुओं को पानी के नल के नीचे खड़ा करके उसके मुंह, पांव और सिर को मजबूती से बांध दिया जाता है, जिससे पशु बिलकुल हिल-डुल न सके और दर्द से कराह भी न सके। पश्चात् पशु पर नल द्वारा पानी छिड़का जाता है और उसे खूब लचकदार बेंत से पीटा जाता है। इससे उसका शरीर सूजकर फूल जाता है, चमड़ा नर्म और मोटा हो जाता है। उस पर कसाई पैनी कटार लेकर पशु के माथे में चुभो कर उसके शरीर के ठीक बीचों बीच चीरता हुआ पूंछ तक पहुंच जाता है, और उसकी खाल उतारता है। कुछ अच्छे चमड़े के लिए निर्दयता और अधिक की जाती है। जितना बढ़िया और मुलायम चमड़ा तैयार करना हो, उतना ही उसके लिए अधिक नृशंसता और अमानुषिकता बर्ती जाती है। जिसे काफ-लेदर (बछड़े का चमड़ा) या 'क्रोम लेदर' कहा जाता है उसके लिए तो जवान हृष्ट-पुष्ट बछड़ों को मारा जाता है। पहले उन्हें धीरे-धीरे परन्तु बहुत देर तक पीटा जाता है, जिससे रक्त का संचार खूब तेजी से होने लगे। फिर उन्हें चारों तरफ कटघरे में बंद करके उसे कांटेदार मशीन के ठीक नीचे खड़ा कर दिया जाता है। मशीन का पहिया घूमता है और जीवित बछड़े की खाल उधेड़ ली जाती है। इस निर्दयता से तैयार होने वाले चमड़े की चीजें दूसरे लोग तो इस्तेमाल करते ही हैं, अपने आप को अहिंसक समझने वाले अनेक सभ्य और शौकीन लोग भी करते हैं। ज्ञातव्य है कि भारत चमड़े का सर्वाधिक उत्पादन तथा निर्यात करने वाला देश है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2.2.9 चमड़ा रंगने के लिए पशुओं के खून का उपयोग

पहले जब स्वाभाविक मौत से मरे पशुओं का चमड़ा काम में लाया जाता था तो वह वृक्षों की छाल से ही रंग लिया जाता था। परन्तु जब से चमड़ा पशुओं को मारकर तैयार किया जाने लगा है, तब से उसकी बढ़िया चीजों को खून से रंगना आरम्भ हो गया। यह रंग पक्का होता है। खून निकालने के लिए मशीनें होती हैं। स्वस्थ गाय या जवान बछड़े-बछड़ियों को मशीन के पास खड़ा कर दिया जाता है और औजार से उनकी नस काट कर मशीन जोड़ दी जाती है। धीरे-धीरे मशीन शरीर का सारा खून खींच लेती है और दो-तीन घंटे बाद वह पशु चल बसता है। इस प्रकार बढ़िया चमड़े ने पशु-हत्या बढ़ायी है और उसके रंगे जाने के लिए भी यह हिंसा बढ़ी है। आदमी अपने फैशन और शौक को कम करे और आधुनिक समाज में सभ्य वर्ग में न गिने जाने को तैयार हो जाए तो यह हिंसा सहज ही बन्द हो सकती है।

2.2.10 चिकित्सा

पिछले पृष्ठों में इस बात का विचार किया गया है कि भोजन के सम्बन्ध में मनुष्य कहां तक अहिंसक है तथा होना चाहिए। आधुनिक काल में मनुष्य औषधियों का भी बहुत सेवन करता है। कितने ही आदमी तो कभी-कभी इनका सेवन भोजन की ही तरह, और कुछ दशाओं में भोजन से भी अधिक आवश्यक समझते हैं। इस अध्याय में हमें यह विचार करना है कि औषधियों के लिए कितनी हिंसा होती है, और यह किस प्रकार कम हो सकती है। अधिकांश औषधियां तो ऐसी होती हैं जिनसे मनुष्य को कोई लाभ नहीं होता; उलटा उनसे स्वास्थ्य-हानि ही होती है। इस प्रकार औषधी निर्माण में जो हिंसा होती है, वह मनुष्य के स्वार्थ की दृष्टि से भी हानिकारक है।

2.2.11 औषधियों से हानि

प्रारम्भ में आदमी प्रकृति के निकट रहता और सदा प्राकृतिक जीवन बिताता था। इसलिए स्वस्थ रहता था, बीमार पड़ने का अवसर बहुत कम आता था, और आकस्मिक दुर्घटनाओं की बात छोड़कर वह अपनी पूरी आयु तक जीता था—जो साधारणतया सौ वर्ष मानी गयी है। क्रमशः मनुष्य सभ्यता की ओर बढ़ता गया, उसके खानपान, रहनसहन आदि में कृत्रिमता आती गयी, वह प्रकृति से दूर होता गया, और फलस्वरूप उसका स्वास्थ्य बिगड़ता गया। मनुष्य भूल जाता है कि प्रकृति ने हमारे शरीर में ही रोग-निवारण की भी व्यवस्था करदी है, और यदि हम कभी बीमार पड़ें तो प्रकृति से दिये हुए पदार्थों—जल, वायु, तेज (धूप) और मिट्टी—के उपचार से नीरोगी हो सकते हैं।

2.2.12 औषधियों के आविष्कार के लिए विकराल पशु-हिंसा

औषधियों के आविष्कार में कितनी हिंसा होती है? यदि इस पर विचार करें तो चिकित्सा का वीभत्स रूप सामने आयेगा। अच्छे पशुओं पर तरह-तरह के प्रयोग किये जाते हैं। उन्हें प्रतिकूल परिस्थितियों में रख कर देखा जाता है कि किस दशा में उनका स्वास्थ्य कितना बिगड़ता है, किस हद पर जाकर उनकी मृत्यु होती है। पशुओं को दवाईयों से रोगी बना कर उन्हें एक-एक दवाई देकर मालूम किया जाता है कि अमुक औषधि का उन पर क्या प्रभाव पड़ता है, कितने समय में उनका रोग जाता है, या रोग न जाकर उनके प्राण ही चले जाते हैं। ऐसे प्रयोगों के आधार पर हमारे शरीर-विज्ञान-वेत्ता यह निष्कर्ष निकालते हैं कि अमुक औषधि अमुक रोग वाले आदमी के लिए हितकर होने की सम्भावना है। इस प्रकार हमारे औषधि-विज्ञान की प्रयोगशालाएं नित्य लाखों प्राणियों की जान लेती हैं, अथवा जो उससे भी अधिक चिन्तनीय हैं—उन्हें जान बूझ कर तरह-तरह के कष्ट देकर सताती हैं, उन्हें तड़प-तड़प कर मरने के लिए मजबूर करती हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2.2.13 औषधियों के निर्माण में पशु-वध

पहले आदमी कुछ जड़ी-बूटी या वनस्पति के रूप में मिलने वाली औषधियों से ही संतोष करता था। पीछे दवाईयों में काम आने वाले पदार्थों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती गयी। अब अनेक प्रकार के खनिज या सामुद्रिक पदार्थों का उपयोग होता है जैसे चांदी, सोना, हीरा, पारा, गंधक, अभ्रक, मूंगा, मोती, शंख आदि। अफीम, शराब, संखिया भी खूब काम में आते हैं। दवाईयों के लिए अनेक पशुओं की चर्बी, रक्त और मांस का इस्तेमाल किया जाता है, इससे उन बेचारों को अकाल मृत्यु का सामना करना पड़ता है, और प्राय: बहुत बुरी तरह, बड़ा कष्ट पाकर। हम लोग अपने इलाज के लिए डाक्टरों के परामर्श से दवाइयां या पौष्टिक पदार्थ लेते हैं, बहुधा हम यह जानते ही नहीं कि उन पदार्थों वाली शीशियों या डिब्बों में किसी प्राणी के रक्त आदि का मिश्रण है और हम कितने पशुओं की हत्या के लिए उत्तरदायी हैं।

2.2.14 बंदरों का घातक व्यापार

आधुनिक औषधिशास्त्र ने पशुओं का हिंसक व्यापार खूब बढ़ा दिया है। उदाहरण के लिए भारत से अमरीका को बंदरों का बहुत निर्यात हो रहा है। ये वहां चीर-फाड़ के लिए भेजे जाते हैं। इन पर क्रूरता या निर्दयता पूर्वक तरह-तरह के प्रयोग होते हैं और ये घोर कष्ट सह कर बुरी तरह मरते हैं। अनुमान है कि बन्दरों के विपत्ति का व्यवसाय पर्याप्त लाभप्रद है और इससे व्यापारियों अथवा सरकार को करोड़ों रुपये वार्षिक आय होती होगी! फिर भी क्या सर्वभूतहितेरता: के अनुयायी, आध्यात्मिक संस्कृति के इस पावन देश में पैसा ही हमारे व्यापार का आधार रहना चाहिए? ऐसा व्यापार अहिंसात्मक भावना रखने वाले भारत के लिए कलंक है। अगर यह सिद्ध भी हो जाए कि इस तरह की चीर-फाड़ से हम मनुष्य-जाति की पीड़ा को कम कर सकते हैं, तो भी निम्न श्रेणियों के प्राणियों पर ऐसा अत्याचार करना सरासर अन्याय है। और चीर-फाड़ में जिस अमानुशिकता से काम लेना पड़ता है वह भी कोई ऐसी चीज तो है नहीं, जिसे कोई महान् उद्देश्य कहा जाए। इसके विपरीत मनुष्य-जाति का असल में उद्देश्य तो यह होना चाहिये कि वह दया-धर्म को कभी न छोड़ें, फिर भले ही उसके कारण उसे कितना ही दु:ख सहना पड़े, या वह दु:ख बढ़ भी जाए।

बोध प्रश्न 1:

---

1. *अहिंसक जीवन शैली का महत्वपूर्ण सूत्र क्या है?*
2. *मनुष्य के लिए मांस स्वभाविक भोजन क्यों नहीं है?*
3. *वस्त्र और हिंसा का क्या सम्बन्ध है?*

2.2.15 हिंसा से बचने के लिए औषधियों से बचिए; प्राकृतिक जीवन की आवश्यकता

यदि हम औषधियों के सम्बन्ध में होने वाली विकराल हिंसा से बचना चाहते हैं तो ऐसे जीवन की अपेक्षा है कि औषधियों की आवश्यकता ही न रहे। यह कहा जा सकता है कि औषधियां तो लेते रहें, पर ऐसी औषधियां न लें जिनमें पशुओं का रक्त, मांस या चर्बी आदि हो, पर यह बहुत व्यवहारिक नहीं है। प्रथम तो जो आदमी औषधि लेता है, उसे अवश्य ही लोगों से सुनकर या विज्ञापनों से प्रभावित होकर यह विश्वास होगा कि अमुक औषधि से मुझे लाभ होगा, तो वह जांच करने नहीं बैठेगा, और वह पूरी जांच कर ही नहीं सकता कि उस औषधि में जीव-रक्त आदि है या नहीं। फिर, जिस औषधि में रक्त आदि नहीं है, उसके आविष्कार में अनेक हिंसक प्रयोग भी नहीं किये गये हैं, इसका निश्चय कैसे होगा। अस्तु, औषधियों के लिए प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप से होने वाली हिंसा से बचने का यथेष्ट उपाय यही है कि जड़ी-बूटियों को छोड़ कर, औषधि मात्र से बचा जाए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

औषधियों से बचने की बात का यह अर्थ नहीं कि आदमी बीमार पड़े रहें और उनका इलाज न हो। हमारा कहना यह है कि यदि संभव हो तो अहिंसक जीवन शैली के द्वारा यथा-सम्भव योग-ध्यान, जड़ी-बूटियां और प्राकृतिक साधनों — जल, वायु, मिट्टी और धूप का ही आश्रय लें, अर्थात् प्राकृतिक चिकित्सा को अपनायें। प्राकृतिक चिकित्सा के साथ प्राकृतिक जीवन आ ही जाता है।

2.3.0 अहिंसा और उद्योग-धंधे, व्यापार और विज्ञान

2.3.1 उद्योग-धंधे

प्रारम्भ में मनुष्य की आवश्यकताएं कम थीं। आदमी प्रकृतिदत्त पदार्थों से, उन पर विशेष क्रिया किये बिना ही, अपना काम चला लेता था। क्रमश: मनुष्य की भौतिक आवश्यकताएं बढ़ीं और उसे प्रकृति से मिले पदार्थों से नयी-नयी वस्तुएं तैयार करने की बात सूझी। सीधे-सादे औजार बने। उन्हें आदमी अपने हाथ से ही चला लेता। जब आदमी पशुओं को पालने लगा तो औद्योगिक क्रियाओं में कुछ पशुओं की शक्ति का उपयोग करने लगा। आदमी उद्योग-धंधों का काम अपने-अपने घर में कर लेता था, या उनमें पास-पड़ोस के आदमियों की सहायता ले लेता था। इन उद्योग-धंधों का काम छोटे पैमाने पर होता था, इनका स्वरूप गृहोद्योग या ग्रामोद्योग का था। इनमें हिंसा बहुत कम होती थी।

पिछले दो सौ साल से भाप, गैस, बिजली आदि की शक्ति से चलने वाले कल-कारखानों की उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है। इनमें एक-एक जगह हजारों और एक-एक देश में करोड़ों मजदूर काम करते हैं। इससे मालिक और मजदूरों का सम्बन्ध बहुत विचारणीय हो गया है।

अनेक स्थानों में मजदूरों की दशा प्राचीन काल के दासों से भी अधिक शोचनीय और दयनीय है। दास तो मालिक के कुटुम्ब के साथ रहता था, और मालिक की प्रकृति या स्वभाव अच्छा होने की दशा में उसका स्नेह प्राप्त करता था। पर अब तो मालिक या पूंजीपति मजदूरों से कड़े से कड़ा काम करने पर भी जब उसे मजदूरी के बंधे हुए पैसे दे देता है तो वह समझता है कि मेरा कानूनी कर्त्तव्य पूरा हो गया।

2.3.2 शोषण और हिंसा

कल-कारखानों की केन्द्रित उत्पादन पद्धति में मालिक लोग अधिकाधिक धनवान होते जाते हैं। कारखाने के मुनाफे पर उनका अधिकार होता है, और अगर वे मुनाफे का कुछ हिस्सा मजदूरों को दे देते हैं तो भी अधिकांश भाग तो वे स्वयं अपने पास ही रखते हैं। वह इसी से स्पष्ट हो जाता है कि वे बड़े-बड़े विशाल भवनों में रहते हैं, और उनकी विलासिता, शौक और मनोरंजन के साधन उत्तरोत्तर बढ़ते जाते हैं, जब कि मजदूर जीवन-भर जैसे-तैसे रहते हैं और अपने लिए मामूली अच्छा मकान भी नहीं बना पाते। इस प्रकार मालिकों और मजदूरों के रहनसहन आदि में कितनी विषमता है! और मालिकों का बेहद मुनाफा कहां से आता है? मजदूरों को यथा-सम्भव कम मजदूरी देने, उनका भरसक शोषण करने, उनकी शक्ति और सामर्थ्य का और उनकी गरीबी का अनुचित लाभ उठाने से चाहे वे कानून सम्मत ही हों।

2.3.3 साम्राज्यवाद और बेकारी से होने वाली हिंसा

यदि कल कारखानों के सब मजदूरों के हित की उचित व्यवस्था कर दी जाए तो भी इस प्रकार के उत्पादन से एक अन्य हिंसा, और बहुत बड़ी हिंसा तो होती ही रहेगी। इन कल-कारखानों में जितनी वृद्धि और विकास होता है, उतनी ही बेकारी बढ़ती है। यह कहा जा सकता है कि बेकारों को दूसरा काम दे दिया जाए। पर अनुभव बतलाता है कि यह बात विशेष व्यवहारिक नहीं है। यदि एक देश के सभी आदमियों

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

को यंत्रोद्योगों में लगाया जाए तो शीघ्र ही बड़ी अवस्था आ जाती है जब उनसे तैयार होने वाले माल के लिए बाजार ढूंढ़ने और उन्हें स्थायी रूप से अपने लिए सुरक्षित करने के वास्ते साम्राज्यवादी होना पड़ता है जो स्वयं एक संगठित हिंसा है, क्योंकि इसके कारण दूसरे देशों से द्वेष उत्पन्न होता है। यदि हम विनाशकारी साम्राज्यवादी नीति को नहीं अपनाते तो यंत्रोद्योगों से बेकारी का अधिकाधिक बढ़ना अनिवार्य है, अवश्यम्भावी है। और जो लोग बेकार रहते हैं, वे भूखो मरते क्या न करेंगे—चोरी, छल-कपट, धोखेबाजी, भिक्षा, हत्या आदि। जो लोग इन दूषित उपायों को काम में नहीं लाते या नहीं ला सकते उन्हें आत्म-हत्या का मार्ग अपनाना होगा, अथवा क्षुधा-पीड़ित अवस्था में तिल-तिल करके मरने की तैयारी करनी होगी। इससे स्पष्ट है कि बड़े उद्योग-धंधों में कितनी हिंसा होती है।

2.3.4 स्वतंत्रता का ह्रास

कारखानों में एक भयंकर बुराई और भी है। इनमें वस्तुओं का उत्पादन भले ही अधिक हो, मनुष्यों का और मानवता का ह्रास हो जाता है। आदमी यंत्र में काम करते-करते चेतन प्राणी न रहकर यंत्र के एक पुर्जे के समान जड़ हो जाता है। उसे सृजन या रचना का गौरव और आनन्द नहीं रहता। उसकी स्वतंत्रता समाप्त हो जाती है। उसे यंत्र के साथ-साथ चलना पड़ता है; यंत्र जब जैसी हरकत करने की मांग करता है, आदमी को उसी समय वैसी हरकत करनी पड़ती है। जब तक यंत्र काम करे आदमी को भी काम करना होगा; उसे अवकाश नहीं मिल सकता, चाहे उसे इसकी कितनी ही जरूरत क्यों न हो। यंत्र के बंद होने पर ही आदमी को छुट्टी मिल सकती है। इस प्रकार आदमी की स्वतंत्रता समाप्त हो जाती है।

2.3.5 ग्रामोद्योगों और लघु उद्योगों की आवश्यकता

इन सब दोषों से बचने के लिए जरूरी है कि यंत्रोद्योगों का उपयोग कम से कम हो। वे उन्हीं आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए रहें जो लघु उद्योगों से पूरी नहीं हो सकतीं, और साथ ही जो सर्वसाधारण के दैनिक जीवन के लिए अनिवार्य हों। रोजमर्रा की समस्त साधारण मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति ग्रामोद्योग ही करेंगे, जिनमें बेकारी तथा उसके कारण होने वाली विविध हिंसा का खतरा न होगा और सब लोगों को आजीविका मिलेगी। ग्रामोद्योग में एक बात और भी है। उनमें जीव-हिंसा बहुत ही कम होती है। उदाहरण के तौर पर आटा पीसने की बात लें। यदि यह काम हाथ-चक्की से किया जाए तो हिंसा बहुत कम होने की सम्भावना है। पीसने वाला एक-एक मुट्ठी अनाज चक्की में डालता है, अगर उस अनाज में जीव-जन्तु होंगे तो सहज ही मालूम हो जायेगा। इसके विपरीत, आटा पीसने की ऐसी चक्की जो बिजली या तेल आदि से चलती है। उसमें अनाज की बोरी एक साथ खाली कर दी जाती है, और एक के बाद दूसरी बोरी का अनाज डालते रहते हैं।

वर्तमान अवस्था में लोगों ने अपनी आवश्यकताएं बहुत बढ़ा रखी हैं, वे अपने फैशन, मौज, शौक आदि के लिए कल-कारखानों में बनी कितनी ही ऐसी चीजें काम में लाते हैं, जिनके बिना साधारणतः दैनिक जीवन में कोई बाधा नहीं होती। स्पष्ट है कि ऐसी वस्तुओं को काम में लाना हिंसक धन्धों को प्रोत्साहन देना है, जो अमानवीय है। अहिंसा-प्रेमियों के लिए यह आवश्यक है कि ऐसे मौज-शौक को कम करें, संयम और सादगी का जीवन व्यतीत करें। मानवता के विकास के लिए यह करना आवश्यकता है।

2.3.6 व्यापार

आजकल व्यापार पहले की अपेक्षा बहुत बढ़ा हुआ है, मानव जीवन में उसका विशेष स्थान है। इस अध्याय में हमें यह विचार करना है कि व्यापार में अहिंसा का ध्यान कहां तक रखा जाता है, मनुष्य ने इसमें पहले की अपेक्षा कितनी प्रगति की है, इसमें क्या कमी है, और उसमें किस प्रकार तथा क्या सुधार होना चाहिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2.3.7 व्यापार में हिंसा और अहिंसा

सामाजिक जीवन अहिंसा-मय होने के लिए एक प्रमुख आवश्यकता यह है कि व्यापार अहिंसक हो। व्यापार जितना अधिक अहिंसक होगा, उतना ही वह समाज को अहिंसक बनाने में सहायक होगा। यदि व्यापारी अपनी वस्तुएं दूसरों को बेचने में अपने मुनाफे का लक्ष्य नहीं रखते, वरन् यह विचार करते हैं कि दूसरों को उन वस्तुओं के अभाव से कष्ट है, और उस कष्ट को दूर करना हमारा कर्तव्य है, चाहे ऐसा करने में हमें एक सीमा तक हानि और असुविधा ही क्यों न हो—अर्थात् यदि व्यापार प्रेम-भाव से, सेवा की दृष्टि से, त्याग-पूर्वक करते हैं तो यह व्यापार अहिंसक है और समाज में अहिंसा बढ़ाने वाला है। इसके विपरीत यदि व्यापार में मुख्य लक्ष्य स्वार्थ-साधन या मुनाफाखोरी है तो यह दूसरों के अभावों और कष्टों से अनुचित लाभ उठाता है, अकाल या दुर्भिक्ष और बाढ़-ग्रस्त क्षेत्रों की भूखी जनता में अपना अनाज मंहगा बेचना, अथवा लोगों में युद्ध, विलासिता, नशे के पदार्थ बेचना और उनका प्रचार करना, जबकि यह मालूम है कि इन पदार्थों के उपयोग से उनका कोई हित न होकर हानि ही होगी, अथवा अपनी चीजें सस्ते भाव से बेचकर दूसरों के उद्योग-धंधे चौपट करना, जिससे वे हमारे आश्रित हो जायं, और पीछे महंगे भाव से भी हमारी चीजें खरीदने को बाध्य हों—इस प्रकार का हमारा व्यापार अनैतिक तथा हिंसक है।

2.3.8 पशुओं का हिंसक व्यापार

बहुत से व्यक्ति ऐसे होते हैं कि वे अपने आप को अहिंसा-प्रेमी मानते हैं, समाज में भी वे अहिंसा-प्रेमी समझे जाते हैं। किन्तु ये लोग अपने रोजमर्रा के विविध कार्यों में अहिंसा-व्रत का ध्यान नहीं रखते। खासकर व्यापार में तो अहिंसा-नीति रखने में ये अपनी असमर्थता स्पष्ट स्वीकार कर लेते हैं। प्रायः कहा जाता है कि व्यापार तो व्यापार है, उसमें धर्म के सिद्धान्त का पालन नहीं हो सकता। इस प्रकार अनेक लोग जो 'अहिंसा परमो धर्मः' की रट लगाया करते हैं, उन पशुओं को बेचने में कुछ संकोच नहीं करते, जिनका मारा जाना निश्चित और स्पष्ट है। गाय, बैल, बकरी आदि को कसाइयों के हाथ बेचने में अनेक आदमियों को कोई परहेज नहीं होता। मछलियों तथा विविध पक्षियों और बंदरों का व्यापार काफी बड़े पैमाने में होता है, और यह सब केवल मुनाफे के लिए। क्योंकि इस व्यापार से सरकार को भी आमदनी होती है, इसलिए वह भी इसमें बाधक नहीं होती, वरन् अनेक दशाओं में वह इसे प्रोत्साहन ही देती है।

यदि इस दृष्टि से विचार करें, तो साधारणतया यही कहा जाएगा कि आजकल व्यापार में बहुत गलत व्यवहार हो गया है, इसमें हिंसा की भरमार है। अहिंसक व्यापार में आदमी बराबर सतर्क रहेगा कि जिस वस्तु का मैं व्यापार करता हूं, उसकी समाज को आवश्यकता है। वह समाज की मांग होने से ही किसी वस्तु के व्यापार को नहीं करने लगेगा। वह सोचेगा कि यह वस्तु वास्तव में समाज के लिए हितकारी है। इस प्रकार युद्ध-सामग्री, मादक पदार्थों, विलासिता या शौक की वस्तुओं के व्यापार का निषिद्ध होना स्पष्ट है।

2.3.9 विज्ञान

विज्ञान का क्षेत्र अनन्त है। इसके मुख्य तीन भेद किये जा सकते हैं—भौतिक, मानसिक और आध्यात्मिक। साधारण तौर से विज्ञान से भौतिक विज्ञान का ही आशय लिया जाता है, और आजकल इसे ही बहुत महत्व दिया जाता है। इस विज्ञान ने मनुष्य को जल, थल और आकाश पर बहुत शक्ति प्रदान की है; नित्य नये अविष्कार हो रहे हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2.3.10 विज्ञान की दीर्घकालीन परम्परा

भाप आदि शक्तियों का विशेष उपयोग तो सतरहवीं-अठारहवीं शताब्दी से ही होने लगा है। उससे पहले मनुष्य जो भी काम करता था—जमीन जोतना, पानी निकालना, खेती-बाड़ी, पशुपालन, बुनाई, तेल निकालना, गुड़ बनाना, माल ढ़ोना, यात्रा आदि—वे सब मनुष्य या पशु की शारीरिक शक्ति के द्वारा ही किये जाते थे। प्राकृतिक शक्ति—जैसे लकड़ी जला कर प्राप्त की गयी शक्ति—खाना बनाने, गरम करने, या कुछ धातुओं के औजार या बर्तन आदि बनाने में ही काम में लायी जाती थी। पर उस दशा में भी आदमी अपनी बुद्धि का उपयोग करता था। दो-ढ़ाई सौ साल से मनुष्य या पशु की शक्ति का उपयोग कम होकर, भाप, बिजली आदि प्राकृतिक शक्तियों का उपयोग अधिकाधिक हो रहा है। और अब हमारी पीढ़ी में तो अणु-शक्ति के प्रयोग होने लग गये हैं, और हम इस शक्ति से इतने अधिक प्रभावित है कि इस युग को अणु-युग का नाम दिया जाता है।

2.3.11 विज्ञान का सदुपयोग और दुरुपयोग

सदुपयोग करने वालों के हाथों में गुण होते हैं, जब कि गुणहीनों अर्थात् दुरुपयोग करने वालों में वे दोष बन जाते हैं। विज्ञान एक साधन है, इसकी शक्ति से कैसा कार्य होता है—अच्छा या बुरा, अहिंसक या हिंसक—यह इसके उपयोग पर निर्भर है, आदमी इसका उपयोग अच्छे काम में भी कर सकता है, और बुरे में भी। इसलिए यह कहने की अपेक्षा कि विज्ञान ने यह कार्य किया, यह कहना ज्यादा ठीक है कि विज्ञान द्वारा मनुष्य ने यह कार्य किया। पर व्यवहार में इतना सूक्ष्म विचार नहीं किया जाता।

वैज्ञानिक आविष्कार हिंसा को भी बढ़ाने वाले हो सकते हैं और अहिंसा को भी। अहिंसा को बढ़ाने वाले आविष्कारों का एक उदाहरण कृषि है। ज्यों-ज्यों खाद्य पदार्थों की उपज बढ़ाने वाले अनुसंधान होते जायंगे, अथवा नये पदार्थों को भोजन के रूप में उपयोग किये जाने के प्रयोगों में सफलता मिलेगी, मनुष्य का मांसाहार उतरोत्तर कम होता जाएगा। इससे स्पष्ट है कि विज्ञान ने मनुष्य को अहिंसक बनने की दिशा में कितनी सहायता दी है, और दे सकता है।

2.3.12 विज्ञान और सर्वोदय

प्राचीन काल में आदमी सर्वोदय की बात कहता था तो वह अपने पास के, अपने गांव-खेड़े के थोड़े से आदमियों को ही अपनी दुनियां समझता था। दूर-दूर के आदमियों से वह इच्छा रखते हुए भी संबंध स्थापित नहीं कर सकता था। उस समय दुनिया अनेक भागों में विभक्त थी और एक भाग के निवासियों को दूसरे भाग के आदमियों के सुख-दु:ख का कुछ पता नहीं होता था। अब विज्ञान की सहायता से हम हजारों मील दूर रहने वालों का हाल सहज ही जान सकते हैं और अनावृष्टि, बाढ़, अग्निकांड, भूकम्प आदि के अवसर पर शीघ्र ही यथेष्ट सहायता पहुंचा सकते हैं।

इससे स्पष्ट है कि विज्ञान सर्वोदय की भावना का प्रचार करने में तथा इसे कार्य-रूप में परिणत करने में कितना सहायक हुआ है। आरम्भ में जब 'सर्वे सुखिन: भवन्तु', 'सर्वभूत हितेरता:', या 'वसुधैव कुटम्बकम्' की बात कही गयी थी, मनुष्य यह नहीं जानता था कि पृथ्वी वास्तव में कितनी बड़ी है, आदमी तथा अन्य प्राणी कहां-कहां रहते हैं। अब विज्ञान की उन्नति से, यातायात आदि के साधनों की वृद्धि से, यह पहले की अपेक्षा अधिक सम्भव हो सका है और आगे अधिकाधिक हो सकेगा।

2.3.13 दूसरा पक्ष; हिंसक कार्य

विज्ञान एक साधन है इसका सदुपयोग होने पर इससे अहिंसक कार्यों में सहायता मिलती है, तो इसके दुरुपयोग होने की दशा में यह बहुत अनिष्टकारी या हिंसक भी हो सकता है। पिछले समय में विज्ञान से अनेक ऐसे

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

यंत्रों का आविष्कार हुआ है जिनसे उत्पादक कार्यों में मनुष्य को शारीरिक श्रम कम करना पड़ता है। ये यंत्र कुछ थोड़े से व्यक्तियों के अधिकार में होते हैं। वे लोग इनका उपयोग अपने स्वार्थ को साधने तथा दूसरों के शोषण में करते हैं। इस प्रकार एक बड़ी पूंजी द्वारा थोड़े से आदमियों के सहयोग से कल-कारखाने चलाकर हजारों आदमियों को बेकार कर दिया जाता है। ये बेकार लोग चोरी करने, भीख मांगने, छल-फरेब करने आदि के लिए मजबूर होते हैं। इस प्रकार विज्ञान बहुत बड़ी हिंसा का साधन होता है।

ज्यों-ज्यों विज्ञान की उन्नति हुई, युद्ध पहले से अधिक, विकराल और व्यापक होने लगे। पहले प्रत्येक युद्ध की जगह निर्धारित होती थी, जिसे युद्ध-भूमि या रणक्षेत्र कहा जाता था; उससे दूर के आदमी को युद्ध में होने वाली हिंसा का शिकार नहीं होना पड़ता था। अब तो लड़ने वाले दोनों पक्षों की एक-दूसरे के पूरे के पूरे क्षेत्र पर नजर रहती है। बालक, स्त्री, रोगी या बूढ़ा कोई भी सुरक्षित नहीं रहता। बहुधा प्रत्येक पक्ष में कई-कई देश होते हैं, ऐसी दशा में रण-क्षेत्र बहुत ही विस्तृत हो जाता है। नये-नये शस्त्रास्त्रों ने युद्ध की भीषणता को बेहद बढ़ा दिया है। अणु-बम और हाइड्रोजन-बम से होने वाली संहार-लीला से तो ऐसा मालूम होता है कि मानो विज्ञान मनुष्य का अन्त करने, सृष्टि का विनाश करने पर ही उतारू है। आदमी विज्ञान द्वारा प्राप्त महत्त्वूर्ण शक्तियों से अपना कैसा अहित कर रहा है, इससे कौन सहृदय दुखी न होगा! अनेक वैज्ञानिक भी इस पर गम्भीरता से सोचने के लिए बाध्य हो गये हैं। श्री सी.बी. रमण ने कहा है कि 'यदि विज्ञान के प्रसार और उसके आविष्कारों से मनुष्य के हृदय की विशालता, उच्चता और नैतिकता नहीं बढ़ती तो फिर उनका क्या मूल्य है। यदि विज्ञान यह न कर सके तो बेहतर होगा कि सारी प्रयोगशालाओं को बन्द कर दिया जाए।'

2.3.14 अहिंसा की विशेष आवश्यकता

अहिंसा की आवश्यकता मनुष्य को हमेशा रही है, पर विज्ञान के इस घातक रूप से प्रकट होने पर अब यह आवश्यकता और भी अधिक अनुभव की जा रही है। डा. वासुदेवशरा अग्रवाल ने लिखा है कि 'आज छोटे-बड़े अनेक वैज्ञानिक सत्यों के आविष्कार से मानव-जीवन को सुख और स्वास्थ्य की अनेक सुविधाएं मिली हैं, किन्तु अहिंसा के एक नियम की स्वीकृति के बिना हम सब कहां हैं, मानव-जाति का सुख कहां है, मनुष्यों के मन की शांति कहां है, और कहां है राष्ट्र-प्रेम और मातृ-प्रेम जिनके अभाव में हर एक का जीवन नीरस बना हुआ है! विज्ञान के स्वसंचालित यन्त्र जिस वेग से संहार की वृष्टि कर सकते हैं, उससे कहीं अधिक शक्तिशाली अहिंसा के स्वर हैं। वे जिस क्षण महान राष्ट्रों के कंठ से निकलेंगे, संसार के मानवों का मन आश्वस्त हो जाएगा।'

2.3.15 भौतिक परमाणु बनाम चैतन्य परमाणु

अणु-बम का आजकल लोगों के मन पर बहुत आतंक है, तथापि यह विचार करना चाहिए कि वह आखिर तो एक जड़ पदार्थ है, चैतन्य शक्ति के सामने कब तक डटेगा। अणु-बम को बनाने वाला तो मनुष्य ही है, क्या मनुष्य उसका नियन्त्रण नहीं कर सकेगा? श्री विनोबा के शब्दों में 'एटम बम ने यह सिद्ध कर दिया कि अणु में ऐसी शक्ति है कि वह संहार कर सकती है। इतनी शक्ति अणु में होती है, तो फिर हमको यह समझना है कि एक साधारण भौतिक परमाणु में इतनी शक्ति है तो चैतन्य-परमाणु में, ज्ञान-परमाणु में कितनी शक्ति होगी।'

2.3.16 आध्यात्मिक और भौतिक विज्ञान का समन्वय

पहले कहा गया है कि विज्ञान के मुख्य तीन भेद हैं। इस समय भौतिक विज्ञान पर बहुत जोर दिया जाता है। परन्तु आध्यात्मिक विज्ञान की ओर अपेक्षाकृत बहुत कम ध्यान दिया जाता है। इस प्रकार विज्ञान

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

की जो उन्नति हुई है, वह एकांगी है। शारीरिक और मानसिक आवश्यकताओं की पूर्ति का भरस्क प्रयत्न किया जा रहा है। परन्तु मनुष्य केवल शरीर या मन ही नहीं है। उसका एक अंग आत्मा भी है, और वह इतना महत्वपूर्ण है कि उसकी तुलना में शरीर और मन का स्थान ऐसा ही है, जैसा शरीर की तुलना में कपड़े का। कपड़े को हम अनावश्यक नहीं कहते, पर वह शरीर के लिए है। इसी प्रकार शरीर और मन में दोनों आत्मा के लिए हैं।

इस आत्मा को आध्यात्मिक विज्ञान की जरूरत है जिससे मनुष्य में आत्मीयता की भावना बढ़े। आध्यात्मिक विज्ञान मनुष्य को अपनी भौतिक आवश्यकताओं पर नियन्त्रण करना, दूसरों की सेवा-सहायता करना, उनके लिए अपनी सुख-सुविधाओं का त्याग करना सिखाता है। इससे आदमी मिलजुल कर, प्रेम से, शान्ति और सहयोग से रह सकते हैं। अस्तु, भौतिक विज्ञान त्याज्य नहीं है, पर उसके साथ जब आध्यात्मिक विज्ञान या आत्मज्ञान का मेल होगा तभी मनुष्य की हिंसक प्रवृत्ति का नियन्त्रण होकर अहिंसा की दिशा में यथेष्ट प्रगति होगी।

2.4.0 अहिंसा और शिक्षा

2.4.1 अहिंसा के शिक्षण की आवश्यकता

अभी तक अहिंसा के सम्बन्ध में शोध, शिक्षण और प्रयोग बहुत कम ही हुए हैं। हिंसा के सम्बन्ध में मनुष्य ने जितना परिश्रम किया और कष्ट उठाया है, उसकी तुलना में अहिंसा की ओर बहुत ही कम ध्यान दिया गया है। तो भी यह बहुत यशस्वी हुई। स्पष्ट है कि अहिंसा के शोध, शिक्षण, संगठन आदि बढ़ने पर इसकी कल्याणकारी शक्ति और भी अधिक चमत्कार दिखायेगी।

इस विषय में गांधीजी का मत है कि 'अहिंसा में तीव्र कार्यसाधक शक्ति भरी हुई है। इसमें जो अमोघ शक्ति है, उसकी अभी पूरी खोज नहीं हुई है। 'अहिंसा के समीप सारे बैर-द्वेष शान्त हो जाते हैं'—यह सूत्र शास्त्रों का प्रलाप नहीं है, बल्कि ऋषियों का अनुभव-वाक्य है। जाने-अनजाने, प्रकृति की प्रेरणा से, सब प्राणियों ने एक-दूसरे के लिए कष्ट उठाने का अर्थ पहचाना है और उसके आचरण द्वारा संसार को निभाया है। तथापि इस शक्ति का संपूर्ण विकास और सब कार्यों और प्रसंगों में इसके प्रयोग के मार्ग का अभिज्ञानपूर्वक शोधन-संगठन नहीं हुआ है। हिंसा के मार्गों के शोधन और संगठन करने का मनुष्य ने जितना दीर्घ उद्योग किया है और उसका बहुत अंशों में शास्त्र बना डालने में सफलता पायी है; उतना यदि वह अहिंसा की शक्ति के शोधन और संगठन के लिए करे, तो मनुष्य-जाति के दुःखों के निवारणार्थ यह एक अनमोल, अचूक और परिणाम में उभय पक्ष का कल्याण करने वाला साधन सिद्ध होगा।

जिस श्रद्धा और उद्योग से वैज्ञानिक प्रकृति की शक्तियों की खोज करते हैं और उसके नियमों को विविध प्रकार से काम में लाने का प्रयत्न करते हैं वैसी ही श्रद्धा और उद्योग से अहिंसा की शक्ति की खोज करने की और उसके नियमों को काम में लाने का प्रयत्न करने की आवश्कता है। अहिंसा की शिक्षा और हिंसा की शिक्षा में जमीन-आसमान का अन्तर है। गांधीजी ने कहा है कि 'जैसे हिंसा की तालीम में मारना सीखना जरूरी है, उसी तरह अहिंसा की तालीम में मरना सीखना पड़ता है। हिंसा में भय से मुक्ति नहीं मिलती, किन्तु भय से बचने का इलाज ढूंढ़ने का प्रयत्न रहता है। अहिंसा में भय को स्थान ही नहीं। भयमुक्त होने के लिए अहिंसा के उपासक को उच्च कोटि की त्याग-वृत्ति विकसित करनी चाहिए। जिसने सब प्रकार के भय को नहीं जीता, वह पूर्ण अहिंसा का पालन नहीं कर सकता। इसलिए अहिंसा का पुजारी सब भयों को जी लेता है।

2.4.2 अहिंसा के शिक्षण में शारीरिक कार्य अनिवार्य

सैनिक शिक्षा से आदमी दूसरों को मारने की 'कला' सीखते हैं। यह शिक्षा एकदम या बिना प्रयास

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

के नहीं मिल जाती। इस के लिए महीनों और वर्षों का समय लगता है। हमें जानना चाहिए कि अहिंसा का भी शिक्षण कुछ भाषणों, लेखों या वाद-विवाद के जबानी जमा-खर्च से नहीं हो सकता। यद्यपि इस बात पर बहुत से आदमियों को जल्दी विश्वास न हो, तथापि विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाएगा कि सैनिक शिक्षण से मिलने वाले सब लाभ—आज्ञापालन की आदत, आत्म-सम्मान, आत्म-त्याग, दृढ़ इच्छा-शक्ति, दूसरों के प्रति एकता की भावना, कठिनाइयों को सहन करने की शक्ति, व्यवस्था और सहयोग की भावना, साहस, दूसरों के साथ समरस होने की प्रवृति आदि—रचनात्मक कार्यों से मिल सकते हैं, जब इन्हें सोच समझ कर, सहयोग-पूर्वक स्वभावतः किया जाता है। इसलिए अहिंसा के शिक्षण में शारीरिक कार्य का महत्व निर्विवाद है। कार्य जितना अधिक किया जाएगा, सत्याग्रह की उतनी ही सम्भावना हो जाएगी।'

रचनात्मक कार्य, देश-काल के अनुसार भिन्न-भिन्न स्थानों में भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। भारत की वर्तमान अवस्था में यहां ये कार्य निम्नलिखित माने गये—1. साम्प्रदायिक एकता, 2. अस्पृश्यता निवारण, 3. जाति-भेद निराकरण, 4. नशा-बन्दी, 5. खादी और दूसरे ग्रामोद्योग, 6. गांव-सफाई, 7. मूल्यपरक शिक्षा, 8. स्त्री के लिए पुरुषों की बराबरी के हक, और समाज में स्त्री-पुरुष की बराबरी की प्रतिष्ठा, 9. आरोग्य और स्वच्छता, 10. देश की भाषाओं का विकास, 11. प्रान्तीय संकीर्णता का निवारण, 12. हिन्दी का राष्ट्र-भाषा के तौर पर प्रचार, 13. आर्थिक समानता, 14. खेती की तरक्की, 15. मजदूर-संगठन, 16, आदिम जातियों की सेवा, 17. विद्यार्थी-संगठन, 18. कुष्ट रोगियों की सेवा, 19. संकट निवारण और दुःखियों की सेवा, 20. गो-सेवा, 21. प्राकृतिक चिकित्सा और इसी तरह के अन्य कार्य।

2.4.3 अहिंसा की शिक्षा कौन देगा?

अहिंसा की शिक्षा वह व्यक्ति दे सकेगा जो स्वयं अहिंसा-प्रेमी हो, जिसके मन में अहिंसा-प्रचार की धुन हो, जो इसके लिए बेचैन हो, जिसने इसे अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया है, और जो अपना दैनिक व्यवहार और आचरण अधिक-से-अधिक अहिंसामय रखता हो। वे अपने दैनिक जीवन-व्यवहार में अहिंसा का आदर्श उपस्थित करके अपने पड़ोसी को प्रभावित करें। उपदेश से दृष्टान्त कार्यकारी होता है। अहिंसा के श्रद्धालुओं में भी साधुओं और त्यागियों का उत्तरदायित्व और भी अधिक है। वे तो अपने को अहिंसा और शान्ति का सिपाही मानें और जीवन के जिस क्षेत्र में उन्हें हिंसामयी विषमता दिखायी दे, उसको मिटाने के लिए होम दें।

बोध प्रश्न 2:

---

1. *बेकारी से हिंसा कैसे बढती है? समझाएं।*
2. *चैतन्य परमाणु क्या है?*
3. *अहिंसा के शिक्षण की आवश्यकता पर प्रकाश डालें।*

2.5.0 अहिंसा और पर्यावरण

पृथ्वी एवं इसका पर्यावरण न केवल मनुष्य, वरन् प्राणी मात्र वनस्पति जगत् एवं अजीव जगत् के साथ अन्योन्याश्रित रूप से जुड़ा है। विश्व की प्राचीनतम सभ्यता एवं संस्कृति के देश भारत में दिव्य द्रष्टा महर्पियों ने पर्यावरण के महत्व को अपनी दिव्य-दृष्टि से जान लिया था एवं उनकी मनीषा ने स्वतः स्फूर्त अग्नि सूक्त, मरूत सूक्त, वात सूक्त, पर्जन्य आदि सैकड़ों सूक्तों का सृजन किया। पर्यावरण एवं जीव जगत् के सम्बन्ध में भारतीय दर्शनों एवं परम्पराओं में महत्त्वपूर्ण एवं उपयोगी सिद्धान्त और चिन्तन हमें प्राप्त हैं। इनके

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

विस्मरण से कई समस्याएं उत्पन्न हुई हैं तथा मानव समाज भटकाव की स्थिति में पहुंच गया है। महर्षि द्वय चरक एवं सुश्रुत की आयुर्वेदिक संहिताओं तथा सम्पूर्ण परवर्ती साहित्य में इस सन्दर्भ में परामर्श एवं अत्यन्त उपयोगी मार्ग निर्देशिका सामग्री है।

मनुष्यता के बौद्धिक एवं वैज्ञानिक विकास के इतिहास का सिंहावलोकन स्पष्टत: दर्शाता है कि जिज्ञासा, आश्चर्य, प्रेक्षण, कल्पना, ज्ञान-पिपासा, चिन्तन, मनन, प्रयोग, रहस्यों तथा समस्याओं से जूझकर उनका हल खोजने की प्रवृत्ति, प्रकृति पर विजय पाने की अनन्य लालसा एवं प्रबल पुरूषार्थ शक्ति ने समस्त विश्व में विज्ञान की विविध शाखाओं को जन्म दिया; विशेषत: वर्तमान शताब्दी में तो मानो ज्ञान-विज्ञान का 'विस्फोट' ही हुआ है तथा इसके परिणाम स्वरूप मानव जीवन में विभिन्न प्रकार की सुविधाओं एवं भौतिक सुखों में अपूर्व वृद्धि हुई है। परन्तु बीसवीं शताब्दी अपने आप में अनोखी कही जा सकती है, क्योंकि इसमें तीव्र विकास तो हुआ, किन्तु वहीं पर अधिकांश समस्याएं केवल एक देश या कुछ देशों तक ही सीमित नहीं रही, बल्कि उनका स्वरूप बहुआयामी व विश्वव्यापी रहा। इन्हीं समस्याओं में से ज्वलंत समस्या है 'पर्यावरण प्रदूषण'। किसी अच्छाई या भलाई के साथ कोई न कोई बुराई अवश्य जुड़ी होती है या जुड़ जाती है। पर्यावरण की अशुद्धि या प्राकृतिक प्रदूषण भी एक ऐसा ही विषय है, जो विज्ञान एवं तकनीकी विकास के साथ गहराई से जुड़ा है, जिसके संभावित दुष्परिणामों से समस्त प्राणीजगत् भयभीत है। संक्षेप में पर्यावरण की शुद्धि पर प्राणी जगत् का अस्तित्व निर्भर करता है। इसलिए केंद्रीय शासन एवं राज्य शासनों द्वारा पर्यावरण मंत्रालय खोले गये हैं। प्रयोगशालाओं की स्थापना और वैज्ञानिक एवं तकनीकी अधिकारियों की नियुक्तियां की गई हैं। आकाशवाणी, दूरदर्शन, समाचार पत्रों, पत्रिकाओं द्वारा पर्यावरणीय समस्याओं सम्बन्धी व्यापक प्रचार अभियान चलाया जा रहा है। विश्वविद्यालयों में राष्ट्रीय व क्षेत्रीय विद्वत् संगोष्ठियां आयोजित की जा रही हैं। संयुक्त राष्ट्रसंघ भी इस दिशा में सक्रिय है। पृथ्वी के सभी राष्ट्रों के शासनाध्यक्षों एवं वैज्ञानिकों का सन् 1992 में 'रियो द जनरियो' का 'पृथ्वी सम्मेलन' (वेनेजुएला में) इस समस्या के प्रति विश्वव्यापी चेतना एवं सभी प्रकार के राजनैतिक एवं आर्थिक आदि कलहों से ऊपर उठकर समग्र पृथ्वी के समूचे पर्यावरण के संरक्षण, सुधार एवं विकास की दिशा में नैष्ठिक प्रयासों का प्रतीक है।

पर्यावरण सम्बन्धी सभी समस्याओं की जड़ मनुष्य की वासनाओं, तृष्णाओं एवं ऐषनाओं में है। प्रत्येक मनुष्य अनन्तकाल तक जीवित रहकर अनन्त अनवरतसुख या आनन्द का उपभोग करना चाहता है। उसे शारीरिक सुख के लिए भोजन, वस्त्र और आवास की आवश्यकता होती है। इन्हें बढ़ाते रहने एवं अधिकाधिक उपभोग की उसकी स्वाभाविक प्रवृति रहती है। मानव को उपभोग के ये सारे उपादान पृथ्वी एवं पर्यावरण (प्रकृति) से ही प्राप्त होते हैं। "आवश्यकता ही आविष्कार की जननी है"—इस उक्ति के आधार पर रंग-बिरंगे कपड़ों एवं फैशन के व्यामोह में मनुष्य अनेक कृत्रिम रंजक पदार्थों का निर्माण करता है और इसी के लिए विशालकाय उद्योग भी स्थापित किये जाते हैं। इन उद्योगों से प्रतिदिन टनों अग्राह्य एवं प्रदूषक पदार्थ प्रकृति में ठोस, द्रव या गैस के रूप में उत्सर्जित होते हैं। रंजक पदार्थ का यह उदाहरण तो प्रतीक मात्र है। वस्तुत: फैशन के नाम पर कई तरह के लेपों, उबटनों, तेल और सुगंधित पदार्थों का परिग्रह मनुष्य ने बढ़ा लिया है। मनुष्य की दूसरी प्रवृत्ति है—जिजीविषा। मृत्यु का भय। रोगों से बचने का प्रयत्न। इस क्षेत्र में प्राकृतिक सन्तुलित जीवन व्यतीत करने के लिए मनुष्य ने कई औषधियों का आविष्कार कर लिया है। सारी पृथ्वी पर हजारों टन मात्रा में प्रतिवर्ष इनका निर्माण होता है। इस निर्माण प्रक्रिया में टनों त्याज्य एवं प्रदूषक मल उत्सर्जित होते हैं। राष्ट्र एवं राज्य की सुरक्षा के नाम पर सामूहिक सुरक्षा व्यवस्था का भी सृजन हो गया है। इसी के नाम पर लाखों टन विस्फोटकों, रासायनिक युद्ध सामग्रियों, वायुयानों व टेंकों आदि

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

का निर्माण होता है। इनमें लगने वाली धातुओं एवं द्रव्यों के निर्माण हेतु अनेक छोटे-मोटे उद्योग अहर्निश अपरिमेय मात्रा में प्रदूषक द्रव्यों का निष्कासन करते रहते हैं। सारा मानव समाज राष्ट्रों, उपनिवेशों एवं राज्यों के खंडों में बंटा हुआ एक दूसरे से भयाक्रांत है एवं सुरक्षा और संरक्षण के नाम पर महती अर्थशक्ति का तो व्यय करता ही है, पर्यावरण प्रदूषण भी अनुषांगिक रूप में करता है। लोभ की वृत्ति, व्यापार एवं लाभ अर्जित करने के मूल में है। एक राष्ट्र या समाज, दूसरे राष्ट्र या समाज का शोषण करना चाहता है। उपयोगी एवं आवश्यक पदार्थों के उत्पादन का ज्ञान गुप्त रखकर, वस्तु विक्रय द्वारा अर्थ संचय करके अपने समाज या राष्ट्र को तथाकथित प्रगतिशील एवं उन्नत बनाना चहता है। इस प्रक्रिया में स्वयं उत्पादक राष्ट्र में अनिवार्य एवं अपरिहार्य रूप में प्रदूषण होता है। क्रेता समाज या राष्ट्र में विक्रित वस्तुएं जैसे—कार, स्कूटर, वायुयान आदि भी न्यूनाधिक रूप में प्रदूषण उत्पन्न करते रहते हैं। दौड़-भाग एवं प्रतिस्पर्द्धा की समाज-व्यवस्था में तीव्रगामी वाहनों, रेलगाड़ियों, ट्रकों आदि की आवश्यकता बढ़ गई है। इनसे सारी पृथ्वी पर लाखों टनों में प्रतिदिन कार्बन-डाइ-ऑक्साइड, कार्बन मोनोऑक्साइड, गंधक, सीसा आदि उत्सर्जित होते हैं। आराम एवं विलासिता की पिपासाएं—मनुष्य आराम के लिए नरम गद्दे, फोम, स्पंज के उपकरण चाहता है। इसके साथ ही मनुष्य की सौन्दर्य प्रसाधन की भी आकांक्षा दिनानुदिन बढ़ती ही जा रही है। इन मांगों की पूर्ति के लिए इन वस्तुओं के उत्पादन हेतु कारखाने खुलते हैं।

2.5.1 कष्ट सहिष्णुता एवं तपवृत्ति की कमी

गांधीजी ने सुख एवं शान्ति के लिए आवश्यकताओं को कम करने का विचार प्रकट किया था, तथा स्वयं कष्ट सहकर दूसरों को सुरक्षा पहुंचाने की सीख दी थी। आधुनिक भौतिकवादी सभ्यता एवं विभिन्न पाश्चात्य सभ्यताओं एवं संस्कृतियों के प्रभाव वश, विशेषतः गौतम, गांधी के देश भारत में कष्ट सहिष्णुता एवं तपवृत्ति विलीन होती जा रही है। हमें वातानुकूल यंत्र चाहिये, जो गर्मी में कक्ष को ठंडा और ठंड में गर्म रख सकें। विद्युत उत्पादन का बहुत बड़ा भाग भाग उद्योगों व यंत्रोपकरणों के संचालन के अतिरिक्त हमारी आराम व विलासिताओं की आवश्यकता पूर्ति में खप जाता है।

2.5.2 जनसंख्या वृद्धि

नैसर्गिक, आत्मारोपित ब्रह्मचर्य का अभाव तथा अशिक्षा के कारण जनसंख्या में तीव्र गति से अनियंत्रित वृद्धि हो रही है। इस बढ़ी हुई जनसंख्या की अन्न, वस्त्र एवं आवास जैसी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु समाज, राष्ट्र एवं शासन को उद्योग धंधे खोलने पड़ते हैं, जो पर्यावरण प्रदूषण के मूल कारण बनते हैं।

2.5.3 अन्नोत्पादन

जनता को खाद्यान्न की आपूर्ति हेतु अनेक कदम उठाये जाते हैं। अन्नोत्पादन की वृद्धि के लिए कई प्रकार के उर्वरकों व कीटनाशकों का प्रयोग करने हेतु अभियान चलाये जाते हैं। हरित क्रांति जैसी नीतियों का निर्माण किया जाता है। अधिक अन्न उपजाने के लिए विशाल उर्वरक सयंत्र स्थापित किए जाते हैं। हानिकारक कीटों के नाश के लिए सैकड़ों रासायनिक पदार्थों का उत्पादन करने के लिए बड़े-बड़े कारखाने लगाए जाते हैं, जो पर्यावरण को अनिवार्य रूप से प्रदूषित करते हैं।

अतः संक्षेप में कहा जा सकता है कि मनुष्य की तृष्णाओं, ऐषणाओं, वासनाओं, लोभ-वृत्ति, शारीरिक पुष्टि एवं सौन्दर्य वर्द्धन, रोगों से निवृत्ति, दीर्घजीवन की लालसा, सुरक्षा एवं संरक्षा की वृत्तियों आदि ने पर्यावरण

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

सम्बन्धी समस्याओं को जन्म दिया है। पृथ्वी के अन्य सजीव किन्तु निरीह घटकों जैसे कि पशुओं, पक्षियों, वनस्पतियों ने इसमें योगदान कतई नहीं दिया है। ये तो प्रकृति के माध्यम से परमात्मा या पर ब्रह्मा के अनुशासन में रहते आ रहे हैं।

2.5.4 अहिंसक समाधान

मनुष्य की प्रतिभा एवं बुद्धि ही उसके शत्रु का रूप ग्रहण कर रही हैं। समस्याओं का निर्माता मनुष्य ही है एवं उसे ही इनका समाधान करना है। डॉ. शैलेन्द्र शेखर, ओरियंट पेपर मिल्स, अमलाई चिकित्सालय के चिकित्सा पर्यावरण संकट के लिए मनुष्य को उत्तरदायी ठहराते हुए कहते हैं कि हमारी (मनुष्य को) बुनियादी भूल थी कि हमने आदमी को स्वयं से प्रेम करना नहीं सिखाया। इसका सम्बन्ध पर्यावरण से है। जो व्यक्ति स्वयं से घृणा करता है, क्या उससे अपेक्षा की जा सकती है कि वह किसी और को प्रेम करेगा। जो स्वयं के प्रति क्रोध से भरा है, वह दूसरों से प्रेम करेगा, यह कल्पना ही छोड़ देनी चाहिए। अतः यह कहा जा सकता है कि जो खुद को काटने-मारने को तैयार है वह दूसरे मनुष्यों को, अन्य प्राणियों को, पेड़-पौधौं को कैसे छोड़ सकता है। स्वयं से घृणा करने वाला व्यक्ति समस्त अस्तित्व के प्रति घृणा और क्रोध से भर जाता है। समग्र रूप से मनोभाव रूप मानसिक प्रदूषण से वर्तमान मानव सभ्यता एवं प्रकृति व्यापक एवं गहन रूप से प्रभावित हुई है। मानव जीवन की सरलता-सहजता, सज्जनता, निष्कपटता, परदु:खकातरता, स्वावलम्बन, कर्त्तव्य-निष्ठा, श्रम-निष्ठा, परस्पर सहयोग, प्राणी मात्र के प्रति दया-करूणा का भाव आदि ऐसे सहज मानवीय गुण हैं, जो मनुष्य को अन्य प्राणियों की तुलना में श्रेष्ठता प्रदान करते हैं और जिनके सद्भाव में प्राकृतिक व्यवस्था सन्तुलित एवं मर्यादित चलती रहती है, किन्तु जब इन मानवीय गुणों का ह्रास होता है या इन गुणों को प्रतिपक्षी क्रोध, मोह, स्वार्थ आदि मनोभाव मानव जीवन को आक्रान्त करते हैं तब उससे न केवल व्यक्ति बल्कि समाज भी दु:खी होता है। इससे प्राकृतिक सन्तुलन भी अस्त-व्यस्त एवं ध्वस्त हो जाता है, जैसा कि वर्तमान में सर्वविकृत सामाजिक-अव्यवस्था एवं प्राकृतिक असन्तुलन के दुष्परिणामों के रूप में हम अनुभूत कर रहे हैं। वस्तुतः इन सब विकृतियों के पीछे मानव जगत् का मानसिक प्रदूषण उत्तरदायी है।

गांधीजी ने प्रकृति के नियम को याद दिलाते हुए हमें सावधान किया था कि जो व्यक्ति जिससे जितना ग्रहण करे उतना उसे वापस भी करे, तभी व्यवस्था सन्तुलित रहती है; किन्तु क्रोधादि अशुभ मनोविकार, कर्त्तव्य विमुखता, स्वार्थी मनोवृत्ति, भ्रष्ट-आचरण, अवसरवादिता के रूप में अनार्जित आय को प्राप्त करने की भावना, पदलिप्सा, असीमित इन्द्रिय भोग एवं वासना के मनोविकारों से जब व्यक्ति एवं समाज पीड़ित होता है, तब वह प्रकृति के प्रति क्रूर एवं हिंसक होकर उससे प्रतिक्षण लेता ही लेता है, जिससे पर्यावरण एवं प्राकृतिक सन्तुलन भंग हो जाता है। अमर्यादित वन-विनाश, अनियत्रित उत्खनन, जलवायु प्रदूषण आदि इसके ही क्रूर नमूने हैं; जिनके संभावित दुष्परिणामों से सभी भयभीत हैं।

उक्त परिप्रेक्ष्य में पर्यावरण शुद्धि हेतु यह अवश्यक है कि मानवीय मानसिक प्रदूषण को नियंत्रित, सयंमित एवं सन्तुलित कर उसे जनोपयोगी बनाया जाये। हम जानते हैं कि व्यक्ति एवं समाज की अशुभ प्रवृत्तियों, असदाचार, असंयम को रोकने में राम, कृष्ण, महावीर, बुद्ध, मोहम्मद, ईसा, जरस्थु एवं उनके अनुयायी महर्षियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा, जिन्होंने वैचारिक शुद्धता-शुभता से व्यक्ति सुधार द्वारा समाज सुधार के वैज्ञानिक प्रयोग किये हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2.6.0 अभ्यास हेतु प्रश्न

निबन्धात्मक

1. अहिंसक जीवन शैली के प्रमुख घटकों का विवरण दें।
2. अहिंसक जीवन शैली हेतु अहिंसा की साधना क्या भूमिका निभा सकती है?
3. मांसाहार से मनुष्य किस प्रकार के दुष्परिणाम भोगता है?
4. मनुष्य हिंसक व्यवहार क्यों करता है?
5. आधुनिक जीवन शैली में वस्त्रों के साथ किस प्रकार हिंसा जुड़ी हुई है?
6. औषधि निर्माण हेतु किस प्रकार की हिंसा होती है?
7. अहिंसक चिकित्सा पद्धति का क्या स्वरूप होना चाहिए और क्यों?
8. उद्योग-धंधे एवं व्यापार का अहिंसा से क्या संबंध हो सकता है?
9. क्या विज्ञान मनुष्य जाति के लिए कल्याणकारी है या सुविधाकारी? स्पष्ट करें।
10. अहिंसा के शिक्षण की क्यों आवश्यकता है?
11. अहिंसा की शिक्षा देने की पात्रता का वर्णन करें।
12. पर्यावरणीय समस्या का अहिंसक समाधान क्या है?

बहुवैकल्पिक

1. अहिंसक जीवन शैली के लिए आवश्यक तत्व है-
   (अ) सुविधावाद (ब) भोगवाद (स) संयम
2. अहिंसा की ओर पहला चरण है-
   (अ) उद्योग-धंधे (ब) पशु-पालन (स) विज्ञान
3. मनुष्य के लिए कौन सा प्रोटीन लाभप्रद है-
   (अ) प्राणित प्रोटीन (ब) वनस्पति प्रोटीन (स) रसायनिक प्रोटीन
4. आहार कितने प्रकार का है?
   (अ) तीन (ब) चार (स) पांच
5. जंगली अवस्था में मनुष्य किस प्रकार के वस्त्रों का उपयोग करता था?
   (अ) वृक्षों की छाल, पत्ते आदि (ब) सूती (स) चमड़ा आदि
6. गांधीजी ने किस प्रकार की चिकित्सा पद्धति का समर्थन किया है?
   (अ) आयुर्वेदिक (ब) प्राकृतिक (स) होम्योपैथिक
7. ग्रामोद्योग की निष्पत्ति क्या है?
   (अ) शोषण (ब) बेरोजगारी (स) रोजगार के अवसर
8. 'भौतिक परमाणु से अधिक शक्तिशाली चैतन्य परमाणु है', किसने कहा था?
   (अ) गांधी (ब) विनोबा (स) जयप्रकाशनारायण
9. भारत की वर्तमान अवस्था में कितने प्रकार के रचनात्मक कार्यों को दर्शाया गया है?
   (अ) 20 (ब) 21 (स) 22
10. 'पृथ्वी सम्मेलन' कब हुआ था?
    (अ) 1992 (ब) 1993 (स) 1994

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इकाई–3 : अहिंसा प्रशिक्षण का आधार एवं स्वरूप

संरचना

3.0 प्रस्तावना
3.1 उद्देश्य
3.2 अहिंसा प्रशिक्षण की आवश्यकता
3.3 अहिंसा का सैद्धान्तिक स्वरूप
3.4 अहिंसा के प्रयोग
3.4.1 अन्तर्जगत् में अहिंसा के प्रयोग
3.4.2 बाह्जगत् में अहिंसा के प्रयोग
3.5 मानवीय संम्बधों का परिष्कार
3.6 प्राणी जगत् के साथ संबंधों का परिष्कार
3.7 पदार्थ जगत् के साथ संबंधों की सीमाएं
3.8 क्या अहिंसा का प्रशिक्षण संभव है?
3.8.1 प्रशिक्षण की दार्शनिक पृष्ठभूमि
3.8.2 शारीरिक प्रशिक्षण के सूत्र
3.8.3 मानसिक प्रशिक्षण के सूत्र
3.8.4 भावनात्मक प्रशिक्षण के सूत्र
3.9 अहिंसा प्रशिक्षण के चार आयाम
3.9.1 हृदय परिवर्तन
3.9.1.1 सैद्धान्तिक प्रशिक्षण के सूत्र
3.9.1.2 प्रायोगिक प्रशिक्षण के अभ्यास सूत्र
3.9.1.3 स्वास्थ्य और मिताहार का प्रशिक्षण
3.9.2 दृष्टिकोण परिवर्तन
3.9.2.1 अनेकान्त परिचय
3.9.2.2 वर्तमान युग में अनेकान्त की आवश्यकता
3.9.3 जीवन शैली का परिवर्तन
3.9.3.1 व्यवहारिक अहिंसा या हिंसा निषेध
3.9.3.2 अनाक्रमण
3.9.3.3 विध्वंसात्मक प्रवृत्तियों में भाग न लेना
3.9.3.4 मानवीय एकता में विश्वास
3.9.3.5 सर्वधर्म सहिष्णुता
3.9.3.6 व्यवहार व व्यापार में प्रामाणिकता
3.9.3.7 आत्म संयम का विकास
3.9.3.8 मादक पदार्थों के सेवन का निषेध या व्यसन मुक्त जीवन
3.9.3.9 पर्यावरण चेतना का विकास
3.9.4 व्यवस्था परिवर्तन
3.9.4.1 आर्थिक व्यवस्था
3.9.4.2 सामाजिक व्यवस्था
3.9.4.3 राजनैतिक व्यवस्था
3.10 प्रश्नावली

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

3.0 प्रस्तावना

अंधकार था, है और रहेगा। इसे दूर करने के लिए मनुष्य ने दीया जलाया, आज भी जलाता है और भविष्य में जलाता रहेगा। अंधकार की सत्ता त्रैकालिक है तो प्रकाश का अस्तित्व भी त्रैकालिक है। ऐसा कभी नहीं होता, जब अंधकार और प्रकाश का कोई उपाय न हो। अंधकार जितना सघन होता है, प्रकाश की अपेक्षा उतनी ही अधिक होती है। अंधकार रहेगा ही— यह सोचकर मनुष्य कभी दीया जलाना बंद नहीं करता। अंधकार के विरुद्ध उसका संघर्ष तब तक चलता रहेगा जब तक उसे प्रकाश की आवश्यकता रहेगी।

अहिंसा थी, है और रहेगी। अहिंसा के लिए प्रयत्न हुआ है, हो रहा है और होता रहेगा। हिंसा और अहिंसा— दोनों की सत्ता त्रैकालिक है। हिंसा जितनी प्रबल होगी, अहिंसा के लिए उतना ही तीव्र प्रयत्न करना होगा। संसार से हिंसा कभी समाप्त नहीं होगी, यह सोचकर मनुष्य की अहिंसक चेतना ने कभी उच्छवास लेना बंद नहीं किया। हिंसा के मुकाबले में अहिंसा की शक्ति कम नहीं है। अपेक्षा है उस शक्ति को जगाने की। शक्ति का जागरण तभी संभव है जब उसका बोध हो, प्रशिक्षण हो और प्रयोग हो।

3.1 उद्देश्य

1. अहिंसा प्रशिक्षण की आवश्यकता को समझ सकेंगे।
2. प्रशिक्षण की दार्शनिक पृष्ठभूमि को जान सकेंगे।
3. हृदय परिवर्तन को जान सकेंगे।

3.2 अहिंसा प्रशिक्षण की आवश्यकता

हिंसा मनुष्य के संस्कारों में रहती है। निमित्तों का योग पाकर वह प्रकट होती है। आचारांग सूत्र में हिंसा के तीन कारण बताए गए हैं— प्रतिशोध, सुरक्षा और आशंका। कारण कुछ भी रहे हों, हिंसा का प्रशिक्षण नियमित रूप से चलता है। उसमें उत्तरोत्तर दक्षता बढ़ रही है। उसके लिए नए-नए साधन विकसित हो रहे हैं। आगे-से-आगे नई तकनीक खोजी जा रही है। अनेक प्रसंगों में उसका खुला प्रयोग भी हो रहा है। लगता है महावीर की इस वाणी को समर्थन मिल रहा है कि अत्थि सत्थं परेण परं— शस्त्र आगे से आगे तीक्ष्ण होता है, उसकी परम्परा चलती है।

अहिंसा के प्रयोग की बात तो दूर, उसके प्रशिक्षण की भी कोई व्यवस्था नहीं है। अहिंसा का उपदेश बहुत दिया जाता है, उसके गुणगान बहुत किए जाते हैं पर उसके प्रशिक्षण की बात नहीं की जाती है। ऐसी स्थिति में यह आशा कैसे की जा सकती है कि अहिंसा आएगी और वह जीवन-शैली से जुड़ेगी? बहुत से लोगों को तो यह विश्वास ही नहीं है कि अहिंसा कुछ कर सकती है या उसका प्रशिक्षण दिया जा सकता है। हमारी मान्यता यह है कि अहिंसा में असीम शक्ति है और उसका प्रशिक्षण दिया जा सकता है।

3.3 अहिंसा का सैद्धान्तिक स्वरूप

अहिंसा-प्रशिक्षण के स्वरूप का निर्धारण किया जाए तो उसके दो रूप हो सकते हैं— सैद्धान्तिक और प्रायोगिक। सैद्धान्तिक प्रशिक्षण में दार्शनिक सत्यों का अवबोध कराया जाता है। अहिंसा के दार्शनिक पहलू अनेक हैं। उन सबकी चर्चा में प्रशिक्षण की बात बिखर सकती है। इस दृष्टि में यहां कुछ ऐसे बिन्दुओं को उल्लिखित किया जा रहा है जिनको समझे बिना अहिंसा के प्रशिक्षण का कोई आधार भी नहीं बनता। दार्शनिक पृष्ठभूमि पर अहिंसा की मूल्यवत्ता प्रमाणित करने वाले पांच बिन्दु हैं—

1. आत्मा का अस्तित्व 2. आत्मा की स्वतंत्रता 3. आत्मा की समानता
4. जीवन की सापेक्षता 5. सह-अस्तित्व

आत्मा है। प्रत्येक आत्मा का सुख-दुःख अपना-अपना है। इस दृष्टि से आत्मा स्वतंत्र है। गणित की भाषा में आत्माएं अनन्त हैं। उनकी कर्मकृत अवस्थाएं भिन्न-भिन्न हैं पर स्वरूप की अपेक्षा से सब आत्माएं समान हैं। समानता का यह सिद्धान्त मनुष्य तक ही सीमित नहीं है। संसार में जितने प्राणी हैं उन सबकी आत्मा समान हैं। कोई भी व्यक्ति निरपेक्ष रहकर अपने

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अस्तित्व को नहीं बचा सकता। इसी कारण जीवन को सापेक्ष माना गया है। सापेक्षता का सिद्धान्त प्रकृति के प्रत्येक कण पर लागू होता है। कहीं पर वृक्ष का एक पत्ता भी टूटकर गिरता है तो उसका प्रभाव पूरी सृष्टि पर पड़ता है। ''मैं रहूंगा या वह रहेगा'', अहिंसा की परिधि में इस चिन्तन को स्थान नहीं मिल सकता। ''मैं भी रहूंगा, तुम भी रहोगे। यह भी रहेगा, वह भी रहेगा''— इस प्रकार सह-अस्तित्व की भाषा में सोचना अहिंसा का दर्शन है।

3.4 अहिंसा के प्रयोग

3.4.1 अन्तर्जगत् में अहिंसा के प्रयोग

अहिंसा के सैद्धान्तिक पक्ष को समझने के बाद उसके प्रायोगिक स्वरूप को समझना आवश्यक है। प्रायोगिक स्वरूप के दो बिन्दु हैं— अन्तर्जगत् और बाह्य जगत्। अन्तर्जगत् में प्रशिक्षण का महत्त्वपूर्ण तत्त्व है— संवेग-संतुलन। मनोविज्ञान की भाषा में मानसिक उथल-पुथल या उद्वेलन की अवस्था का नाम संवेग है। भय, क्रोध, जुगुप्सा, कामुकता, सुख, दुःख आदि संवेग प्रतिक्रियात्मक भावों के रूप में अपना प्रभाव दिखाते हैं।

सामान्य स्थिति में कोई भी व्यक्ति संवेगों के प्रभाव से मुक्त नहीं हो सकता पर इनका संतुलन न होने से अनेक प्रकार की समस्याएं पैदा हो जाती हैं। संवेगों को संतुलित करने की प्रक्रिया को यहां उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है। क्रोध एक संवेग है। इसे नियंत्रित करने के लिए इमोशनल एरिया— भाव-क्षेत्र पर ध्यान के प्रयोग करवाए जाते हैं। चैतन्य-केन्द्र प्रेक्षा और लेश्याध्यान के प्रयोग इसके लिए कार्यकारी हैं।

प्रमाद एक संवेग है। यह जागरुकता को कम करता है। इसको नियंत्रित करने के लिए चैतन्य-केन्द्र प्रेक्षा, लेश्याध्यान और दीर्घ-श्वास प्रेक्षा के प्रयोग अपेक्षित हैं।

3.4.2 बाह्यजगत् में प्रशिक्षण के तीन बिन्दु

बाह्यजगत् में अहिंसा के प्रायोगिक प्रशिक्षण की भूमिका बहुत विस्तृत है। मुख्य रूप में उसके तीन बिन्दु हो सकते हैं—
मानवीय संबंधों का परिष्कार या विकास।
प्राणी जगत् के साथ संबंधों का विस्तार।
पदार्थ जगत् के साथ संबंधों की सीमाएं।

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। वह समूह में रहता है। वहां वह अनेक प्रकार के संबंध जोड़ता है। संबंध जोड़ना कोई कठिन काम नहीं है। कठिन काम है उनका समुचित निर्वाह। कठिनाई का कारण है मनुष्य की स्वार्थपरायण मनोवृत्ति। स्वार्थ की आंख से देखने वाला और स्वार्थ की धरती पर चलने वाला परमार्थ की बात कैसे सोच सकता है? अहिंसा परमार्थ का दर्शन भी है। अहिंसा में विश्वास करने वाला व्यक्ति संबंधों की आंच पर स्वार्थ की रोटी नहीं सेक सकता। स्वार्थवाद या व्यक्तिवाद के कारण सम्बन्धों के संसार में जो जहर घुल रहा है, उससे बचने के लिए अहिंसा का प्रशिक्षण अत्यन्त आवश्यक है।

3.5 मानवीय संबंधों का परिष्कार

मनुष्य के दृष्टिकोण को दो रूपों में देखा जाता है—मानवीय और अमानवीय। एक मनुष्य का दूसरे मनुष्य के प्रति कैसा संबंध या व्यवहार होना चाहिए, नीतिसूत्रों द्वारा यह निर्धारित होता है। उसके अनुसार व्यवहार करने वाले व्यक्ति का दृष्टिकोण मानवीय कहलाता है। जो व्यक्ति दूसरे के हितों की उपेक्षा करता हो, उन्हें कुचल देता हो, किसी का शोषण करता हो या सताता हो, वह पाशवी या दानवी वृत्ति कहलाती है। इस वृत्ति को बदलने से ही मानवीय संबंधों का परिष्कार हो सकता है।

मानवीय संबंधों को कई इकाईयों में विभक्त किया जा सकता है। हम यहां मुख्य रूप से तीन इकाईयों की चर्चा कर रहे हैं— पारिवारिक संबंध, सामाजिक संबंध और व्यावसायिक संबंध। पिता-पुत्र, पति-पत्नी, भाई-बहन, सास-बहू, देवरानी-जेठानी, मां-बेटी आदि पारिवारिक संबंध हैं। इनमें मानवीय दृष्टिकोण का विकास हो तो किसी को मारने, पीटने, सताने या प्रताड़ित करने का प्रसंग उपस्थित नहीं हो सकता।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

सामाजिक संबंधों का दायरा बहुत विस्तृत होता है। पड़ौसी से लेकर दूर-दराज बसने वाले समाज के हर व्यक्ति के साथ किसी न किसी रूप में संबध रहता है। संबंधों की स्थापना में स्वार्थ की प्रेरणा न हो और स्वार्थ में बाधा पहुंचने पर संबंध तोड़ने की परिस्थिति पैदा न हो, यह अहिंसा की प्रेरणा है। जाति, रंग, लिंग, वर्गभेद आदि को आधार बनाकर मनुष्य-मनुष्य के बीच जो दूरियां बढ़ती जा रही हैं वे किसी न किसी रूप में हिंसा को बढ़ावा दे रही हैं। इन सब भेदों से ऊपर एक तत्त्व है, वह है मनुष्यता। ''यह भी मनुष्य है, मैं भी मनुष्य हूं। मैं इससे जिस प्रकार के व्यवहार की अपेक्षा रखता हूं, इसको भी मुझसे वैसी ही अपेक्षा है'' — चिन्तन के इस धरातल पर ही मानवीय संबंधों का विकास संभव है।

3.6 प्राणी-जगत् के साथ संबंधों का परिष्कार

मनुष्य अपने आपको संसार का सबसे श्रेष्ठ प्राणी समझता है। इसी कारण अन्य प्राणियों के प्रति उसका दृष्टिकोण बहुत उदार नहीं होता। वह अपने जीवन के लिए प्राणियों की हिंसा करता है। हिंसा के दो रूप हैं— अपरिहार्य और परिहार्य। उसके द्वारा की जा रही अपरिहार्य हिंसा भी हिंसा ही है। उसे अपरिहार्यता की दृष्टि से एक ओर किया जा सकता है किन्तु परिहार्य या अनावश्यक हिंसा प्राणी-जगत् के प्रति उसके अमानवीय दृष्टिकोण का परिणाम है।

प्राणी-जगत् के साथ मनुष्य के संबंध कैसे होने चाहिए— इस संदर्भ में मनुष्य को प्रशिक्षण दिया जाता तो परिहार्य या अनावश्यक हिंसा नहीं होती, प्राणियों के प्रति निर्दय व्यवहार नहीं होते और मानव समाज में विलासिता नहीं पनपती। क्रूर हिंसा-जनित प्रसाधन सामग्री और परिधानों का उपयोग वे ही लोग कर सकते हैं जो प्राणियों के साथ तादात्म्य का अनुभव नहीं करते। कुछ लोग मनोरंजन के लिए पशुओं को आपस में लड़ाते हैं। थोड़े से लोगों का क्षणिक मनोविनोद प्राणी-जगत् के प्रति क्रूरता का खुला प्रदर्शन है। अहिंसा का प्रशिक्षण मनुष्य को इस प्रकार की क्रूरता से विरत कर सकता है।

समस्त प्राणी-जगत् के प्रति उदार या मानवीय दृष्टिकोण रखने वाला व्यक्ति प्रकृति से भी अधिक छेड़छाड़ नहीं कर सकता। पर्यावरण विज्ञान के किसी भी क्षेत्र में हस्तक्षेप को उचित नहीं मानता। उसकी यह अवधारणा बहुत प्राचीन है। भगवान् महावीर ने ढाई हजार वर्ष पहले अहिंसा और संयम के जो सूत्र दिए, उनके अनुसार प्रकृति के एक कण को भी क्षतिग्रस्त नहीं किया जा सकता।

3.7 पदार्थ-जगत् के साथ संबंधों की सीमाएं

मनुष्य की मौलिक मनोवृत्ति है— अधिकार की भावना । इसी भावना से प्रेरित होकर वह परिग्रह या संग्रह करता है। परिग्रह की चेतना मनुष्य के अस्तित्व को समाप्ति की ओर अग्रसर करने वाली है। एरिक फॉम् ने एक पुस्तक लिखी है— ''टू हेव और टू बी'' अधिकार अथवा अस्तित्व। मनुष्य को इन दोनों में से एक का चुनाव करना है। उसे अपने अस्तित्व को बचाकर रखना है तो अधिकार की भावना का त्याग करना होगा। मनुष्य के सामने यह एक दोहरी समस्या है। एक ओर पदार्थ के बिना उसका काम नहीं चल सकता। दूसरी ओर ममत्व या अधिकार की भावना उसके अस्तित्व के लिए खतरा बन रही है। ऐसी स्थिति में प्रशिक्षण का एक महत्वपूर्ण बिन्दु है— पदार्थ के प्रति अमूर्च्छा या अनासक्ति का विकास। पदार्थ के प्रति दृष्टिकोण में बदलाव आते ही उसके संग्रह और उपभोग की सीमाएं अपने आप स्वीकृत हो जाती हैं।

अहिंसा के प्रशिक्षकों और प्रशिक्षुओं को भगवान् महावीर का उद्घोष ''अहिंसा सव्वभूयखेमंकरी'' प्रकाश स्तम्भ है। उन्होंने कहा— अहिंसा सब प्राणियों के लिए कल्याणकारी है। यह उद्घोष उस समय अधिक सार्थक और प्रासंगिक लगता है जब युद्ध की विनाशलीला से थके-हारे और डरे-सहमे लोग अहिंसा की शरण स्वीकार करते हैं, युद्ध-विराम की घोषणा करते हैं। यदि हिंसा या युद्ध में शरण बनने की क्षमता होती तो युद्ध-विराम की बात क्यों सोची जाती। अंतिम शरण युद्ध नहीं, युद्ध-विराम है। यह अंतिम शरण आदिम शरण बने, इसके लिए आवश्यक है युद्ध को विराम देने के स्थान पर युद्ध के प्रारम्भ को ही विराम मिले। कुछ लोग मानते हैं कि अहिंसा आदमी को कायर बनाती है, भयभीत बनाती है। यदि अहिंसा कायरता है तो अन्त में उसकी शरण क्यों ली जाती है ? क्या कायरता किसी की शरण बन सकती है। भगवान् महावीर ने भय और कायरता को हिंसा माना है। अहिंसा कायरों का नहीं, वीरों का हथियार है। शौर्यवती और वीर्यवती अहिंसा ही समूचे संसार को त्राण और शरण दे सकती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

3.8 क्या अहिंसा का प्रशिक्षण संभव है?

यह प्रश्न अस्वाभाविक नहीं है, अप्रासंगिक भी नहीं है। अहिंसा परिणाम है, निष्पत्ति है। प्रवृत्ति का प्रशिक्षण हो सकता है, परिणाम का प्रशिक्षण नहीं हो सकता। यह तर्क हिंसा के लिए भी प्रस्तुत किया जा सकता है। इसमें सच्चाई है। हिंसा भी एक परिणाम है। प्रवृत्ति को मिटाया जा सकता है। उसका रूपान्तरण किया जा सकता है। परिणाम को न मिटाया जा सकता है और न ही उसका रूपान्तरण किया जा सकता है।

मनुष्य में एक मौलिक मनोवृत्ति है, वह है अधिकार की भावना, परिग्रह अथवा संग्रह की मनोवृत्ति। यह हिंसा का उद्‌भव स्रोत है। परिग्रह की मनोवृत्ति का रूपान्तरण हो जाना ही अहिंसा का उपादान है। अपरिग्रह की चेतना को जगाने के उपक्रम का नाम है— अहिंसा का प्रशिक्षण और अहिंसा के प्रशिक्षण का अर्थ है— अपरिग्रह की चेतना को जगाने का प्रयत्न।

व्यक्तिगत स्वामित्व, सामूहिक स्वामित्व, राज्य का स्वामित्व, सहकारिता, केन्द्रित अर्थ व्यवस्था, विकेन्द्रित अर्थ व्यवस्था— इन शब्दों की मीमांसा किए बिना हम अहिंसा के प्रशिक्षण की बात सोच नहीं सकते। व्यक्तिगत स्वामित्व के प्रति बहुत आकर्षण है इसीलिए आर्थिक विकास के क्षेत्र में यह सर्वोत्तम प्रमाणित हुआ है। सामूहिक स्वामित्व और राज्य का स्वामित्व— दोनों आर्थिक विकास की दौड़ में पिछड़ गए हैं। यह इस दशक में घटित यूरोप और एशिया की घटनाओं से प्रमाणित हुआ है। सहकारिता की स्थिति भी लगभग यही है। इसका कारण स्पष्ट है— व्यक्तिगत स्वामित्व में अधिकार की भावना प्रबल होती है। सामूहिक स्वामित्व, राज्यगत स्वामित्व और सहकारिता में वह दुर्बल बन जाती है। निष्कर्ष यह है कि परिग्रह और हिंसा— दोनों में गठबंधन है। जहां अधिकार की भावना है वहां अर्थ-संग्रह के प्रति अधिक आकर्षण है। जहां अर्थ-संग्रह के प्रति अधिक आकर्षण है वहां हिंसा के प्रति अधिक आकर्षण है।

3.8.1 प्रशिक्षण की दार्शनिक पृष्ठभूमि

कुछ चिन्तकों की यह अवधारणा रही है कि अहिंसा स्वाभाविक है इसलिए उसका प्रशिक्षण नहीं दिया जा सकता। इस अवधारणा पर सापेक्ष दृष्टि से विचार करना होगा। अहिंसा का स्रोत स्वाभाविक है, हम इसे अस्वीकार न करें किन्तु इसके साथ इतना और जोड़ दें — प्रशिक्षण के द्वारा अहिंसा की आस्था उत्पन्न की जा सकती है। अहिंसा का स्वाभाविक स्रोत कुछ लोगों में हो सकता है किन्तु यह नैसर्गिक शक्ति सब लोगों में नहीं होती। अधिकांश व्यक्ति अभ्यास और प्रशिक्षण के द्वारा ही विकास की मंजिल तक पहुंच पाते हैं। प्रशिक्षण की दार्शनिक पृष्ठभूमि को इस रूप में देखा जा सकता है—

1. हिंसा के बीज प्रत्येक मनुष्य में हैं।
2. अहिंसा के बीज भी प्रत्येक मनुष्य में हैं।
3. हिंसा के निमित्त मिलते हैं तो उसके बीज प्रस्फुटित हो जाते हैं।
4. अहिंसा के निमित्त मिलते हैं तो उसके बीज प्रस्फुटित, अंकुरित हो जाते हैं।
5. प्रशिक्षण का उद्देश्य है— हिंसा के संस्कारों को प्रसुप्त कर अहिंसा के संस्कारों को जागृत करना।

अहिंसा का प्रशिक्षण कहां से प्रारम्भ करें? अहिंसा का प्रारम्भ बिन्दु है— अभय। ''भय मत करो'' इसे हजार बार पढ़ने वाला व्यक्ति भी भयमुक्त नहीं होगा यदि उसका शरीर के प्रति मोह है, धन और पदार्थ के प्रति मूर्च्छा है। भय का कारक तत्त्व भीतर रहे और बाहर से अभय का पाठ पढ़े तो लक्ष्य पूर्ण नहीं होता। भय के संवेग का परिष्कार कैसे हो? भय के उद्दीपन से कैसे बचा जाए? इन दोनों का सम्यक् बोध और प्रयोग ही अभय का प्रशिक्षण हो सकता है। इस अवस्था में ही अभय अहिंसा के प्रशिक्षण का प्रथम बिन्दु बन सकता है।

अधिकार की भावना, संग्रह और भय— ये सब एक ही परिवार के सदस्य हैं। इनसे मुक्ति पाने की बात सहज संभव नहीं है। इनका परिष्कार करना संभव है। उस परिष्कार में ही अहिंसा का बीज छिपा रहता है। परिष्कार के साधनों की खोज एक जटिल प्रश्न है। चूल्हे पर चढ़ा हुआ पानी गर्म हो जाता है। नीचे उतरा और फिर ठण्डा हो जाता है। परिष्कार की ज्योति प्रज्वलित रहे, वह बुझे नहीं। यह कार्य सरल तो नहीं है किन्तु साथ ही साथ विश्वास करना होगा, यह असंभव भी नहीं है।

हिंसा उपजती है भावतंत्र में। फिर वह विचार में उतरती है और फिर आचरण में। अतः अहिंसा के प्रशिक्षण का पहला साधन-सूत्र है भाव-विशुद्धि। विधायक भाव हो, निषेधात्मक भाव न हो। इसके लिए शरीर और मन को प्रशिक्षित करना आवश्यक है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

3.8.2 शारीरिक प्रशिक्षण के सूत्र

शारीरिक प्रशिक्षण के सूत्र हैं— आसन और प्राणायाम। पद्मासन, शशांकासन, योगमुद्रा, वज्रासन, सर्वांगासन, मत्स्यासन, गोदोहिकासन आदि। आसन नाड़ीतंत्र और ग्रन्थितंत्र को प्रभावित करते हैं। इनके द्वारा हिंसा के शारीरिक उपादान क्षीण होते हैं। अनुलोम-विलोम, चन्द्रभेदी, नाड़ी-शोधन, उज्जाई और शीतली आदि प्राणायाम शरीर में उपस्थित हिंसा के बीजाणुओं का विरेचन करते हैं।

3.8.3 मानसिक प्रशिक्षण का सूत्र

मानसिक प्रशिक्षण का सूत्र है— ध्यान। कायोत्सर्ग, दीर्घश्वास प्रेक्षा, समवृत्तिश्वास प्रेक्षा आदि ध्यान के प्रयोग मानसिक एकाग्रता के विकास में सहयोगी बनते हैं। चंचलता जितनी कम उतनी ही हिंसा कम होती है। चंचलता जितनी अधिक होगी हिंसा उतनी ही अधिक होगी।

3.8.4 भावात्मक प्रशिक्षण के सूत्र

शारीरिक और मानसिक प्रशिक्षण से अधिक आवश्यक है भावात्मक प्रशिक्षण। उसके साधन-सूत्र हैं— चैतन्य केन्द्र का ध्यान और आभामण्डलीय लेश्या ध्यान।

अनुप्रेक्षा के प्रयोग शारीरिक, मानसिक और भावात्मक— तीनों प्रशिक्षण पदों के लिए उपयोगी हैं।

अहिंसा के प्रशिक्षण की पद्धति व्यक्तिगत है। वास्तव में अहिंसा का प्रशिक्षण व्यक्ति के स्तर पर ही होता है। समाज के स्तर पर उसका प्रयोग होता है। यह कहने में कोई कठिनाई नहीं होगी कि अहिंसा के प्रशिक्षण की आधारभूमि है— व्यक्ति और प्रयोगभूमि है— समाज। हिंसा के लिए भी यही कहा जा सकता है— हिंसा की आधारभूमि है— व्यक्ति और प्रयोग भूमि है— समाज। अहिंसक समाज रचना का महत्वपूर्ण घटक है— व्यक्ति-रचना, इसलिए अहिंसक व्यक्ति-रचना प्रशिक्षण का पहला चरण होगा।

3.9 अहिंसा प्रशिक्षण के चार आयाम

आचार्य महाप्रज्ञ जो अहिंसा प्रशिक्षण की इस पद्धति के जनक हैं ने अहिंसा प्रशिक्षण की एक व्यावहारिक कार्यविधि के विकास की अवधारणा पर बल दिया। जहाँ कुछ विद्वान् मानस-परिवर्तन, संरचनात्मक परिवर्तन, व्यक्तिवादी प्रशिक्षण एवं सामूहिक प्रशिक्षण को एकल रूप में रेखांकित करते हैं, वहीं इन की अवधारणा, एक समेकित प्रारूप के प्रस्तुतीकरण पर बल देती है। इनके द्वारा विकसित अहिंसा प्रशिक्षण की चतुरायामी अवधारणा मात्र व्यक्ति या मात्र समाज तक नहीं पहुंचती है पर दोनों को एक साथ समाहित करती है। समग्रता के इन चार आयामों में हृदय-परिवर्तन, दृष्टिकोण परिवर्तन, जीवन-शैली परिवर्तन एवं तद्नुरूप संरचनात्मक परिवर्तन (व्यवस्था परिवर्तन) सम्मिलित हैं।

3.9.1 हृदय परिवर्तन

अहिंसा प्रशिक्षण का प्रथम आयाम है— हृदय परिवर्तन। हृदय-परिवर्तन का अर्थ है भाव-परिवर्तन। भावों का उद्गम स्थल है– मस्तिष्क का एक भाग, लिम्बिक संस्थान। अतः इसे मस्तिष्कीय प्रशिक्षिण भी कहा गया है। हृदय परिवर्तन का पहला सूत्र है–निषेधात्मक भावों के परिवर्तन का प्रशिक्षण। निषेधात्मक भावों का उद्दीपन हमारे शारीरिक अस्वास्थ्य के कारण भी होता है। अतः हृदय-परिवर्तन का दूसरा सूत्र है— शारीरिक स्वास्थ्य एवं मिताहार का प्रशिक्षण। निषेधात्मक भावों (संवेगों) के परिवर्तन के लिए निम्न निर्दिष्ट सिद्धान्त-सूत्रों का प्रशिक्षण आवश्यक है :—

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

हिंसा के हेतु	परिणाम
1. लोभ	अधिकार की मनोवृत्ति
2. भय	शस्त्र निर्माण और शस्त्र प्रयोग
3. वैर-विरोध	प्रतिशोध की मनोवृत्ति
4. क्रोध	कलहपूर्ण सामुदायिक जीवन
5. अहंकार	घृणा, जातिभेद के कारण छूआछूत
6. क्रूरता	शोषण, हत्या
7. असहिष्णुता	साम्प्रदायिक झगड़ा

ये संवेग (निषेधात्मक भाव) व्यक्ति को हिंसक बनाते हैं। हृदय-परिवर्तन का तात्पर्य है संवेगों का परिष्कार करना, इनके स्थान पर नए संस्कार-बीजों का वपन करना।

3.9.1.1 सैद्धान्तिक प्रशिक्षण के सूत्र

1. लोभ का अनुदय	शरीर और पदार्थ के प्रति अमूर्च्छा भाव का प्रशिक्षण।
2. भय का अनुदय	अभय का प्रशिक्षण (आत्मौपम्य भाव का प्रशिक्षण) अहिंसक प्रतिरोध का प्रशिक्षण, अन्याय के प्रति असहयोग का प्रशिक्षण
3. वैर-विरोध का अनुदय	मैत्री का प्रशिक्षण। प्रतिशोधात्मक मनोवृत्ति से बचने का प्रशिक्षण।
4. क्रोध का अनुदय	क्षमा का प्रशिक्षण।
5. अहंकार का अनुदय	विनम्रता का प्रशिक्षण।
6. क्रूरता का अनुदय	करुणा का प्रशिक्षण।
7. असहिष्णुता का अनुदय	साम्प्रदायिक सद्भाव का प्रशिक्षण, भिन्न-भिन्न विचारों को सहने का प्रशिक्षण।

आधुनिक मनोविज्ञान (शरीर क्रिया मनोविज्ञान) के अनुसार आचार और व्यवहार हमारे भावों (संवेगों) द्वारा नियमित होते हैं। हमारे भावों का नियमन रसायनों द्वारा होता है। ये रसायन अन्तःस्रावी ग्रन्थि-तन्त्र द्वारा स्रावित होते हैं। उनका संचालन लिम्बिक-संस्थान (भाव-संस्थान) द्वारा होता है। प्रेक्षाध्यान, अनुप्रेक्षा के प्रयोगों द्वारा इन रसायनों को प्रभावित कर संतुलित किया जा सकता है। इससे भावधारा, आचरण और व्यवहार में परिवर्तन घटित होता है।

अहिंसा के विकास के लिए निम्न निर्दिष्ट अनुप्रेक्षाओं का अभ्यास आवश्यक है—

3.9.1.2 प्रायोगिक प्रशिक्षण के अभ्यास सूत्र

1. लोभ का अनुदय	अनासक्ति की अनुप्रेक्षा
2. भय का अनुदय	अभय की अनुप्रेक्षा
3. वैर-विरोध का अनुदय	मैत्री की अनुप्रेक्षा
4. क्रोध का अनुदय	शांति की अनुप्रेक्षा
5. अहंकार का अनुदय	मृदुता की अनुप्रेक्षा
6. क्रूरता का अनुदय	करुणा की अनुप्रेक्षा
7. असहिष्णुता का अनुदय	सहिष्णुता की अनुप्रेक्षा

3.9.1.3 स्वास्थ्य और मिताहार का प्रशिक्षण

हृदय-परिवर्तन का दूसरा सूत्र है— स्वास्थ्य और मिताहार का प्रशिक्षण। शारीरिक स्वास्थ्य और अहिंसा में भी आंतरिक

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

संबंध है। शारीरिक स्वास्थ्य के अभाव में हिंसा का भाव उपजता है। आत्महत्या का एक हेतु है रक्त में शर्करा की कमी होना। यकृत (लीवर) और तिल्ली (स्प्लीन) की विकृति हिंसा के भाव को जन्म देती है। हिंसा और अहिंसा से संबंध रखने वाले आहार-शास्त्र और स्वास्थ्य-शास्त्र का प्रशिक्षण अहिंसा के प्रशिक्षण का एक महत्वपूर्ण अंग है।

आज आहार के विषय में नई-नई खोजें सामने आ रही हैं। उनसे अनेक भ्रान्तियाँ टूटी हैं और टूटती जा रही हैं। आज माना जाने लगा है कि अधिक प्रोटीन खाना हानिकारक है। अण्डे और मांस का सेवन करना बीमारी को निमन्त्रण देना है। यह भोजन बीमारियों को ही नहीं बढ़ाता, भावात्मक स्थिति को भी बिगाड़ देता है। भावात्मक स्थितियों की गड़बड़ी में दो मुख्य तत्व हैं— मांसाहार और मादक वस्तुओं का सेवन।

वर्तमान में व्यक्ति में जो भावात्मक असंतुलन है उसका एक मुख्य घटक आहार भी है। व्यक्ति के आहार में वे पदार्थ अधिक हैं जो भावात्मक असंतुलन पैदा करते हैं। पहले कहा जाता था— जैसा अन्न, वैसा मन। आज कहा जाता है— जैसा आहार, वैसा न्यूरोट्रान्समीटर, जैसा न्यूरोट्रान्समीटर वैसा व्यवहार आदमी जो भोजन करता है, उससे शरीर में अनेक प्रकार के रसायन बनते हैं। भोजन के द्वारा मस्तिष्क में न्यूरोट्रान्समीटर बनते हैं जो तन्त्रिका-तन्त्र के संप्रेषक होते हैं। इनके द्वारा मस्तिष्क शरीर का संचालन करता है। वैज्ञानिकों ने अनेक न्यूरोट्रान्समीटरों का पता लगा लिया है जो भोजन से बनते हैं। जिनसे अनेक प्रकार के व्यवहार घटित होते हैं।

भोजन के द्वारा एमिनो एसिड आदि अनेक प्रकार के एसिड बनते हैं। यूरिक एसिड जहर है। वह भी भोजन से बनता है। हमारी प्रवृत्ति और भोजन के द्वारा अनेक विषैले तत्त्व शरीर में बनते हैं। अतः इस बात को जानना होगा कि किस प्रकार का भोजन करने से क्या बनता है? जिस भोजन से विष अधिक बनता है, वैसा भोजन करने पर मानसिक समस्याएँ पैदा होती हैं। भावात्मक उलझनें बढ़ती हैं। इन विष-द्रव्यों को शरीर में जमा न होने देना, अहिंसा और आहार का महत्वपूर्ण सूत्र है। अतः भाव परिवर्तन के लिए मिताहार और स्वास्थ्य का सैद्धान्तिक प्रशिक्षण आवश्यक है।

3.9.2 दृष्टिकोण परिवर्तन

अहिंसा प्रशिक्षण का द्वितीय आयाम दृष्टिकोण परिवर्तन है। गलत दृष्टिकोण के कारण मिथ्या धारणाएं, निरपेक्ष चिन्तन एवं एकांगी आग्रह पनपते हैं। मिथ्या धारणाएं, निरपेक्ष चिन्तन और एकांगी आग्रह हिंसा के मुख्य कारणों में हैं।

मनुष्य की अनेक मिथ्या धारणाएं बन गई हैं। यह मान लिया गया है कि मनुष्य से श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है किन्तु यह जिस दृष्टि से कहा गया उस दृष्टि से ग्रहण नहीं किया गया। विकास की दृष्टि से यह कहा जा सकता है— प्राणी जगत् में मनुष्य सर्वश्रेष्ठ है। इसका उपयोग इस रूप में कर लिया गया–मनुष्य सृष्टि का स्वामी है, जितने पदार्थ हैं, सब मनुष्य के लिए हैं क्योंकि वह सर्वश्रेष्ठ है।मनुष्य भोक्ता है शेष सब भोग्य हैं। नियंता, कर्ता और भोक्ता, तीनों ही मनुष्य बन गया। उसका पदार्थ एवं प्राणी-जगत् के प्रति दृष्टिकोण गलत हो गया। जितने प्राणी हैं, उन सब पर मनुष्य का अधिकार है। वह उनका दोहन कर सकता है। उनका आरोपण तथा आहारण कर सकता है। प्रसाधन के लिए जीवित प्राणियों के अवयवों एवं चमड़े का उपयोग कर सकता है — इस सारी क्रूरता का मूल-स्रोत यही अवधारणा है कि मनुष्य सर्वश्रेष्ठ है। इस धारणा ने मनुष्य को क्रूर एवं हत्यारा बनाया है।

बहुत से लोग निरपेक्ष चिन्तन करते हैं जबकि सापेक्ष चिन्तन सामाजिक संबंधों की भूमिका में एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। निरपेक्ष चिन्तन का स्वरूप है— मैंने पीया, मेरे बैल ने पीया, अब चाहे कुआ ढह पड़े। सापेक्ष चिन्तन का स्वरूप है— मैंने रोटी खाई है, मेरा पड़ोसी भूखा है तो इसका परिणाम मेरे लिए अच्छा नहीं होगा। वह चोर, डाकू या लुटेरा अवश्य बनेगा और मुझ पर आक्रमण करेगा। यह सापेक्ष चिन्तन होता है तो फिर स्वार्थ की सीमा निश्चित हो जाती है। यह नहीं हो सकता कि समाज के बीस प्रतिशत आदमी गुलछर्रे उड़ायें और अस्सी प्रतिशत आदमी भूखे मरते रहें। ऐसा कब तक चलेगा? इस स्थिति में प्रतिक्रियात्मक हिंसा अनिवार्य हो जाएगी।

मानवीय संबंधों में जो कटुता दिखाई दे रही है उसका हेतु निरपेक्ष दृष्टिकोण है। संकीर्ण राष्ट्रवाद और युद्ध भी निरपेक्ष दृष्टिकोण के परिणाम हैं। सापेक्षता के आधार पर संबंध-विज्ञान को व्यापक आयाम दिया जा सकता है। मनुष्य, पदार्थ, वृत्ति, विचार और शरीर के साथ संबंध का विवेक करना अहिंसा के विकास के लिए बहुत आवश्यक है। मनुष्यों के प्रति क्रूरतापूर्ण, पदार्थ के प्रति आसक्तिपूर्ण, विचारों के साथ आग्रहपूर्ण, वृत्तियों के साथ असंयत, शरीर के साथ मूर्च्छापूर्ण संबंध हैं तो हिंसा अवश्यंभावी है। सत्य की खोज का मार्ग है अनाग्रह। अनाग्रही मनुष्य दो भिन्न विचारों में समन्वय साध सकता है।

Jain Vishva Bharati Institute/Deemed University, Ladnun

हिंसा को केवल शस्त्रीकरण और युद्ध तक सीमित नहीं किया जा सकता। पारिवारिक कलह, मानवीय संबंधों में कटुता, जातीय संघर्ष, साम्प्रदायिक संघर्ष, क्षेत्रीय संघर्ष, सहानवस्थान या तुम या हम की मनोवृत्ति— ये सब हिंसा के प्रारम्भिक रूप हैं और ये ही मानव जाति को शस्त्रीकरण और युद्ध की दिशा में ले जाते हैं। निःशस्त्रीकरण और युद्धवर्जन के सिद्धान्त बहुत अच्छे हैं किन्तु पहले हिंसा के प्रारम्भिक बिन्दु पर ध्यान केन्द्रित करना आवश्यक है। मिथ्या अवधारणाएं, निरपेक्ष चिन्तन और एकांगी आग्रह समाज को क्रूरता की रेखा तक ले जाते हैं। हिंसा के द्वारा खुल जाते हैं। इनको कम करने के लिए अनेकान्त का प्रशिक्षण आवश्यक है।

3.9.2.1 अनेकान्त परिचय

पूर्ण सत्य जाना जा सकता है, पर कहा नहीं जा सकता क्योंकि शब्दों में इतनी सामर्थ्य नहीं है कि वह एक साथ एक समय में पूर्ण सत्य को कह सकें। इसलिए अपूर्ण साधन से पूर्णता को जानने के सभी प्रयास आंशिक सत्य से आगे नहीं बढ़ पाते और जब आंशिक सत्य को पूर्ण सत्य मान लिया जाता है तब वैचारिक संघर्ष जन्म ले लेते हैं।

वस्तुतः हमारी ऐन्द्रिक क्षमता, तर्क-बुद्धि, विचार-क्षमता, वाणी और भाषा इतनी अपूर्ण है कि वे सम्पूर्ण सत्य की अभिव्यक्ति में सक्षम नहीं हैं। वे केवल सत्य के एक अंश को ही कह सकती हैं। इतना ही नहीं वस्तु सत्य में परस्पर विरोधी गुण भी एक साथ रहते हैं। ऐसी स्थिति में दो भिन्न दृष्टियों में परस्पर विरोधी तथ्य भी एक साथ सत्य हो सकते हैं। जो वस्तु एक है वह अनेक भी है। जो वस्तु सत् है वह असत् भी है। वस्तु नित्य भी है और अनित्य भी।

अनेकान्त का एक सूत्र है-सहप्रतिपक्ष। प्रत्येक पदार्थ विरोधी युगलों का संकुल है। इसलिए अनेकान्त का मूल आधार है—विरोधी के अस्तित्व की स्वीकृति, प्रतिपक्ष की स्वीकृति। अनेकान्त एकान्तिक या आग्रह-बुद्धि का निरसन कर अनाग्रही या अनेकांतिक-दृष्टि को प्रकट करता है। एकान्त मिथ्यादृष्टि के कारण सत्य के एक अंश को हम पूर्ण सत्य मान लेते हैं, जिससे एक मत का दूसरे मत के साथ विरोध हो जाता है। अनेकान्त इन विरोधों का परिहार करके उनका समन्वय करता है।

3.9.2.2 वर्तमान युग में अनेकान्त की आवश्यकता

वर्तमान युग सापेक्षवाद, समन्वय, सह-अस्तित्व आदि से परिचित है पर इनके पीछे जो सिद्धान्त है उसकी जानकारी सामान्यतया लोगों को नहीं है। इन विचारों के पीछे जो सिद्धान्त है वह है—अनेकान्त। एक मनुष्य क्या सोच रहा है, क्यों, कहां और किस अवस्था में सोच रहा है—इसका निर्णय किये बिना दूसरे के चिन्तन और प्रतिपादन के साथ न्याय नहीं किया जा सकता।

वस्तु विराट् व अनन्तधर्मात्मक है। शब्दों की अपनी सीमा है। एक शब्द एक समय में एक ही सत्य को बता सकता है। इसलिए इस व्यक्त सत्य के अलावा अव्यक्त सत्य जिसे कहा नहीं गया है, उसका भी अस्तित्व है। स्यात् शब्द यह बतलाता है कि सत्यांश अभिव्यक्ति को पूर्ण मत समझो। इस सापेक्ष दृष्टि के आधार पर ही हमारे ज्ञान में विरोध की छाया मिट सकती है।

अहिंसा का विकास भी अनेकान्तवादी दृष्टि के आधार पर ही हुआ है। विचारों की विषमता हिंसा का कारण है। अनेकांत का कहना है—सभी विचार परस्पर सापेक्ष हैं, इसलिए उनमें समन्वय संभव है।

अनेकान्त का प्रशिक्षण मिथ्याधारणा, निरपेक्ष चिन्तन और आग्रह से मुक्त होने का प्रयोग है। परिवर्तन केवल जानने से नहीं होता। इसके लिए दीर्घकालिक अभ्यास अपेक्षित है। सर्वांगीण दृष्टिकोण को विकसित करने के लिए निम्न निर्दिष्ट अनेकान्त के सिद्धान्त और प्रायोगिक अभ्यास-अनुप्रेक्षाओं का प्रशिक्षण आवश्यक है—

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

सिद्धान्त	प्रयोग
1. सप्रतिपक्ष	सामंजस्य की अनुप्रेक्षा
2. सह-अस्तित्व	सह-अस्तित्व की अनुप्रेक्षा
3. स्वतन्त्रता	स्वतन्त्रता की अनुप्रेक्षा
4. सापेक्षता	सापेक्षता की अनुप्रेक्षा
5. समन्वय	समन्वय की अनुप्रेक्षा

इस प्रकार से हुए दृष्टिकोण परिवर्तन से अहिंसा की भावना और व्यवहार बलवती होता है।

3.9.3 जीवन शैली परिवर्तन

अहिंसा प्रशिक्षण का तीसरा आयाम है— जीवन शैली का परिवर्तन। जीवन-शैली परिवर्तन का एक महत्त्वपूर्ण सूत्र है— सुविधावादी जीवन शैली में परिवर्तन। हम प्रदूषण से चिन्तित हैं, त्रस्त हैं। सुविधावादी जीवन शैली प्रदूषण पैदा कर रही है। उस पर हमारा ध्यान ही नहीं जा रहा है। समाज सुविधा छोड़ नहीं सकता किन्तु वह असीम न हो–यह विवेक आवश्यक है। यदि सुविधाओं का विस्तार निरन्तर जारी रहे, आडम्बर और विलासपूर्ण जीवन चलता रहे तो अहिंसा का स्वप्न यथार्थ में परिणत नहीं होगा। आश्चर्य है कि अहिंसा की बात करने वाले भी इच्छा-संयम पर ध्यान नहीं दे रहे हैं। इच्छाओं की वृद्धि से हिंसा को पल्लवन मिला है। जब तक इच्छा का संयम नहीं होगा, जीवन शैली में संयम को प्रतिष्ठा नहीं मिलेगी तब तक अहिंसा की बात का सार्थक परिणाम नहीं आ सकेगा।

अणुव्रत का यह उद्घोष है— संयमः खलु जीवनम्— संयम ही जीवन है। संयम रखेंगे तो जीवन चलेगा। यदि असंयम बढ़ता गया तो एक आदमी की ही नहीं, पूरी सृष्टि की हिंसा का प्रसंग आ सकता है।

जीवन शैली का अनिवार्य अंग होना चाहिए — श्रम की प्रतिष्ठा। आज श्रम के प्रति थोड़ी हीन भावना पैदा हो गई है। इसका कारण है–आदमी आराम चाहता है। मैं आराम करूं किन्तु दूसरों की मेहनत का फल मुझे मिल जाए। एक मिथ्या धारणा बन गई— श्रम करने वाला छोटा होता है और श्रम न करने वाला बड़ा होता है, इस दृष्टिकोण ने श्रम की महत्ता को भुला दिया। हम इस सच्चाई को भुला रहे हैं— दुनिया में जितने भी महान् आदमी हुए हैं, ये प्रायः श्रमिक हुए हैं। परिश्रमी हुए हैं। श्रम निष्ठा और स्वावलम्बन का सिद्धान्त प्रत्येक व्यक्ति की जीवन शैली का मुख्य अंग होना चाहिए।

मनुष्य में लालच है, बहुत पाने की इच्छा है। वह श्रम करना चाहता है, धन अधिक पाना चाहता है। इस मनोवृत्ति से अपराध को बढ़ावा मिलता है। अपराध यानी बिना श्रम किये पैसा पाने की मनोवृत्ति। इस मनोवृत्ति ने अपराध को एक नया आयाम दिया है।

अपराध और हिंसा को बढ़ाने में एक बड़ा निमित्त है— मादक द्रव्यों का सेवन। अहिंसा के विकास के लिए आवश्यक है— जीवन शैली व्यसन से मुक्त हो।

जीवन शैली परिवर्तन के लिए संयम, स्वावलम्बन और व्यसन-मुक्त जीवन का सैद्धान्तिक प्रशिक्षण अपेक्षित है। अणुव्रत आचार संहिता की स्वीकृति जीवन शैली परिवर्तन का बहुत बड़ा आलम्बन है। हम जीवन शैली के इन सूत्रों को विस्तार से देखेंगे।

3.9.3.1 व्यवहारिक अहिंसा या हिंसा निषेध

आधुनिक विचारधारा जीवन के लिए संघर्ष को आधार मानती है तथा दूसरी तरफ विकास के लिए इच्छा के आधिक्य को आवश्यक समझती है। अर्थात् संघर्ष और इच्छा विस्तार आधुनिक जीवन शैली के विशिष्ट अंग हैं। प्राचीन परम्परा भी हिंसा और परिग्रह को जीवन का आधार मानती रही है।

अहिंसक जीवनशैली जीवन का आधार संघर्ष को नहीं अपितु अहिंसा, प्रेम, करुणा और मैत्री को मानती है। यद्यपि जीवन के लिए हिंसा अनिवार्य है पर हिंसा की स्वीकृति में अंतर है। हिंसा जीवन की अनिवार्यता हो सकती है, पर जीवन का आधार हिंसा नहीं हो सकती। शारीरिक स्तर पर हिंसा अनिवार्य है पर मानसिक स्तर पर हिंसा का समर्थन नहीं किया जा सकता।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

हिंसा के चार प्रकार जैनागमों में स्वीकृत किये गये हैं-आरम्भजा, विरोधजा, संकल्पजा और उद्योगी। कृषिकार्य आदि से सम्बंधित हिंसा को आरम्भजा हिंसा कहते हैं। जीवन यापन की दृष्टि से यह हिंसा अनिवार्य है। अस्तित्व सुरक्षा के लिए, आक्रमण से सुरक्षा के लिए की गई हिंसा विरोधजा हिंसा है। इसे भी कुछ सीमा तक स्वीकृत किया जा सकता है। आक्रामक मनोभाव या बिना प्रयोजन की गई हिंसा संकल्पजा हिंसा है, इसे कभी भी स्वीकृत नहीं किया जा सकता। व्यापार आदि से संबंधित हिंसा उद्योगी हिंसा है।

अहिंसक जीवन शैली हिंसा के अल्पीकरण का सूत्र देती है जो सामाजिक शांति, जीवन विकास व अस्तित्व की स्थिरता के लिए आवश्यक है। हिंसा की उन्मुक्तता महाहिंसा की ओर प्रयाण है और इससे संस्कृति को खतरे पैदा होते रहे हैं। संस्कृति के विकास एवं संगठित हिंसा के प्रतिरोध के रूप में ही हिंसा के अल्पीकरण का स्वरूप मुखर हुआ है। कुछ राजनीतिक पद्धतियां, धार्मिक मंच आदि विचारों के स्तर पर हिंसा की अनिवार्यता को मानते हैं तथा उनके अनुसार अपना विचार या धर्म बलात् किसी पर थोपा जा सकता है। अहिंसक जीवनशैली स्वस्थ समाज रचना के लिए इसे अनावश्यक व अवांछनीय मानता है। इसलिए अहिंसक जीवनशैली मूलत: हिंसा के अल्पीकरण का सिद्धान्त देती है जो साधन शुद्धि के सिद्धान्त का ही विकास है।

3.9.3.2 अनाक्रमण

आक्रमण करना एक मनोवृत्ति है। इस मनोवृत्ति का उद्भव भय के कारण होता है तथा क्रोध, लोभ, क्षोभ आदि आक्रमण के हेतु बनते हैं। सुख-सुविधाओं का विस्तार, भविष्य की असुरक्षा, लिप्सा आदि व्यक्ति को आक्रामक बना देते हैं।

व्यक्ति के आक्रान्ता बनने के चार कारण स्थानांग सूत्र में दिये गये हैं—

1. अनर्जित सुखों के अर्जन के लिए।
2. अर्जित सुखों के संरक्षण के लिए।
3. अनर्जित भोगों के अर्जन के लिए।
4. अर्जित भोगों के संरक्षण के लिए।

इनमें जो व्यक्ति सहायक बनते हैं वे आत्मीय बन जाते हैं और दूसरे विरोधी। स्वत्व और परत्व की यह मनोवृत्ति ही व्यक्ति को आक्रान्ता बनाती है।

प्रत्याक्रमण न करना आदर्श है, पर व्यवहार में यह भी ठीक है कि व्यक्ति या राष्ट्र यह संकल्प करे कि मैं किसी पर आक्रमण नहीं करूंगा और न आक्रामक नीति का समर्थन ही करूंगा। ऐसी नीति असमानता व घृणा की जगह समानता, सहयोग व शांति को बढ़ाती है।

3.9.3.3 विध्वंसात्मक प्रवृत्तियों में भाग न लेना

तोड़-फोड़ व आतंकवाद वर्तमान समय की ज्वलंत समस्याएँ हैं। व्यक्ति अल्पकालीन लाभ के लिए, अपनी बातों को मनवाने के लिए, सरकार पर दबाव डालने के लिए विध्वंसात्मक प्रवृत्तियों में संलग्न हो जाता है, जिससे राष्ट्रीय सम्पत्ति की हानि होती है, संसाधनों का सही उपयोग नहीं हो पाता तथा राष्ट्रीय विकास अवरुद्ध हो जाता है। आज हिंसक आन्दोलनों से कई राष्ट्र समस्या ग्रस्त हैं। ऐसी प्रवृत्तियों में भाग लेना समाज या राष्ट्र के लिए तो घातक है ही, व्यक्ति स्वयं के लिए भी घातक है।

3.9.3.4 मानवीय एकता में विश्वास

मानवीय एकता में विश्वास का अर्थ है मानवीय अस्तित्व की समानता का विश्वास। अस्तित्व की अपेक्षा से समूचा विश्व एक है और व्यक्ति की अपेक्षा से प्रत्येक पदार्थ स्वतंत्र। अनेकता में एकता का चिंतन ही मानवीय एकता में विश्वास है। आज विडम्बना है कि मानव को धर्म, वर्ण, जाति, राष्ट्र आदि के आधार पर बांटा जा रहा है। जहां बंटवारा है वहां एकता खण्डित हो जाती है और स्वार्थ प्रमुख हो जाते हैं तथा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अनेक समस्याएं पैदा हो जाती हैं, न केवल राष्ट्रीय स्तर पर बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी। इसलिए केवल मनुष्य को ही नहीं अपितु सभी प्राणियों को समान समझना आचार शास्त्र का नियम है।

आत्मतुला की भूमिका पर विश्व के सब प्राणियों की एकता प्रतिपादित होती है। सब मुझमें हैं, मैं सबमें हूं— इस विराट्ता में ही मानवीय एकता प्रतिबिम्बित हो सकती है।

जाति, वर्ण, वर्ग, धर्म आदि कृत्रिम भेद हैं। इन्हें मुख्य मानकर प्रेम, सद्भाव, विश्वास व न्याय की हत्या मानवीय मूल्यों की हत्या है। भेद की कल्पना प्रकृतिगत नहीं, मानव द्वारा निर्मित है। इन आरोपित भेदों को मानकर किसी को हीन मानना स्वयं की हीनता है। केवल अपने ही दृष्टिकोण को महत्त्व देना, स्वार्थसिद्धि के लिए देश की भी परवाह न करना सत्य से मुंह मोड़ना है। अहिंसक जीवनशैली इन भेदों को दूरकर मानवीय एकता में विश्वास की बात करती है। जब एक व्यक्ति परिवार में भिन्न-भिन्न वर्ण, रूचि, स्वभाव वाले लोगों के साथ रह सकता है तो वह अन्य लोगों के साथ क्यों नहीं रह सकता।

बोध प्रश्न :

1. मनुष्य के दृष्टिकोण को कितने रूपों में देखा जाता है?
2. हिंसा कहां उपजती है?
3. अहिंसा प्रशिक्षण के कौन कौन-से आयाम हैं?

3.9.3.5 सर्वधर्म सहिष्णुता

धर्म जीवन का शाश्वत मूल्य है। सत्य साक्षात्कार या आत्म साक्षात्कार की प्रक्रिया का नाम धर्म है। इस दृष्टि से धर्म एक अखण्ड चेतना है, इसे विभक्त करना कठिन है। सहिष्णुता का प्रश्न अनेकत्व के प्रश्न से ही उपस्थित होता है। यदि व्यवहारिक दृष्टि से देखें तो भी धर्म के अनेक भेद क्षमा, दया, प्रेम, करुणा, सत्य, तप आदि को ध्यान में रखकर धर्म के अनेक रूप सामने आयें तो भी उनमें मतभेद नहीं होगा। मतभेद है सम्प्रदायों में।

हर धर्म सत्य की अभिव्यक्ति करता है। यदि सत्य के सापेक्ष दृष्टिकोण को मान लिया जाए तो सभी धर्म सत्य के एक अंश को प्रकट करते हैं। केवल उसी विशिष्ट दृष्टिकोण को ही सत्य मानकर दूसरे धर्मों के दृष्टिकोण को ठुकराया जाना धार्मिक संघर्षों का प्रमुख हेतु बनता है। अहिंसक जीवनशैली यह बतलाती है कि सापेक्ष दृष्टि से सभी धर्म सत्य हैं, इसलिए हमें सभी धर्मों के प्रति सहिष्णु बनना चाहिए।

3.9.3.6 व्यवहार व व्यापार में प्रामाणिकता

सत्य के दो रूप हैं-आध्यात्मिक और सामाजिक। आध्यात्मिक सत्य व्यक्तिगत होता है। कोई भी आत्मनिष्ठ व्यक्ति असत् आचरण नहीं करता। असत् आचरण का अभाव ही प्रामाणिकता है। जबकि सामाजिक सत्य कहता है— एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति के साथ व्यवहार यथार्थ की स्वीकृति के आधार पर हो, यही व्यवहारिक प्रामाणिकता है। इसके तीन मापदण्ड हैं।

व्यवहारिक प्रामाणिकता में प्रवंचना (कपट) नहीं होती।

व्यवहारिक प्रामाणिकता में व्यवस्था का अतिक्रमण नहीं होता।

व्यवहारिक प्रामाणिकता में अतिरिक्त लाभ पाने की इच्छा नहीं होती।

3.9.3.7 आत्मसंयम का विकास

भोगवादी संस्कृति का मूल आधार असंयम है। असंयम के कारण ही विश्व में अनेकानेक समस्याएं बढ़ती जा रही हैं। असंयम ने मनुष्य को सुविधावादी बनाया है और सुविधावाद बनाये रखने के लिए वह दिनोंदिन सुविधाएं प्रदान करने वाली सामग्री का उत्पादन व उपभोग कर रहा है जिससे न केवल संसाध

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

ानों का असीमित दोहन हो रहा है बल्कि पर्यावरणीय प्रदूषण के भी खतरे पैदा होते जा रहे हैं। असंयम की प्रवृत्ति ने ही मनुष्य को शस्त्रास्त्र के उत्पादन व परीक्षण का प्रोत्साहन दिया है। मनुष्य की अनन्त इच्छाओं को कहीं तो विराम देना ही होगा, नहीं तो यह विश्व एक दिन अपने ही विकास के नीचे दबकर खत्म हो जाएगा। यदि संयम व आत्मानुशासन के द्वारा व्यक्ति की विवेक चेतना को जागृत नहीं किया गया तो व्यक्ति की इन्द्रियों की मांग बढ़ती ही चली जाएगी और फिर हर मांग को संतुष्ट कर पाना असंभव होगा। परिणाम होगा— संघर्ष, हिंसा।

अहिंसक जीवनशैली के अनुसार मतदान की स्वस्थ परम्परा में विजय-पराजय की बात गौण है। मुख्य बात है व्यक्ति की योग्यता और विशेषता का अंकन कर उसे निर्वाचित करना। मतदाता और प्रार्थी की कुछ दुर्बलताएं इस मार्ग की बाधाएं हैं। प्रार्थी (उम्मीदवार) को अपनी प्रतिष्ठा एवं अहं का मोह रहता है, इसी कारण प्रलोभन, भय और आतंक की परिस्थितियां पैदा हो जाती हैं तथा उनके आगे मतदाता घुटने टेक देते हैं। अतः हमें यह मानकर चलना चाहिए कि बुराई दोनों पक्षों की ओर से होती है। चुनाव परम्परा में विकृति नहीं हो तो योग्य व्यक्ति अनायास ही सामने आ जाएगा। जनतंत्रीय पद्धति स्वीकार करने के बाद प्रलोभन व अनैतिक तरीकों से चुनाव जीतना अनुचित है। जो ऐसा करते हैं वे वस्तुतः अपने विचारों व लोकतंत्र की हत्या करते हैं। वैचारिक मृत्यु व्यक्ति की सबसे बड़ी पराजय है। इसलिए लोकतंत्र की स्वस्थ प्रणाली में विजयी बनने के लिए प्रलोभन, भय या आतंक की स्थिति पैदा करने का प्रश्न ही नहीं उठना चाहिए।

जिस विचार, व्यवस्था की जब तक उपयोगिता है तब तक उसका मूल्य और महत्त्व है। उपयोगिता समाप्त होने के साथ उसका मूल्य भी समाप्त हो जाता है, वह मूल्यहीन बन जाती है। मूल्य समाप्त होने के बाद भी उस परम्परा या व्यवस्था को चलाए रखने का प्रयत्न कुरूढ़ि है। परिवर्तन सृष्टि का शाश्वत तत्त्व है। हर परिवर्तन के मुख्य हेतु हैं-देशकाल का परिवर्तन और विचार परिवर्तन। विचार परिवर्तन के साथ विकास होता है। हर नया विकास अपने से पूर्व की स्थिति का मूल्य समाप्त कर देता है। कठिनाइयां तब उत्पन्न होती हैं जब हम इन परिवर्तनों को स्वीकार नहीं करते तथा परम्पराओं का निर्वहन ही अपना ध्येय मानते हैं, भले ही वे मूल्यहीन हो गई हों, ऐसी ही परम्पराओं को कुरूढ़ियां कहा जाता है।

अहिसंक जीवनशैली का मंतव्य है— इन कुरूढ़ियों को अपने जीवन में प्रश्रय नहीं देना। इनसे व्यक्ति का अहित तो है ही, समाज का विकास भी अवरुद्ध हो जाता है। कुरूढ़ियों के विरुद्ध जनमत जाग्रत किया जाना अपेक्षित है, इस हेतु शिक्षा का प्रसार भी आवश्यक है।

3.9.3.8 मादक पदार्थों के सेवन का निषेध या व्यसन मुक्त जीवन

मादक पदार्थों के सेवन की समस्या आज अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर चिंता का विषय बन चुकी है। आधुनिक समाज में युवापीढ़ी जीवन की समस्याओं से घबराकर मादक पदार्थों की शरण में जा रही है। यह अत्यन्त चिन्तनीय है। अफीम, चरस, हेरोइन आदि अनेक ऐसे मादक पदार्थ हैं जो तस्करी के कारण सामान्य लोगों की पहुंच से परे नहीं रहे हैं। एक बार इनके सेवन के पश्चात् मनुष्य इनका गुलाम बनकर रह जाता है फिर उसे इन पदार्थों की आपूर्ति करने वाले व्यक्ति की जायज-नाजायज हर बात माननी पड़ती है। व्यक्ति अपराधों की तरफ उन्मुख हो जाता है।

अहिंसक जीवनशैली का मानना है कि सरकार आर्थिक लाभ के लिए मादक पदार्थों के सेवन को प्रोत्साहन देती है जबकि सरकार का ध्यान आर्थिक लाभ की जगह देश की चारित्रिक गिरावट की ओर जाना चाहिए। यद्यपि मादक पदार्थों का सेवन व्यक्तिगत घटना है पर इससे पूरा समाज प्रभावित होता है। समाज में नैतिक मूल्यों के पतन के पीछे तथा बलात्कार आदि घटनाओं का एक प्रमुख कारण मादक पदार्थों का सेवन है

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

क्योंकि इनके सेवन से, व्यक्ति की विवेक शक्ति खत्म हो जाने से वह पशुवत् हो जाता है। इसके दुष्परिणामों से बचने के लिए निम्न बिन्दु विचारणीय हैं—

(1) लोगों को इनके दुष्परिणामों की जानकारी दी जाए।

(2) मादक पदार्थों के विरोध में प्रबल जनमत जुटाया जाए।

(3) शिक्षा का व्यापक प्रसार हो विशेषकर स्वास्थ्य शिक्षा का।

(4) परिवार का मुखिया या परिवार का सदस्य एक-दूसरे को इन पदार्थों के सेवन से बचने के लिए प्रेरित करे।

(5) कानून भी इनकी रोकथाम का एक सशक्त माध्यम बन सकता है। गांधीजी ने तो यहां तक कहा है कि मादक पदार्थों की बिक्री से यदि शिक्षा का प्रसार भी होता हो तो उससे अशिक्षा ज्यादा अच्छी है। इसलिए सरकारी प्रतिबंध तो आवश्यक ही है।

(6) हृदय परिवर्तन के लिए प्रयोग किया जाए।

3.9.3.9 पर्यावरणीय चेतना का विकास

सृष्टि का जीवन सापेक्ष है। इसमें जड़ और चेतन जितने पदार्थ हैं, वे एक दूसरे को प्रभावित करते हैं तथा एक दूसरे से प्रभावित होते भी हैं। धरती, हवा, पानी और वनस्पति सृष्टि-संतुलन के आधरभूत तत्त्व हैं, ये जैसे हैं, वैसे ही बने रहें तो सृष्टि का संतुलन बना रहता है। इनमें गड़बड़ी से यह संतुलन बिगड़ने का खतरा बना रहता है। खनिजों का अत्यधिक दोहन, कारखानों और चिमनियों से उठने वाला धुआं, प्राकृतिक व्यवस्था के साथ छेड़-छाड़, परमाणु-परीक्षण आदि पर्यावरण को प्रदूषित करते हैं तथा इस कारण विश्व में ओजोन परत को क्षति, भूमि के उपजाऊपन में कमी, नाभिकीय शीत, तापमान में वृद्धि, पशु-पक्षियों की कई प्रजातियों का लुप्त होना आदि समस्याएं पैदा हो रही हैं।

मानव सभ्यता की कहानी प्राकृतिक नियमों के उल्लंघन की कहानी है। जब से मनुष्य ने सुमेरिया, मिश्र और सिंधुघाटी की सभ्यता को जन्म दिया, तब से वह प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध किसी न किसी संघर्ष में जुटा हुआ है। औद्योगिक क्रांति ने प्रकृति पर मानव जाति की विजय को भी साबित कर दिया है। पर्यावरण की जटिलताओं को समझे बिना उसने स्वार्थपूर्ति हेतु प्रकृति की व्यवस्था में व्यापक हस्तक्षेप शुरू कर दिया और इसी का दुष्परिणाम आज हमारे सामने है।

अहिंसक जीवनशैली के अनुसार सृष्टि में संतुलन बिगड़ने का मूल कारण असंयम है। मनुष्य अपनी आकांक्षाओं का विस्तार करता गया और आकांक्षा पूर्ति के लिए पृथ्वी का बेहिसाब उत्खनन, जल का अधिक प्रयोग, औद्योगीकरण, वन कटाई, शिकार आदि करता गया और स्वयं अपने ही पैरों में कुल्हाड़ी मारने लगा। पर्यावरणीय संतुलन के लिए संयम की साधना अपेक्षित है। संयम से ही पर्यावरण की सुरक्षा हो सकती है और पर्यावरण की सुरक्षा में ही मानव जाति व अन्य प्राणियों की सुरक्षा निहित है। पर्यावरणीय चेतना के विकास के लिए प्रायोगिक प्रशिक्षण भी आवश्यक है।

3.9.4 व्यवस्था परिवर्तन

अहिंसा प्रशिक्षण की दृष्टि से केवल हृदय परिवर्तन और दृष्टिकोण परिवर्तन (विचार-परिवर्तन) ही पर्याप्त नहीं हैं। ये तभी स्थायी रह सकते हैं, जब उनके अनुरूप व्यवस्थाएँ भी हों। अतएव व्यक्ति के आन्तरिक रूपान्तरण के साथ-साथ व्यवस्थागत (परिवेश) परिवर्तन भी आवश्यक है।

व्यवस्थाओं के मुख्यतः तीन पहलू हैं— आर्थिक व्यवस्था, सामाजिक व्यवस्था तथा राजनैतिक व्यवस्था। इन तीनों व्यवस्थाओं में परिवर्तन की दृष्टि से अब हम विचार करेंगे।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

3.9.4.1 आर्थिक व्यवस्था

आचार्य महाप्रज्ञ अहिंसा प्रशिक्षण के सन्दर्भ में कहते थे— अर्थ की प्रकृति में ही हिंसा है, अतः अर्थशास्त्र एवं आर्थिक व्यवस्था को पूर्णतः अहिंसक नहीं बनाया जा सकता परन्तु इससे अपराध, क्रूर हिंसा, शोषण और विलासिता को अवश्य समाप्त किया जा सकता है। विकास की वर्तमान अवधारणा भौतिकवाद और उपभोक्तावाद पर टिकी है। उपभोग आवश्यकता पर आधारित न होकर उपभोग के लिए उपभोग किया जाता है। इससे कृत्रिम संस्कृति का निर्माण हुआ है। अतः आवश्यकता या अनिवार्यता की कोटि के उपभोग तक ही स्वयं को सीमित करना होगा। इससे एक ओर कुविकास की समस्या का समाधान होगा, दूसरी ओर वर्ग भेद कम होंगे तथा प्रकृति के अन्धाधुन्ध दोहन पर भी नियंत्रण होगा। विकास की मात्र भौतिक अवधारणा और व्यवस्था का विकल्प अहिंसक आर्थिक पुनर्निर्माण से सम्भव है। इस पुनर्निर्माण में साधन शुद्धि, व्यक्तिगत स्वामित्व की सीमा, उपभोग की सीमा, अर्जन के साथ विसर्जन तथा विलासिता की सामग्री के उत्पादन और आयात पर रोक आदि की व्यवस्था का व्यक्ति तथा सरकार दोनों को ईमानदारी से पालन करना होगा।

अहिंसक अर्थ व्यवस्था में किसका उत्पादन हो और किसका नहीं हो— यह प्रश्न भी विमर्शनीय है। मनुष्य की प्राथमिकता के आधार पर आवश्यकताएँ हैं रोटी, पानी, वस्त्र, मकान और शिक्षा। अहिंसक अर्थ व्यवस्था में अनिवार्य आवश्यकताओं की सामग्रियों का उत्पादन ही मान्य हो सकता है और अनावश्यक पदार्थों जैसे मादक-द्रव्य, अस्त्र-शस्त्र, शृंगार की सामग्री एवं विलासिता के अन्य साधनों का उत्पादन मान्य नहीं हो सकता। जब एक बड़ी आबादी मूलभूत सुविधाओं से ही वंचित हो तो विलासिता की सामग्री का उत्पादन क्रूरता ही कहा जा सकता है।

3.9.4.2 सामाजिक व्यवस्था

समस्त जीवन में हिंसा पाई जाती है किन्तु हिंसा से जीवन कृतार्थ नहीं होता। हिंसा जीवन का प्रयोजन नहीं है। एक फ्रेंच लेखक ने हिंसा की अपरिहार्यता को सोचते हुए लिखा था 'Living is Killing' एक भारतीय लेखक ने उस फ्रेंच लेखक को लिखा- 'Living is killing is a fact of life' — इसे स्वीकार कर हम इससे ऊंचे उठते हैं और यह समझते हैं कि 'Killing the Least is living the best' इस सूत्र में जीवन का प्रयोजन और कृतार्थता आ जाती है। यही जीवन का नियम (Law of life) है और यही जीवन की पूर्णता (Fulfilment of life).

काका कालेकर लिखते हैं — "वर्ग-वर्ग के बीच, वंश-वंश के बीच संघर्ष, विरोध और वैमनस्य चलता रहता है, उसी को सनातन स्वभाव मानकर, उसी के अन्दर कुछ नियम ढूढना एक प्रकार है और संघर्ष टालकर परस्पर सहयोग द्वारा प्रेम पूर्ण संबंध स्थापित करना, त्याग और बलिदान द्वारा व्यापक आत्मीयता सिद्ध करना यह दूसरा तरीका है, अहिंसा का तरीका है।

उच्च-निम्न, अमीर-गरीब, मालिक-नौकर, शासक-शासित, सभ्य-जंगली आदि भेदों को स्वाभाविक, अपरिहार्य अथवा यथायोग्य समझकर उसी भेद को मजबूत करने वाली समाज रचना चलाना हिंसक और असामाजिक तरीका है। इसके स्थान पर भेदों को कमकर, मिटाकर मानव-मानव के बीच समानता, आत्मीयता बढ़ाना, प्रेम व आदर के संबंध रूढ़ करना तथा इसी प्रकार की कोशिशें करते जाना सामाजिक व्यवस्था में अहिंसा का समावेश कर सकता है।"

पारिवारिक संबंधों में हिंसा के अतिरिक्त समाज में कई प्रकार की हिंसा हो सकती है। इनमें कुछ विशेष प्रकार की हिंसा का तो समाज से वर्जन आवश्यक है जैसे-आक्रामक हिंसा, निरपराध व्यक्तियों की हत्या, भ्रूण हत्या, जातीय घृणा, छुआछूत आदि का व्यवस्थागत निषेध आवश्यक है। इन्हें महिमा मंडित करने वाले पत्रों व मीडिया के अन्य साधनों पर भी नियंत्रण आवश्यक है। इसी तरह मनोरंजन के लिए शिकार, पशुओं को लड़ाना, उन्हें मारने और उनके मांस भक्षण से मनुष्य को जो आनन्द आता है उसकी घृणितता और क्रूरता की ओर ध्यान खींचना इनकी सामाजिक प्रतिष्ठा को समाप्त करना तथा प्राणी जगत् को जहां तक संभव हो अभयदान देना समाज में अहिंसा की प्रतिष्ठा होगी।

नई समाज व्यवस्था के अन्तर्गत ऐसी वैकल्पिक चिकित्सा पद्धति का विकास भी आवश्यक है जिसमें रोगों का उपचार आयुर्वेद, आसन, प्राणायाम, ध्यान आदि से हो जाये। काका कालेकर लिखते हैं— सृष्ट पदार्थों का रहस्य समझने के लिए प्रयोगशालाओं

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

में जीव जन्तुओं और पदार्थों को काटना, पीटना, जलाना आदि वैसा ही है जैसे किसी षडयंत्र का रहस्य ढूंढ़ने के लिए पुलिस अभियुक्तों को मारती है, पीटती है, भूखे रखकर, सोने न देकर परेशान करती है।अहिंसक पद्धति शायद ऐसे प्रयोगों को छोड़कर योग पद्धतियों का आविष्कार करेगी जिसके द्वारा प्राणियों और वनस्पतियों के स्वभाव का और इनके विकास का निरीक्षण-परीक्षण किया जा सकेगा।

3.9.4.3 राजनैतिक व्यवस्था

अहिंसक राजनीतिक व्यवस्था के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए आचार्य महाप्रज्ञ कहते थे— अहिंसा पर आधारित राजनीति वह है जिसमें व्यक्ति की स्वतंत्रता का हनन नहीं होता। जहां व्यक्ति और राष्ट्र का सम्बन्ध मात्र यांत्रिक नहीं होता, व्यक्ति की स्वतंत्रता का मूल्यांकन किया जाता है। व्यक्ति का राष्ट्र के साथ सम्बन्ध होता है, साथ ही व्यक्ति की स्वतंत्रता आत्मानुशासित और अक्षुण्ण होती है। ऐसी स्वतंत्रता व्यक्तिगत विशेषताओं क: संरक्षण है जो राष्ट्र की समृद्धि की आवश्यक शर्त है।

हिंसा की रोकथाम, सुरक्षा और विधि व्यवस्था कायम रखना ही राजनीति का कार्य नहीं है। अच्छी राजनीति का लक्ष्य है व्यक्ति का हित और मानव कल्याण अर्थात् राज्य को विधि व्यवस्था से पूर्व व्यक्ति निर्माण की दिशा में ठोस कार्यक्रम लागू करने चाहिए। राज्य गरीबी आदि को दूर करने के साथ-साथ नागरिकों को अभय भी करे। आचार्य विनोबा कहते हैं — जिनका विश्वास अहिंसा में है उनको लोकनीति की स्थापना में अपनी शक्ति लगानी चाहिए अर्थात् राजनीति को समाप्त कर लोक नीति स्थापित हो। राजनीति के धार्मिकीकरण की आवाज भी बहुत बार उठती रही है। सर्वप्रथम राजनीति को स्पिरिच्युअलाइज शब्द का प्रयोग गोपालकृष्ण गोखले ने किया। गांधी ने इस विचार को बार-बार रखा। यह कोशिश पहली बार हुयी हो ऐसा नहीं है। इतिहास में कई बार इस तरह के प्रयत्न हुए हैं। हममें से बहुत से व्यक्ति यह मानते हैं कि समाज विकास में एक ऐसा बिन्दु आ जाये, जब दण्ड के आधार पर शासन चलाने की आवश्यकता न रहे। इस ध्येय को साम्यवादी भी मानते हैं। ध्येय प्राप्ति का उनका मार्ग भले ही कुछ और हो। कुछ लोग ऐसे भी हैं जो यह मानते हैं कि समाज में दण्ड की आवश्यकता सदैव है इसलिए शासन भी सदैव रहेगा। दण्ड शक्ति को एक स्थान देना तो आवश्यक हो सकता है किन्तु अहिंसक राज्य व्यवस्था में दण्ड और सत्ता का स्थान गौण रहकर मुख्य स्थान सेवा का रहे।

अहिंसक राजनीतिक व्यवस्था के उपर्युक्त विश्लेषण और प्रशिक्षण के साथ-साथ हमें निम्नांकित परिवर्तन और प्रशिक्षण के लिए भी सजग रहना होगा।

दलगत राजनीति हिंसा का एक कारण है। यह पक्षपात और पूर्वाग्रह को जन्म देती है। राजनीति की व्यवस्था में अहिंसा का आदर्श होना चाहिए। व्यवस्था में अहिंसा अंतर्भूत रहे। ऐसी व्यवस्था का निर्माण हो कि सबको आजीविका, रोटी तथा विकास के साधन उपलब्ध हों। कहीं भी हिंसा को प्रोत्साहन न मिले।

हमारी शासन प्रणाली उभयविध हो। नीचे ग्राम से पंचायती राज का विकास हो और ऊपर केन्द्र की सरकार बड़े-बड़े कार्यों को करने के लिए रहे। राजनेताओं का राजनैतिक प्रशिक्षण तथा जनतन्त्र में अहिंसा का प्रशिक्षण आवश्यक है। वर्तमान राजनीति में राजनीति के प्रशिक्षण के लिए कोई स्थान नहीं है। परिणाम स्वरूप गुणवत्ता के स्थान पर सिर्फ दक्षता इसका आधार रह गया है। किसी भी जनतांत्रिक व्यवस्था के लिए अहिंसक जीवन पद्धति अपनाना अनिवार्य है।

वर्तमान चुनाव पद्धति में जातिवाद, सम्प्रदाय जैसे अनेक हिंसक व्यापार जुड़े हुए हैं। इसे अहिंसक बनाने के लिए अणुव्रत एवं सर्वोदयी नीति का पालन होना चाहिए। अहिंसक राजनीति के लिए सत्ता का विकेन्द्रीकरण आवश्यक है, जिससे शासक निरंकुश न हो और एक व्यक्ति के अहं को मौका न मिले।

व्यवस्था परिवर्तन के लिए संगठनात्मक प्रशिक्षण भी आवश्यक है जिसमें अनुसंधान, योजना, कार्य के लिए तैयार होना, प्रचार, कार्य का प्रारम्भ, नेतृत्व आदि संगठन के विभिन्न पहलुओं के लिए प्रशिक्षण प्राप्त करना आवश्यक है।

एक सर्वोच्च संसद का निर्माण अति आवश्यक है जो समाज की नियामक और निर्णायक नहीं बल्कि निदेशक हो। ऐसी संसद में धर्मगुरु, वैज्ञानिक, दार्शनिक, पत्रकार जैसे तटस्थ और निष्पक्ष लोग रहें। इनके निर्देश नियम से भी अधिक प्रभावशाली होंगे और इससे अहिंसक समाज के निर्माण में सहयोग मिलेगा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

3.10 अभ्यास के लिए प्रश्न

वस्तुनिष्ठ

1. प्रतिक्रियात्मक भावों के रूपों में प्रभाव दिखाने वाले कुछ संवेग बताइये।
2. सह अस्तित्व के चिन्तन को प्रस्तुत करने वाला कोई एक उदाहरण दीजिए।
3. प्रमाद के संवेग को नियंत्रित करने के लिए कौन-कौन से प्रयोग अपेक्षित हैं?
4. शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक— तीनों प्रकार के प्रशिक्षण के लिए कौनसा प्रयोग उपयोगी है ?
5. अहिंसा प्रशिक्षण वस्तुतः व्यक्तिगत प्रशिक्षण की पद्धति है या समूहगत ?
6. व्यक्ति को हिंसक कौन बनाते हैं?
7. निरपेक्ष चिंतन का क्या स्वरूप है?

लघुत्तरात्मक :

1. दार्शनिक पृष्ठभूमि पर अहिंसा की मूल्यवत्ता प्रमाणित करने वाले सूत्रों का उल्लेख करें।
2. मानवीय संबंधों के परिष्कार पर एक टिप्पणी लिखिए।
3. अहिंसा प्रशिक्षण की दार्शनिक पृष्ठभूमि के सूत्रों का उल्लेख कीजिए।
4. शारीरिक प्रशिक्षण के सूत्रों का उल्लेख करें।
5. परिग्रह और हिंसा का गठबंधन है, स्पष्ट करें।
6. अहिंसा प्रशिक्षण के विभिन्न आयामों का उल्लेख कीजिए।
7. क्या अहिंसा की स्थापना के लिए व्यवस्था परिवर्तन भी आवश्यक है?
8. आहार और अहिंसा के संबंध को स्पष्ट करें।

निबन्धात्मक प्रश्न :

1. अहिंसा प्रशिक्षण की आवश्यकता क्यों है ? अहिंसा के सैद्धान्तिक स्वरूप को भी स्पष्ट कीजिए।
2. अहिंसा प्रशिक्षण के प्रायोगिक स्वरूप पर विस्तार से प्रकाश डालिए।
3. अहिंसा प्रशिक्षण के सूत्रों की विवेचना करते हुए यह बताइये कि क्या अहिंसा प्रशिक्षण संभव है ?
4. अहिंसा प्रशिक्षण के अन्तर्गत हृदय परिवर्तन एवं दृष्टिकोण परिवर्तन पर अपने विचार प्रस्तुत करें।
5. जीवन शैली परिवर्तन का विस्तृत विवेचन कीजिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–4 : अहिंसक व्यक्तित्व का निर्माण

संरचना

4.0 प्रस्तावना
4.1 उद्देश्य
4.2 भारतीय दृष्टिकोण
4.3 पाश्चात्य एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण
4.4 अहिंसक व्यक्तित्व निर्माण के सहायक तत्व
- 4.4.1 सत्य
- 4.4.2 अहिंसा
- 4.4.3 अब्रह्मचर्य
- 4.4.4 अस्वाद
- 4.4.5 सहनशीलता
- 4.4.6 प्रामाणिकता
- 4.4.7 अपरिग्रह
- 4.4.8 सादगी
- 4.4.9 अस्तेय
- 4.4.10 शारीरिक श्रम
- 4.4.11 शाकाहार

4.5 अहिंसक व्यक्तित्व निर्माण
- 4.5.1 रसायन परिवर्तन
- 4.5.2 अहिंसक व्यक्तित्व निर्माण में परिवार की भूमिका
- 4.5.3 अहिंसक व्यक्तित्व निर्माण में शिक्षा का योगदान
- 4.5.4 अर्थ एवं अहिंसक व्यक्तित्व निर्माण
- 4.5.5 अहिंसक व्यक्तित्व निर्माण में समाज के प्रमुख व्यक्ति की भूमिका
- 4.5.6 अहिंसक व्यक्तित्व निर्माण एवं राजनीति

4.6 प्रश्नावली
4.7 संदर्भ ग्रंथ

4.0 प्रस्तावना

व्यक्तित्व को हम दो दृष्टिकोणों से समझने का प्रयत्न करेंगे—प्रथम भारतीय दृष्टिकोण द्वितीय पाश्चात्य एंव मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण।

अहिंसा सिद्धांत एवं प्रशिक्षण के अंतर्गत आपने अभी तक विभिन्न धर्मदर्शनों में अहिंसा का स्वरूप, अहिंसा का व्यवहार एवं अहिंसा प्रशिक्षण के आधार एवं स्वरूप का गहन अध्ययन कर चुके हैं। अब प्रस्तुत पाठ में हम अहिंसक व्यक्तित्व निर्माण के विषय में आप से चर्चा करेंगे।

जब एक पूर्ण व्यक्तित्व के विषय में बात की जाती है तब उसमें अहिंसक व्यक्तित्व समाहित होता है क्योंकि पूर्ण व्यक्तित्व या आदर्श व्यक्तित्व कभी हिंसक नहीं हो सकता है उसमें छल-कपट की भावना नहीं होती है। महर्षि अरविंद का चैत्य पुरुष, गीता का गुणातीत व्यक्तित्व या परिपक्व व्यक्तित्व या स्थितप्रज्ञ, आचार्य महाप्रज्ञ का आध्यात्मिक-वैज्ञानिक व्यक्तित्व अपने आप में पूर्ण एंव अहिंसक व्यक्तित्व है। व्यक्तित्व शब्द अपने आप में एक बाहरी दिखावा मात्र है जिसके अनुसार समाज उसके रूप को निश्चित कर देता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जब हम अहिंसक व्यक्तित्व की बात करते हैं तब यह बाहरी दिखावा मात्र शेष नहीं रह जाता है। क्योंकि अहिंसा अपने आप में एक आन्तरिक गुण है जो कि अन्दर एवं बाहर दोनों रूप में दिखता है, मन में हिंसा करने, कराने तथा अनुमोदन करने के भाव आना भी हिंसा की श्रेणी में आता है। अहिंसक व्यक्तित्व परमूल्यांकन से ज्यादा स्वमूल्याकंन को स्वीकार करता है।

4.1 उद्देश्य

इस पाठ में विद्यार्थियों के लिए निम्न उद्देश्य निर्धारित किये गये हैं—

1. व्यक्तित्व के वास्तविक स्वरूप को समझ सकेंगे।
2. व्यक्तित्व से संबंधित भारतीय दृष्टिकोण को जान सकेंगे।
3. व्यक्तित्व के संबंध में भारतीय दृष्टिकोण एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण में स्थूल रूप से अन्तर स्पष्ट कर सकेंगे।
4. अहिंसक व्यक्तित्व के संबंध में विभिन्न दृष्टिकोणों को समझ सकेंगे।
5. अहिंसक व्यक्तित्व निर्माण में हार्मोन्स के प्रभावों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
6. शाकाहार एवं ब्रह्मचर्य अहिंसक व्यक्तित्व निर्माण के लिए क्यों आवश्यक हैं यह जान सकेंगे।
7. परिवार किस प्रकार अहिंसक व्यक्तित्व का निर्माण कर सकता है यह समझ सकेंगे।
8. अहिंसक व्यक्तित्व निर्माण के लिए आवश्यक मुख्य तत्त्वों को जान सकेंगे।
9. समाज आदि की अहिंसक व्यक्तित्व निर्माण में क्या भूमिका है इसको स्पष्ट कर सकेंगे।
10. स्वयं के एवं दूसरों के व्यक्तित्व को अहिंसक बना सकने की दक्षता प्राप्त कर सकेंगे। अहिंसक व्यक्तित्व का निर्माण कैसे हो एवं इसका स्वरूप क्या हो आदि बातें जानने से पहले हमें तीन बातों की विवेचना करनी होगी कि अहिंसा क्या है? अहिंसक किसे कह सकते हैं? साथ ही साथ व्यक्तित्व क्या है? सरलता की दृष्टि से हमें पहले व्यक्तित्व को समझना होगा।

4.2 भारतीय दृष्टिकोण

इस पाठ के अन्तर्गत भारतीय दृष्टिकोण को समझने के लिए हम सिर्फ दो आधारों का चुनाव कर रहे हैं प्रथम धार्मिक ग्रन्थ एवं द्वितीय आध्यात्मिक महापुरुषों की वाणी।

भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार व्यक्ति की आत्मा परमात्मा का ही एक अंश है। इस आधार पर उपनिषदों में व्यक्ति के दैविक स्वभाव का उल्लेख किया गया है। भारतीय दर्शन के अनुसार व्यक्ति जब जन्म लेता है तब उसके साथ उसके स्वभाव से उसके अन्तर में एक आध्यात्मिक सत्ता भी होती है। इसी आध्यात्मिक सत्ता को आत्मा कहते हैं। इसी तथ्य के आधार पर प्रत्येक व्यक्ति में ब्रह्मा की कल्पना की गयी है। छान्दोग्योपनिषद् में कहा गया है कि "तत्वमासेश्वेतकेतो" अर्थात् हे श्वेतकेतु, तू वही हैं।

विवेक चूड़ामणि, श्लोक 470 में बताया गया है कि "ब्रह्मावै जीवस्सक्लं जगच्च'' जीव अन्य कोई नहीं, ब्रह्मा ही है, सकल जगत् ब्रह्मा है।

ऋग्वेद में पुरुष का उल्लेख मिलता है "पुरुष" शब्द का प्रयोग परब्रह्मा के लिए किया गया है। ऋग्वेद के पुरुष-सूक्त में पुरुष को अत्यन्त व्यापक तथा गंभीर बताया गया है। यह भी बताया गया है कि सभी कुछ पुरुष है तथा अतीत वर्तमान तथा भविष्य का संबंध केवल पुरुष से है।

महर्षि अरविंद ने सर्वांगपूर्ण व्यक्तित्व के लिए चैत्य (Psychic) पुरुष शब्द प्रयोग किया है। श्री अरविन्द आश्रम की माता जी के अनुसार "व्यक्तित्व का अर्थ है—अभिव्यक्ति का एक प्रकार, जो व्यक्ति का अपना

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

एक अनूठा होता है, और तुम्हारा चैत्य पुरुष उस एक भावित चेतना के—जिसने तुम्हारे अन्दर स्थान ग्रहण किया है—असंख्य पहलुओं में से एक पहलू है। परन्तु व्यष्टि चेतना और विश्व चेतना के बीच जो भेदभाव तुम्हारी प्रवृत्ति के अन्य भागों में है वह चैत्य पुरुष की चेतना में नहीं है वहां तुमको इस बात का ज्ञान रहता है कि अभिव्यक्ति का तुम्हारा जो विशिष्ट प्रकार है वही तुम्हारा व्यक्तित्व है, पर इसके साथ-साथ वहां तुमको इस बात का भी ज्ञान रहता है कि तुम्हारे द्वारा जो यह अभिव्यक्ति होती है। वह उस एक अखण्ड विश्व चेतना की ही बहिर्गत अभिव्यक्ति है।"

श्री अरविन्द ने व्यक्तित्व के निरूपण में सोपानात्मक उपागम को अपनाया है। जिसका कारण है कि उपनिषद् में आत्मा के पांच रूपों का वर्णन किया गया है। श्री अरविन्द ने व्यक्तित्व के निम्न पांच सोपान बताए हैं—1. भौतिक सोपान 2. प्राणिक सोपान 3. मानसिक सोपान 4. आध्यात्मिक सोपान 5. चैत्य सोपान। श्री अरविन्द यह मानते हैं कि चैत्य चेतना के फलस्वरूप सर्वांगीण व्यक्तित्व का विकास संभव है। (पाठ के मूल विषय को ध्यान में रखते हुए उपरोक्त सोपानों की विस्तृत चर्चा यहां नहीं कर रहे हैं।) स्वामी विवेकानन्द के अनुसार "मनुष्य में जो शक्ति विद्यमान है उसका एक भाग वह अपनी देह की सुरक्षा में व्यय करता है। शक्ति के शेष भाग से वह दिन-रात दूसरों को प्रभावित कर रहा है। हमारे शरीर, हमारे गुण, हमारी प्रज्ञा, हमारी आध्यात्मिकता—ये निरन्तर दूसरों को प्रभावित कर रहे हैं। इसी प्रकार जहाँ हम दूसरों को प्रभावित कर रहे हैं, वहां दूसरों से प्रभावित भी होते हैं। दूसरों को प्रभावित करने वाली यह शक्ति ही व्यक्तित्व है। गीता में सत्व, रज और तम के आधार पर सर्वांगीण व्यक्तित्व की अवधारणा को निरुपित किया गया है। यह एक महत्वपूर्ण पहलू है कि इन गुणों का प्रभाव मानव व्यवहार पर पड़ता है। वास्तविकता भी यही है कि मानव प्रकृति के आधार ये ही तीन गुण हैं। लेकिन जब हम देखते हैं तो पाते हैं कि मानव में तीनों गुण समान रूप से नहीं हैं। कुछ व्यक्ति सत्व गुण प्रधान हैं, कुछ रजोगुण प्रधान हैं तथा कुछ तमो गुण प्रधान हैं इसीलिए इन तीनों गुणों की भावनात्मक भेद के कारण व्यक्ति के व्यक्तित्व में परिपक्वता संबंधी भेद भी उत्पन्न हो जाते हैं।

परिपक्व व्यक्तित्व के लिए गीता के अनुसार व्यक्ति का गुणातीत होना अतिआवश्यक है। परिपक्व व्यक्तित्व के संदर्भ में गुणातीत व्यक्ति में ऐसे लक्षण पाये जाते हैं जो कि बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। गीता के अनुसार गुणातीत व्यक्ति के निम्न लक्षण हैं—

1. सुख और दु:ख में समान रहता है।
2. मिट्टी और सोना को समान मूल्य का समझता है।
3. प्रिय और अप्रिय पदार्थों या प्राणियों को समान समझता है।
4. निन्दा व प्रशंसा दोनों में समान रहता है।
5. मान और अपमान में समान रहता है।
6. मित्र और शत्रु के प्रति समान दृष्टि रखता है।
7. समस्त कर्मों को करते हुए वर्तमान के भाव से मुक्त रहता है।

गीता के परिपक्व व्यक्तित्व में वे लक्षण होने चाहिए जो किसी स्थिर बुद्धि वाले पुरुष में पाये जाते हैं। वास्तव में परिपक्व व्यक्तित्व के लिए स्थिर बुद्धि का होना अति आवश्यक है। गीता के द्वितीय अध्याय के 55 से 72 श्लोकों में स्थितप्रज्ञ व्यक्ति के विभिन्न लक्षण बताये गये हैं। ये लक्षण परिपक्व व्यक्तित्व की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हैं। गीता के अनुसार स्थिर बुद्धि वाले व्यक्ति में जो विशेषताएं होनी चाहिए वे निम्न लिखित हैं—

1. स्थितप्रज्ञ सम्पूर्ण कामनाओं का त्याग करता है।
2. राग-द्वेष, भय, क्रोध आदि संवेगों से मुक्त होता है।
3. शुभ व अशुभ दोनों प्रकार की वस्तुओं की प्राप्ति पर समभाव रखता है।
4. स्थिर बुद्धि वाला व्यक्ति अपनी इन्द्रियों को उसी प्रकार विषयों से हटा लेता है जैसे कछुआ अपने अंगों को समेट लेता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इस प्रकार गीता में स्थिर बुद्धि वाले व्यक्ति के जो लक्षण बताये गये हैं वे वास्तव में परिपक्व व्यक्तित्व के लक्षण हैं। अगर हम गीता के अनुसार परिपक्व व्यक्ति के सन्दर्भ में संक्षिप्त में कुछ कहे तो यह कहा जा सकता है कि परिपक्व व्यक्तित्व उसी व्यक्ति का होता है जो दु:ख से दु:खी नहीं होता है और न सुख से सुखी। वह तो सदा शान्त रहता है। इस प्रकार गीता में गुणातीत और स्थितप्रज्ञ के जो लक्षण बताये गये हैं वे वास्तव में सर्वांगीण व्यक्तित्व के ही लक्षण हैं, अहिंसक व्यक्तित्व के लक्षण हैं।

आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने व्यक्तित्व के संदर्भ में कहा है कि प्रत्येक व्यक्ति में उसकी स्वयं की कुछ विशेषताएं होती हैं। वे विशेषताएं समाज में नहीं होती हैं वे तो नितान्त वैयक्तिक होती हैं। आचार्य श्री आगे फरमाते हैं कि शरीर वैयक्तिक होता है, वह समाज का नहीं होता है। उसकी सीमा अवश्य होती है लेकिन वह होता वैयक्तिक ही है। चिन्तन वैयक्तिक होता है, भाव और कर्म भी वैयक्तिक होते हैं। सहिष्णुता, विनम्रता आदि गुण व्यक्ति की विलक्षणताएं हैं। अत: व्यक्तित्व का अर्थ है—व्यक्ति की विशेषताओं और विलक्षणताओं का समन्वय। इसी को व्यक्तित्व कहते हैं।

आचार्य श्री महाप्रज्ञ व्यक्तित्व के एक दूसरे रूप को भी व्याख्यायित करते हैं। वे कहते हैं कि व्यक्तित्व का दूसरा रूप व्यवहार है। व्यक्ति की विशेषताएं उसके व्यवहार में झलकती हैं, उसके व्यवहार में अभिव्यक्त होती हैं। विशेषताएं अन्तर्निहित रहती हैं तथा व्यवहार में बाहर आती हैं। व्यवहार समाज को जोड़ने वाला एक तत्त्व है। समाज एक चित्र का निर्माण करता है तथा व्यवहार उसे भीत्ति या आधार देता है। शरीर का व्यवहार कैसा है? वाणी, चिन्तन या भावना का व्यवहार कैसा है? इस पर व्यक्तित्व का मापन और मूल्यांकन होता है। समाज और है क्या? व्यवहार का ही तो प्रतिफलन है। एक का दूसरे के साथ व्यवहार, सबके साथ व्यवहार। समाज का एक रूप बन जाता है। सभी अपने आप में रहे, हमारा किसी के साथ कोई व्यवहार न हो, अनुक्रिया न हो तो ऐसी स्थिति में समाज नहीं बनता है। व्यवहार बाहर आता है। विशेषताएं भीतर रहती हैं। आचार्य महाप्रज्ञ आध्यात्मिक-वैज्ञानिक व्यक्तित्व निर्माण पर जोर देते हैं। व्यक्तित्व के संबंध में भारतीय दृष्टिकोण के विषय में अभी तक आपने इस पाठ में जितना पढ़ा वह बहुत सीमा तक आध्यात्मिक दृष्टिकोण था जो दर्शन की भाषा में प्रस्तुत था। व्यक्तित्व के सन्दर्भ में भारतीय दृष्टिकोण में कहीं न कहीं विस्तृत अथवा आंशिक तौर पर आत्मा, चेतना, कर्म आदि छिपे हुए हैं।

4.3 पाश्चात्य एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण

व्यक्तित्व के सन्दर्भ में हम सिर्फ पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों को ही चुन रहे हैं। अत: यह पूर्ण रूप से मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण ही है। दर्शन में व्यक्तित्व 'जीव' माना जाता है। मनोविज्ञान में व्यक्तित्व न तो बाह्य आवरण ही है और न ही आन्तरिक तत्त्व बल्कि दोनों के सम्मिलित रूप को ही व्यक्तित्व कहा है। जब कि जनसाधारण में व्यक्तित्व का अर्थ व्यक्ति के बाह्यरूप से लगाया जाता है। व्यक्तित्व कोई स्थिर अवस्था न होकर एक गतिशील समष्टि है जो कि परिवेश के प्रभाव से बराबर बदलती रहती है यह व्यक्तित्व व्यक्ति के आचार-विचार, व्यवहार, क्रियाओं, गतिविधियों, बोल्ने का ढ़ंग आदि सभी बातों में झलकता है।

अब आप व्यक्तित्व के शाब्दिक अर्थ को समझे। हिन्दी का व्यक्तित्व शब्द अंग्रेजी के पर्सनेलिटी (Personality) शब्द का पर्याय है। पर्सनेलिटी शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के पर्सोना (Persona) शब्द से हुई है। जिसका तात्पर्य ऐसे आवरण से था जिसे नाटक के समय व्यक्ति विशेष वेश-भूषा धारण करने के लिए उपयोग करता था।

अगर हम सामान्य दृष्टिकोण से देखे तो व्यक्तित्व सर्वांगीण विकास का स्वरूप है। वही दार्शनिक दृष्टिकोण में व्यक्तित्व सम्पूर्ण रूप से एक आदर्श रूप है। यह भी कह सकते हैं कि "व्यक्तित्व आत्म ज्ञान का ही दूसरा नाम है। यह पूर्णता का प्रतीक है।" डॉ. रामनाथ शर्मा ने सामान्य मनोविज्ञान की रूपरेखा में समाजशास्त्रीय दृष्टि से व्यक्तित्व को व्याख्यायित करते हुए कहा है कि व्यक्तित्व सामाजिक क्षेत्र में कुछ गुणों का संगठन मात्र है। मनोविश्लेषणात्मक दृष्टिकोण के अनुसार व्यक्तित्व इदम् (Id), अहम् (Ego) तथा पराहम्

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

नैतिक (Super ego) का स्वरूप है। वहीं मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से व्यक्तित्व वंशपरम्परा तथा वातावरण की देन है। राजकुमार मार्टन के अनुसार—"व्यक्तित्व व्यक्ति के जन्म-जात तथा अर्जित स्वभाव, मूल-प्रवृत्तियां, भावनाओं तथा इच्छाओं आदि का समुदाय है।

व्यक्तित्व से संबन्धित कुछ परिभाषाएं निम्न हैं—

1. वादेव के अनुसार—व्यक्तित्व व्यक्ति का सम्पूर्ण मानसिक संगठन है, जो उसके विकास की किसी भी अवस्था में होता है।
2. नारायन के अनुसार—"व्यक्तित्व यद्यपि व्यक्ति के सभी पक्षों का एक विशिष्ट संकलन होता है, उसके सम्पूर्ण रूप को कुछ पक्ष अन्य की अपेक्षा अधिक विशिष्टता प्रदान करते हैं।

व्यक्तित्व के संबंध में जो सर्वमान्य परिभाषा है 'ऑलपोर्ट' की है जो निम्न है—ऑलपोर्ट के अनुसार—"व्यक्तित्व का संबंध मनुष्य की उन शारीरिक तथा आन्तरिक वृत्तियों से हैं, जिनके आधार पर व्यक्ति अपने वातावरण के साथ समायोजन स्थापित करता है।

हम अब अहिंसा एंव अहिंसक व्यक्तित्व को समझने का प्रयत्न करेंगे। अहिंसा से तात्पर्य है न् हिंसा अर्थात् हिंसा नहीं करना। जहां हिंसा न होती हो वहां अहिंसा है। जो हिंसा नहीं करता है वह अहिंसक है लेकिन ऐसा संभव नहीं है ऐसी स्थिति में हम निम्न दृष्टिकोण से समझने का प्रयत्न करेंगे। जैनधर्म सूक्ष्म हिंसा पर विशेष ध्यान देता है इस दृष्टिकोण से कोई भी अहिंसक नहीं है। भगवान महावीर ने हिंसा के दो रूपों को व्याख्यायित करते हुए कहा है कि हिंसा दो प्रकार की हैं—अर्थ हिंसा और अनर्थ हिंसा। अति आवश्यक जो हिंसा होती है वह अर्थ हिंसा है तथा जहां मनोरंजन, भोग-विलास के लिए हिंसा होती है वह अनर्थ हिंसा है। उन्होंने साधु समाज के लिए हर प्रकार से हिंसा का वर्जन करने को कहा तथा गृहस्थों को अनर्थ हिंसा से बचने के लिए कहा है।

महात्मागांधी जी अहिंसा के विषय में कहते हैं कि अहिंसा केवल निवृत्ति रूप कर्म या अक्रिया नहीं बल्कि बलवान प्रवृत्ति या प्रक्रिया है। प्रेम का शुद्ध व्यापक स्वरूप अहिंसा है। अधिकांश व्यक्ति अहिंसा को कायरता का एक रूप मानते हैं। इस सन्दर्भ में गांधी जी कहते है कि अहिंसा और कायरता परस्पर विरोधी हैं। कायरता हिंसा से भी ज्यादा बुरी है। कायरता में भय है अहिंसा में अभय।

गांधीजी विशेष परिस्थिति में किसी के दुःख दूर करने के लिए की गयी हिंसा को बुरा नहीं मानते हैं बीमारी से तड़पते हुए बछड़े को मारने का उदाहरण हमारे सामने है। इसी प्रकार अहमदाबाद के एक सेठ अम्बालाल द्वारा एक पागल कुत्ते द्वारा उनसठ कुत्तों को काट लेने पर उसने सभी साठ कुत्तों को मरवा दिया था अन्य कुत्तों को काट लेने पर पागलपन फैल सकता था। इस घटना को गांधी जी ने अहिंसा घोषित किया। आचार्य श्री महाप्रज्ञजी हिंसा को तीन भागों में बांटते हैं उनके अनुसार—

1. शोषण, दूसरों के अधिकारों को छीनना, दूसरों की सम्पत्ति को छीनना आदि आक्रामक हिंसा है।
2. उपरोक्त प्रकार हिंसा से बचाव के लिए जो हिंसा होगी वह प्रतिरक्षात्मक हिंसा कही जाएगी।
3. जीवन को चलाने के लिए अति आवश्यक स्थिति में जो हिंसा होती है वह जीवन यापन के लिए हिंसा होगी।

वे यह कहते हैं कि अहिंसक समाज एवं अहिंसक व्यक्ति के लिए यह आवश्यक है कि वह आक्रामक हिंसा, अनावश्यक हिंसा, शोषण और स्वामित्व के लिए हिंसा का पूर्ण वर्जन करे तथा प्रतिरक्षात्मक हिंसा का अल्पीकरण एवं जीवन यापन के लिए हिंसा का भी अल्पीकरण करे। उपरोक्त दृष्टिकोणों से देखें तो जो व्यक्ति जीवन यापन एंव स्वस्थ समाज संरचना बनी रहे इसके लिए हिंसा का न्यूनतम प्रयोग करता हो, उसे अहिंसक व्यक्ति कहा जा सकता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

4.4 अहिंसक व्यक्तित्व निर्माण के सहायक तत्त्व

4.4.1 सत्य

अहिंसक व्यक्तित्व का निर्माण करने में सत्य प्रमुख तत्त्व माना गया है। शाश्वत सत्य की अनुभूति आत्मसंयम और आत्मशुद्धि के द्वारा ही सम्भव है। सत्य का तात्पर्य है अपने दैनिक जीवन में सत्य विचार, सत्य आग्रह, सत्य वाणी और सत्य कर्म पर बल देना। सत्य सदैव, सब जगह विद्यमान रहता है। किसी भी असत्य कर्म का अन्त जहां अशुभ, अनिष्टकारी होता है वहीं सत्य अन्त में शुभ, विजयी और हितकारक होता है। अत: अहिंसक व्यक्तित्व के विकास में सत्य का पालन सभी को यथा सम्भव स्वयं करना चाहिए और दूसरों से भी सत्य आचरण की अपेक्षा करनी चाहिए। सत्य का पालन व्यक्ति आत्मा की शुद्धि और आत्मा पर पूर्ण नियंत्रण स्थापित करके ही कर सकता है इसलिए आत्मशुद्धि और आत्मसंयम की यथोचित शिक्षा दी जानी चाहिए।

4.4.2 अहिंसा

अहिंसा अहिंसक व्यक्तित्व निर्माण का प्राण है। पूर्ण अहिंसा व्यक्ति को पूर्ण अहिंसक स्वरूप प्रदान करती है। वहीं अहिंसा की आंशिक विद्यमानता व्यक्ति में अहिंसा के प्रति तीव्र निष्ठा का भाव जगाती है। अहिंसा केवल शरीर से ही हिंसा का निषेध नहीं करती वरन मन और वाणी से भी हिंसा को निषिद्ध मानती है। हिंसा के कुछ स्वरूप जैसे प्रतिशोध, असत्य, क्रूरता, क्रोध, संचयवृत्ति, सामाजिक-आर्थिक शोषण अहिंसा के भाव को विकसित होने से रोकते हैं, अत: अहिंसा इन पर पूर्ण नियंत्रण लगाती है। अहिंसा सत्य की अनुभूति, उसकी रक्षा का अनमोल साधन हो सकता है। जिस व्यक्ति के मन में अहिंसा समाविष्ट हो जाती है वह आत्मिक दृष्टि से शक्ति सम्पन्न बन जाता है। अपने अन्दर विद्यमान सद्गुणों को उजागर करने में अहिंसा को सबसे सफल साधन माना गया है।

4.4.3 ब्रह्मचर्य

सत्य प्राप्ति के लिए अहिंसा एक साधन है। अहिंसा निस्वार्थ भाव एवं कष्ट सहने की शुद्धतम परिणति है। इसकी प्राप्ति के लिए मानसिक व शारीरिक दृष्टि से शुद्ध होना आवश्यक है। अहिंसक व्यक्तित्व निर्माण में ब्रह्मचर्य का पालन अनिवार्य है। एक व्याभिचारी व्यक्ति अपने जीवन के अधिकांश समय में हिंसा, शोषण तनाव के सहारे काम करता है, वहीं ब्रह्मचर्य का पालक दूसरों की इज्जत करने वाला, ईश्वर के प्रति आस्था रखने वाला, शुद्ध ह्रदयी व्यक्ति होता है जो जीवन की निकृष्ट बुराइयों पर अंकुश लगाने का प्रयत्न करता है। ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला सर्वोच्च ब्रह्म से भी साक्षात्कार करता है। ब्रह्मचर्य एक ऐसा वैचारिक नियंत्रण है, जो व्यक्ति को संयम, अनासक्ति, पवित्रता आदि मानवीय मूल्यों से मर्यादित व अनुशासित करता है।

ब्रह्मचर्य भारतीय संस्कृति की विश्व संस्कृति को एक महान् देन है वैसे सभी धर्म सम्प्रदायों में इस पर चिंतन हुआ है। लेकिन जितना गहरा चिंतन भारतीय दर्शनों में हुआ है उतना कहीं नहीं हुआ है। ब्रह्मचर्य शब्द का अर्थ बहुत विस्तृत है सामान्य तौर पर यह कहा जाता है कि ब्रह्म जैसी चर्या को ब्रह्मचर्य कहते हैं। यह भी अर्थ स्वीकार किया जाता है कि मनुष्य द्वारा ब्रह्मा की खोज में अपना जीवनक्रम रखना ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मा का अर्थ बृहद् कल्पना से भी लिया जाता है। किसी एक सुलक्ष्य पर अपने जीवन को लगाना जिससे स्वत: ही जीवन तपमय व संयममय बन जाए। यहां सुलक्ष्य ही व्यक्ति के लिए ब्रह्मा के समान है।

अहिसंक व्यक्तित्व के लिए व्यक्ति के पास वह शक्ति होनी चाहिए जो जीवन की शुद्धता, सुआचरण को बनाए रख सके। यह शक्ति ब्रह्मचर्य का पालन किये बिना संभव नहीं है इसलिए अहिंसक व्यक्तित्व में ब्रह्मचर्य का होना अति आवश्यक है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

4.4.4 अस्वाद

अहिंसक व्यक्तित्व को शक्तिशाली बनाने के लिये जीभ का नियंत्रण भी आवश्यक होता है। जीभ की चल स्थिति शारीरिक क्षति तो पहुंचाती है, मानसिक स्थिति को भी विकृत कर देती है। जीभ पर नियंत्रण तभी संभव हो सकता है जब शरीर पर नियंत्रण हो। संयम का पूर्ण विकास व्यक्ति को अस्वाद की ओर ले जाता है। स्वाद पर नियंत्रण रखने के लिए पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन आवश्यक होता है। भोजन केवल जीभ के स्वाद के लिए लेने की अपेक्षा शरीर को सक्रिय व स्वस्थ बनाए रखने के उद्देश्य से लेना चाहिए। यही अस्वाद से तात्पर्य है ऐसा भोजन जो सात्विक गुणों का रक्षक और शीघ्र पाचने वाला हो, वही भोजन श्रेष्ठ है।

4.4.5 सहनशीलता

सहनशील होना अपने आप में व्यक्तित्व का विशिष्ट गुण है। कष्ट सहिष्णुता की प्रवृत्ति अहिंसक व्यक्तित्व का उत्तरोत्तर विकास करती है। सहनशील व्यक्ति जीवन में आयी कठिन से कठिन स्थिति का भी सामना बड़े धैर्य के साथ कर सकता है। सत्य पर अडिग रहकर और कष्टों को सहकर व्यक्ति सही अर्थों में अहिंसक बन सकता है। सहनशीलता व्यक्तित्व विकास की सर्वोच्च पराकाष्ठा है जो समस्त सहायक गुणों जैसे श्रद्धा, प्रेम, दया आदि को साकार स्वरूप प्रदान करती है।

4.4.6 प्रामाणिकता

अहिंसक व्यक्तित्व तब और प्रभावशाली बन जाता है जब उसमें प्रामाणिकता अर्थात् सत्य को सिद्ध करने की क्षमता उदित हो जाती है। किसी भी तथ्य की गहराई में पहुंचकर उसे प्रामाणिक आधार प्रदान करने से वह तथ्य सत्यता तक पहुंच जाता है। किसी भी घटना की प्रामाणिकता उस घटना को सत्य स्वरूप बना देती है।

4.4.7 अपरिग्रह

अपरिग्रह व्यक्ति में संचय से दूर रहने की प्रवृत्ति का विकास करता है। जितनी आवश्यकता हो व्यक्ति को उतना ही संग्रह करना चाहिए। आवश्यकता से अधिक संग्रह करने पर समाज में गरीब-अमीर का भेदभाव बढ़ता है। अहिंसा को जीवन में उतारने तथा अहिंसक व्यक्तित्व के विकास के लिए प्रत्येक व्यक्ति को अपरिग्रह की प्रवृत्ति का विकास करना चाहिये। अर्थात् जितनी आवश्यकता हो उतना खर्च करना और आवश्यकता से अधिक संचय की प्रवृत्ति का त्याग करना अपरिग्रह है। अपरिग्रह त्याग की वृत्ति का सूचक है जो भौतिक वस्तुओं पर व्यक्ति की न्यूनतम निर्भरता को दर्शाता है। अपरिग्रह व्यक्तिगत संग्रह की सम्पत्ति पर बल देता है।

4.4.8 सादगी

सादगी पूर्ण जीवन व्यक्ति के विचारों को उच्चता प्रदान करता है। जितनी कम तड़क भड़क होगी, व्यक्ति का मन उतना निर्मल और पवित्र होगा। शरीर की सादगी जहां बाह्य आवरण का परिचायक है वहीं मन की सादगी आत्मा की शुद्धता की द्योतक है। गांधी अपने जीवन में सादा जीवन पर बल देते रहे। उन्होंने वैभव-विलास का त्याग कर जीवन पर्यन्त लंगोटी धारण की, ऐसी चीजों के उपयोग से बचे रहे जो भौतिक जीवन की ओर ले जा सकती थी। तभी उन्होंने अहिंसक व्यक्तित्व को अपने अंदर समाहित किया और अहिंसा के महान् पुजारी कहलाएं। यह सत्य है कि जितना व्यक्ति का जीवन सादगी पूर्ण होगा उतना ही व्यक्ति अहिंसा के करीब पहुंचता जायेगा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

4.4.9 अस्तेय

सादगी को दूसरे रूप में हम अस्तेय के विकास का मार्ग मान सकते हैं। व्यक्ति के जीवन में जितनी सरलता होगी, भौतिक वस्तुओं के प्रति जितना कम लगाव होगा, उतना ही वह चोरी, स्वार्थ से बचेगा। चोरी केवल सामान को छुपाकर लेना या बिना आज्ञा से लेना ही नहीं है, साथ ही जिस वस्तु की आवश्यकता न हो उसे भी लेना चोरी है। भौतिक पदार्थों की चोरी की तरह मानसिक विचारों की चोरी से भी बचने का यथासंभव प्रयास करना चाहिए।

4.4.10 शारीरिक श्रम

व्यक्ति अहिंसा का जीवन में समुचित विकास तभी कर सकता है जब वह जीवन में श्रम की प्रतिष्ठा स्थापित करता है। शारीरिक श्रम शरीर की दुर्बलता को दूर कर व्यक्तित्व को अहिंसक रूप देता है। श्रम का पालन करने वाला ही अस्तेय का पालन कर सकता है। शारीरिक श्रम शोषण और वर्ग भेद की विकृति से समाज को मुक्त करता है। अतः अहिंसक व्यक्तित्व के निर्माण के लिए शरीर श्रम को प्रधानता दी जानी चाहिए।

4.4.11 शाकाहार

शाकाहार पर बहुत कहने से पहले यह स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि मैंने अपने जीवन में बल्कि आपने भी समाज में कई ऐसे शाकाहारी व्यक्ति को देखा होगा जो निर्दयता पूर्वक व्यवहार करते हैं, शोषण में लगे हुए हैं। वहीं कई ऐसे मांसाहारी व्यक्ति मिल जाएंगे जो कि बहुत अनुशासित हैं, दयालु हैं उनमें सेवाभाव है। फिर भी अहिंसक व्यक्तित्व निर्माण के लिए शाकाहारी होना आवश्यक है। मानवता के लिए यह शोभा नहीं देता कि वह पशु की हत्याकर उसको खाए क्योंकि मनुष्य ही एक मात्र ऐसा प्राणी है जिसमें विवेक बुद्धि है। जिसके पास हर तरह के ज्ञान का अपार भंडार है अपने बच्चों परिवार के प्रति प्रेम, दया, करुणा का भाव है और वही प्राणियों को कत्ल करने को तैयार रहता है। प्रेम, दया, करुणा को किसी सीमा में नहीं बांधना चाहिए। यह सम्पूर्ण प्राणि जाति के लिए सीमा रहित होनी चाहिए। अहिंसा का मूल आधार शाकाहार है।

बोध प्रश्न 1:

---

1. *नारायन के अनुसार व्यक्तित्व की क्या परिभाषा है?*
2. *अहिंसक व्यक्तित्व निर्माण के सहायक तत्वों का वर्णन करें।*

4.5 अहिसंक व्यक्तित्व निर्माण

अहिसंक व्यक्तित्व का निर्माण तभी संभव है जब हम आन्तरिक एवं बाहरी दोनों ही परिर्वतन करें। किसी एक के परिर्वतन से अहिंसक व्यक्तित्व का निर्मांग संभव नहीं है क्योंकि हमारे अन्दर हिंसा एंव अहिंसा दोनों के बीज उपस्थित हैं। यह भी सत्य है कि दोनों में से कोई भी समाप्त नहीं होता है परिर्वतन सिर्फ इतना होता है कि एक को विकसित कर लेते हैं दूसरा अविकसित रह जाता है। किसी बड़े वृक्ष के नीचे दूसरा वृक्ष नहीं पनप पाता है क्योंकि उसे पर्याप्त मात्रा में जल, वायु और प्रकाश नहीं मिल पाता है। यही स्थिति यहां होती है। हमें अहिंसक व्यक्तित्व निर्माण के लिए अहिंसा के बीज को एक बड़े वृक्ष का रूप देना है साथ ही साथ हिंसा के बीज को पनपने के लिए पर्याप्त परिस्थितियां नहीं मिल पाये इसके लिए बाहरी व्यवस्था परिर्वतन भी करना है। इसलिए अहिंसक व्यक्तित्व निर्माण के लिए निम्न दिशाओं में प्रयत्न करने होंगे।

4.5.1 रसायन परिवर्तन

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

शरीर का संगठन एवं स्वभाव दोनों को अन्तःस्रावी ग्रन्थियों से निकलने वाले रसायन (हार्मोन्स) प्रभावित करते हैं। पिच्यूटरी से निकलने वाले हार्मोन्स अन्य ग्रन्थियों से निकलने वाले हार्मोन्स को नियंत्रित करते हैं। पिच्यूटरी के पिछले भाग से निकलने वाले हार्मोन्स में यदि कमी हो जाए तो व्यक्ति चिंता रहित हो जाता है।

थायराइड ग्रन्थि जब अधिक सक्रिय होती है तब आयोडीन रस अधिक निकलता है और इसका परिणाम यह होता है कि व्यक्ति के हृदय की धड़कन बढ़ जाती है तथा वह आजीवन अशान्ति तथा उत्तेजना अनुभव करता है जो कि हिंसा के कारण हैं।

यह भी देखा गया है कि जब व्यक्ति अत्यन्त क्रोधित एवं डरा हुआ या सहमा हुआ होता है उस स्थिति में यह ग्रन्थि कार्य नहीं करती है अतः इस ग्रन्थि से सन्तुलित स्राव निकले यह आवश्यक है जब इस ग्रन्थि से सन्तुलित स्राव निकलते हैं तब स्वास्थ्य तो ठीक रहता ही है चित्त भी प्रसन्न एंव आनन्दित रहता है। एड्रिनल ग्रन्थि के हार्मोन्स व्यक्ति को संघर्ष के लिए तैयार करते हैं। यह कार्य मुख्य रूप से एपीनेफ्रीन एंव नोर-एपीनेफ्रीन नामक रसायन के द्वारा होता है।

गोनाड्स (कामग्रन्थि) से निकलने वाले रसायन स्त्रियोचित व पुरुषोचित परिवर्तन तो करते ही हैं लेकिन इनका असन्तुलित स्राव व्यक्ति में काम भावनाओं को अनियन्त्रित भी कर देता है जिससे व्यक्ति गलती कर बैठता है।

अन्य ग्रन्थियां भी किसी न किसी रूप में व्यक्ति के स्वभाव पर प्रभाव डालती हैं। उपरोक्त स्रावों का असन्तुलन व्यक्ति को हिंसा की तरफ प्रेरित करता है इसलिए अहिंसक व्यक्ति निर्माण के लिए इनके स्रावों का सन्तुलित होना आवश्यक है। यह संतुलन दो प्रकार से किया जा सकता है—एक चिकित्सक की सलाह से बाहर से कृत्रिम रसायन लेकर दूसरा ध्यान के माध्यम से। दूसरा माध्यम ज्यादा उचित है क्योंकि इसमें किसी प्रकार से साइड इफेक्ट का खतरा नहीं है तथा कोई खर्च भी नहीं होता है एंव सहज व सरल है, प्रभाव भी स्थाई है। प्रेक्षा ध्यान में चैतन्यकेन्द्र प्रेक्षा, लेश्याध्यान व अनुप्रेक्षा के द्वारा अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के स्रावों को संतुलित किया जा सकता है। अतः इन प्रयोगों के द्वारा अहिंसक व्यक्तित्व का निर्माण संभव है।

4.5.2 अहिंसक व्यक्तित्व निर्माण में परिवार की भूमिका

मनुष्य समाज के साथ अपने जन्म की पहली सांस के साथ जुड़ा होता है। जब तक वह संसार में रहता है, समाज की स्थिति का, लोगों का उस पर स्थायी-अस्थायी प्रभाव पड़ता रहता है। व्यक्ति का व्यक्तित्व जो उसे हिंसक या अहिंसक स्वरूप प्रदान करता है उसमें भी समाज की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। एक व्यक्ति अपने जीवन में हिंसा को प्रश्रय देता है तो निश्चित ही वह व्यक्ति समाज से तिरस्कृत, प्रताड़ित रहा होगा? समाज में उसका यथोचित स्थान, उसका कार्य क्षेत्र उसे हिंसक-अहिंसक व्यक्तित्व बनाने में उत्तरदायी कारक होता है। अगर समाज में व्यक्ति को प्रतिष्ठा दी जायें, उसकी कार्य क्षमता की प्रशंसा की जायें एंव उपयोग किया जाए तथा उसके व्यवहार को आदर्श रूप में सबके सामने रखा जायें, तो ऐसे में व्यक्ति समाज को उन्नति की ओर ले जाने को अग्रसर होगा। वास्तव में, देखा जायें तो एक समाज जो कि परिवार, पड़ौस सबसे मिलकर बनता है। व्यक्ति को हिंसक भी बना सकता है और अहिंसक भी बना सकता है। जन्म से कोई भी हिंसा-अहिंसा का पालक नहीं होता है। परिवार में माता-पिता, दादा-दादी, बड़े भाई-बहिन, छोटे भाई-बहिन के साथ रहकर वह जीवन को सार्थक बनाता है। परिवार का वातावरण अगर परस्पर सौहार्द, सह-अस्तित्व, प्रेम को बढ़ाने वाला होता है तो बच्चे के अन्दर इन गुणों का सहज में विकास होता है। संयुक्त परिवारों में दादा-दादी अपने बच्चों को अच्छी प्रेरणास्पद बातें बताकर उनके व्यक्तित्व को प्रभावशाली बना सकते हैं। जहां परिवारों में दादा-दादी रहते हैं वहां छोटे बच्चों का अधिकांश समय इन्हीं के सामीप्य में गुजरता है। ऐसे में दादा-दादी का कर्त्तव्य होता हैं कि वे बच्चों को अच्छा मार्ग-दर्शन प्रदान करें। जिन परिवारों में दादा-दादी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

का सामीप्य बच्चों को मिलता है उन परिवारों के बच्चें अन्य एकल परिवारों की तुलना में अधिक सभ्य, संस्कारित होते हैं। संयुक्त परिवारों में दादा-दादी की भूमिका इस बात के लिए महत्त्वपूर्ण होती है कि वे बच्चों को अहिंसक, प्रभावी व्यक्तित्व से परिपूर्ण कर सकें। बच्चों की जिज्ञासाओं का समाधान कर, उन्हें प्रेम, अपनत्व, भाईचारे, सहयोग की शिक्षा देकर उन्हें अहिंसक बनाया जा सकता है।

वर्तमान समय में संयुक्त परिवार टूट रहे हैं, एकल परिवारों का प्रचलन बढ़ा है। इन परिवारों में माता-पिता, बच्चा यही लोग होते हैं। इससे अधिक हुआ तो एक बड़ा भाई-बहिन, या एक छोटा भाई-बहिन भी हो सकते हैं। बच्चा जन्म से इन्हीं लोगों के बीच रहता, बढ़ता है अतः ऐसे परिवारों में माता-पिता की जिम्मेदारी बढ़ जाती है। माता-पिता की उपेक्षा से बच्चा गलत आचरण करने लगता है। समय की व्यस्तता, कार्य की अधिकता में अगर माता-पिता बच्चों को समय नहीं देते तो ऐसे बच्चे उपेक्षित, हीन अनुभव करते हैं। वहीं माता-पिता का पर्याप्त समय, उनका दुलार, उनकी बच्चे से जुड़ी आकांक्षायें बच्चों को अच्छा व्यक्ति बनाने में सहायता करती हैं। माता अगर नौकरी पेशा है तब भी वह अपनी नौकरी के अलावा बचे समय में बच्चों की गतिविधियों में सहभागी बनकर उन्हें अच्छा वातावरण दे सकती है। माता-पिता, बड़े भाई-बहिन बच्चे के लिए आदर्श होते हैं। ऐसे में इन लोगों का विशेष दायित्व बनता है कि आपसी कलह को बच्चे पर प्रगट न होने दें। अगर किसी बात को लेकर मतभेद हो तो आपस में बैठकर शीघ्रता से सुलझाने का प्रयास करें। घर का अच्छा-बुरा वातावरण बच्चे के विकास को प्रभावित करता है अतः माता के प्रेम, पिता के आचरण, बड़े भाई-बहिन के सहयोग तथा छोटे भाई-बहिन के सम्मान के द्वारा अहिंसक व्यक्तित्व का निर्माण सरलता से हो सकता है। अहिंसक व्यक्तित्व निर्माण में परिवार प्रथम सीढ़ी मानी गई है। जब व्यक्ति के व्यक्तित्व का आधार मजबूत बन जायेगा तो आगे का रास्ता सहज होता जायेगा। परिवार के सदस्यों के बीच रहकर बच्चा उनका व्यवहार अपने जीवन में अपनाता है, उसके अलावा आस-पड़ौस के वातावरण का भी उस पर असर पड़ता है। आस-पड़ौस का वातावरण अगर सहयोग और भ्रातृत्व को विकसित करने वाला है तो बच्चा स्वाभाविक रूप से उनसे शिक्षा लेता है। व्यक्तित्व के निर्माण में जहां परिवार आधार या नींव स्वरूप है वहीं समाज उस व्यक्तित्व को निखारने, उसे और विकसित करने में प्रभावशाली भूमिका निभाता है। समाज के लोगों के आपसी कटु संबंध जहां तनाव, द्वेष को बढ़ाते हैं, वहीं उनके मधुर संबंध आपसी प्रेम की प्रगाढ़ता को दर्शाते हैं। परस्पर सहयोग, सद्भाव की प्रवृत्ति, परोपकार, दया, सहिष्णुता जैसे उच्च आदर्श अहिंसक व्यक्तित्व को और अधिक स्वस्थ, सुन्दर स्वरूप प्रदान करते हैं चूंकि व्यक्ति का सम्पूर्ण जीवन समाज के साथ ही चलता है अतः समाज की भूमिका अग्रणी होती है।

4.5.3 अहिंसक व्यक्तित्व निर्माण में शिक्षा का योगदान

शिक्षा अहिंसक व्यक्तित्व निर्माण में अपना सक्रिय योगदान दे सकती है। शिक्षा का मूल उद्देश्य समाज से जुड़कर भावी निर्माताओं को सही दिशा देने का होता है। समाज के विकास में यह शिक्षा का प्रभाव स्थायी होता है। शिक्षा व्यक्ति में रचनात्मक दृष्टिकोण का विकास कर सकती है। स्थान-स्थान पर जाकर, जन जागरूकता के द्वारा बुराइयों का अहिंसक तरीके से प्रतिकार करके व्यक्ति को शिक्षित किया जा सकता है। शिक्षा महज किताबी नहीं होनी चाहिए वरन् उसमें व्यक्तित्व का सम्पूर्ण विकास करने की क्षमता होनी चाहिए। प्राइमरी स्तर पर बच्चें की भावनाएं बहुत कोमल होतीं हैं। ऐसे में शिक्षक द्वारा दी गई शिक्षा बच्चे के अन्दर तक समाहित हो जाती है। शिक्षण संस्थाओं का वातावरण व्यक्तित्व को उचित अनुचित स्वरूप प्रदान करता है। प्राइमरी स्तर पर बच्चों को ऐसे शिक्षकों से शिक्षा दिलवानी चाहिए जो कि उनकी भावनाओं से जुड़कर उन्हें शिक्षित करें। बचपन में बच्चों को शिक्षक से मिली मार उसे हिंसक प्रवृत्ति की तरफ ले जाती है। ऐसे बच्चे प्यार न मिल पाने की स्थिति में अपराधी बन जाते हैं। इसलिए शिक्षकों को बच्चों के व्यक्तित्व को उभारना है तो उनके साथ उनके जैसे बनने की प्रवृत्ति का विकास करना होगा। उनके अच्छे कार्यों पर प्रोत्साहन, गलत कार्यों पर समझाने की प्रवृत्ति बच्चे को सही दिशा दे सकती है। शिक्षाप्रद घटनायें, पुस्तकों की अपेक्षा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

व्यावहारिक जीवन पर बल देकर अध्यापक बच्चे को मार्ग दर्शन दे सकते हैं। जैसे-जैसे बच्चे की शिक्षा का स्तर बढ़ता है वैसे-वैसे अध्यापक का दायित्व भी बढ़ता जाता है। छात्र को समझने, उनके व्यवहार को देखने, उन्हें सही दिशा निर्देश देने, उन्हें प्रोत्साहित करने में अध्यापक की भूमिका बढ़ती जाती है। अध्यापक छात्र को डांटकर नहीं वरन् प्रेम के द्वारा उनमें अच्छी ज्ञानोपयोगी बातों का संचार कर सकता है। अध्यापक की यह भूमिका या दायित्व तब और विस्तृत हो जाता है जब छात्र कॉलेज में प्रवेश लेता है। उम्र का यह मुकाम बहुत नाजुक होता है। जहां छात्र के प्रति जरा सी उपेक्षा उसे पथ से विचलित कर देती है। प्राइमरी स्तर के बाद कॉलेज का स्तर ऐसा होता है जहां छात्र को अपने अध्यापक का मार्ग-दर्शन जरूरी होता है। कॉलेज स्तर पर छात्र को सही ढंग से नहीं समझ पाने पर छात्र उग्र भी हो सकता है। यहां अध्यापक का दायित्व बनता है कि अब वह छात्र के साथ सिर्फ छात्र की तरह नहीं वरन् मित्र की तरह व्यवहार करें। उसकी समस्याओं को मित्रवत् समझें, उसकी उपेक्षा करने की बजाय अगर सहयोग कर सकें तो करने का प्रयत्न करें। शिक्षा के सही विकास के लिए अध्यापक का निर्देशन तो आवश्यक है ही साथ ही सही पाठ्यक्रम चलाया जाये यह भी जरूरी है। पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिए, जो छात्र को नैतिक, आध्यात्मिक, सामाजिक स्तर पर लाभकारी हो जिससे उनके व्यक्तित्व का विकास हो सके। साथ ही इसमें महान् लोगों की जीवनी, शिक्षाप्रद घटनाओं का समावेश होना चाहिए, पाठ्यक्रम रोजगारोन्मुख होना चाहिए। पाठ्यक्रम में मात्र सैद्धांतिक बातों को महत्त्व नहीं देना चाहिए, इसके साथ व्यावहारिक प्रयोगों पर बल देने की प्रवृत्ति होनी चाहिए। व्यावहारिक ज्ञान सिद्धान्त की अपेक्षा ज्यादा प्रभाव डालता है। ऐसी शिक्षा जो समाज का सृजन करें, स्वावलम्बन की क्षमता का विकास करें, श्रम की प्रतिष्ठा करें ज्यादा प्रभावी हो सकती है। शिक्षा में छात्रों की जिज्ञासा-समझ के अनुकूल यथोचित पाठ्यक्रम व्यक्तित्व को सही दिशा-निर्देश देने में सहयोगी होता है।

4.5.4 अर्थ एंव अहिंसक व्यक्तित्व निर्माण

आर्थिक स्थिति भी अहिंसक व्यक्तित्व का निर्माण कर सकती है। आर्थिक जीवन इच्छा, आवश्यक भोग, शोषण पर आधारित होता है। जब तक असीमित इच्छाएं, आवश्यकताएं होती हैं, परिग्रह की वृत्ति रहती है तब तक समाज में शोषण चलता रहता है। अतः इस बात पर जोर देने की आवश्यकता है कि इच्छा व आवश्यकताओं का सीमांकन किया जाये। परिग्रह जहां तक उचित हो वहीं तक किया जाये। आवश्यकता के अतिरिक्त संग्रह करने की बजाय उसे समाज के गरीब लोगों के उत्थान में लगाया जायें। जो भी धन अर्जन किया जायें, वह न्यायोचित तरीके से बिना शोषण किया जायें। आर्थिक व्यवस्था उतना ही व्यक्तित्व विकास में महत्त्व रखती है जितना सामाजिक व्यवस्था। आर्थिक क्षेत्र में सहयोग, प्रतिस्पर्द्धा का अभाव, सामंजस्य बनाए रखने की प्रवृत्ति, शोषण विहीन आर्थिक विकास अपराधों को कम करता है और व्यक्तित्व निर्माण में सहयोग देता है। व्यक्ति द्वारा विसर्जन की प्रवृत्ति से विकास अधिक होता है। यदि संग्रह की प्रवृत्ति बढ़ती रही तो इससे गरीब-अमीर के बीच असंतुलन स्थापित होने का खतरा रहता है।

गरीब अधिक गरीब और अमीर अधिक अमीर होने पर गरीबों के अन्दर हिंसक वृत्ति उजागर होने लगती है। श्रम का पूरा लाभ नहीं मिल पाने पर वे आक्रामकता की ओर उन्मुख होने लगते हैं। आर्थिक क्षेत्र में अमीरों को चाहिए कि वे देने की प्रवृत्ति का विकास करें। अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के बाद गरीबों की मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करें ताकि उनके अन्दर की आक्रामक प्रवृत्ति का अन्त हो सकें। हिंसा का व्यावहारिक आचरण गरीबों, शोषितों द्वारा किया जाता है अतः उनकी समस्या का समाधान कर उन्हें सहायता प्रदान करनी चाहिए। सरकारी संगठन भी अहिंसक वातावरण का निर्माण कर सकते हैं। गैर सरकारी संगठनों के द्वारा गरीब ग्रामीण लोगों की अधिक से अधिक सहायता की जा सकती है क्योंकि ये संगठन ग्रामीण क्षेत्रों के विकास के लिए ही संगठित किए जाते हैं अतः इन संगठनों द्वारा ग्रामीण विकास को गम्भीरता पूर्वक प्रोत्साहन देना चाहिए। इन संगठनों को अधिक समय गरीबों के बीच उनकी समस्याओं के समाधान के लिए व्यतीत करना चाहिए। अशिक्षितों को समुचित शिक्षा, स्त्रियों के विकास, बीमारों का इलाज, अपाहिजों को

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रोत्साहन देने के लिए अहिंसा कार्यक्रमों का समावेश जरूरी है। गैर सरकारी संगठन नुक्कड़ नाटकों, गीत, संगीत, कहानी, चित्र, प्रदर्शनी के द्वारा गरीबों की समस्याओं के समाधान तथा बुराइयों को रोकने की दिशा में अग्रसर हो सकते हैं। गरीबों को अगर सही शिक्षा दी जायें तो वे अधिक अहिंसक जीवन को अपना सकते हैं। इसमें शिक्षण संस्थाओं के साथ गैर सरकारी संगठनों की जागरूक प्रवृत्ति भी प्रभावशाली होती है। जो स्थान-स्थान घूमकर, जन चेतना को जागृत कर सकते हैं।

4.5.5 अहिंसक व्यक्तित्व निर्माण में समाज के प्रमुख व्यक्तियों की भूमिका

हर क्षेत्र में प्रतिष्ठित व्यक्ति होते हैं जिनका आचरण समाज के शेष लोगों के लिए अनुकरणीय होता है। राजनैतिक क्षेत्र में उच्च आदर्शों जैसे शान्ति, सहयोग, प्रेम पर बल देने वाले लोग, समाज की बुराइयों को खत्म करके समाज में समता की स्थापना करने वाले समाज सुधारक, शोषणविहीन समाज की अपेक्षा शोषण मुक्त समाज पर बल देने वाले, आर्थिक धुरी को चलाने वाले लोग, साहित्य के द्वारा अच्छे विचारों को समाज में स्थापित करने वाले लोगों के उच्च विचारों को अपनाने पर बल दिया जाना चाहिए। प्रतिष्ठित व्यक्तियों के आचरण जीवन को परिवर्तित करने में सहायक हो सकते हैं। हमारे देश में अलग-अलग धर्म, सम्प्रदाय हैं। सब धर्मों के अलग-अलग इष्ट, प्रतिष्ठित महापुरुष हैं। हिन्दू धर्म में राम, कृष्ण, जैनधर्म में महावीर स्वामी, बौद्ध धर्म में महात्मा बुद्ध, ईसाई धर्म में ईसामसीह, इस्लाम धर्म में पैगम्बर आदि के जीवन से जुड़े आदर्शों को प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में उतारने की शिक्षा दी जानी चाहिए।

बोध प्रश्न 2:

---

1. *अहिंसक व्यक्तित्व निर्माण में हार्मोन्स का क्या योगदान है?*
2. *अहिंसक व्यक्तित्व निर्माण में शिक्षा का योगदान बताएं।*

4.5.6 अहिंसक व्यक्तित्व निर्माण एवं राजनीति

राजनैतिक वातावरण भी अहिंसक व्यक्तित्व का निर्माण करने में महत्त्वपूर्ण कारक माना जा सकता है। राजनीति एक ऐसा क्षेत्र है जहां हिंसा, भ्रष्टाचार, तनाव, संघर्ष उत्पन्न होते हैं, पोषित होते हैं, प्रसारित होते हैं। राजनैतिक संघर्ष समाज के संघर्ष को जन्म देते हैं। कभी संघर्ष का मुद्दा साम्प्रदायिक होता है, कभी जातीय तो कभी प्रांतीय। इन मुद्दों में जब समाजगत् रूढ़ियां और आर्थिक बुराइयां भी शामिल हो जाती हैं तब संघर्ष भंयकर रूप धारण कर लेता है। राजनीति के दूषित होने से उपजे तनाव को राजनैतिक स्तर के लोगों द्वारा ही सुलझाया जा सकता है। जैसा आचरण राजनेताओं द्वारा किया जाएगा वैसा आचरण आम जनता भी करेगी। अगर सरकार भ्रष्ट है तो जनता भी भ्रष्ट आचरण करेगी। जब जनता के द्वारा भ्रष्टाचार, हिंसा को बढ़ाया जायेगा तो देश की पूरी व्यवस्था अस्त-व्यस्त होने लगेगी। देश को अव्यवस्था से बचाने के लिए जनता को सही दिशा की शिक्षा देना आवश्यक है। यह शिक्षा राजनेताओं के सही व्यवहार से ही संभव हो सकती है। राजनेताओं को चाहिए कि वे भ्रष्टाचार जो कि समस्त बुराइयों की जड़ और हिंसा की जन्मदात्री है को समूल नष्ट करने का प्रयास करें। मंत्रीगण, नेतागण न तो स्वयं भ्रष्ट आचरण करें न दूसरों को करने दें। इसके लिए कठोर दण्ड की व्यवस्था का प्रावधान किया जायें। केवल अहिंसा से भ्रष्टाचार को मिटाया नहीं जा सकता वरन् कठोर कार्यवाही करके भ्रष्टाचार की जड़ को मिटाया जा सकता है। राजनेता अगर स्वयं अपने जीवन में सही आचरण करने पर बल देंगे, बुराई को मिटाने के लिए संकल्प बद्ध होंगे। तभी राजनीति में सुधार किया जा सकता है। राजनेता देश के नीति निर्माता होते हैं, अनुकरणीय आदर्श होते हैं, अतः इन्हें अपने जीवन को सही मार्ग पर चलाने की ओर प्रयत्नशील रहना चाहिए। जनता के मन में एक छवि बैठी है कि राजनेता स्वार्थी, मतलबी होते हैं। जब चुनाव पास में होते हैं तो उनके आगे-पीछे हाथ बांधे घूमते हैं और जैसे ही

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

चुनाव में जीत सत्ता तक पहुंचते हैं अपनी शक्ल भी मतदाताओं को नहीं दिखाते और न ही चुनाव समय में किए वायदों को पूरा करते हैं। राजनेता का व्यक्तित्व जनता के लिए आदर्श स्वरूप होता है इसलिए राजनेताओं को जनता के प्रति अपनी जिम्मेदारियों का सही ढंग से निर्वहन करना चाहिए। जनता के कार्यों को सम्पादित कर, देश के प्रति निष्ठा की भावना जागृत कर, तनावों, संघर्षों को समाप्त कर, जनता को समुचित मार्ग दर्शन दिया जाना चाहिए। देश में शांति और सुव्यवस्था बनाए रखनी है तो प्रत्येक नागरिक को राजनैतिक अहिंसक प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। जनता लोकतंत्र की आधार स्तम्भ मानी जाती है। यदि जनता अहिंसक आचरण को जीवन में उतार लेगी तो राज व्यवस्था की कमियां स्वत: ही दूर हो जायेगी। जन सामान्य में विभिन्न गुणों जैसे मैत्री भावना, समन्वयवादी दृष्टिकोण, नैतिक दायित्वों के प्रति जागरूकता, अनेकांत की भावना, सापेक्षता आदि का विकास करके उनके व्यक्तित्व में अहिंसा को समाविष्ट किया जा सकता है।

4.6 प्रश्नावली

1. निबंधात्मक प्रश्न

1. अहिंसक व्यक्तित्व के मुख्य तत्त्वों की विवेचना कीजिये।
2. अहिंसक व्यक्तित्व निर्माण में परिवार एवं समाज की क्या भूमिका हो सकती है? विस्तार से बताएं।
3. अहिंसक व्यक्तित्व निर्माण में अर्थ एंव राजनीति कैसे सहायक हो सकती है? विस्तार से लिखें।
4. "व्यक्तित्व" शब्द की विवेचना कीजिए तथा बताएं कि आचार्य महाप्रज्ञ, महात्मा गांधी एंव महर्षि अरविन्द पूर्ण व्यक्तित्व को किस प्रकार व्याख्यायित करते हैं?

2. लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. ब्रह्मचर्य अहिंसक व्यक्तित्व के लिए क्यों आवश्यक है?
2. अहिंसक व्यक्तित्व निर्माण में अपरिग्रह की क्या भूमिका है?
3. भारतीय दृष्टिकोण से व्यक्तित्व को परिभाषित कीजिए।
4. चैत्य पुरुष के सन्दर्भ में महर्षि अरविन्द के विचार लिखें।
5. गीता के अनुसार गुणातीत व्यक्तित्व हिंसक है या अहिंसक? विवेचना कीजिए।

3. वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. "तत्त्वमासे श्वेतकेतो" यह वाक्य किस ग्रन्थ से लिया गया है?
2. क्या ऋग्वेद पुरुष को व्यापक तथा गम्भीर बताता है?
3. महर्षि अरविन्द ने सर्वांगपूर्ण व्यक्तित्व के लिए किस शब्द का प्रयोग किया है?
4. क्या परिपक्व व्यक्तित्व एवं स्थिर बुद्धि वाले पुरुष के लक्षण समान हैं?
5. "आध्यात्मिक-वैज्ञानिक व्यक्तित्व का निर्माण" यह सूत्र किस महापुरुष की देन है?

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. नया मानव नया विश्व—आचार्य महाप्रज्ञ, आदर्श साहित्य संघ, चुरू

☆☆☆

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

संवर्ग 2 नशामुक्ति और जीवन विज्ञान

इकाई–5 : नशे की परिभाषा, प्रकृति और प्रकार

संरचना

5.0 प्रस्तावना

5.1 उद्देश्य

5.2 नशे का प्रादुभार्व

5.3 प्राचीन समय में नशे का सेवन

5.4 मिथ्याधारणाएं एवं अन्धविश्वास

5.5 नशे का अर्थ एवं परिभाषाएं

5.5.1 अर्थ

5.5.1.1 नशा

5.5.1.2 अभ्यस्तता

5.5.1.3 निर्भरता

5.5.1.4 लत

5.5.2 परिभाषाएं

5.6 नशे के लक्षण

5.7 नशे की प्रकृति

5.8 नशे के प्रकार

5.8.1 निंद्राकारी औषधियां

5.8.1.1 अफीम

5.8.1.2 मार्फिन

5.8.1.3 हेरोइन

5.8.1.4 कोडिन

5.8.1.5 मैथाडोन

5.8.1.6 वेल्कोनल

5.8.1.7 टिलिडिन

5.8.1.8 अन्य

5.8.2 अनिंद्राकारी औषधियां

5.8.2.1 उत्तेजक

5.8.2.2 शामक और शांतिकारक

5.8.2.3 विभ्रामक

5.8.2.4 जैविक द्रव्य

5.9 प्रश्नावली

5.10 संदर्भ ग्रंथ

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

5.0 प्रस्तावना

वर्तमान युग वैज्ञानिक युग है। विज्ञान के साथ-साथ औद्योगिक एवं तकनीकी विकास हुआ। व्यक्ति के समक्ष सुख-सुविधाओं का अम्बार लग गया लेकिन इन सुख-सुविधाओं के साथ, विकास के साथ मानसिक शांति का विकास न हो सका। सुविधा के साधनों के अनुपात में मानसिक तनाव, कुंठा, चिंता आदि समस्याएं अधिक बढ़ी हैं। इन समस्याओं ने कई अन्य समस्याओं को उत्पन्न किया है। समाज में आपराधिक वृत्तियों में वृद्धि हुई है। हिंसा, क्रूरता, आतंक आदि समस्याएं समाज में अपना विकराल रूप धारण कर रही हैं। नशे की समस्या भी इनमें से एक है जो कई समस्याओं की जड़ है। नशे की समस्या व्यक्ति विशेष या स्थान विशेष की न होकर चारों तरफ फैली हुई है। विद्यालय, महाविद्यालय जहां से विद्याओं का अर्जन होता है वहां भी यह समस्या बनी हुई है। शिक्षा जगत् के समक्ष यह एक चुनौती भी है और उसके पास एक समाधान भी है। साथ ही शिक्षा जगत् से यह अपेक्षा की जाती है कि वह विद्यार्थियों में ऐसे संस्कार दे जिससे विद्यार्थी नशामुक्त हो सकें।

कहा गया है नशा नाश का द्वार है। इसके सेवन से व्यक्ति सफलता का जीवन नहीं जी सकता। नशा एक धीमा जहर है। जहर उसी को मारता है जो इसका सेवन करता है लेकिन नशा व्यक्ति के लिए ही नहीं वरन् परिवार, समाज तथा राष्ट्र के चरित्र को भी नुकसान पहुंचाता है। नशे का सेवन करने वाला व्यक्ति इसे छोड़ नहीं पाता है। उसके लिए वह बाध्यता बन जाती है। नशे का सेवन करने वाले तथाकथित सुख एवं शांति के लिए इन नशीले पदार्थों का सेवन करते हैं लेकिन इससे लाभ की जगह उन्हें हानियां ही प्राप्त होती हैं। नशीले पदार्थों का सेवन करने वाले व्यक्ति कुकृत्य करने से नहीं हिचकिचाते हैं। ऐसे व्यक्ति परिवार, समाज तथा राष्ट्र के लिए समस्या बन जाते हैं। ये नशीले पदार्थ तात्कालिक सुखानुभूति तो करवाते हैं लेकिन इनका दुष्प्रभाव भी कम नहीं होता है। इस तात्कालिक सुखानुभूति की कीमत भी बहुत महंगी होती है, जिसे व्यक्ति को चुकानी पड़ती है। ऐसे व्यक्ति नशे को चाहते हुए भी नहीं छोड़ पाते हैं। धीरे-धीरे वे कई रोगों के शिकार हो जाते हैं। वे आत्महत्या तक करने को तैयार हो जाते हैं। इस प्रकार नशा व्यक्ति के जीवन में एक बहुत बड़ा अभिशाप है।

5.1 उद्देश्य

इस अध्याय को पढ़ने के बाद निम्न जानकारियां प्राप्त हो सकेंगी—

—प्राचीन समय में नशे का सेवन

—नशे के प्रति मिथ्या धारणा एवं अंधविश्वास

—नशे का अर्थ, परिभाषाएं, लक्षण एवं प्रकृति

—नशे के प्रकार

5.2 नशे का प्रादुर्भाव

प्रारंभ से ही मनुष्य अधिक खुशी व जीवन की सुविधाएं ढूंढता रहा है और एक आवश्यकता पूरी होने पर दूसरी आवश्यकता को पैदा कर लेता है। इसी के कारण मनुष्य की प्रकृत्ति तलाश व खोज करने की बन गई। वर्तमान वैज्ञानिक व औद्योगिक समय में मनुष्य को अधिक सुविधा, स्वास्थ्य व पदार्थ की प्रचुरता उपलब्ध है। विभिन्न प्रकार के साधन उपलब्ध हैं। शक्तिशाली प्रचार-प्रसार के माध्यम से स्थान एवं समाज के बीच की दूरी कम हुई है। अब एक ही व्यक्ति थोड़े समय में एक साथ कई कार्य कर सकता है और कई जगह जा सकता है। वैज्ञानिक व तकनीकी विकास ने वातावरण को अपने वश में करने का प्रयास किया

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

है अर्थात् वातावरण पर प्रहार किया है। वर्तमान समय में खुशी व आनन्द की तलाश और बढ़ गई है। आधुनिक मानव के सामने अद्भुत घटना गरीबी, चिंता, बिना आराम की अवस्था, असंतुष्टि एवं असहिष्णुता इत्यादि है। शायद व्यक्ति अपनी पहचान ढूंढने में असफल हो गया है। इस मिश्रित एवं जटिल तकनीकी समाज में व्यक्ति धीरे-धीरे चिंता, कुंठा व तनाव से ग्रसित होता जा रहा है। समाज के भौतिकीकरण से व्यक्ति में कुंठाएं आदि बढ़ी हैं। इस स्थिति में व्यक्ति उनको नियंत्रित करने के लिए धार्मिक सहारा ढूंढ रहा है। कुछ समय पश्चात् व्यक्ति ने इन समस्याओं के हल के लिए प्रचार-प्रसार में आये विभिन्न प्रकार के नशीले पदार्थों का सेवन शुरू किया जो कि इन समस्याओं को कम करने का दावा करते हैं। इससे अकर्मशील व्यक्ति को तुरंत आराम का साधन मिला जो कि एक इलाज नहीं बल्कि एक शाप है।

भौतिकवादी प्रवृत्ति द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् प्रारंभ हुई। छः वर्ष के लम्बे युद्ध के पश्चात् जिसमें 3 लाख से अधिक लोग मारे गये, एक मिलियन से अधिक घायल हुए और जापान में परमाणु बम गिराये गये। जिससे उस समय मानव जीवन अस्त-व्यस्त हो गया, असंतुलित हो गया। अतः तुरंत आराम देने के fy, u'ks dk lsu fd;k x;kA u'kk rjpa vkjke nsus okyk gkus ds dkj.k वयस्कों व युवकों में तेजी से बढ़ा है। वे व्यक्ति हारे हुए तथा पीड़ित होते हैं। वे अपने चेतन को सुलाकर अपनी आधारभूत समस्याओं से छुटकारा पाना चाहते हैं और नशे का सहारा लेते हैं। नशा विचारशक्ति को नष्ट कर आदी बना देता है।

नशे का सेवन पूरे समाज में प्राचीन समय से चला आ रहा है। नशे का प्रारूप समाज एवं समय पर निर्भर करता है। इस व्यसन ने किसी भी धर्म या जाति को अछूता नहीं छोड़ा है। इसने बूढ़े जवान, धनवान-गरीब, शिक्षित-अशिक्षित जैसे सभी लोगों को पीड़ित किया है। नशा प्राचीन समस्याओं में से एक मुख्य समस्या है जो कि वर्तमान में मानवता को बहुत विस्तृत रूप से प्रभावित कर रही है या फिर यो कहें कि बहुत बड़ी संख्या में मानव समाज नशे से प्रभावित है। पश्चिम समाज में भी पत्रिकाओं में व्यसनी व्यक्तियों की खबरें बहुतायत में आती रहती हैं। कई सर्वेक्षणों एवं अनुसंधानों से पता चलता है कि नशे का सेवन या व्यसन पिछले दस-बीस वर्षों की अपेक्षा वर्तमान में बहुत अधिक विस्तृत हो गया है जो खतरे की स्थिति तक पहुंच गया है। यह स्थिति सिर्फ विश्वविद्यालयों के छात्रों तक ही सीमित नहीं है बल्कि मानव जीवन के हर क्षेत्र से संबंधित व्यक्ति इस नशा रूपी आदत से ग्रस्त है।

नशा या व्यसन एक ऐसी समस्या है जो राष्ट्र से भी परे जा चुकी है। यह सर्वप्रथम युवा व्यक्तियों में प्रारंभ हुआ जो वर्तमान में पूरे संसार में फैल चुका है। INCB की रिपोर्ट है कि नशे की स्थिति एक ऐसी अनहोनी है जो कि पहले कभी घटित नहीं हुई। परिणाम के अनुसार असंख्य देश और असंख्य लोग इससे प्रभावित हैं। WHO के अनुसार शराब पीना, सिगरेट पीना और नशा करना—ये सभी धीरे-धीरे मौत की तरफ ले जाते हैं एवं स्वास्थ्य के लिए एक संदेहास्पद स्थिति के कारण बन जाते हैं। नागरिकीकरण के इतिहास में नशे का सेवन बहुत प्राचीन समय से शुरु हो चुका था। यथार्थतः कोई भी व्यक्ति निश्चित समय नहीं बता सकता कि नशे का सेवन कब शुरू हुआ।

5.3 प्राचीन समय में नशे का सेवन

प्राचीन समय में सभी प्राचीन संस्कृतियों में नशे का सेवन विभिन्न क्षेत्रों में होता था। ये संस्कृति का एक भाग बन जाते थे और इसके विकास में भी साधक बनते थे। सभी सभ्यताओं में नशा विभिन्न विस्तृत क्षेत्रों में सेवन में लिया जाता था। प्रारंभ में नशे का सेवन धार्मिक व रीति-रिवाज पूर्ण विचारधारा से होता था जो उत्तरोत्तर परिवर्तित व विस्तृत होता गया और रोजमर्रा की जीवनशैली का हिस्सा बन गया।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इस प्रकार भारत और चीन में एक बड़ी संख्या में जनसंख्या थी जो कि अफीम और हशीश का सेवन करती थी और अन्य प्राचीन संस्कृतियां जैसे इजिप्ट, बेबीलोन, ग्रीस इत्यादि भी नशीले पदार्थों का सेवन करती थी। इसके प्रमाण ममी व अन्य दफनाई गई सामग्री में, खुदाई के बर्तनों में एवं मोहनजोदड़ो एवं हड़प्पा की खुदाई में मिले हैं। विल्सन (1951) के अनुसार शराब का धन्धा मध्य क्षेत्र व एशिया में काफी विकसित था। लिंटन (1955) के अनुसार मिश्र में लोग शराब व अन्य उत्पाद किण्वन द्वारा बनाना जानते थे। हॉफमान (1956) के अनुसार 2400 ईसा पूर्व से 2800 ईसा पूर्व के मध्य मिश्र व बेबीलोन में धार्मिक अनुष्ठानों में मदिरा पान होता था। हेल्बक (1961) के अनुसार, इटली में एल्पाइनों के द्वारा मदिरापान के प्रमाण प्राचीन वस्तुओं से मिले हैं। हाल ही में पुरातन प्रमाण (ब्लम व साथी, 1968) ने सिद्ध किया है कि नशे का प्राथमिक उपयोग धार्मिक अनुष्ठानों व उपचार में लिया जाता था। जवाहरलाल नेहरू ने लिखा है कि आर्य लोग त्यौहारों पर सुरा व अन्य नशीले द्रव्यों का सेवन करते थे। (डिस्कवरी ऑफ इंडिया टी.वी. धारावाहिक, तीसरा भाग)

सोनडकर (1958) ने बताया कि 1700 के पश्चात् ही चिकित्सकों को अफीम के प्रभाव, शारीरिक निर्भरता के बारे में पता चला। साइप्रस, ग्रीस में अफीम का सेवन 2000 ई.पू. में होता था। इसके प्रमाण पुरातन विभाग को मिले हैं (क्रितिकोस व पापडकी, 1963)। चीन नशे के सेवन में प्रथम अनुमोदित देश बना जहां अफीम का विस्तृत सेवन होता था (ब्लम, 1969)। कोलम (1988) के अनुसार अफीम व इसके उत्पाद 5000 साल या इससे पूर्व से सेवन में लिये जा रहे हैं।

अफीम का व्यापार अरब व्यापारियों द्वारा चीन से भारत होकर बर्मा तक 7वीं सदी में प्रारंभ हुआ। भारत में अफीम की कृषि 1511 AD से पहले नहीं होती थी। (चौपड़ा व चोपड़ा, 1965)। औषधि के रूप में इसे वैदिक काल से जाना जाता है। भारत में कुछ स्थानों मध्य प्रदेश, राजस्थान, हरियाणा में अफीम का नशा, खाने में एवं उत्सव आदि अवसरों पर होता रहा है। (बेदी व वाजपेयी, 1997)। डुलिटट (1967) ने भी बताया कि नशे का उपयोग सामूहिक गतिविधियों में सामजिक स्तर पर होता था।

प्राचीन चीन में इसे पास से मुक्ति का साधन माना जाता था। हमारे देश में केनाबीस नशा विस्तृत रूप से उपयोग में लाया जाता है। फ्रोट के अनुसार भारत में कनाबीस का उपयोग 800 ई. पू. के आस-पास तथा द्वारकानाथ (1965) के अनुसार 400 ई. पू. में प्रारंभ हुआ। स्पेलमन (1967) के अनुसार अथर्ववेद में 1300 ई. पू. में भांग को केनाबीस नाम दिया गया। रोजवीयर के अनुसार भारत में केनाबीस का सेवन भारतीयों ने इरानियों से 200 से 1400 ई.पू. के मध्यकाल में सीखा। भांग भारतीय हिन्दु मंदिरों में सेवन की जाती रही है। शर्मा (1967) के अनुसार फकीर व साधुओं ने केनाबीस को जीवनदायी माना और ध्यान द्वारा सर्वोच्च शक्ति से साक्षात्कार करने का साधन माना। नेपाल में बौद्ध भिक्षुकों व शिवभक्तों ने इसकी खेती भी शुरू की और उसका सेवन भी किया।

दक्षिण-पश्चिम अमेरिका में तंबाकू के सेवन के प्रमाण 200 A.D. से मिलते हैं। यूरोप में तंबाकू का सेवन वहां के निवासियों में रोगनाशक औषधि के रूप में प्रारंभ हुआ। वर्तमान में तंबाकू का नशा संसार में तीव्रता से फैला (स्केलाट एवं शेनॉन, 1990) है। बेदी व वाजपेयी (1997) के अनुसार किसी भी समाज की 90 प्रतिशत के लगभग जनसंख्या तंबाकू या इसके उत्पादों का नशा करती है। इसका सेवन इतना विस्तृत हुआ कि इसे 'मुख्य नशा' का नाम मिला। तंबाकू को चबाया, चूसा, धूम्रपान व दंत मंजन के रूप में निम्न सामाजिक आर्थिक स्तर के लोगों के द्वारा भी सेवन में लाया जाने लगा है।

प्राचीन समय में साधारण जनसंख्या में नशे का सेवन अधिक मात्रा में होता था, ऐसी कोई घटना या प्रचार-प्रसार निश्चित रूप से प्राप्त नहीं होता है। विशेष रूप से यह आदत तो वर्तमान में युवा पीढ़ी में है

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

जो कि चिंताजनक या विचारणीय स्थिति पर है और हम सब के लिए एक बड़ी समस्या है। कुछ मेट्रोपोलिटिन शहरों में यह व्यसन विस्तृत रूप से फैल चुका है। दिल्ली के स्थूल सर्वेक्षण में पाया गया कि वहां 50,000 से 1,00,000 रोगी तो हेरोइन के व्यसनी थे और साधारण जनता में यह 10 से 20 प्रतिशत पायी जाती है जबकि विद्यार्थी वर्ग में यह 30 से 35 प्रतिशत तक पाई गई है। नशे का सेवन केवल व्यक्ति को ही हानि नहीं पहुंचाता अपितु समाज एवं संपूर्ण राष्ट्र को भी प्रभावित करता है। इसलिए यह आवश्यक हो गया है कि इसके प्रति कदम उठाया जाए अन्यथा इसके भयंकर परिणाम हो सकते हैं। मानवता के इतिहास में इस अवस्था के व्यसनी लोगों का वर्णन नहीं मिलता। वर्तमान समय में अधिकतर युवावस्था लगभग 15 से 24 उम्र के व्यक्तियों में नशे की आदत देखी जाती है और इन युवा व्यक्तियों में से तीन चौथाई लोग तो विकासशील राष्ट्रों में निवास करते हैं।

5.4 मिथ्याधारणाएं एवं अंधविश्वास

जो कारण मनुष्य को बिना सोचे-समझे नशे के कुटिल मार्ग पर ले जाते हैं वे ही कारक मिथ्याधारणा एवं अंधविश्वास के अस्तित्व में भी सहायक होते हैं। ये कारक नशे की प्रशंसा भी करते हैं और दूसरी तरफ नशे के बारे में जो सिद्धांत चर्चित हैं वे ही इसको प्रेरित करने के कारण बनते हैं न कि उसका वास्तविक स्वरूप बताते हैं। नशीले पदार्थ जैसे एल. एस. डी. एवं हशीश विभिन्न रंग, रूप में पाए जाते हैं और उनको परिभाषित भी इस तरह से किया जाता है जैसे कि वे जीवन में हर्षोन्माद उत्पन्न करने वाले हों जबकि यह नहीं बताया जाता कि नशे के सेवन के बाद होने वाला प्रभाव बहुत दबाव, तनाव, शारीरिक थकान इत्यादि को उत्पन्न करने वाला है।

पहला अंधविश्वास है कि नशे का उपयोग करने वाले व्यक्ति को गहरी शांति और दर्द निवारकता की स्थिति अनुभव होती है। अगर हम ऊपरी स्तर पर निगाह डालकर देखें तो पता चलता है कि वास्तव में नशा यह सब प्रदान करता है लेकिन यह आराम या शांति की स्थिति केवल कुछ मिनटों के लिए ही होती है। इसके प्रभाव के पश्चात् व्यसनी व्यक्ति इसके दुष्प्रभावों—चिंता, क्लास्ट्रोफोबिया, कर्त्तव्य विमुखता, लैंगिक अनियंत्रण, संवेग एवं स्वभाव पर अनियंत्रण आदि से प्रभावित होता है।

दूसरा अंधविश्वास है कि नशा, व्यसन पैदा करने वाला नहीं है और उपयोग करने वाला कभी भी इसका व्यसनी नहीं बनता है। यह एक गलत धारणा है क्योंकि ओपिएटस् जैसे कि हीरोइन, अफीम, मार्फिन, पेथेड्रीन आदि कुछ ही दिनों के सेवन से शारीरिक रूप से व्यक्ति को व्यसनी बना देते हैं।

तृतीय अंधविश्वास है कि नशे का सेवन स्वास्थ्य के लिए हानिकारक नहीं है और यह जैविक संस्थान में भी कोई अंतर नहीं लाता है। यह अंधविश्वास खोज के पश्चात् धीरे-धीरे समाप्त हो गया क्योंकि इसके कारण त्वचा पीली पड़ जाती है, चमक खो जाती है, दांत खराब हो जाते हैं, मसूड़े फूल जाते हैं, आंखें सूज जाती हैं, लाल हो जाती हैं। श्वास शिथिल और दुर्गंधयुक्त हो जाती है और पूछने पर व्यसनी यह स्वीकार करता है कि उसकी पीठ और जोड़ों में दर्द है। ये सभी दुष्प्रभाव तब होते हैं जब नशा बार-बार किया जाता है।

उपरोक्त तीनों अंधविश्वास परस्पर भिन्नता रखते हैं। वस्तुत: कुछ अंधविश्वास इन से भी भिन्न हैं जो बताते है कि नशा व्यक्ति के स्वास्थ्य को बढ़ाता है तथा व्यक्ति को सक्षम बनाता है। वास्तव में बहुत संख्या में व्यसनी व्यक्ति लम्बे समय के अंतराल पर अक्षम, दुर्बल हो जाते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

5.5 नशे का अर्थ एवं परिभाषाएं

5.5.1 अर्थ

नशे का अर्थ उन वस्तुओं से होता है जिनके सेवन से कृत्रिम उत्तेजना अथवा कृत्रिम अचेतता या न्यून चेतन अवस्था की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

नशे के चार रूप हैं। प्रथम अवस्था में व्यक्ति नशा करता है, दूसरी अवस्था में अभ्यस्त होता है, तीसरी अवस्था में निर्भरता पैदा होती है और चौथी अवस्था में उसकी लत पड़ जाती है।

5.5.1.1 नशा (Drug)

कोई भी वह पदार्थ जो किसी व्यक्ति के भौतिक एवं मानसिक क्रियाकलापों को प्रभावित करता है, नशा कहलाता है।

5.5.1.2 अभ्यस्तता (Drug Habituation)

वैज्ञानिकों के अनुसार औषधि का लगातार व पर्याप्त सेवन उस मात्रा तक करना जब व्यक्ति का सामाजिक या व्यावसायिक समायोजन, स्वास्थ्य तथा सामाजिक प्रतिष्ठा कम होती है, अभ्यस्तता कहलाती है।

5.5.1.3 निर्भरता (Dependency)

W.H.O. 1964 में लत (Addiction) के स्थान पर निर्भरता (Dependence) शब्द का उपयोग किया है जिसकी परिभाषा निम्न प्रकार से है—

वह अवस्था जब व्यक्ति शारीरिक या चैतसिक प्रभावों हेतु अथवा औषधि के अभाव में होने वाली समस्याओं से बचने हेतु बार-बार सेवन करता है जिन्हें उसके व्यवहार में देखा जा सकता है, वह निर्भरता कहलाती है। इसके दो प्रकार बताए गए हैं—

1. शारीरिक—इसके अभाव में सामान्य गतिविधियां असामान्य हो जाती हैं, जैसे—अफीम।
2. मनोवैज्ञानिक—मानसिक निर्भरता पैदा होती है। जैसे—मद्य एवं तम्बाकू आदि।

5.5.1.4 लत (Addiction)

लत वह स्थिति होती है जब व्यसनी उस औषधि के बिना स्वयं को असहाय पाता है अथवा संतुलन हेतु लेना अनिवार्य होता है। यह स्थिति औषधि के लगातार सेवन से पैदा होती है। व्यक्ति सामान्य क्रियाओं के संपादन हेतु इसे आवश्यक समझता है। इसमें किसी प्रकार का व्यवधान होने पर व्यसनी की शारीरिक, मानसिक क्रिया विधियां अस्त-व्यस्त हो जाती हैं अथवा बिगड़ जाती हैं।

5.5.2 परिभाषाएं

सामान्य लोगों के अनुसार किसी भी प्रकार की औषधि का सेवन नशा कहलाता है जिससे व्यक्ति का स्वास्थ्य, सामाजिक संबंध, व्यावसायिक स्तर या सामाजिक स्तर में ऋणात्मक प्रभाव पड़ता है।

यह परिभाषा परिपूर्ण नहीं है क्योंकि किसी व्यक्ति के लिए जो पदार्थ पेय हो सकता है वही दूसरे के लिए औषधि हो सकता है जो एक राष्ट्र हेतु नशा है, वही दूसरे राष्ट्र हेतु औषधि। जो फसल किसी देश में आर्थिक मुनाफों का कारण बनती है उसी फसल पर दूसरे देश में प्रतिबंध लगाया जा सकता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

W.H.O. (1975) के अनुसार, ''वे सभी पदार्थ भोजन के अलावा जो शरीर व मन की क्रियाओं को बदलने के लिए सेवन किए जाते हैं, नशे के अंतर्गत आते हैं।''

एक दूसरी परिभाषा W.H.O. की है, ''किसी भी औषधि का अतिरिक्त सेवन जो शारीरिक व मानसिक समस्याओं तथा योग्यताओं में परिवर्तन लाता है, नशा कहलाता है।''

बी. सेन के अनुसार, ''औषधियों का वह सेवन जो चिकित्सकीय अथवा सामाजिक धारणाओं के अनुरूप न होकर किसी भी मात्रा, शक्ति तथा आवृत्ति में लेना साथ ही जिससे व्यक्ति की शारीरिक व मानसिक क्रियाकलापों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है—नशा कहलाता है।''

काल मैन (1980) के अनुसार—''नशा उसकी वास्तविक आवश्यकता के बिना एवं अधिक मात्रा में सेवन है।''

स्कलाट एवं शेनान (1990) के अनुसार—''नशे से तात्पर्य है—विचारपूर्वक किसी भी तत्व या नशे का सेवन जो स्वास्थ्य व क्रियाशीलता को प्रभावित करे।''

अग्रवाल (1995) के अनुसार—''औषधि का अतिरिक्त सेवन ही नशा है।''

नन्दिनी (1998) के अनुसार—''औषधि का अतिरिक्त सेवन जो अन्य अर्थों में किया जाता है तथा जिससे किसी भी मात्रा या किसी भी प्रकार की भौतिक व मानसिक क्रियाओं पर प्रभाव पड़ता है, नशा कहलाता है।''

काल मैन (1980) के अनुसार ''किसी द्रव्य को मात्रा के रूप में शक्ति के रूप में क्षमता के अनुसार या व्यवहार के कारण सोच विचार कर लिया जाता है जो कि व्यक्तिगत या सामाजिक पक्ष दोनों ही के लिए हानिकारक होता है, नशा है।''

अत: नशे को निम्न प्रकार से परिभाषित कर सकते हैं—नशे का लगातार सेवन बिना किसी चिकित्सकीय उपचार के किसी भी मात्रा, प्रकार, तीव्रता में जो व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र के लिए हानिकारक है।

5.6 नशे के लक्षण

नशा करने से निम्न लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं—

1. अकुशल चालन, अप्रभावी प्रस्तुति, सूखापन, अनिंद्रा, थकान, आलस्य, भूख में कमी, वजन में कमी, जुकाम, उल्टी, पेट दर्द, एकाग्रता में कमी।

2. आंखों का लाल होना, आंखों में पानी आना, आवाज में हकलाहट, ढीला-ढाला प्रदर्शन, अनियंत्रित गतिविधियां, स्नान में अधिक समय लगाना।

3. अजीब गंध, कपड़ों पर दाग धब्बे, छोटी-छोटी बातों पर तीव्र प्रतिक्रिया, कमरे में पाउडर या गोलियों का मिलना आदि।

4. क्रोध, आक्रामकता, छोटी-छोटी बातों पर तीव्र प्रतिक्रिया, मनोदशा में अकारण परिवर्तन, बेचैनी, अवसाद, भावनात्मक अलगाव, कमजोर याददाश्त।

5. धन व वस्तुओं का गायब होना, बार-बार झूठ बोलना, बातें बनाना, हाथ की अंगुलियों पर निशान, जले के निशान।

6. सुई की उपस्थिति, माचिस की तीलियां अथवा अन्य धूम्रपान से सम्बंधित बची सामग्रियो का मिलना।

7. कमरे में गोल कागज और पाइप, मैरिजुएना, सिगरेट के बचे टुकड़े, बीज आदि।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

5.7 नशे की प्रकृति

नशे के लगातार सेवन से व्यक्ति नशे पर निर्भर होना शुरू हो जाता है। नशे की एक निश्चित मात्रा के बिना कोई भी व्यसनी अपनी साधारण जिंदगी के कार्य को कर सकने में सक्षम नहीं होता है। इस तरह नशा अन्य भोज्य पदार्थों को ग्रहण करने की तरह नहीं है, जैसे कि दूध, अनाज, फल इत्यादि। अगर इनमें से कोई भी एक उपलब्ध न हो तो शरीर तनाव में नहीं आयेगा और न ही मन चिंताग्रस्त या तनाव की स्थिति में आयेगा जबकि नशे के मामले में ऐसा नहीं होता है। नशे का पदार्थ न मिले तो शरीर और मन दोनों ही अति चिंतित और भ्रमित हो जाते हैं और स्थिति ऐसी हो जाती है कि नशे को किसी भी कीमत पर व्यक्ति प्राप्त करना चाहता है।

द्वितीय रूप में हम देखते हैं कि नशा सामूहिक रूप में प्रारंभ होता है जबकि उसकी समाप्ति एकाकीपन में होती है। व्यसनी व्यक्ति नशे का सेवन अकेले में करने लग जाता है। उसके संबंध नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार नशा संबंध बनाने में कोई कारण नहीं बनता है जबकि यह उनको नष्ट करने का कारण बनता है। नशा जैविक संस्थान के लिए बहुत ही हानिकारक होता है।

तृतीयक नशा मानवीय मस्तिष्क की नियंत्रण क्षमता की सामान्य क्रियाविधि को विकृत कर देता है। नशा अभिप्रेरणा को नष्ट कर देता है और साधारण व्यक्ति को भी चिंताओं से घेर देता है। इस प्रकार एल. एस. डी., हशीश, ओपियम का नशा स्त्री या पुरुष को उन भावनाओं तक ले जाता है जो कि उनको दासवत् बनाने का कारण बनती है और सामाजिक कर्त्तव्यों से उनको पीछे ले जाती हैं।

चौथे प्रकार से एल. एस. डी. समूह, हशीश समूह, अफीम समूह, दर्द निवारक, निंद्रा शामक, पीड़ानाशक और अन्य नशीले पदार्थों का सेवन ही नशा है। औषधियां तभी होती हैं जब इनका सेवन किसी डॉक्टर के निर्देशन या प्रयोगकर्त्ता की जानकारी के बिना लिया जाता है। ये सभी उपचार के लिए उपयोग की जाती हैं और कुछ तो ऐसी होती हैं जो हमारे नित्य उपयोग में रहती है। हालांकि बताई हुई औषधि का उपयोग उपचारी हो भी सकता है और नहीं भी लेकिन इनका अधिक मात्रा में प्रयोग भार बन जाता है और प्रभावशाली खतरा भी बन जाता है।

पञ्चम स्तर पर उपरोक्त नशीले पदार्थों की निरंतरता जब बिना किसी कारण या निर्देशन के ली जाती है तो परिणाम स्वरूप व्यसन का रूप बन जाती है, जो कि व्यक्ति की नशे पर निर्भरता का संकेत करती है।

बोध प्रश्न 1:

---

1. किस देश में नशे को मुक्ति का साधन माना जाता था?
2. नशे की कोई दो परिभाषा लिखें।
3. नशे की प्रकृति के बारे में बताएं।

5.8 नशे के प्रकार

हांगकांग काउंसिल ऑफ सोशियल सर्विस 1988 के अनुसार अधिकतर नशीले पदार्थ दो प्रकार के होते हैं— निंद्राकारी और अनिंद्राकारी।

1. **निंद्राकारी**— अफीम, मार्फिन, हेराइन, कोडीन, मेथाडोन, वेल्कोनल और टिलिडिन।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2. **अनिंद्राकारी** — (अ) उत्तेजक — कोकीन और एम्फेटामाइन्स

(ब) शामक एवं शांतिकारक — बारबिच्यूरेट्स, मेन्ड्रेग्स, लिब्रियम, नाइट्रेजेपाम

(स) विभ्रामक — एल.एस.डी., हर्बल केनाबीस, मेन्सिक्लिडिन

(द) जैविक द्रव्य

5.8.1 निंद्राकारी औषधियां (Narcotic Drugs) — निंद्राकारी औषधियों में निम्न औषधियां आती हैं —

6.1.1 अफीम (Opium)

यह एक प्राकृतिक निंद्राकारी, दर्दनाशक औषधि है जो पेपेवर सोम्निफेरम (Papaver Somniferrum) नामक पौधे से बनाया जाता है। प्रभावकारी एवं दर्दनाशक होने के कारण इसका सेवन दर्द निवारण हेतु किया जाता है। यह अफीम की गांठों से प्राप्त गाढ़ा सफेद रस है जो मुख्यतया यूरोप तथा एशिया के कुछ भागों में तथा पाकिस्तान, अफगानिस्तान, ईरान, बर्मा, थाइलैंड आदि देशों में उगाया जाता है। अफीम पाउडर के रूप में अथवा काले गोंद के रूप में प्राप्त होता है। इसका सेवन पानी, शराब अथवा जूस में मिलाकर किया जाता है। इसका सेवन सामान्यतया शामक, दर्द निवारक, दस्त निवारक, पेट दर्द निवारक के रूप में किया जाता है। व्यसन के रूप में यह धूम्रपान से, श्वास के साथ खींचकर, गोली तथा तरल के रूप में लिया जाता है। अफीम उदासीनता पैदा करता है। इसका लम्बे समय तक सेवन कब्ज, पेशाब की कमी, सूखापन, घबराहट, श्वसन में बाधा, रक्तचाप का निम्न स्तर (Hypotension), हथेलियों में पसीना आना, भूख में कमी होना आदि लक्षण पाए जाते हैं। अफीम का सेवन करने वाले को बार-बार इसका सेवन करने की इच्छा होती है और इसकी मात्रा में धीरे-धीरे वृद्धि भी करनी पड़ती है। इसके उपलब्ध ा न होने पर कई प्रकार के लक्षण 36-72 घंटे बाद देखे जा सकते हैं। मांसपेशियों के दर्द, मांसपेशीय खिंचाव, थकान, बेचैनी, जुकाम, उल्टी, वजन में कमी, दस्त, पीठ दर्द, उच्च रक्तचाप, श्वसन दर में वृद्धि आदि लक्षण पाए जाते हैं।

6.1.2 मार्फिन (Morfin)

यह भी अफीम की गांठों से प्राप्त होता है। यह मुख्य रूप से मार्फिन सल्फेट और मार्फिन हाइड्रोक्लोराइड लवणों के रूप में पाया जाता है। ये दोनों ही सफेद क्रिस्टलाइन पाउडर होते हैं। मार्फिन स्वाद में कड़वा होता है तथा पानी में घुलनशील होता है। मार्फिन का सेवन दर्द निवारण के रूप में किया जाता है। इसका सेवन मुख्यतया दस्त, खांसी व कुछ श्वसन संबंधी समस्याओं में लाभकारी होता है। मार्फिन का सेवन गोली अथवा इन्जैक्शन द्वारा किया जाता है। कुछ समय के लिए इसका प्रभाव तनाव मुक्ति या शिथिलीकरण का अनुभव कराता है। लम्बे समय तक इसका सेवन मनोदशा की अस्थिरता, दृष्टि में कमी, कब्ज, मासिक धर्म में अनियमितता, श्वसन में गड़बड़ी व भूख की कमी उत्पन्न करता है। मार्फिन के लगातार सेवन से शारीरिक सहनशीलता में वृद्धि होती है। ऐसे व्यक्ति में इसके प्रभाव हेतु मात्रा बढ़ानी पड़ती है। एक समय ऐसा भी आता है जब इच्छित मात्रा लेने पर भी इसका कोई प्रभाव नहीं होता है। मार्फिन छोड़ने पर व्यक्ति में 12 घंटे बाद निम्न लक्षण देखे जा सकते हैं — आंखों से पानी बहना, पसीना, सर्दी, कंपकंपी, असहजता, अनिंद्रा, भूख में कमी, आंतों में मरोड़, उच्च रक्तचाप, हड्डियों व मांसपेशियों में दर्द, अनियंत्रित गति आदि।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

6.1.3 हेरोइन

यह एक शक्तिशाली निंद्राकारक तथा दर्दनाशक है। यह एक अर्द्ध संश्लेषित औषधि है जो मार्फिन के रासायनिक परिवर्तन से बनाई जाती है। शुद्ध रूप में यह सफेद क्रिस्टलाइन कड़्वा पाउडर तथा पानी में घुलनशील है। प्रारंभ में इसका सेवन दर्दनाशक के रूप में चिकित्सकीय दृष्टि से किया जाता था। वर्तमान में कुछ देशों में कैंसर में इसका सेवन किया जाता है। हेरोइन का सेवन निगलकर, धूम्रपान से और इन्जैक्शन द्वारा किया जाता है। यह शांतिकारक और काल्पनिक जगत् में विचरण कराने वाला (Luphoria) होता है। लंबे समय तक इसका सेवन करने से भूख में कमी, कब्ज, दृष्टिदोष, मासिक धर्म में गड़्बड़ी, श्वसन संबंधी गड़्बड़ी आदि पैदा होते हैं। इसका लगातार सेवन इसके प्रति सहनशीलता बढ़ाता है। व्यसनी को इसके प्रभाव हेतु मात्रा बढ़ानी पड़ती है। हेरोइन के अभाव में व्यसनी में निम्न लक्षण देखे जा सकते हैं—आंखों व नाक से पानी, छींक, पसीना, नींद, भूख में कमी, झटके लगना आदि। 36-72 घंटे बाद ये लक्षण अधिकतम मात्रा में होते हैं।

6.1.4 कोडीन

यह भी प्राकृतिक रूप से अफीम की गांठों से उपलब्ध होता है। इसका अत्यधिक दुष्प्रभाव होता है। इसके लक्षण अन्य ओपिएट्स के समान ही हैं। कोकीन कई नामों से जाना जाता है, जैसे—ब्लो, आइस, कैन्डी और काक। इसकी कीमत प्रति ग्राम 3-4 हजार रुपये होती है। व्यसनी इसका इन्जैक्शन लेते हैं या नाक से इसका सेवन किया जाता है। कुछ घंटों बाद व्यक्ति अपना होश खो बैठता है, उसे किसी की परवाह नहीं रहती है। थोड़ी देर के लिए शरीर में चुस्ती-फूर्ति आ जाती है। व्यक्ति को इसकी आदत पड़ जाती है। व्यक्ति अपना मानसिक संतुलन खो बैठता है तथा आत्मघातक प्रवृत्तियां उत्पन्न हो जाती हैं।

6.1.5 मैथाडोन

यह संश्लेषित एवं निंद्राकारी, दर्दनाशक औषधि है। इसका प्रभाव लंबे समय तक रहता है। यह हेरोइन व मार्फिन आदि ओपिएट्स के समान प्रभावकारी होती है। उपचार हेतु इसका कुछ मात्रा में सेवन किया जाता है ताकि व्यसनी लोग लंबे समय तक अच्छी तरह से रह सकें।

6.1.6 वेल्कोनल

यह एक प्रभावोत्पादक एवं सशक्त औषधि है। इसका प्रभाव तुरन्त होता है और छह घंटे तक रहता है। यह गंधहीन गुलाबी रंग की क्रिस्टाइन गोली होती है तथा संश्लेषित होती है। जिन रोगियों को मार्फिन तथा पेथाडीन का असर नहीं होता है वहां यह औषधि लाभकारी होती है। इसका प्रभाव अफीम की तरह होता है। लम्बे समय तक सेवन करने से निर्भरता पैदा होती है। इसके अतिरिक्त सेवन से कब्ज, भूख की कमी, शारीरिक, मानसिक विकार उत्पन्न होते हैं। ज्यादा मात्रा में सेवन करने से इसके प्रति सहिष्णुता बढ़ती है अर्थात् व्यक्ति इसकी ज्यादा मात्रा को भी सहन कर लेता है। इसके अभाव पर निम्न लक्षण देखे जा सकते हैं—कंपकंपी, दर्द, वजन में कमी, उल्टी, नींद में कमी, भूख में कमी आदि।

6.1.7 टिलिडिन

यह दर्द निवारक औषधि है तथा सफेद क्रिस्टाइन पाउडर के रूप में मिलती है। इसका स्वाद कड़्वा तथा यह पानी में घुलनशील होती है। इसे रासायनिक तरीके से तैयार किया जाता है। इसका अधिक सेवन हेराइन की तरह ही अधिक उल्लासकारक होता है। इसके सेवन से कब्ज, बेचैनी, अरुचि, मितली, पसीना,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

सरदर्द, हृदय की धड़कन में वृद्धि, सांस में तकलीफ, अवसाद आदि रोग पैदा होते हैं। अधिक सेवन से श्वसन तंत्र की कार्यप्रणाली बाधित होती है। इसके अभाव में होने वाले लक्षण 36-72 घंटों के बीच देखे जा सकते हैं फिर धीरे-धीरे इसका असर कम होता जाता है।

6.1.8 अन्य

मीलाटोन व्यक्ति के शरीर में मौजूद होता है लेकिन उम्र के साथ-साथ इसका प्रभाव भी कम होता जाता है। कई चिकित्सक नींद पूरी करने हेतु मीलाटोन देते हैं लेकिन लोग इसका गलत प्रयोग करते हैं। यह दवा जवानी कायम रखने हेतु ली जाती है लेकिन कहा नहीं जा सकता है कि यह कितना सत्य है। कहा जाता है मीलाटोन के सेवन से नींद अच्छी आती है। फिर भी लोगों ने इसे वन्डर ड्रग कहा है और उन्हें लगता है कि इससे कई लाभ हैं। इसके अतिरिक्त सिराटोन नामक एक और औषधि है। मानसिक तनाव में यह गोली कमी लाती है। वर्तमान में यह सबसे ज्यादा बिकने वाली दवा है।

इनके अतिरिक्त एक औषधि है—एक्सटेक्सी। यह एक रसायन से निर्मित होती है। इसके दूसरे नाम एक्श, ई, एडम आदि हैं। इसकी एक गोली की कीमत 300-400 रुपये तक है। इसका प्रभाव 5-6 घंटों तक रहता है। सेवन करने वाले इसके सेवन से सारी रुकावटें भूल जाते हैं तथा हर एक से घुलमिलकर दोस्ती करते हैं। इसका सेवन बंद करने से मस्तिष्क पर इसका दुष्प्रभाव पड़ता है। याददाश्त प्रभावित होती है तथा व्यक्ति संविभ्रम का शिकार हो जाता है।

5.8.2 अनिंद्राकारी औषधियां (Non-Narcotic Drugs)

अनिंद्राकारी औषधियाँ यदि चिकित्सक की सलाह बिना ली जाती हैं तो इनका हानिकारक प्रभाव पड़ता है। ये औषधियां मौत का कारण भी बन सकती हैं इनके निम्न प्रकार हैं—

5.8.2.1 उत्तेजक (Stimulants)

यह औषधि केन्द्रीय नाड़ीतंत्र को उत्तेजित करती हैं। व्यक्ति शरीर में ऊर्जा का अनुभव करता है। सामान्यतया उत्तेजक दो प्रकार के होते हैं—कोकीन और एम्फैटामाइन्स।

1. कोकीन—यह शक्तिशाली केन्द्रीय नाड़ीतंत्र (C.N.S.) उत्तेजक है। शरीर में ऊर्जा को बढ़ाता है। इसे कोका की पत्तियों से निर्मित किया जाता है। मुख्यतया यह बेबिलोनिया, दक्षिण अमरीका के देशों में उगाया जाता है। यह गंधहीन सफेद क्रिस्टलाइन, कड़वा तथा पानी व अल्कोहल में घुलनशील पाउडर है। इसका सेवन सूंघकर अथवा इन्जैक्शन द्वारा किया जाता है। यह एकाग्रता बढ़ाता है। भूख, नींद की इच्छा व्यक्ति में नहीं होती है। इसकी अनियंत्रित मात्रा के सेवन से अनियमिति व छोटे श्वास, दौरे, कोमा की स्थिति पैदा होती है। लंबे समय तक इसके सेवन से याददाश्त में कमी तथा नपुंसकता आदि लक्षण प्रकट होते हैं। इसका सेवन शारीरिक व मानसिक निर्भरता पैदा करता है।

2. एम्फैटामाइन्स—यह केन्द्रीय नाड़ीतंत्र को उत्तेजित करता है। इसमें मुख्य डैक्सट्रो एम्फैटामाइन व मैटाएम्फैटामाइन्स हैं। ये जागरूकता, एकाग्रता तथा उत्तेजनावर्द्धक हैं। रंग में सफेद, गंधहीन, क्रिस्टलाइन तथा पानी व एल्कोहल में घुलनशील है। चिकित्सा की दृष्टि से इसका उपयोग नारकोलेपी (Narcolepy), हाइपर काइनोसिस (Hyper Cynosis), मिर्गी, पारकिन्सेनिज्म, निम्न रक्तचाप, मोटापा तथा मानसिक अवसाद हेतु किया जाता है। इसका सेवन मुंह से या इन्जैक्शन द्वारा किया जाता है। इसका लंबे समय तक सेवन करने से

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अनिंद्रा, चिंता, तनाव, भूख में कमी, उच्च रक्तचाप, तीव्र व अनियमित हृदय गति तथा त्वचा पर दाग आदि लक्षण प्रकट होते हैं। इसका लगातार सेवन करने से व्यक्ति में इसके प्रति सहिष्णुता (Tolerance) का विकास होता है। व्यसनी में इसके अभाव में निम्न लक्षण देखे जा सकते हैं—थकान, नींद, तीव्र भूख आदि।

5.8.2.2 शामक और शांतिकारक (Depressents and tranquilizers)

इसमें निम्न औषधियां आती हैं—

1. बारबिच्यूरेट्स—इनका निर्माण रासायनिक संश्लेषण विधि से किया जाता है। ये सफेद, कड़वे, गंधहीन तथा पानी में घुलनशील होते हैं। इनका सेवन गोलियों, कैप्सूल अथवा तरल के रूप में किया जाता है। इसकी सामान्य मात्रा चिंता व तनाव में कमी लाती है। इसका सेवन से मांसपेशीय शिथिलीकरण व सूखेपन का अनुभव होता है। अधिक मात्रा के सेवन से निम्न रक्तचाप, श्वसन की घटी दर व अचेतनता उत्पन्न होती है। इसके लगातार सेवन से वैसी ही स्थिति उत्पन्न होती है जैसे कि एल्कोहल के सेवन से उत्पन्न होती है। लंबे समय का सेवन करने से निर्णय क्षमता में कमी, इच्छाशक्ति की कमी, आत्महत्या के विचार, थकान व नींद में कमी आदि समस्याएं उत्पन्न होती हैं। इनके अतिरिक्त दृष्टि की समस्या, मूढ़ता, नपुंसकता, मासिक धर्म में अनियमितता, श्वसन समस्याएं आदि देखी जा सकती हैं। अधिक समय तक सेवन करने से व्यक्ति में नशे के प्रति सहनशीलता बढ़ती है। साथ ही मात्रा में भी वृद्धि करनी पड़ती है। व्यसनी को इसके अभाव में वे सभी लक्षण प्रकट होते हैं जो एम्फैटामाइन्स के होते हैं।

2. मैन्ड्रेक्स (Mandrax)—इसे मैथाक्वैलोन भी कहते हैं। ये अवसादक, शामक अथवा निंद्राकारी औषधि है। यह सफेद क्रिस्टलाइन, पानी व अल्कोहल में घुलनशील होते हैं। गोलियां व कैप्सूल के रूप में बनते हैं। धूम्रपान अथवा इन्जैक्शन द्वारा इसका सेवन किया जाता है। एक तरफ इसका मुख्य प्रभाव शांतिप्रद अनुभव व शिथिलीकरण है तो दूसरी तरफ मूढ़ता, आलस्यपन व थकान आदि हैं। कुछ लोगों में इसके सेवन से आराम में व्यवधान, चिंता, विभ्रम, जलन, कांटे की चुभन आदि का अनुभव कराता है। लंबे समय तक इसका सेवन करने से ज्ञानात्मक तथा क्रियात्मक गतिविधियां बाधित होती हैं। साथ ही दृष्टिदोष, अस्थाई भाव, अनिंद्रा व थकान पैदा होती है। मैन्ड्रैक्स के अभाव में व्यसनी में निम्न लक्षण दृष्टिगत होते हैं—बेचैनी, व्यग्रता, अनिंद्रा, चिंता, सर दर्द, भूख में कमी, जुकाम, उल्टी, पेट दर्द इत्यादि।

3. लिब्रियम (Librium)—रासायनिक रूप से इसे क्लोरडाइजेपोक्साइड (Chlordiazepoxide) कहा जाता है। यह शामक है तथा चिंता व तनाव मुक्ति का साधन माना जाता है। इनका सेवन गोलियों व कैप्सूल द्वारा किया जाता है। इसका प्रभाव शरीर में लंबे समय तक रहता है। इसका सेवन यदि लंबे समय तक किया जाता है तो आलस्य, व्यग्रता, डरावने सपने, जुकाम, प्रेरणा में कमी, जुकाम, सरदर्द, त्वचा पर दाग, मासिक धर्म की अनियमितता, वजन में वृद्धि, भूख में वृद्धि आदि समस्याएं उत्पन्न होती हैं। इसका लगातार सेवन व्यसनी में इसके प्रति सहनशीलता बढ़ाता है।

4. नाइट्रेजेपाम (Nitrazapam)—यह शामक होता है। चिकित्सीय दृष्टि से इसका सेवन नींद संबंधी बीमारियों में होता है। इसका निर्माण रासायनिक संश्लेषण द्वारा होता है तथा रंग सफेद होता है। इसका सेवन गोलियों के रूप में होता तथा इसका प्रभाव लिब्रियम के समान ही होता है। लंबे समय तक सेवन से सूखापन, तैरने की स्थिति का अनुभव, थकान, भ्रम की अवस्था आदि स्थितियां उत्पन्न होती हैं। यह औषधि व्यसनी में शारीरिक, मानसिक सहनशीलता में वृद्धि करती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

5.8.2.3 विभ्रामक (Hallucinogens)

इसमें निम्न औषधियां आती हैं—

1. एल.एस.डी.—यह लाइलारजिक नामक रसायन से निर्मित होती है। इसे ऐसेड का सिड नामों से भी जाना जाता है। इसका प्रभाव एक घंटे बाद होता है तथा 12 घंटों तक बेहोशी रहती है। इसके कई दुष्परिणाम होते हैं। मन में अजीब सा खौफ, अनौखी आवाजों का सुनाई देना तथा अन्य भयानक असर होते हैं। इसका सेवन मुख्य रूप से मन की स्थितियों, विचार और प्रेक्षण को प्रभावित करता है। इसका मुख्य प्रभाव दृष्टि पर पड़ता है। इससे व्यक्तित्व प्रभावित होता है। एल.एस.डी. सर्वाधिक विभ्रामक है। यह अर्द्ध संश्लेषित औषधि है जिसे अर्गोट अल्कोइड्स व अन्य पौधों द्वारा तैयार किया जाता है। यह पाउडर व गोलियों के रूप में पाया जाता है। इसका कोई औषधीय उपयोग नहीं है। व्यसन के रूप में इसका सेवन कागज पर गीला कर जीभ पर रखकर, मुख, श्वास तथा इन्जैक्शन के रूप में किया जाता है। इसका दुष्प्रभाव इन्द्रियों के कार्यों में बाधा उत्पन्न करता है। इससे क्षणिक घटनाएं या अनुभव या दृश्य व्यक्ति को याद आते हैं। ये अनुभव स्वाद संबंधी, गंध संबंधी, संवेदन व स्पर्श संबंधी भी हो सकते हैं। इसके सेवन के 3 या 4 दिन बाद ही इसकी मात्रा में वृद्धि करनी पड़ती है क्योंकि व्यक्ति में इसके प्रति सहनशीलता बढ़ती है। लंबे समय तक इसका सेवन शारीरिक निर्भरता पैदा नहीं करता है। इसकी मनोवैज्ञानिक निर्भरता सभी व्यसनियों में भिन्न-भिन्न अवस्था में पाई जाती है।

2. हरबल कैनाबीस

अ. मैरिजुएना—यह हल्का विभ्रामक होता है तथा कैनाबीस सतीवा नामक पौधे से प्राप्त किया जाता है। यह एक प्राकृतिक उत्पादन है जो सूखे पत्तों व फूलों से बनता है। इसका कोई औषधीय उपयोग नहीं है। इसका सेवन धूम्रपान द्वारा या चूसकर किया जाता है। इसका सेवन शिथिलीकरण व अच्छे होने का अनुभव कराता है। लंबे समय तक इसका सेवन व्यक्तित्व को प्रभावित करता है। जैसे इच्छाओं की समाप्ति, आंकांक्षाओं में कमी, अभिप्रेरणाओं में कमी, असहानुभूति, एकाग्रता में कमी, विध्वंसात्मक कार्य, निर्णय में कमी, संचार में प्रभावहीनता, अन्तर्मुखता, बिखरे विचार आदि समस्याएं व्यसनी को होती हैं। इसका लंबे समय तक सेवन व्यसनी में शारीरिक निर्भरता पैदा करता है। व्यसनी में इसके अभाव में निम्न लक्षण पाए जाते हैं—1. नींद में व्यवधान, भूख में कमी, वजन में कमी, बेचैनी, चिंता, पसीना, पेट संबंधी समस्या आदि। ये लक्षण एक हफ्ते तक देखे जा सकते हैं। व्यसनी में इसका मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है। उसमें इसे प्राप्त करने को लोलुपता, चिंता व दर्द जैसी अनुभूतियां मुख्यतया पाई जाती हैं।

अ. चरस, गांजा एवं भांग—ये तीनों एक प्रकार के पेड़ों की पत्तियां एवं फूल हैं। गांजा एक पेड़ का फूल है। भांग पेड़ की पत्ती है। चरस भी गांजे की भांति पीया जाता है। चरस एवं गांजे के मुकाबले में भांग का नशा कम होता है। ये निंद्राकारी होते हैं। भारत में इनका सेवन जनसाधारण में होता है। चरस का पेड़ मध्य एशिया में होता है जो भारतीय नशीले पदार्थों से भिन्न होता है।

स. फैनसाइक्लेडिन (Phencyclidine)—यह भी एक विभ्रामक औषधि है जिसे रासायनिक संश्लेषण द्वारा प्राप्त किया जाता है। सफेद, क्रिस्टलाइन गंधहीन पाउडर है। सामान्यतया गोलियों के रूप में प्राप्त होता है। इसका प्रभाव दर्दनाशक व बेहोशीकारक होता है। इसका कोई औषधीय उपयोग नहीं होता है। इसका सेवन सूंघकर, निगलकर, धूम्रपान तथा इंजैक्शन द्वारा किया जाता है। इसके जहरीले प्रभावों में

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

चकाचौंध, मूढ़ता, पसीना, उल्टी, जुकाम, छींकें, विभ्रम, लार का अत्यधिक स्राव आदि उत्पन्न होते हैं। इससे शारीरिक निर्भरता पैदा नहीं होती है लेकिन मानसिक निर्भरता होती है।

5.8.2.4 जैविक द्रव्य (Organic Solvents)

इन द्रव्यों का गलत प्रकार से सेवन कर इनका दुरुपयोग किया जाता है। ये द्रव्य हैं—मैथेनोल, ईथेनोल, बेन्जीन, ऑटोमोबाईल फ्यूल, क्लिनिक फ्लूड आदि वाष्पशील हाइड्रोकार्बन्स है। इनका प्रभाव अवसादक औषधियों की तरह ही होता है। अत्यधिक मात्रा में सेवन बेहोशी उत्पन्न करने वाली औषधियों की तरह ही प्रभावकारी होता है। ये औषधियां थोड़ी मात्रा में सेवन करने से भी शराब की तरह मदहोशी, उल्लास तथा विभ्रम पैदा करने वाली होती हैं। लम्बे समय तक सेवन करने से गंभीर परिणाम देखे जा सकते हैं। नाड़ी, मस्तिष्क, श्लेष्मा झिल्ली, किडनी तथा हृदय पर गहरा प्रभाव डालते हैं। इनके अभाव में मनोवैज्ञानिक परिणाम गंभीर होते हैं जिससे व्यक्ति इनके सेवन हेतु मजबूर हो जाता है। इनके अतिरिक्त नशे के निम्न रूप भी सामने आते हैं—

1. मादक पेय—मादक पेय दो प्रकार के होते हैं—प्रथम पेय के रूप में प्रयुक्त होने वाले तथा द्वितीय जड़ी-बूटियों के रूप में सेवन किये जाने वाले। अंगूर, सेब, खीरा, खजूर आदि वृक्षों के रक्ष से, राई, जों, गैंहूं, चावल, मक्का आदि अन्न को सड़ा-गलाकर, भबका देकर नाना प्रकार के पेय पदार्थ तैयार किये जाते हैं। ये पदार्थ ही शराब, मदिरा, ताड़ी आदि नामों से जाने जाते हैं। विदेशी शराबों में प्रमुख रूप से ब्रांडी, जीन, रम, वाईन, बीयर, एल पोटरी, पोर्ट, शेरी, शेम्पेन, साइडर आदि आते हैं। देशी शराबों में सुरा, लुंगड़ी, चांग, चर्मा, ताड़ी, स्पिरिट आदि प्रमुख हैं। मदिरा में पानी सा पतला एक ज्वलनशील रासायनिक पदार्थ होता है—एल्कोहल। मीठी शक्करदार वस्तुओं के सड़ने पर यह उनमें से उत्पन्न होता है। यह मादक विष होता है। औषधीय रूप से जहां यह तारक होता है वहीं पेय के रूप में यह मारक होता है। इसमें 52 प्रतिशत कार्बन, 135 प्रतिशत हाइड्रोजन और 35 प्रतिशत ऑक्सीजन होती है। इसकी मादकता में तीन बातें रहती हैं—उत्तेजना, सुस्ती और बार-बार प्राप्त करने की लालसा। यह एल्कोहल सभी प्रकार के शराबों में होता है। सिर्फ मात्रा का अंतर रहता है। मादक द्रव्यों की लत व्यक्ति के अध:पतन का कारण बनती है। जब व्यक्ति को इसकी लत लग जाती है तो उसका छूटना कठिन हो जाता है। व्यक्ति कीचड़ में गहरा धंसता चला जाता है। लत के तीन मुख्य कारण बताये गये हैं—

1. मादक वस्तु को प्राप्त करने की दुर्दमनीय आकांक्षा,
2. उत्तरोत्तर अधिक मात्रा में सेवन करने की प्रवृत्ति,
3. मानसिक और शारीरिक रूप से मादक वस्तु पर आश्रित हो जाना।

2. एल्कोहल—एल्कोहल का अधिक सेवन व्यक्तित्व को विघटित कर देता है। वर्तमान समय में इसका सेवन करने वालों की संख्या काफी बढ़ गई है। एल्कोहल का सेवन करने वाले प्राय: दो प्रकार के होते हैं—मद्यपान व्यसनी तथा मद्यपानता। मद्यपान व्यसनी उसे कहा जाता है जो तब तक शराब का सेवन करते हैं जब तक उसका स्नायुमंडल प्रभावित न हो जाए। मद्यपानता शराब की बाध्यता है। इस अवस्था में व्यक्ति को शराब की लत पड़ जाती है। प्रथम अवस्था में तो व्यक्ति मानसिक रूप से गुलाम होता है जबकि दूसरी अवस्था में शारीरिक रूप से भी शराब का गुलाम हो जाता है। मद्यपान की चार अवस्थाएं देखी गई हैं—प्रथम बार पीने में तनावमुक्ति का अहसास होता है। द्वितीय अवस्था में नियमित रूप से पीने पर व्यवहार असामान्य हो जाता है। तीसरी अवस्था में शराब पर उसका कोई नियंत्रण नहीं

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

रहता है। इसमें मद्यपान की इच्छा तीव्र हो जाती है, उसे सामाजिक नियमों, कानूनों का कोई भान नहीं रहता है। चौथी अवस्था जीर्ण अवस्था कहलाती है। व्यक्ति शराब को जीवन की अनिवार्य आवश्यकता मान लेता है। पीने की बाध्यता, शारीरिक कंपन, मनोशारीरिक अवरोध, नैतिक पतन, पूर्ण हार स्वीकार करने की प्रवृत्ति आदि लक्षण पैदा होते हैं।

बोध प्रश्न 2:

---

1. निंद्राकारी औषधियों के नाम लिखें।

2. मादक पदार्थ की लत के तीन मुख्य कारण बताएं।

3. तंबाकू (Tobacco)—तंबाकू का सेवन चबाकर या धूम्रपान द्वारा किया जाता है। तंबाकू का मुख्य अवयव निकोटिन है। यह अलग-अलग मात्राओं में कार्बनिक अम्लों तथा सिट्रिक इत्यादि के साथ पाया जाता है। इससे संबंधित कुछ एल्कोलाइड्स भी इससे जुड़े रहते हैं। निकोटिन का उपयोग नियासिन निकोटिन अम्ल के उत्पादन में सेवन किया जाता है। तंबाकू में निकोटिन की मात्रा को प्रभावित करने वाले कारकों में इसकी जाति, प्रकार, वातावरण तथा रखरखाव आदि शामिल हैं। साधारणतया तंबाकू में निकोटिन की मात्रा 4-4.5% पाई जाती है। तंबाकू का प्रभाव दर्दनाशक व शामक होता है। कुछ दंतमंजनों में 35-40% तक तंबाकू का उपयोग किया जाता है। इसका औषधीय उपयोग प्राचीन काल से ही भारत में किया जाता है। जलन, दर्द, सर्पदंश, पेट दर्द, सर्दी, मिरगी, थकान, भूख, प्यास आदि में इसका उपयोग किया जाता था।

तम्बाकू के अन्य उत्पाद—खैनी, जर्दा, गुटखा आदि हैं।

4. केफीन—केफीन को सामान्य रूप से सामाजिक स्वीकृति प्राप्त है। कॉफी, चाय व अन्य शीत पेय में केफीन पाई जाती है। इसका प्रभाव उत्तेजक होता है। इसके सेवन से जागरूकता, कार्य करने की क्षमता व थकान में कमी आती है। इनका सेवन करने वालों के अनुसार लगातार दोहराये जाने वाले कार्यों तथा मांसपेशीय क्षमता को बढ़ाने में यह सहायक होता हैं। यह रक्त में वसीय अम्ल की मात्रा बढ़ाता हैं जो ऊर्जा के रूप में उपयोग में लिया जाता है। जिससे कार्य करने की क्षमता बढ़ती है। इसके साथ ही केफीन केन्द्रिय नाड़ीतंत्र को प्रभावित कर कार्य की क्षमता, जागरूकता आदि बढ़ाता है। चाय के एक सामान्य कप में 25 मि.ग्रा. तक केफीन पाई जाती है जबकि कॉफी के एक कप में 80 मि.ग्रा. तक केफीन पाई जाती है। केफीन शारीरिक और मनोवैज्ञानिक निर्भरता पैदा करती है।

नारकोटिक ड्रग एंड साइकोट्रोपिक सबस्टैन्स एक्ट 1985 के अनुसार निम्न मात्रा में नशीले पदार्थों का सेवन करने से नशा होता है।

नाम		प्रतिशत	नाम		प्रतिशत
हेरोइन	—	86.96%	मार्फिन	—	02.21%
कोडीन	—	01.05%	डाइजेपाम	—	01.51%
नाइट्रेजेपाम	—	01.51%	गांजा एवं चरस	—	44.12%
अफीम	—	09.08%	भांग	—	05.70%
एल.एस.डी.	—	00.47%	मेन्ड्रेक्स	—	04.77%
एम्फेटामाइन्स	—	00.23%	बारबिच्यूरेट्स	—	02.09%
अन्य	—	02.56%			

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

5.9 प्रश्नावली

I निबन्धात्मक प्रश्न

1. नशे के प्रकारों का वर्णन कीजिए।

II लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. प्राचीन समय में नशे का सेवन कहां-कहां होता था?
2. नशे के सेवन हेतु मिथ्या धारणाओं एवं अंधविश्वासों को बताइये।

III वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. मनुष्य की प्रकृति, तलाश एवं खोज की क्यों बनी?
2. नशे का सेवन कब से प्रारंभ हुआ?
3. नशे के लगातार सेवन से क्या होता है?
4. नशे के कितने प्रकार हैं?
5. भांग क्या है?
6. भौतिकवादी प्रवृत्ति ………………… के पश्चात् प्रारंभ हुई।
7. प्राचीन समय में ………………… साधन माना जाता था।
8. मध्यपानता …………….. है।
9. तम्बाकू का मुख्य अवयव …………….. है।
10. चाय के एक कप में …………….. केफोन होती है।

5.10. संदर्भ पुस्तकें:

1. Drug Abbuse and Society—Saroj Prasant
2. Drug Abbuse Environmental Pollution—B. Sain
3. Drugs—Richard G. Schlaadt
4. प्रेक्षाध्यान पत्रिका—मई 1997, जुलाई 2001
5. आयुर्वेद विकास पत्रिका—मार्च 2000
6. भारतीय सामाजिक समस्याएं—डॉ. जी. आर. मदन

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–6 : नशे के कारण एवं प्रभाव

संरचना

6.0 प्रस्तावना

6.1 उद्देश्य

6.2 नशे के कारण

6.2.1 शारीरिक कारण

6.2.2 मनोवैज्ञानिक कारण

6.2.2.1 प्रायोगिक सेवन

6.2.2.2 सामाजिक मनोरंजन

6.2.2.3 परिस्थितिवश सेवन

6.2.2.4 इच्छानुसार

6.2.2.5 बाध्यता

6.2.3 सामाजिक मनोरंजन

6.2.3.1 परिवार

6.2.3.2 शिक्षा

6.2.2.3 पर्यावरणीय कारक

6.2.2.4 साथियों का दबाव

6.2.2.5 अन्य

6.2.3 आर्थिक कारण

6.3 नशे का प्रभाव

6.3.1 नशा एवं स्वास्थ्य

6.3.2 सिगरेट का प्रभाव

6.3.3 धूम्रपान एवं कैंसर

6.3.3.1 गले की समस्या

6.3.3.2 हृदय रोग

6.3.3.3 फेफड़ों की समस्या

6.3.3.4 धूम्रपान एवं निमोनिया

6.3.4 तंबाकू

6.3.5 शराब का प्रभाव

6.3.5.1 शराब का तंत्रिका तंत्र पर प्रभाव

6.3.5.2 यकृत पर प्रभाव

6.3.5.3 पाचन तंत्र पर प्रभाव

6.3.5.4 किडनी पर प्रभाव

6.3.5.5 शरीर के तापमान पर प्रभाव

6.3.5.6 भ्रूण विकार

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

6.3.6 नशा एवं व्यक्तित्व
6.3.7 नशा एवं परिवार
6.3.8 नशा एवं शिक्षा
6.3.9 नशा एवं समाज
6.3.10 नशा एवं तस्करी
6.3.11 नशा एवं प्रदूषण
6.3.12 नशा एवं आर्थिक जीवन
6.3.13 नशा एवं कार्यस्थान
6.3.14 नशा एवं खेल
6.3.15 नशा एवं अपराध
6.4 प्रश्नावली
6.5 संदर्भ ग्रंथ

6.1 प्रस्तावना

वर्तमान समय में समूचा विश्व नशीले पदार्थों के चंगुल में फंसा हुआ है जो सम्पूर्ण मानव जाति के समक्ष एक भयावह स्थिति का चित्र प्रस्तुत कर रहा है। इन नशीले पदार्थों के सेवन से मानवीय मूल्यों का पतन होता जा रहा है। इन पदार्थों के प्रति बढ़ते आकर्षण से जहां एक ओर अराजकता की स्थिति उत्पन्न हुई है, वहीं दूसरी ओर स्वस्थ समाज के अस्तित्व पर प्रश्न चिह्न लगने लगा है। नशीले पदार्थों का सेवन करने वाले स्वयं को नहीं वरन् परिवार, समाज तथा राष्ट्र को भी क्षति पहुंचाते हैं। युवावर्ग इन नशीले पदार्थों के चंगुल में फंसकर अपने जीवन की संभावनाओं को मिटाने में तुला हुआ है। इन पदार्थों की वृद्धि के कारण परिस्थितियां जटिल होती जा रही हैं। मानव सभ्यता के समक्ष यह एक चुनौती का रूप धारण कर चुका है।

6.0 उद्देश्य

इस पाठ को पढ़ने के बाद निम्न जानकारियां प्राप्त हो सकेंगी—

—नशा सेवन के विभिन्न कारक—शारीरिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, आर्थिक।

—नशा सेवन के परिणाम—स्वास्थ्य, परिवार, समाज आदि।

6.2 नशे के कारण

प्राचीनकाल से ही विश्व में समय-समय पर विभिन्न कारण मानव विनाश के लिए उत्तरदायी रहे हैं। कभी महामारियां तो कभी विश्वयुद्ध, कभी प्राकृतिक प्रकोप तो कभी अन्य समस्याएं। वर्तमान में मानव के समक्ष कई समस्याओं के साथ एक ज्वलंत समस्या है—नशा। नशे की समस्या अपना विकराल रूप धारण कर रही है। अशिक्षित के साथ ही शिक्षित वर्ग भी इसके चंगुल में फंसा हुआ है। यह मानव के समक्ष समस्या तो है ही, एक चुनौती भी है। क्या मानव विनाश के लिए रचा गया यह कोई षड्यंत्र है या समस्या का समाधान? ऐसा नहीं है। व्यक्ति इनके भयंकर परिणामों से भिज्ञ-अनभिज्ञ दोनों ही है। फिर भी व्यक्ति में कई ऐसे कारक तत्त्व हैं जो व्यक्ति को नशा सेवन के लिए आकर्षित करते हैं।

नशा सेवन के मुख्यतया चार कारण हैं—शारीरिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक और आर्थिक।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

6.2.1 शारीरिक कारण

व्यक्ति की कुछ शारीरिक समस्याएं होती हैं जो नशा सेवन हेतु उत्तरदायी बनती हैं। व्यक्ति शारीरिक अस्वस्थता के कारण उस समस्या से निजात पाना चाहता है। समस्या-समाधान हेतु व्यक्ति जिस औषधि का सेवन करता है, उससे आराम मिलने पर वह उस स्थिति में उस औषधि का बार-बार सेवन करने लगता है। इस कारण से वह उस औषधि का अभ्यस्त हो जाता है। व्यक्ति अपनी शारीरिक कमजोरी को दूर करने हेतु तथा शरीर में स्फूर्ति तथा शक्ति का अनुभव करने हेतु भी नशे का सेवन करता है। नशा व्यक्ति के नाड़ीतंत्र को कुछ समय तक के लिए प्रभावित करता है जिससे व्यक्ति सुख, आनंद व शांति का अनुभव करता है, शरीर में स्फूर्ति एवं शक्ति का अनुभव करता है। धीरे-धीरे व्यक्ति इस क्षणिक सुख शांति की प्राप्ति हेतु भी नशे पर निर्भर होने लग जाता है। एक अवस्था आती है कि व्यक्ति पूरी तरह से शारीरिक रूप से नशे का आदी हो जाता है।

व्यक्ति की शारीरिक संरचना, उसका स्वास्थ्य, रूप-रंग आदि ऐसे कई अन्य कारण हैं जो व्यक्ति के लिए निषेधात्मक रूप से प्रभावित करते हैं। व्यक्ति के शारीरिक अंग-उपांग यथास्थान तथा प्रकृति के अनुरूप न हो, उसका रंग-रूप उसकी इच्छानुसार न हो आदि कारण व्यक्ति में हीनता, कुंठा आदि को जन्म देते हैं। व्यक्ति इस स्थिति में अपने आप को संतुलित नहीं कर पाता है तथा नशे की शरण लेता है। व्यक्ति में जब धीरे-धीरे नशे की आदत होने लगती है तो एक समय ऐसा आता है जब उसमें शारीरिक निर्भरता उत्पन्न हो जाती है क्योंकि शरीर के अवयव उस नशे के आदी हो जाते हैं। शारीरिक प्रणाली पर नशे के अभाव का प्रभाव पड़ता है। शारीरिक प्रणाली प्राकृतिक रूप से न होकर नशे से प्रभावित हो जाती है।

6.2.2 मनोवैज्ञानिक कारण

व्यक्ति जब मानसिक रूप से अस्वस्थ रहता है तो उसके भीतर चिंता, कुंठा, तनाव, भय, हीन भावना आदि लक्षण प्रकट होने लगते हैं। कई बार व्यक्ति अपनी मानसिक स्थिति में सुधार हेतु भी नशे का सेवन करता है। अपनी भावनाओं को व्यक्त करने हेतु, अच्छा प्रदर्शन करने हेतु, मानसिक शांति एवं आनन्द हेतु तथा कई प्रकार की मानसिक समस्याओं से निदान पाने हेतु नशे का सेवन करता है। बार-बार सेवन से व्यक्ति में मानसिक तौर से निर्भरता बढ़ जाती है। व्यक्ति इसके लिए मात्रा में वृद्धि करता है जिससे वह अच्छा प्रभाव ला सके।

समस्याओं के पैदा होने से जो व्यक्ति मानसिक रूप से स्वयं को कमजोर पाते हैं, हताश और निराश हो जाते हैं तो उन्हें आराम हेतु नशा ही प्रभावकारी दिखता है क्योंकि इसका प्रभाव बहुत जल्दी पड़ता है। व्यक्ति इतना अधीर हो जाता है कि वह नशे को ही स्थायी समाधान मानने लग जाता है। धीरे- धीरे यह स्थिति मानसिक निर्भरता पैदा करती है।

जब व्यक्ति पर मानसिक दबाव अधिक पड़ता है अथवा वह स्वयं को समस्याग्रस्त पाता है तो वह दु:खी हो जाता है या उसके पास कोई समाधान नहीं होता है। इस स्थिति से दूर भागना चाहता है जहां उसको क्षणिक आनंद की प्राप्ति हो सके। वह नशे को अपनाता है जहां थोड़े समय के लिए इन सब समस्याओं से मुक्त हो जाता है। ऐसी अवस्था उसे मनचाहा परिणाम देती है। व्यक्ति इस अवस्था को बार-बार प्राप्त करना चाहता है अथवा जब भी समस्या आए वह नशे का सहारा लेता है। धीरे- धीरे वह अभ्यस्त हो जाता है।

मनोवैज्ञानिक प्रभावों का अध्ययन करने पर यह ज्ञात होता है कि नशे का सेवन करने के निम्न कारण हैं जिन्हें 5 भागों में बांटा जा सकता है—

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

6.2.2.1 प्रायोगिक सेवन

यदि व्यक्ति सामाजिक वातावरण से प्रेरित होकर नशे का सेवन करता है अथवा व्यक्ति में नशा सेवन हेतु जिज्ञासा पैदा करता है या नई चैतन्यता का अनुभव करने की इच्छा पैदा करता है तो ऐसी परिस्थिति में प्रायोगिक तौर से नशे का सेवन किया जाता है। हालांकि इसमें जोखिम की संभावना कम रहती है तथा वैयक्तिक व सामाजिक स्तर पर भी समस्याएं कम पैदा होती हैं।

6.2.2.2 सामाजिक मनोरंजन

नशे का सेवन विभिन्न सामाजिक उत्सवों में यदि इच्छा शक्ति के नियंत्रण में किया जाता है तो यह आदत के रूप में विकसित नहीं होता है और न ही यह व्यक्ति में लत पैदा करता है। यह व्यक्ति-व्यक्ति पर निर्भर करता है कि किसी व्यक्ति के लिए नशा निर्भरता पैदा कर सकता है, किसी के लिए कम प्रभावकारी होता है। जैसे हेरोइन की अपेक्षा मेरिजुएना का प्रभाव कम होता है।

6.2.2.3 परिस्थितिवश सेवन

परिस्थितिवश नशा सेवन करने की विशिष्ट स्थितियां अथवा कारण होते हैं, जैसे—स्वयं के उपचार हेतु, बिना चिकित्सकीय सलाह से सेवन करना, कार्यक्षमता को बढ़ाने, परीक्षा की तैयारी करने, शक्ति प्रदर्शन, दौड़ प्रतियोगिताएं, लंबी दूरी तय करने तथा युद्ध की तैयारी हेतु आदि। इन स्थितियों में जोखिम की संभावना कम रहती है। इस प्रकार का नशा सेवन तभी तक सही रहता है जब तक यह लत पैदा न करे। व्यक्ति आवश्यकतानुसार इसका सेवन करता है। मात्रा बढ़ाने पर निर्भरता भी पैदा हो सकती है अथवा व्यक्ति के क्रियाकलापों पर इसका दुष्प्रभाव पड़ता है, जैसे—एम्फैटामाइन्स से दुर्घटनाओं की संभावना अधिक रहती है।

6.2.2.4 इच्छानुसार

इस स्थिति में नशे का सेवन आदत के रूप में दिन में कम से कम एक बार किया जाता है। लगातार सेवन से आदत बन जाती है अथवा निर्भरता पैदा हो जाती है। हालांकि ऐसी स्थिति में व्यक्ति का सामाजिक, आर्थिक जीवन समायोजित रहता है। जैसे कि कुछ व्यक्ति नींद हेतु या अन्य समस्याओं को दूर करने हेतु इसका सेवन करते हैं लेकिन मात्रा तथा आवृत्ति की अधिकता के कारण निर्भरता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

6.2.2.5 बाध्यता

यह वह स्थिति होती है जब व्यक्ति नशे का सेवन नहीं करता है तो उसमें उसके अभाव में कुछ लक्षण देखे जा सकते हैं। अर्थात् पूर्व मात्रा और आवृत्ति के अभाव में जो लक्षण व्यक्ति में प्रकट होते हैं वह बाध्यता की स्थिति होती है। इसे लत के भ्रम से भी जाना जाता है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति को बार-बार नशा सेवन की इच्छा होती है। सामाजिक क्रियाकलापों में अव्यवस्था व कुसमायोजन की स्थिति पैदा होती है। ऐसे व्यक्तियों में डॉक्टर, ग्रहणियां या उच्च अधिकारी भी हो सकते हैं।

6.2.3 सामाजिक कारण

समाज में ऐसे कई तत्त्व होते हैं जो व्यक्ति मे नशे की प्रवृत्ति को उत्पन्न करते हैं। परिवार, शिक्षा, सामाजिक संस्थाएं, परंपराएं आदि कई तत्त्व हैं जो नशे की संस्कृति के संवाहक बनते हैं।

6.2.3.1 परिवार

परिवार से ही बालक को अच्छे बुरे संस्कारों का, कार्यों का तथा अनुभवों का ज्ञान होता है। परिवार

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

व्यक्तित्व विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। समाज की छोटी इकाई होने के कारण परिवार की महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है। परिवार से ही बालक में जिन आदतों का निर्माण होता है उसी के आधार पर उसका व्यक्तित्व बनता है। नशे जैसी बुरी आदत का निर्माण भी परिवार से प्राप्त होता है। परिवार में कलह, मूल्य की अवहेलना, अनैतिकता, नशे की संस्कृति आदि कई कारण हैं जिनसे बालक नशे की प्रवृत्ति को अपनाता है। परिवार में यदि बच्चे को यथोचित वातावरण नहीं मिलता है तो हताश, निराश, कुंठाग्रस्त एवं तनावग्रस्त हो जाता है जो उसके शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करता है। बालक इन समस्याओं का समाधान ढूंढता है। गलत संगत में जाने पर भी परिवार से उसे कोई उचित संरक्षण नहीं मिलता है तब वह बालक धीरे-धीरे बुरी आदतों का शिकार हो जाता है। यदि परिवार के लोग ही नशा करते हैं तो बालक भी उनकी देखादेखी करता है या अप्रत्यक्ष रूप से भी वह नशे का शिकार हो जाता है, जैसे—धूम्रपान के धुंए से प्रभावित होना। परिवार में या तो नशा सामान्य माना जाता है या बड़े लोग बच्चों से इसे दूर रखना चाहते हैं लेकिन बच्चों में इसके प्रति एक जिज्ञासा पैदा होती है। वे चोरी-छिपे या बनावटी नशे का सेवन करते हैं। धीरे-धीरे वे पूरी तरह से नशे में लिप्त हो जाते हैं। अन्य कई पारिवारिक समस्याएं भी व्यक्ति को नशे की ओर धकेलती हैं।

6.2.3.2 शिक्षा

शिक्षा के द्वारा व्यक्तित्व का विकास होता है। बालकों को प्रारंभ से ही उचित शिक्षा मिलती है तो उससे उनका आन्तरिक विकास संभव होता है। उचित-अनुचित का उन्हें ज्ञान होता है अथवा उनका विवेक विकसित होता है। शिक्षा केवल बौद्धिक ज्ञान देना ही नहीं अपितु उनमें निहित शक्तियों को जागृत करना है। शिक्षा के उद्देश्यों के अनुरूप ही शिक्षा बालकों को दी जाए तो वह अपनी समस्याओं का स्वयं समाधान उचित तरीके से खोज सकते हैं। वर्तमान में शिक्षा जगत् के समक्ष कई विचारणीय समस्याएं हैं। देश में न तो विद्यार्थी वर्ग की कमी है, न विद्यालयों की और न शिक्षकों की। इसके बाद भी शिक्षा का वह स्वरूप दृष्टिगोचर नहीं हो पा रहा है जो होना चाहिए। हिंसा, तोड़फोड़, अमानवीय कृत्य, नशा आदि वर्तमान की प्रमुख समस्याएं हैं। एक शिक्षित व्यक्ति उचित-अनुचित का ध्यान नहीं रखता है। शिक्षा अपने उद्देश्यों को पूरा नहीं कर पा रही है, यह समस्या का विषय है। वर्तमान में केवल बौद्धिक स्तर पर ही शिक्षा को महत्त्व दिया गया है तथा थोड़ा बहुत शारीरिक शिक्षा को। क्या शिक्षा का उद्देश्य इतना ही है? शिक्षा के उद्देश्यों की पूर्त्ति बालक के शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक तथा बौद्धिक विकास के अभाव में नहीं हो सकती है। वर्तमान शिक्षा जगत् में उद्देश्यों के अनुरूप शिक्षा का अभाव है। विद्यार्थी वर्ग में तनाव, कुंठा, कुसमायोजन, असंतोष आदि दिखाई देते हैं जिनका एक परिणाम नशा भी है। नशे की संस्कृति शिक्षा जगत् में अभिशाप है। शिक्षा जिससे ज्ञान की प्राप्ति होती है, यदि सदाचार, सच्चरित्र तथा मूल्यों के विकास में सहायक नहीं बनती है तो वहां शिक्षा का सही अर्थ प्रकट नहीं होता है। वर्तमान में शिक्षा के उद्देश्यों के अनुरूप शिक्षा का न होना नशे जैसी समस्या का एक कारण है।

6.2.3.3 पर्यावरणीय कारक

वर्तमान में भोग-विलासमय पर्यावरण भी नशे के लिए उत्तरदायी है। संयम, सदाचार, नैतिकता, सच्चाई, ईमानदारी, करुणा, मैत्री आदि नैतिक मूल्यों का समाज से पतन होता जा रहा है। व्यक्तियों की इनमें से आस्था कम होती जा रही है। अधिकांश साहित्य, पत्र-पत्रिकाएं, नाटक, संगीत, फैशन, शिष्टाचार, विज्ञापन आदि जन-समूह को प्रभावित करने वाले साधन गुप्त और प्रकट रूप से भोग और विलास को प्रोत्साहित करते हैं। वर्तमान में विश्व का पर्यावरण इस प्रकार का बनता जा रहा है कि नैतिक और सामाजिक मूल्यों की अवहेलना हो रही है। इस प्रकार के पर्यावरण में नशे का विस्तार होना स्वाभाविक ही है। नशा और भोगविलास को सामाजिक प्रतिष्ठा मिल रही है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

6.2.3.4 साथियों का दबाव

कई बार व्यक्ति स्वयं तो नशा करना नहीं चाहता है लेकिन उसके साथी उसे इस ओर आकर्षित करते हैं या उस पर दबाव डालते हैं। वह कुछ समय तक तो इनकार करता रहता है लेकिन कमजोर मानसिकता के कारण वह साथियों के साथ ही मिल जाता है। इस प्रकार नशा करने वालों का एक समूह बन जाता है और वे सामूहिक रूप से नशा करते हैं।

6.2.3.5 अन्य

समाज में प्रचलित तौर-तरीके, मान्यताएं, आस्थाएं, परंपराएं आदि भी नशे की संस्कृति हेतु उत्तरदायी होते हैं। समाज में किसी वर्ग में नशे को महत्त्व दिया जाता है तो किसी में नहीं अथवा किन्हीं विशेष समारोहों में नशे का प्रचलन रहता है। व्यक्ति को न चाहते हुए भी इसका सेवन करना पड़ता है। इस प्रकार समाज में एक बुराई व्याप्त हो जाती है। प्राचीन काल से ही धार्मिक स्थलों पर भी नशे का सेवन होता आ रहा है। गांजा, चरस, मद्यपान आदि का सेवन मंदिरों में किया जाता है। कुछ जातियों में नशे का सेवन होली, दिवाली जैसे पवित्र त्योहारों पर भी होता है। नशे का धार्मिक स्थलों में प्रवेश करने पर ये नशा प्राप्ति के अच्छे स्थल बनते हैं। कई अन्य सामाजिक कारणों से भी व्यक्ति नशे का आदी हो जाता है। समाज में व्यक्ति को उचित मान-सम्मान का अभाव, उसको जीवन-यापन में कठिनाई आदि का होना व्यक्ति को निषेधात्मक रूप से प्रभावित करता है। समाज के रीति-रिवाजों को पूरा करने हेतु एक गरीब व्यक्ति अपने को असहाय पाता है या इनकी पूर्त्ति समाज के नियमों के अनुरूप नहीं कर पाता है तो उसके लिए कई प्रकार की समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं। वह दु:खी होकर नशे का सेवन करने लगता है या अपने आपको उस दु:ख से दूर रखने हेतु या समस्याओं को भुलाने हेतु नशे का सेवन करने लगता है। इसके अलावा कुछ राजनैतिक कारण भी हैं जिनकी वजह से समाज में नशे का प्रचलन होता है।

6.2.4 आर्थिक कारण

व्यक्ति को आवश्यकताओं की पूर्त्ति हेतु धन की आवश्यकता होती है। यदि व्यक्ति के पास इन आवश्यकताओं की पूर्त्ति हेतु धन होता है तो व्यक्ति अपना जीवन सुखपूर्वक चला सकता है अन्यथा उसका जीवन दूभर हो जाता है। व्यक्ति की कुछ इच्छाएं होती हैं जिन्हें वह पूरा करना चाहता है। एक तो व्यक्ति की सीमित इच्छा होती है और दूसरी असीमित इच्छा। यदि इन दोनों की पूर्त्ति नहीं हो पाती है तो व्यक्ति तनाव, कुंठा, चिंता आदि मानसिक रोगों से ग्रस्त हो जाता है जो उसे नशे की ओर प्रवृत्त करते हैं। आर्थिक व्यवस्था तंत्र भी इसमें सहयोगी बनता है। आर्थिक व्यवस्थाएं सबके हित में होनी चाहिए। यदि ये व्यवस्थाएं कुछ ही व्यक्तियों के हितों को ध्यान में रखकर बनाई जाती हैं तो भी समस्या का कारण बनती हैं। बेरोजगारी भी एक समस्या है। पढ़ाई करने के बाद भी व्यक्ति को रोजगार नहीं मिल पाता है तो वह हताशा एवं निराशा की स्थिति में चला जाता है। स्वयं की आवश्यकता पूर्त्ति, परिवार की जिम्मेदारी आदि व्यक्ति के लिए इस स्थिति में असहनीय सी होने लगती है। अर्थात् वह इन कर्त्तव्यों की पूर्त्ति नहीं कर पाता है। कई बार वह स्वयं को इसका दोषी मानता है। वह अपनी स्थिति में परिवर्तन चाहता है लेकिन इसके लिए भी कई बार धन की ही आवश्यकता होती है। इस प्रकार धन का अतिभाव जहां समस्या है तो धन का अभाव भी एक समस्या है।

6.3 नशे का प्रभाव

नशा व्यक्ति को निम्न प्रकार से प्रभावित करता है—

6.3.1 नशा एवं स्वास्थ्य

कहा जाता है पहला सुख निरोगी काया। जीवन के सात सुखों में प्रथम स्थान स्वास्थ्य को ही दिया जाता

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

है। ऋषि-मनीषियों का कहना है कि चारों पुरुषार्थों को वही व्यक्ति पूरा कर सकता है जो स्वस्थ हो। आधुनिक आयुर्विज्ञान में भी जीवन को भरपूर जीने के लिए स्वास्थ्य को ही आवश्यक बताया गया है लेकिन दुर्भाग्य की बात है कि व्यक्ति बुरी आदतें पालकर कई रोगों को आमंत्रित करता है। जिसका परिणाम उसे स्वयं को भुगतना पड़ता है साथ ही इसका प्रभाव सामूहिक जीवन पर भी पड़ता है। नशा एक ऐसी समस्या है जिसे व्यक्ति अपना लेता है तो यह व्यक्ति के जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित करता है। वर्तमान समय में नशे के कई रूप सामने आये हैं जो व्यक्ति को आकर्षित करते हैं। व्यक्ति इस चकाचौंध में फंस जाता है तो उससे मुक्ति पाना उसके लिए कठिन हो जाता है। यदि व्यक्ति चाहे तो इसका समाधान उसके पास होता है।

6.3.2 सिगरेट का प्रभाव

सिगरेट के धुंए में निम्न अवयव पाए जाते हैं—कार्बन मोनोक्साइड, निकोटिन व टार। कार्बनमोनोक्साइड 3-5% पाया जाता है। यह रंगहीन, गंधहीन, जहरीली गैस होती है। यह हीमोग्लोबिन के साथ तीव्रता से जुड़कर कार्बोक्सीहीमोग्लोबिन का निर्माण करती है। रक्त में हीमोग्लोबिन कार्बनमोनोक्साइड ऑक्सीजन की तुलना में 200 गुना अधिक जुड़ने की क्षमता रखती है। अतः नशे के समय रक्त की ऑक्सीजन ले जाने की क्षमता 10% कम या अधिक होती है। निकोटिन एक गाढ़ा तैलीय एल्कलोइड है जो तीव्र जहरीला होता है। इसकी 4 मिलीग्राम मात्रा भी अपना जहरीला प्रभाव छोड़ती है। 60 मिलीग्राम की मात्रा मृत्युकारक हो सकती है। निकोटिन शरीर में एड्रीनलीन तथा नारएड्रीनलीन के स्रावों में वृद्धि करता है। इसका स्राव रक्तचाप व ह्दयगति का नियंत्रण करने वाले केन्द्रों को प्रभावित करता है। अतः अधिक मात्रा में धूम्रपान कई समस्याएं पैदा करता है। निकोटिन रक्त में वसीय अम्ल की मात्रा में वृद्धि करता है तथा बिम्बाणुओं (Platelets) को आपस में जोड़ने हेतु रक्त वाहिनियों की दीवारों से जुड़ने के लिए प्रेरित करता है। यह एक भूरा गाढ़ा पदार्थ होता है। यह सिगरेट के धुंए के कणों के संघनन से बना होता है। इसके मुख्य अवयव हैं—कैंसर कारक तत्त्व, जैसे— पोलिसाइक्लिक एरोमेटिक हाइड्रोकार्बन्स, नाइट्रोसोएमिन्स बोटेना थिलेमिन्स, फिनोल, वसीय अम्ल तथा अन्य एस्टर इत्यादि।

सिगरेट का दुष्प्रभाव जीभ से प्रारंभ होता है। इसके धुंए का प्रभाव जहरीला होता है। निकोटिन व कार्बनमोनोक्साइड रक्त वाहिनियों की दीवारों में एकत्र होते हैं जिससे धमनियां संकरी होती जाती हैं। इसके लगातार सेवन से रक्त परिवहन में समस्या उत्पन्न होती है। इसका सेवन मृत्युकारक भी हो सकता है। विभिन्न शोध बताते हैं कि इसका लगातार सेवन स्वाद को समाप्त कर देता है। जीभ व मुखगुहा में सूजन रहती है। तम्बाकू से मुखगुहा में म्यूकस झिल्ली भी प्रभावित होती है। यह सीलिका को नस्ट कर देता है जिससे श्वसन का शुद्धीकरण नहीं हो पाता है। वैज्ञानिकों ने यह भी सिद्ध किया है कि धूम्रपान से नपुंसकता व कोढ़ की भी संभावना रहती है। तंबाकू के लगातार सेवन से दृष्टि संबंधी दोष उत्पन्न होते हैं।

6.3.3 धूम्रपान एवं कैंसर

तंबाकू में 30 से अधिक हानिकारक तत्त्व पाए जाते हैं। निकोटिन, हाइड्रोजन, सल्फाइड, अमोनिया आदि। इनमें बैन्जोपाइरैइन सबसे खतरनाक है। यह कैंसर कारक है। अधिक धूम्रपान करने वालों में फेफड़ो का कैंसर धूम्रपान न करने वालों की तुलना में 30 गुना अधिक पाया जाता है।

6.3.3.1 गले की समस्या

धूम्रपान गले की समस्या भी उत्पन्न करता है। कई बार व्यसनी की आवाज तक चली जाती है अथवा बोलने में कठिनाई होती है। इसका मुख्य कारण स्वर यंत्र पर धूम्रपान का कुप्रभाव है।

6.3.3.2 हृदय रोग

एशियन पैसिफिक सोसाइटी ऑफ कार्डियोलॉजी के प्रतिनिधि डॉ. स्लोमन के अनुसार हृदयघात के मुख्य कारणों में धूम्रपान भी एक है। अध्ययन करने पर पाया गया है कि हृदय की अधिकांश घटनाओं में मुख्य कारण धूम्रपान है।

6.3.3.3 फेफड़ों की समस्या

विभिन्न शोधों के अनुसार 8 में से 1 व्यक्ति फेफड़ों की समस्या से ग्रसित होता है। ये समस्याएं 40-50 वर्ष की उम्र में अधिक होती है। अधिक धूम्रपान से श्वसनतंत्र मुख्यतया फेफड़ों की क्रियाविधि अनियंत्रित हो जाती है जिससे ऑक्सीजन तथा कार्बनडाईऑक्साइड के आवागमन में बाधा उत्पन्न होती है।

महिलाओं में भी धूम्रपान का प्रचलन काफी बढ़ रहा है। औद्योगिक देशों में नशे से होने वाली मौतो में एक तिहाई महिलाएं हैं। पुरुषों के समान ही महिलाओं में वे सभी रोग होते हैं जो धूम्रपान के कारण उत्पन्न होते हैं। इसके अतिरिक्त सेवन से महिलाओं में गर्भाशय का कैंसर तथ भ्रूण के स्वास्थ्य पर भी प्रतिकूल प्रभाव होता है। महिलाओं में इससे गर्भधारण की क्षमता में कमी, मासिक धर्म में अनियमितता, नवजात शिशु के वजन में कमी व अवयस्कता आदि समस्याएं पैदा होती हैं। धूम्रपान का अति सेवन शिशु की मौत का कारण भी बनता है। निकोटिन मां के दूध को भी प्रभावित करता है जिससे बच्चे का स्वास्थ्य प्रभावित होता है। धूम्रपान से गर्भपात की संभावना भी होती है।

6.3.3.4 धूम्रपान एवं निमोनिया

एक नवीन शोध से पता चला है कि बीड़ी-सिगरेट पीने वालों में मेनिंजाइटिस, रक्त विषाक्तता, कान के संक्रमण एवं निमोनिया पैदा करने वाले स्ट्रप्टोकोकस जीवाणु से संक्रमित होने का खतरा आम लोगों की तुलना में चार गुना अधिक होता है। इस जीवाणु की खोज 1881 में लुई पास्चर ने की थी, उन्होंने रैबीज मरीज की लार से इस जीवाणु को अलग किया था। न्यू इंग्लैण्ड जनरल ऑफ मेडिसिन नामक शोध-पत्रिका में प्रकाशित रिपोर्ट के अनुसार इस जीवाणु से संक्रमित होने का खतरा धूम्रपान करने वालों पर नहीं वरन् उसके आसपास रहने वालों को भी हो सकता है।

सिगरेट पीने से एक ऐसा रोग होता है जिसके फलस्वरूप रक्त में आक्सीजन की मात्रा घट जाती है। उससे व्यक्ति सिरदर्द, थकान, मूर्च्छा आदि का शिकार हो जाता है। फलस्वरूप दिल के दौरे की संभावना बन जाती है। इस रोग का नाम है पोलिसिथेमिया। इससे रक्त में कार्बन मोनोक्साइड की मात्रा बढ़ जाती है तथा आक्सीजन की आपूर्ति कम हो जाती है। सिगरेट पीने वाले व्यक्ति को इस रोग के शिकार होने की संभावना अधिक रहती है। भले कुछ व्यक्तियो में कष्ट कम हो व लक्षण प्रकट न हो पाएं।

कई विद्वानों का मत है कि तंबाकू से बुद्धि का ह्रास अधिक होता है। इन्द्रिय दौर्बल्य, स्मरण-शक्ति की हानि, चित्त की चंचलता और मस्तिष्क रोग का कारण भी तंबाकू ही है। मानसिक रोग विशेषज्ञ डॉ. फोवर्स विंसला का मानना है कि पागलपन के कारणों में पहला मद्य, दूसरा तंबाकू तथा तीसरा आनुवंशिकता है।

अमेरिकन वनस्पति विज्ञान के विशेषज्ञ लूथर पंक ने लिखा है कि जिन कामों मे एकाग्रता की आवश्यकता होती है उनमें नशीले पदार्थों का व्यवहार अवश्य ही हानिकारक सिद्ध हुआ है। जब धूम्रपान किया जाता है तब धुएं का तापक्रम लगभग 88 से.ग्रे. होता है। यह तापक्रम तंबाकू में उपस्थित कार्बनिक-अकार्बनिक यौगिकों के ऑक्सीकरण, भंजन एवं संघनन से उत्पन्न होता है। इन क्रियाओं में एल्कलोइड, एलडिहाइड, एरोमेटिक किटोन, ग्लिसराल, एरोमेटिक हाइड्रोकार्बन आदि बनते हैं जो रक्त में शोषित होकर उसको दूषित बना देते हैं तथा रक्त संचार के समय विभिन्न अंगों में पहुंचकर उनके क्रियाकलापों को अनियमित बना देते हैं। ये दूषित पदार्थ रक्त से गुर्दे के द्वारा छनते हैं और मूत्र में जाते हैं तो गुर्दे के साथ-साथ मूत्राशय एवं मूत्रनली को भी प्रभावित करते हैं एवं कैन्सर तथा पथरी जैसे रोग उत्पन्न कर देते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

धुएं में कई प्रकार के रेडियोधर्मी अवयव भी होते हैं जिनमें पोलिनियम 210 मुख्य है। धुएं में उपस्थित कार्बन कण, रेडियोधर्मी अवयव तथा एक विशिष्ट प्रकार का कैंसर उत्पन्न करने वाला नाफरोसोनार निकोटिन है जो कोशिकाओं की सतह पर जमा होकर उनमें प्री कैंसर स्तर उत्पन्न करते हैं। लगातार कोशिकाओं में डिसप्लेजिया, पेराप्लेजिया, ल्यूकोपेटिया, कारसीनोका के कारण ओरो फैरिंजियल कैंसर, लेरिंजियल कैंसर, वांकोजेनिक कारसिनोमा जैसी भयंकर कालिगनेंसी कैन्सर उत्पन्न करते हैं। डॉ. स्टीवेंस ने लिखा है—तंबाकू सेवन से धारणा, ध्यान तथा स्मरण शक्ति कमजोर हो जाती है। विशेषज्ञों का यह भी मानना है कि सिगरेट व्यक्ति की 14 मिनट आयु कम करती है। नोबल पुरस्कार विजेता डॉ. पोलिंग का कथन है कि व्यक्ति जितना समय धूम्रपान में लगाता है उससे तिगुना समय उसकी उम्र में कम हो जाता है।

6.3.4 तंबाकू

नशा स्वास्थ्य के लिए बहुत हानिकारक होता है चाहे वह किसी भी प्रकार का हो। तंबाकू और इससे बने कई नशीले पदार्थों के लंबे समय तक सेवन से मुंह व गले का कैंसर होता है। इसके अलावा फेफड़ों का कैंसर, पेशाब की थैली तथा अग्नाशय का कैंसर होता है। श्वसन संबंधी बीमारियों को भी मौका मिलता है। इन्द्रप्रस्थ अपोलो अस्पताल के वरिष्ठ कैंसर रोग विशेषज्ञ डॉ. समीर कौल का कहना है कि तंबाकू और इससे बनी चीजों के सेवन से तात्कालिक और दूरगामी दोनों ही तरह के घातक परिणाम आ सकते हैं। तंबाकू में मौजूद कारसिनोजन का प्रभाव जीन के माध्यम से आने वाली पीढ़ी में कैंसर पैदा कर सकता है। वास्तव में तंबाकू की पहली खुराक ही जिंदगी की अंतिम सांस मानी जाती है। इसमें मौजूद निकोटिन नामक मादक द्रव्य इसे सेवन करने को बाध्य कर देता है। इसका सीधा असर मस्तिष्क पर पड़ता है। इसकी हरेक खुराक कैंसर की ओर खींचती है। कैंसर के अलावा इसके प्रभाव से नसें सूख जाती हैं या पैरों में सड़न पैदा हो सकती है। तंबाकू पीने वाले स्वयं को ही नहीं अपितु दूसरों को भी कैंसर का शिकार बना सकते हैं। 70% लोगों में 5 वर्ष के सेवन के उपरान्त मुंह व गले का कैंसर हो सकता है।

न्यूरो सर्जनों ने अपने हाल के अध्ययनों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला है कि सिगरेट पीने से ब्रेन अटैक एवं ब्रेन हेमरेज का खतरा बढ़ जाता है। अमेरिकन एसोसिएशन ऑफ न्यूरोलोजिकल सर्जन्स की वैज्ञानिक शोध पत्रिका जर्नल तथा न्यूरोसर्जरी में प्रकाशित एक शोध रिपोर्ट के अनुसार धूम्रपान से दिमागी नस के फटने से ब्रेन हैमरेज और ब्रेन अटैक जैसी खतरनाक स्थितियां उत्पन्न हो जाती हैं। जर्नल ऑफ न्यूरोसर्जरी में प्रकाशित एक रिपोर्ट के अध्ययन के अनुसार सिगरेट पीने से दिमागी नस में अवरोध अथवा नस फटने की संभावना कई गुना बढ़ती है। इन सर्जनों का कहना है कि सिगरेट छोड़ना अथवा सिगरेट से परहेज करना एन्युरिज्म से बचने का अच्छा उपाय है। एन्यूरिज्म दिमाग की नस में गुब्बारे जैसी स्थिति का बनना है। एन्युरिज्म की फटने की आशंका धूम्रपान, मरीज की उम्र तथा एन्यूरिज्म के आधार पर निर्भर करती है। अध्ययन से यह भी सिद्ध हुआ है कि धूम्रपान से एन्यूरिज्म का आकार बढ़ता है।

तंबाकू का सेवन किसी भी रूप में हानिकारक है। फिल्टर युक्त या फिल्टर रहित सिगरेट, सिगार, पाइप, हुक्का, चिलम, बीड़ी, सिगरेट, तंबाकू, गुटका और खैनी जैसे उत्पाद स्वास्थ्य के लिए हमेशा हानिकारक ही होते हैं। विभिन्न शोधों से साबित हो चुका है कि तंबाकू विश्व में पहले नंबर का मृत्युदाता है। एक सिगरेट पीने से आयु साढ़े चार मिनट कम हो जाती है। उच्च रक्तचाप, रक्त धमनियों में रक्त का जमाव, दमा, पेट में तेजाब का बढ़ना, पेट में सूजन एवं घाव (पेप्टिक अल्सर) अन्न नली और मूत्र प्रणाली का कैंसर प्रमुख हैं। शरीर में विभिन्न प्रकार के विटामिन व पोषक तत्त्वों की कमी हो जाती है, जिससे कई बीमारियों की आशंका रहती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

ऑक्सफोर्ड विश्व विद्यालय के रिचर्ड पीटों के नेतृत्व में विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा किए गए अनुसंधानों के अनुसार रोजाना सिर्फ चार-पांच सिगरेट पीने से भी किशोर-किशोरियों के फेफड़ों का विकास रुक जाता है। खांसी, दमा, ब्रोंकाइटिस आदि की संभावना बढ़ जाती है। शोध विशेषज्ञों के अनुसार धूम्रपान करने से लड़के-लड़कियों के फेफड़ों की विकास गति सामान्य से बहुत कम हो जाती है। इस प्रकार से ऑक्सीजन ग्रहण करने की क्षमता कम हो जाती है।

ब्रिटिश हार्ट फाउन्डेशन में हुए अनुसंधान तथा लंदन के रॉयल फ्री अस्पताल के प्रो. जेराल्ड शेयर के दल के अनुसार सिगरेट पीने वाली किशोरियों का गर्भाशय सिगरेट के धुंए से प्रभावित होता है और उसके दूषित प्रभावों के कारण उनके गर्भाशय का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है जिस वजह से वे कभी मां नहीं बन सकती हैं। नशे से स्तन अविकसित या झुक जाते हैं।

प्रो. शेयर के अनुसार धूम्रपान का शिकार नवयुवक अन्य घातक बीमारियों का शिकार तो होता ही है साथ ही धीरे-धीरे नपुंसकता का शिकार भी हो जाता है। उसके वीर्य में स्थित शुक्राणु धूम्रपान के विषैले प्रभावों से नष्ट हो जाते हैं या शिथिल होकर निष्क्रिय हो जाते हैं।

बोध प्रश्न :1

---

1. *नशा सेवन के मुख्य कारण कौन कौन से है?*
2. *धूम्रपान का फेफड़ों पर क्या प्रभाव पड़ता है?*

6.3.5 शराब का प्रभाव

यदि इसका सेवन थोड़ी मात्रा अथवा सामाजिक नियमों के अनुरूप किया जाए तो इसका प्रभाव उत्तेजक नहीं होता है लेकिन यह अवधारणा सही नहीं है। शराब सेवन धीरे-धीरे सामाजिक व्यवहारों को प्रभावित करता है। प्रारंभिक रूप में यह अवसादक होता है। व्यक्ति इसके सेवन से शिथिलीकरण, क्रोध, आक्रामकता, सूखापन, नींद आदि स्थितियों का अनुभव करता है। रक्त में यदि अल्कोहल की मात्रा .03 .05% तक होती है तो व्यक्ति में सिर का हल्कापन, शिथिलीकरण आदि लक्षण देखे जा सकते हैं। 0.1% से ऊपर की सान्द्रता होने पर लगभग सभी अनुकम्पी व परानुकंपी क्रियाएं प्रभावित होती हैं। 0.2% से ऊपर की सान्द्रता से व्यक्ति बुरी तरह से प्रभावित होता है तथा 0.4% से ऊपर व्यक्ति की मृत्यु का कारण बनती है। सामाजिक व्यवस्था में मद्यपान के सेवन को अवैधानिक बताया गया है। इसके सेवन से समाज में कई समस्याएं उत्पन्न होती हैं।

गर्भवती नारी यदि शराब का सेवन करती है तो उसके गर्भस्थ शिशु पर उसका प्रभाव पड़ता है। अमेरिका में यू. एस. नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ एल्कोहलिक अब्यूज एण्ड एल्कोहलिज्म ने अपने शोध में बताया है कि प्रतिदिन एक-दो औंस विशुद्ध अल्कोहल यदि गर्भवती नारी लेती है तो उसके बच्चे में असामान्यता आ जाती है या जन्मजात विकृति आ जाती है। अनुमान है कि अमेरिका में बुद्धि संबंधी विकारों वाले बच्चे मद्यपान करने वाली माताओं की सन्तानें हैं। शराब मां के रक्त में पहुंचकर गर्भस्थ शिशु की रक्तधारा में मिल जाता है। मां नशे में होती है तो बच्चा भी उस नशे में हो जाता है। यह स्थिति शिशु के लिए भयानक होती है क्योंकि उसके यकृत का पूरा विकास नहीं हो पाता है। वयस्क व्यक्ति का यकृत 28 मि.ली. शराब का उपचय एक घंटे में कर सकता है। भ्रूण का अविकसित यकृत इस कार्य को बड़ी धीमी गति से कर पाता है। अत: बच्चे तक पहुंचने वाला एल्कोहल गर्भनाल में अपविस्तृत हो जाता है। जब मां के रक्त में अल्कोहल की मात्रा नीचे उतरेगी तभी शिशु के उस अतिरिक्त अल्कोहल को वापस ले सकेगी। अत: मां यदि 28 मि.ली. से अधिक शराब लेती है तो वह दीर्घकाल तक बालक के रक्त में बनी रहती है। मां यदि शराब का सेवन करती है तो निश्चित ही शिशु पर तीव्र प्रतिक्रिया

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

होती है। भले ही यह बताना कठिन है कि गर्भावस्था के अमुक काल के दौरान शराब के नशे का दुष्प्रभाव अधिक होता है पर इतना निश्चित है कि मां यदि चाहे तो अपने बच्चों को विकारों से बचा सकती है।

शराब के सेवन से हृदय की धड़कन तथा कुल रक्तप्रवाह की दर बढ़ जाती है। हाथ-पैर तथा त्वचा की रक्त वाहिनियां फैल जाती हैं। रक्त दबाव में कमी, भूख में वृद्धि तथा गैस्ट्रिक स्राव तथा पेशाब की मात्रा में वृद्धि हो जाती है। रक्त में उच्च घनत्व वाले लाइपोप्रोटीन (H.D.C.) की मात्रा बढ़ जाती है तथा निम्न घनत्व वाले लाइपोप्रोटीन्स (L.D.C.) की मात्रा में कमी हो जाती है। इसके लगातार सेवन से मांसपेशीय ऊतकों में पपड़ियां बन जाती हैं तथा हृदयाघात की संभावना बढ़ जाती है।

6.3.5.1 शराब का तंत्रिका तंत्र पर प्रभाव

शराब के लगातार सेवन से मस्तिष्क को क्षति पहुंचती है। विभिन्न शोधों से ज्ञात होता है कि शराब का सेवन करने से लगभग 50% लोगों में विभिन्न प्रकार की मस्तिष्कीय व्याधियां देखी जा सकती हैं। केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र के सेरीब्रम पर सर्वप्रथम इसका प्रभाव पड़ता है जो निर्णय एवं तार्किक कार्यों के लिए उत्तरदायी होता है। इससे विचारों की प्रक्रिया कुप्रभावित होती है अथवा अनियंत्रित हो जाती है। स्मृति, एकाग्रता तथा अन्तर्दृष्टि आदि मंद हो जाते हैं और अन्ततः समाप्त हो जाते हैं। सेरीब्रम पर कुप्रभाव से सेरिब्रल कोर्टेक्स के कार्य भी बाधित होते हैं। इससे मानसिक स्थिति व भावावस्था अकारण ही परिवर्तित होती रहती है। शराब मैडूला को प्रभावित करती है जिससे श्वसन क्रिया पर भी इसका असर पड़ता है।

6.3.5.2 यकृत (Liver)

शराब के सेवन से यकृत पर भी प्रभाव पड़ता है। सिरोसिस सबसे खतरनाक प्रभाव है। विभिन्न शोध बताते हैं कि शराब के सेवन से 7 गुना अधिक सिरोसिस होने की संभावना रहती है।

6.3.5.3 पाचन तंत्र (Digestive System)

शराब का अत्यधिक सेवन मुखगुहा की सतह में आहारनाल व आमाशय में उत्तेजना (Irritation) पैदा करता है। मांसपेशीय वाल्व पाइलोरिक स्फिंटर (Piloric Sphinter) को प्रभावित करता है जिससे उल्टियां आती हैं। चूंकि शराब यकृत के संचरण को प्रभावित करता है तथा पाचन में उपयोगी एंजाइम्स तथा ऑक्सीकरण की प्रक्रिया को बाधित करता है जिससे विभिन्न प्रकार के आवश्यक विटामिन व खनिज लवण शरीर के उपयोग योग्य परिवर्तित नहीं हो पाते हैं।

6.3.5.4 किडनी (Kidney)

शराब के सेवन से किडनी की रक्तवाहिकाएं फैल जाती हैं जिससे पेशाब की मात्रा बढ़ जाती है। इसके साथ ही मस्तिष्क में जल को नियंत्रित करने वाले केन्द्र भी प्रभावित होते हैं। अधिक मात्रा में सेवन से किडनी स्थायी रूप से क्षतिग्रस्त हो सकती है।

6.3.5.5 शरीर का तापमान (Body Temperature)

शराब का सेवन आमाशय तथा त्वचा में रक्त प्रवाह बढ़ाता है इसलिए शरीर में बढ़े हुए तापमान का अनुभव होता है। रक्त प्रवाह के बढ़ने के कारण पसीने की मात्रा बढ़ जाती है जिससे ऊर्जा का अकारण ही तेजी से ह्रास होता है और शरीर के तापमान में कमी आती है। शराब का अत्यधिक सेवन हाइपोथैलेमस के तापमान को नियंत्रित करने वाले बिन्दु को प्रभावित करता है जिससे शरीर का तापमान घट जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

6.3.5.6 भ्रूण विकार (Fetal Diseases)

इसके अन्तर्गत विकास में बाधाएं, शारीरिक व्याधियां तथा मानसिक मंदता (Mental Retardation) आदि को लिया जाता है। ये नवजात शिशु को माता द्वारा गर्भ के दौरान अत्यधिक शराब के सेवन के दौरान देखे जाते हैं। इसी प्रकार अफीम, हेराईन, कोकीन, कोडीन, एल.एस.डी. आदि का भी स्वास्थ्य पर निषेधात्मक प्रभाव पड़ता है।

6.3.6 नशा एवं व्यक्तित्व

नशीले पदार्थ जैसे-तंबाकू, भांग, गांजा, अफीम, चरस, शराब आदि प्राचीनकाल से ही अस्तित्व में रहे हैं, जिनका सेवन कई तरह से किया जाता है। ये नशीले पदार्थ व्यक्तित्व संबंधी विकारों को पैदा करते हैं। कुछ नशीले पदार्थों के सेवन का प्रभाव पहले शारीरिक लक्षण के रूप में प्रकट होता है तो किसी का मानसिक। उदाहरणार्थ—तंबाकू का सेवन पहले शारीरिक क्रियाओं को प्रभावित करता है तथा मानसिक प्रक्रियाओं को लम्बे समय बाद। जबकि अफीम, शराब, चरस आदि के पहले मानसिक लक्षण प्रकट होते हैं तो शारीरिक लक्षण बाद में प्रकट होते हैं।

नशे की समस्या मानव इतिहास में नई नहीं है। नशे से व्यक्तित्व विकार उत्पन्न होते हैं तथा मानसिक विकृतियां उत्पन्न हो जाती हैं। यह विचार इस शताब्दी के दूसरे दशक से मनोवैज्ञानिकों के अध्ययन का विषय बना हुआ है। नशे के सेवन से व्यक्ति कुसमायोजित हो जाता है। उसका जीवन काल सामान्य व्यक्ति की अपेक्षा 13 वर्ष कम हो जाता है। कुछ नशीले पदार्थ कम समय में ही कई विकार उत्पन्न कर देते हैं तथा कुछ ऐसे पदार्थ हैं जिनकी प्रतिक्रिया बहुत अधिक समय बाद होती है। व्यक्तित्व का विघटन नशे की मात्रा, उम्र, शिक्षा, समाज आदि पर निर्भर करता है।

सामान्यतया नशा व्यक्ति में उत्तेजना पैदा करता है, कामेच्छा में सहयोगी बनता है तथा दु:ख-दर्द मिटाने का उपयुक्त साधन माना जाता है किन्तु इसके विपरीत नशीले पदार्थ शांतिकारक भी हैं। शराब व्यक्ति के मस्तिष्क के उच्च केन्द्रों पर आक्रमण कर उसको चेतनाशून्य बना देती है। मस्तिष्क का नियंत्रण ढीला पड़ जाता है तथा उसका व्यवहार पर कोई नियंत्रण नहीं रह पाता है। नशा करने वाला व्यक्ति उन आवेगों की संतुष्टि में लगा रहता है जिसे सामान्य अवस्था में वह रोके रहता है। नशे की अवस्था में कुछ मात्रा में गतिवाही क्रियाओं पर असर पड़ता है। सर्दी, गर्मी, दर्द आदि की संवेदना प्रभेद की क्रियाएं न्यून हो जाती हैं। नशे के समय व्यक्ति स्वयं में उत्साह और स्वस्थता का अनुभव करता है। इस अवस्था में वह वास्तविकताओं से दूर रहता है तथा उसमें आत्म-सम्मान व प्रशंसा की भावनाएं उत्पन्न हो जाती हैं। वह संवेगात्मक रूप से उद्दीप्त हो जाता है जबकि बौद्धिक व गतिवाही क्रियाओं में मंदता आ जाती है। वैज्ञानिकों तथा चिकित्सा शास्त्रियों ने स्पष्ट किया है कि अत्यधिक शराब का सेवन विटामिन व पोषण संबंधी कमियां उत्पन्न करता है। यकृत खराब हो जाता है तथा मस्तिष्क की क्षति धीरे-धीरे होने लगती है।

नशा व्यक्ति के मस्तिष्क को निष्क्रिय बना देता है। व्यक्ति सुस्त, खामोश तथा बुद्धिहीन हो जाता है। चेतना केन्द्र धीरे-धीरे शून्य की स्थिति में आ जाते हैं। व्यामोह तथा अवस्तुबोधन होने लगता है। वह सामान्य परिस्थितियों से कतराने लगता है, पलायन की प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है। कभी-कभी मूर्च्छा की अवस्था पैदा हो जाती है। व्यक्ति जिम्मेदारियों से दूर भागता है, विवेक लगभग समाप्त हो जाता है। व्यक्ति के भीतर अहम् तथा परमाहम् की अवस्था नहीं रहती है। निरन्तर तथा लम्बे समय तक नशे का सेवन व्यक्तियों में आश्चर्यजनक विकार उत्पन्न कर देता है। व्याकुलता, उत्तेजना, अपराधी भावना, हिंसक व्यवहार, गहन निंद्रा, स्मृति का ह्रास आदि लक्षण प्रकट होने लगते हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि नशा व्यक्ति के व्यक्तित्व को विघटित कर देता है।

6.3.7 नशा एवं परिवार (Family)

परिवार का यदि एक सदस्य भी नशा करता है तो उससे पूरा परिवार प्रभावित होता है। परिवार में अव्यवस्था, असामंजस्य, कलह, अशांति आदि दुष्प्रभाव नशे के कारण होते हैं। व्यसनी व्यक्ति परिवार में से अपनी सदस्यता तक को भी खो देता है। वह नशे में इस प्रकार लिप्त रहता है कि स्वयं तक को भूल जाता है। अर्थात् उसे अपना ही भान नहीं रहता है। अपने कर्त्तव्यों के प्रति वह सचेत नहीं रहता है। आपराधिक व्यवहारों में भी वह प्रवृत्त होता है क्योंकि शारीरिक-मानसिक अस्वस्थता से ग्रसित होने के कारण वह संतुलन स्थापित नही कर पाता है। परिवार के अन्य लोग शर्मिन्दगी का अनुभव करते हैं क्योंकि उनके परिवार का एक सदस्य व्यसनी होता है तो उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा को ठेस लगती है। यदि माता-पिता व्यसन करते हैं तो बच्चों पर इसका प्रभाव पड़ता है। बच्चे भी चोरी-छुपे उसका सेवन करते हैं तथा कभी-कभी माता-पिता बच्चों के इस व्यवहार को अनदेखा करते हैं। इससे पूरा परिवार व्यसनी हो जाता है। कभी-कभी माता-पिता व्यसन नहीं करते हैं लेकिन उनके बच्चे उनके सामने नशा करते हैं तो माता-पिता या परिवार के बड़े बुजुर्ग इसे सहन नहीं कर पाते हैं तथा उन्हें बच्चों के इस व्यवहार पर बहुत दुःख होता है। कई बार माता-पिता शर्म व भय के कारण बच्चों की इन बुरी आदतों को सुधारने व इनका उपचार करने में असमर्थ हो जाते हैं। व्यसनी व्यक्ति के कारण परिवार के अन्य सदस्य अपने को असुरक्षित महसूस करते हैं। बच्चों के व्यक्तित्व पर इसका बुरा प्रभाव पड़ता है। बच्चों में हीन भावना, कुंठा, तनाव, आतंक का माहौल बना रहता है। परिवार में बच्चों को यथोचित पालन-पोषण नहीं मिल पाता है। घर का वातावरण अशांत व तनावग्रस्त रहता है। इस प्रकार व्यसनी व्यक्ति के परिवार की स्थिति दयनीय हो जाती है।

6.3.8 नशा एवं शिक्षा (Education)

विद्यालय विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास के लिए होते हैं। वहां का वातावरण यदि स्वस्थ होता है तो विद्यार्थी अच्छी शिक्षा ग्रहण करते हैं। इसके अभाव में शिक्षा का सही अर्थ ग्रहण नहीं होता है। विद्यालयों में यदि विद्यार्थी नशा करते हैं तो इसका प्रभाव अन्य विद्यार्थियों पर भी पड़ता है। वहां का वातावरण प्रभावित होता है। इससे विद्यार्थियों की योग्यता व प्रस्तुति बाधित होते हैं क्योंकि नशा करने वाला व्यक्ति अपनी योग्यताओं को विकसित नहीं कर सकेगा तथा न ही अच्छा प्रदर्शन या प्रस्तुति कर सकेगा। जब कक्षा में बच्चे नशे से प्रभावित होते हैं या इससे कक्षा में अनुपस्थित रहते हैं तो समस्त विद्यार्थियों की प्रगति बाधित होती है। नशे से विद्यालयों में अवैध कार्यों को बढ़ावा मिलता है। चोरी, आपराधिक क्रियाएं, वैश्यावृत्ति, हिसंक घटनाएं आदि बुराइयां पैदा होती हैं। इन बुराइयों के रहते हुए स्वस्थ जीवन नहीं जीया जा सकता है।

6.3.9 नशा एवं समाज (Society)

सामाजिक प्राणी होने के नाते व्यक्ति की क्रियाओं का प्रभाव समाज पर पड़ता है। यदि समाज में नशे का प्रचलन है तो वह समाज स्वस्थ नही कहा जा सकता है। वहां की सामाजिक स्थिति दयनीय हो जाती है। ऐसे समाज में मान-सम्मान, मानवीय मूल्य, परंपराएं आदि अस्त-व्यस्त हो जाते हैं। समाज में अपराधों को बढ़ावा मिलता है। नशा सामाजिक विघटन का कारण है। परिवार के परिवार नशे की चपेट में आकर अपना जीवन बर्बाद कर देते हैं। ऐसी अवस्था में समाज में बुद्धिजीवी वर्ग की कमी होने की संभावना रहती है। नशे के कारण व्यक्ति अपनी आन्तरिक क्षमताओं को विकसित नहीं कर पाता है। निर्णय शक्ति, क्रियाशक्ति, रचनात्मकता, क्रियाकलापों के प्रति उदासीनता, आदि लक्षण व्यक्ति में दृष्टिगोचर होते हैं। जो व्यक्ति अपने प्रति उदासीन, परिवार तथा समाज के प्रति उदासीन हो जाता है तो ऐसा व्यक्ति क्या कार्य कर सकता है। समाज में अपराध जैसे कुकृत्यों को पनपने का मौका मिलता है। नशे के लिए व्यक्ति चोरी, डकैती, हत्या जैसे घिनौने कार्य करता है तो साथ ही नशे की अवस्था में वह गाली-गलौच, मार-पीट, हत्या, वैश्यावृत्ति आदि कुकृत्य करता है। ऐसे समाज का भविष्य अंधकारमय बन

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जाता है। परिवारों में बच्चों पर इसका प्रभाव पड़ता है। बच्चे या तो इसी में लिप्त हो जाते हैं या ऐसी दशा देखकर भयग्रस्त हो जाते हैं। उनके अपरिपक्व मस्तिष्क पर इसका कई तरह से प्रभाव पड़ता है। इसका प्रभाव उनके व्यक्तित्व पर पड़ता है। नशे के प्रभाव से समाज में सामाजिक कर्त्तव्यों के प्रति निराशा पैदा हो जाती है। समाज में नशे का प्रभाव अल्प समय में ही नहीं वरन् दीर्घकाल तक पड़ता है।

6.3.10 नशा एवं तस्करी (Smuggling)

नशा तस्करी को बढ़ावा देने का भी एक माध्यम है। पश्चिमी देशों में नशीले पदार्थों को नया रूप देने की होड़ लगी हुई है। वहां पर नशे का सेवन चरम सीमा पर पहुंचने लगा है। पूर्व में भांग, चरस, अफीम, गांजा, मेन्ड्रेक्स तथा एल.एस.डी. आदि प्रमुख थे लेकिन वर्तमान में कोकीन, स्मैक, ब्राउन शुगर आदि ने उनका स्थान लिया है। सबसे अधिक घातक नशीले पदार्थ हैं—सुपर स्पीड जो एशिया तथा प्रशांत महासागर के देशों में तेजी से फैल रहे हैं। इफेड्रीन तथा फेनी लीसेटोन को मिलाकर गुप्त प्रयोगशालाओं में अवैध रूप से बनाया जाता है। इन दोनों प्रकार के नशीले पदार्थों पर संयुक्त राष्ट्रसंघ ने 1971 में प्रतिबंध लगाया दिया था। भारत में भी सुपर स्पीड की मांग बहुत बढ़ी है। यह हेरोइन तथा कोकीन से 20 गुना अधिक नशीली होती है। एक बार इसका सेवन करने से 10 घंटे तक इसका प्रभाव रहता है।

भारत में विदेशी नशीली वस्तुओं का प्रवेश चोरी-छिपे भी बढ़ा है। मांग के आधार पर आपूर्त्ति भी किसी-न-किसी रूप से होती ही है। प्रतिबंधित पदार्थों को अवैध ढंग से चोरी-छिपे बेचा जाता है। यह व्यापार भारत में करोड़ों रुपये का है। मादक पदार्थों की तस्करी अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर संगठित गिरोहों के द्वारा की जा रही है।

6.3.11 नशा एवं प्रदूषण (Pollution)

नशा प्रदूषण के लिए भी जिम्मेदार होता है। वर्तमान में प्रदूषण का एक कारण धूम्रपान भी है। इसके ध ुंए में पाए जाने वाले निकोटिन व टार वातावरण में जहर का कार्य करते हैं। पर्यावरण में ऑक्सीजन के साथ मिलकर यह धुंआ उसे जहरीला बनाता है। संयुक्त राष्ट्रसंघ के पर्यावरण कार्यक्रम के निदेशक ने यह चेतावनी दी थी कि सिगरेट कंपनियां निर्धन लोगों के जलाने की लकड़ी पर डाका डालकर तीसरी दुनिया के लोगों के लिए ईंधन का एक संकट पैदा कर रही हैं। पर्यावरण विशेषज्ञों का दावा है कि विकाशील देशों में तीन सौ पैकेट सिगरेट बनाने हेतु एक बड़े पेड़ की आहुति देनी पड़ती है। यह दुर्भाग्य का विषय है कि सिगरेटों की आपूर्त्ति हेतु पेड़ों की कटाई होती है।

ब्राजील के एक सर्वेक्षण के अनुसार वहां तंबाकू को सिगरेटों तथा सिगारों में परिणत करने के लिए लगभग साढ़े छः सौ वृक्षों की बलि देनी पड़ती है। प्रतिवर्ष 6-7 हजार हेक्टेअर हरे-भरे जंगल तंबाकू कंपनियों की भेंट चढ़ जाते हैं। एक ओर जंगलों की कटाई तो दूसरी ओर धूम्रपान द्वारा छोड़ा गया धुंआ—ये दोनों ही पर्यावरण के लिए घातक सिद्ध होते हैं।

6.3.12 नशा एवं आर्थिक जीवन

जीवन यापन हेतु अर्थ की आवश्यकता होती है। इसके अभाव में व्यक्ति का जीवन सामान्यत: सुखपूर्वक नहीं रहता। नशा व्यक्ति के आर्थिक क्षेत्र को सबसे अधिक प्रभावित करता है। नशे के लिए अर्थ की आवश्यकता होती है। जब तक नशा करने वाले के पास धन होता है तब तक वह खर्च करता है लेकिन जब व्यक्ति को नशे की लत पड़ जाती है और उसके पास धन नहीं होता है तो धीरे-धीरे वह घर की वस्तुओं को बेच देता है। इससे परिवार आर्थिक रूप से निर्धन हो जाता है। परिवार में आवश्यकता की वस्तु भी दुर्लभ हो

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

जाती है। इसका प्रभाव परिवार के लोगों पर पड़ता है। बच्चों को आवश्यक पोषण तथा सही शिक्षा नहीं मिल पाती है। स्त्रियों की हालत दयनीय हो जाती है। बच्चों पर मानसिक रूप से इसका असर होने की संभावना रहती है। बच्चे भी गलत कार्य का अनुसरण करने लगते हैं। उनकी सही परवरिश नहीं हो पाती है इसलिए नशा परिवार की आर्थिक समस्या का एक कारण है।

6.3.13 नशा एवं कार्यस्थान (Work Place)

व्यसनी व्यक्ति अपनी इस बुरी आदत को कार्यस्थान तक ले जाते हैं। अत्यधिक मात्रा में व्यसन उत्पादन पर प्रभाव डालता है क्योंकि व्यसनी व्यक्ति अपना कार्य सही तरीके से नहीं कर सकेगा। कार्य संबंधी कई दुर्घटनाएं व्यसनी व्यक्ति द्वारा होती हैं। शोध बताते हैं कि नशा करने वाले लोग नशा न करने वालों की तुलना में तीन गुना अधिक दुर्घटनाएं करते हैं। कई प्रकार की समस्याएं कार्यस्थान में व्यसनी द्वारा होती हैं। व्यसनी व्यक्ति का जीवन असुरक्षित रहता ही है साथ में वह अन्य व्यक्तियों की भी असुरक्षा का कारण बनता है। विभिन्न प्रकार के कर्मचारी, जैसे—पायलट, ड्राईवर, यातायात नियंत्रक तथा अन्य संचालक यदि व्यसन करते हैं तो उससे स्वयं तथा अन्य लोगों की सुरक्षा व्यवस्था व स्वास्थ्य पर प्रश्न चिह्न लगा रहता है।

6.3.14 नशा एवं खेल (Sports)

राष्ट्र का गौरव माने जाने वाले खिलाड़ी भी नशे से अछूते नहीं रहे हैं। ऐसे खिलाड़ी देश को धोखा तो देते ही हैं साथ ही अपने स्वास्थ्य को भी प्रभावित करते हैं। खिलाड़ियों का लक्ष्य चोटी पर पहुंचने का होता है। इसके लिए वे गलत संगत व गलत शिक्षा के कारण नशे का सहारा लेते हैं। इससे खिलाड़ी व देश की प्रतिष्ठा कम होती है। खिलाड़ियों द्वारा इनका सेवन अच्छी प्रस्तुति देने हेतु किया जाता है लेकिन धीरे-धीरे इनका सेवन स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। खिलाड़ियों द्वारा इनका सेवन जागरूकता बढ़ाने, मस्तिष्क के श्वसन संबंधी भाग को नियंत्रित करने, निंद्राकारी व दर्दनाशक के रूप में लिया जाता है। इनसे लत उत्पन्न हो जाती है। इसलिए ये हानिकारक होते हैं। नींद हेतु, शिथिलीकरण अनुभव करने हेतु तथा शक्ति का प्रदर्शन करने के लिए विभिन्न प्रकार के नशे का सेवन किया जाता है। ये तरीके शरीर के भीतर प्राकृतिक हार्मोन्स को प्रभावित करते हैं।

बोध प्रश्न : 2

---

1. शराब का सबसे अधिक प्रभाव पाचन तंत्र में कहाँ पर पड़ता है?

2. खिलाड़ी नशे का प्रयोग क्यों करते है?

6.3.15 नशा एवं अपराध (Crime)

अवैध औषधि का सेवन तथा अपराध एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। अधिकांश मामलों में इसका सेवन करने वाले इसे प्राप्त करने के लिए कई अपराध, जैसे—चोरी, डकैती, ठगी, धोखाधड़ी आदि करते हैं। नशे के लगातार सेवन से व्यक्ति में कुछ परिवर्तन देखे जा सकते हैं। वे अपनी सभी बाधाओं को हटाने को तैयार रहते हैं जो उनके मार्ग में आते हैं। यह समस्या यदि अधिक बढ़ती है तो व्यक्ति में आपराधिक व्यवहार उत्पन्न होता है। जब व्यसनी की मांग और बढ़ती है तो उसे इसके लिए धन की आवश्यकता होती है। धन के अभाव में वह चोरी, छीना-झपटी आदि कुकृत्य करने लगता है।

ओहियो स्टेट युनिवर्सिटी के श्री वाल्टर सी. रेक्लेस ने अपनी पुस्तक (Crime) में मद्यपान पर सांगोपांग अध्ययन प्रस्तुत किया है। उन्होंने कहा है—अपराध से मुख्य तीन बातें जुड़ी हुई हैं। शराब पीना, नशीली दवाइयां

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

लेना तथा अस्वाभाविक यौन भावना। इसके साथ वैश्यागमन, जुआ, परिवार का बिखराव, गर्भपात, भिखारीपन आदि अनेक समस्याएं भी जुड़ी हुई हैं पर कदाचित् शराब इन सारी समस्याओं से प्रमुख रूप से जुड़ी हुई है।

यद्यपि यह पूर्ण सत्य नही है कि केवल शराब ही अपराध के लिए जिम्मेदार है लेकिन यह अपराध का एक महत्त्वपूर्ण भाग है। इसमें संदेह नहीं किया जा सकता है। हर शराबी अराजक नहीं होता लेकिन शराब और अराजकता के बीच गहरा संबंध है। शराबी व्यक्ति सामाजिक उत्तरदायित्वों के प्रति उदासीन रहता है तथा सामान्य व्यक्ति की अपेक्षा में अधिक अपराध करता है।

Behind of this sins&murder पुस्तक के अनुसार—हत्या के आधे मामले केवल शराब के ही कारण होते हैं। मद्यपान से व्यक्ति क्रूर, क्रोधी एवं प्रमादी बन जाता है। उसके लिए जीवन बहुत सस्ता हो जाता है, वह व्यक्ति न केवल अपनी हानि अपितु दूसरों की हत्या करने में भी संकोच नहीं करता है। शराब से प्रभावित व्यक्ति विभिन्न स्तरों पर उत्तरदायित्व विहीन व्यवहार करने लगता है। कई स्थानों पर पाया गया है कि जेल जाने वाले अपराधियों में शराबी व्यक्ति ही अधिक होते हैं। डेविन्स ने कहा है—पीढ़ियों से सुविज्ञ और निर्लिप्त व्यक्तियों ने इस तथ्य को व्यक्त किया है कि शराब ही अपराध का एकमात्र सबसे बड़ा कारण है।

अवैध गतिविधियों में अनुरक्त व्यक्तियों में शराब के बाद मिथ्या साहस की भावना पैदा होती है। शराब उचित-अनुचित के बीच की भेदरेखा को खत्म कर देती है, विवेकहीन बना देती है। व्यक्ति अपनी भावनाओं पर नियंत्रण नहीं रख पाता है, ऐसी अवस्था में व्यक्ति कैसे कुकृत्यों को कर सकता है। यौन अपराध, व्यक्तिगत हिंसा के मामलों में शराब को ही मुख्य प्रेरणा के रूप में माना गया है। विशेषज्ञ यह मानते हैं कि अपराध एवं अवैध सन्तानों की उत्पत्ति का मुख्य अड्डा सुरागृह ही होते हैं। ९0 प्रतिशत अवैध सन्तानें उन परिचयों का ही परिणाम होती है जो मदिरालयों में होता है। डॉ. हीले का कहना है—लघु मात्रा में किया जाने वाला सुरापान भी किशोर युवक-युवतियों को चारित्रिक दृष्टि से गिरा देता है। अनेक खोजों से यह स्पष्ट हो गया है कि सुरापान की अवस्था में महिलाएं विवेक खो देती हैं। डॉ. मैके के अनुसार—तलाक संबंधी मामलों में 75 प्रतिशत शराब के ही मामले होते हैं।

6.4 प्रश्नावली

I निबंधात्मक प्रश्न

1. नशा सेवन के विभिन्न परिणामों का वर्णन कीजिए।

II लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. नशा सेवन के मनोवैज्ञानिक कारण बताइये।
2. नशा सेवन के सामाजिक कारण क्या हैं?

III वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. सिगरेट के धुंए में कौन-कौन से अवयव होते हैं?
2. नशा सेवन के कौन-कौन से कारण हैं?
3. एन्युरिज्म क्या है?
4. स्ट्रप्टोकोकस क्या है?
5. पोलिसिथेमिया क्या है?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

6. परिवार .... विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

7. सिगरेट का दुष्प्रभाव .... से प्रारंभ होता है।

8. धूम्रपान से .... का आकार बढ़ता है।

9. शराब के सेवन से .... भी प्रभाव पड़ता है।

10. वर्तमान में नशे का .... एक कारण भी है।

6.5 संदर्भ पुस्तकें

1. Drug Abbuse and Society – Saroj Prasant
2. Drug Abbuse Environmental Pollution – B. Sain
3. Drugs – Richard G. Schlaadt
4. आयुर्वेदिक विकास पत्रिका — जुलाई 2001
5. विज्ञान के संदर्भ में जैनधर्म — मुनि सुखलाल
6. प्रेक्षाध्यान पत्रिका — जुलाई 2001
7. प्रेक्षाध्यान नशामुक्ति — मुनि किशनलाल, शुभकरण सुराणा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–7 : नशा मुक्ति की अवधारणा

संरचना

7.0 प्रस्तावना
7.1 उद्देश्य
7.2 नशा मुक्ति की आवश्यकता
7.3 नशा मुक्ति के उपाय
7.3.1 व्यक्तिगत स्तर पर
7.3.2 वातावरण के स्तर पर
7.3.2.1 परिवार
7.3.2.2 शिक्षा
7.3.2.3 अध्यापक
7.3.2.4 चिकित्सकों की भूमिका
7.3.2.5 कार्यक्रमों द्वारा
7.3.2.6 सरकारी स्तर पर
7.3.2.7 व्यवस्थाएं
7.3.2.8 सामुदायिक हस्तक्षेप
7.3.2.9 अन्य विकल्प
7.3.3 औषधियों तथा चिकित्सा पद्धतियों के द्वारा
7.3.3.1 पुनरावर्तन रोकथाम
7.3.3.2 माटरीन मॉडल
7.3.3.3 अभिप्रेरणात्मक वृद्धि चिकित्सा
7.3.3.4 वयस्कों के लिए व्यवहारिक चिकित्सा पद्धति
7.3.3.5 बहुआयामी पारिवारीक चिकित्सा
7.3.3.6 योग चिकित्सा
7.4 नशा मुक्ति की सफलता
7.5 प्रश्नावली
7.6 संदर्भ ग्रंथ

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

7.0 प्रस्तावना

व्यक्ति द्वारा बनाई गई सुख–सुविधा की वस्तुएं उनका सही उपयोग करने से ही लाभकारी होती हैं। यदि इनका दुरुपयोग किया जाए तो ये समस्या का कारण भी बनती हैं। औषधियों का उदाहरण इनमें एक है। औषधियां जहां तारक होती हैं वहीं उनका दुरुपयोग मारक भी होता है। इसलिए यदि इनका सेवन एक सीमा तक समस्या समाधान के लिए किया जाए जो व्यक्ति के किसी भी क्षेत्र को नकारात्मक रूप से प्रभावित नहीं करती हैं, तब तो ये तारक हो सकती हैं। जैसे कि बीमारियों के निदान हेतु औषधियों का सेवन करना। इसके विपरीत यदि इसका बेतहाशा सेवन किया जाए तो व्यक्ति की वास्तविकता ही खत्म हो जाती है, वह यंत्रमात्र रह जाता है और समाज में कई बुराइयों को पैदा करता है तब ये औषधियां मारक ही कही जा सकती हैं। इसलिए आवश्यकता है समय रहते ही चेतना को जागृत करने की। यदि व्यक्ति समय रहते जाग जाता है तो वह भयंकर दुष्प्रभावों से बच जाता है वरना उसका जीवन दूभर हो

जाता है। नशा मुक्ति के लिए भी जब तक व्यक्ति जागृत नहीं होगा तब तक समस्या का समाधान भी नहीं होगा। इसलिए व्यक्ति को स्वयं जागरूक रहना चाहिए। जागरूकता लाने में समाज के अन्य सदस्यों का योगदान मिलता रहा है। वैज्ञानिकों, मनावैज्ञानिकों तथा अन्य विद्वानों ने समय-समय पर मानव के समक्ष आयी विपदाओं को दूर करने का सफल प्रयास किया है जिसका उपयोग अन्य लोगों ने किया है।

7.1 उद्देश्य

1. नशा मुक्ति की आवश्यकता को समझ सकेंगे।
2. नशा मुक्ति के विभिन्न उपायों को जान सकेंगे।
3. नशा मुक्ति में योग चिकित्सा को समझ सकेंगे।

7.2 नशा मुक्ति की आवश्यकता

मानव जो प्रकृति की एक मौलिक रचना है, जिसने अनेक रहस्यों को खोज निकाला तथा अन्य रहस्यों को जानने का प्रयास जारी है, वही ज्ञान का आगार व्यक्ति नशे का सेवन करता है जिसका दुष्प्रभाव व्यक्ति तथा वातावरण को प्रभावित करता है तब उस समय बुद्धिवादी स्थिति पर तरस खाया जा सकता है। इसमें संदेह नहीं किया जा सकता है कि वर्तमान में नशे का प्रचलन बढ़ता ही जा रहा है। यदि इस भयावह स्थिति को रोका नहीं गया तो एक दिन पूरी तरह से समाज में विकलांगता व विकृतियां उत्पन्न हो सकती हैं। वर्तमान में नशा निषेध की आवश्यकता है। जहां एक ओर भारत का स्थान उसकी विशेषताओं के कारण ऊंचा है, वहीं उसकी संस्कृति संक्रमण के दौर से गुजर रही है। जिस देश की संस्कृति में अनेक मूल्यों का समावेश है, वहीं नशे जैसी बुराई संस्कृति के लिए घातक है। व्यक्ति को बुराइयों से बचाने हेतु, उसके दुष्परिणामों को रोकने हेतु, समाज तथा संस्कृति को बचाने हेतु नशा निषेध महत्त्वपूर्ण आवश्यकता बन जाती है। जहां व्यक्ति-व्यक्ति के सुख की बात आती है, समाज में मूल्यों की बात आती है, राष्ट्रीय विकास तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अच्छे संबंधों की बात आती है, आत्मोत्थान, देशोत्थान व मानव मात्र के हित की बात आती है, वहां नशा निषेध की बात भी आवश्यक हो जाती है। इसी में मानव जीवन की सुख, शांति, सौहार्द आदि बातें निहित होती हैं। यदि नशामुक्ति हो तो उससे वैयक्तिक विकास के साथ-साथ सामाजिक बुराइयों को प्रश्रय नहीं मिलेगा, चरित्र विघटित नहीं होगा, मूल्यों की अवहेलना नहीं होगी, राष्ट्रीय विकास होगा, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अच्छे संबंधों की स्थापना होगी, बहुजन सुखाय, बहुजन हिताय वाली बात के साथ-साथ सर्वे भवन्तु सुखिन: सर्वे संतु निरामया का आदर्श वाक्य भी चरितार्थ होगा।

नशा सेवन से व्यक्ति, परिवार, समाज व राष्ट्रीय स्तर पर जो हानियां होती हैं, उन्हें रोकने का एकमात्र उपाय है—नशा मुक्ति अर्थात् नशे का निषेध करना। नशा मुक्ति से जो लाभ होते हैं वे सर्वविदित हैं। व्यक्तिगत स्वास्थ्य बना रहता है, चरित्र उन्नत रहता है, मूल्यों की अवहेलना नहीं हांती है। अपराधों में कमी आती है, पारिवारिक सुख-सौहार्द बना रहता है। अर्थ का सदुपयोग होता है। सामाजिक जीवन में सुख शांति बनी रहती है। इसलिए नशा निषेध व्यक्ति के लिए हर प्रकार से उपयोगी होता है। नशे के दुष्परिणामों को देखते हुए समाज में पहले से ही इसके निषेध का प्रयत्न होता रहा है। विभिन्न धर्मों में नशे को बुरा माना गया है। नशा निषेध को मान्यता दी गई है। राजकीय स्तर पर भी इस पर कई गतिविधियां होती रहती हैं।

वर्तमान में नशा निषेध हेतु अमरीका, स्वीडन, डेनमार्क, फिनलैंड, ब्रिटेन, अफ्रीका, भारत आदि देशों में सक्रिय कदम उठाए गए हैं। नशा निषेध के कानून बनते-टूटते रहते हैं क्योंकि नशा करने वाले व्यक्ति नियमों का उल्लंघन करते हैं। फिर भी इस पर प्रतिबंध अनेक स्तरों पर लगाया जाता है। भारत में नशे को घृणा की दृष्टि से देखा जाता है तथापि इसका सेवन भी अनेक भागों में प्रचलित रहा है। महात्मा गांधी ने सत्याग्रह आन्दोलन में नशानिषेध को विशिष्ट स्थान दिया था। उनका कहना था कि लाल पानी की तरफ लपकना अग्निकुंड या तूफानी नदी की ओर लपकने से भी अधिक खतरनाक है क्योंकि आग या पानी तो सिर्फ शरीर को नष्ट करते हैं जबकि शराब से तो शरीर व आत्मा दोनों

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

ही नष्ट होते हैं। सविनय अवज्ञा आन्दोलन के साथ-साथ मद्य निषेध के आन्दोलन भी चले थे। नशे की दुकानों पर गांधीजी ने महिलाओं को धरना देने हेतु भेजकर अहिंसा का उत्तम प्रयोग किया था। लाखों व्यक्ति मादक पदार्थों के सेवन से मुक्त हुए थे।

भारतीय संविधान सभा ने संविधान के अनुच्छेद 42 में राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्तों के अन्तर्गत नशा निषेध को स्थान दिया है। इस प्रकार भारत में नशा निषेध का कार्य तीव्र या मंद गति से चल रहा है। आचार्यश्री तुलसी ने अणुव्रत आन्दोलन के माध्यम से जनचेतना को जागृत करने का सफल प्रयास किया था जिससे कई व्यक्ति व्यसन मुक्त हुए। इस प्रकार कहा जा सकता है कि नशा जहां एक अभिशाप है वही नशा मुक्ति एक अवदान है। इसी बात को ध्यान में रखकर कई स्तरों पर व्यक्ति को नशा मुक्त करने के लिए गतिविधियां चलाई जाती हैं ताकि व्यक्ति स्वयं तथा दूसरों के लिए समस्या न बने।

7.3 नशा मुक्ति के उपाय

नशा मुक्ति को प्रश्रय देने हेतु मुख्यतया तीन स्तरों पर कार्य किये जाते हैं—

1. व्यक्तिगत स्तर पर
2. वातावरण के स्तर पर
3. औषधियों के स्तर या अन्य चिकित्सा पद्धतियों के आधार पर

7.3.1 व्यक्तिगत स्तर पर

व्यक्ति एक विवेकशील, चिंतनशील प्राणी है। उसमें मानव से महामानव बनने की क्षमता है। वह पुरुषार्थ के द्वारा अपनी मंजिलों को पार करता है। अक्षम कार्य को सक्षम कर सकता है। उसके भीतर अनन्त शक्ति, अनन्त क्षमता है। यदि वह उसका कुछ ही हिस्सा भी उपयोग में लेता है तो उसका जीवन सफल हो जाता है। सुख-दु:ख का कर्ता वह स्वयं है। इस बात में सच्चाई है। कुछ परिस्थितियों को छोड़कर व्यक्ति ही अपने सुख-दु:ख का कारण बनता है। व्यक्ति यदि समस्याओं के सामने आंख मूंदकर बैठ जाए तो समाधान नहीं होगा। समाधान के लिए उसे उस मार्ग को चुनना होगा जो उसके लिए सुख-शांति प्रदान कर सके क्योंकि मानव की यह विशेषता है कि वह हमेशा सुख-शांति चाहता है लेकिन उसके बावजूद भी वह इसका वरण कितना करता है यह उसके कर्मों पर निर्भर करता है। व्यक्ति जब स्वयं यह सोच ले कि उसे क्या करना है, क्या होना है, उसका अस्तित्व क्या है, उसके कर्त्तव्य क्या हैं आदि तो उसके जीवन में परिवर्तन निश्चित हैं। व्यक्ति वास्तव में परिवर्तन ही चाहता है, नया चाहता है। यदि सकारात्मक रूप में उसकी यह सोच होती है तो समाधान का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि व्यक्ति के पास अनन्त शक्ति, अनन्त क्षमता है। आवश्यकता है उसे पहचानने की। व्यक्ति में अच्छाई बुराई दोनों ही होती हैं। बुराई के सामने अच्छाई दब जाती है इसलिए आवश्यकता है बुराई दबे, अच्छाई उभरे। इसके लिए व्यक्ति को विवेक से काम लेना चाहिए। यदि वह विवेक से काम लेता है तो वह जीवन में सकारात्मक परिवर्तन करेगा।

नशे जैसी बुरी आदत को छोड़ने के लिए भी व्यक्ति को स्वयं पुरुषार्थ करना होगा। यदि व्यक्ति का मनोबल ऊंचा होता है तो वह शरीर से कृश ही क्यों न हो, असंभव कार्य को भी संभव कर देता है।

संकल्प की शक्ति अमोघ होती है। जिस व्यक्ति का संकल्प दृढ़ होता है वह असंभव कार्य को भी संभव कर देता है। इसी संकल्प के सहारे व्यक्ति अपनी समस्याओं से मुक्त हो जाता है। चाहे वह व्यक्तिगत स्तर से उत्पन्न हुई हो या अन्य तरह से। असाध्य रोगों का उपचार संकल्प द्वारा होता है। जो कार्य औषधि नहीं कर पाती है वह संकल्प कर दिखाता है। संकल्प लेने से कार्य पूरा नही होता है। कार्य पूरा तब होता है, सफलता तब मिलती है जब संकल्प ग्रहण करने के पश्चात् उसमें अटल आस्था भी हो। संकल्प से अधिक फलदायी होती है संकल्प के प्रति दृढ़ आस्था। नशा करने वाला व्यक्ति यह संकल्प कर ले कि मुझे नशा मुक्त जीवन जीना है तो अपनी संकल्प शक्ति के बल पर वह ऐसा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

कर सकता है। अणुव्रत आचार संहिता के छोटे-छोटे शुभ संकल्पों के द्वारा अपने जीवन में बुराइयों का त्याग तथा अच्छाइयों को ग्रहण कर सकता है।

व्यक्ति स्वयं अपना मूल्यांकन कर अपनी अच्छाइयों व बुराइयों को पहचान सकता है। नशा करने वाला व्यक्ति व्यक्तिगत स्तर पर जब तक सुधरने को तैयार नहीं होगा तब तक उसमें परिवर्तन नही हो सकता है। व्यक्ति के भीतर अनन्त क्षमताएं निहित हैं। यदि व्यक्ति को उनका ज्ञान हो जाए और व्यक्ति उन क्षमताओं को जगाने हेतु प्रयत्न करे तो व्यक्ति असंभव को भी संभव बना सकता है। यही बात नशा मुक्ति के लिए भी लागू होती है। व्यक्ति अपने संकल्प बल, मनोबल, आत्मविश्वास के द्वारा स्वयं को परिवर्तित कर सकता है।

7.3.2 वातावरण

व्यक्ति के जीवन में वातावरण का बहुत प्रभाव पड़ता है। व्यक्ति जिस पर्यावरण में रहता है, वह उसे कई तरह से प्रभावित करता है। यह व्यक्ति पर निर्भर करता है कि वह कितना प्रभावित होता है लेकिन प्रभावित अवश्य होता है। यदि उसे सही वातावरण मिले तो वह उन्नति भी कर सकता है और सही वातावरण न मिलने पर वह पतन की ओर भी जा सकता है। इसलिए वातावरण की बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है कि वह व्यक्ति के जीवन को किस ओर मोड़ देता है। नशा सेवन में जहां वातावरण एक प्रमुख कारण है, नशा मुक्ति में भी उसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है। स्वस्थ वातावरण स्वस्थ व्यक्तित्व का निर्माण करता है। नशा मुक्ति में वातावरण निम्न प्रकार से प्रभावकारी होता है—

7.3.2.1 परिवार

परिवार में जहां व्यक्तित्व विघटन हो सकता है वहीं व्यक्तित्व निर्माण भी हो सकता है। बच्चों को सही संस्कारों के लिए प्रेरित करना, उन्हें सीख देना, वैसा माहौल देना परिवार का कार्य होता है। इसलिए माता-पिता या अभिभावक बच्चों को या पारिवारिक सदस्यों को प्रेरित कर परिवार का वातावरण स्वस्थ रख सकते हैं। नशा मुक्ति में परिवार की भूमिका निम्न प्रकार होती है—

1. परिवार में यथोचित सहानुभूति और यथोचित अनुशासन होना।
2. बच्चों के क्रियाकलापों पर यथोचित ध्यान देना।
3. माता-पिता द्वारा स्वयं जागरूक रहकर बच्चों में भी जागरूकता का विकास करना।
4. नशा मुक्ति हेतु माता-पिता द्वारा बच्चों के साथ खुलकर बातचीत करना।
5. बच्चों को समस्या बताने हेतु प्रेरित करना।
6. बच्चों की समस्याओं को धैर्यपूर्वक सुनना।
7. नशा मुक्ति की क्रियाविधि सिखाना तथा बच्चों को समाधान के योग्य बनाना।
8. बच्चों के क्रियाकलापों में रुचि लेना।
9. बच्चों के मित्रों में भी रुचि रखना अर्थात् उन्हें उपेक्षित न करना।
10. बच्चों के साथ अच्छी तरह से पेश आना तथा बच्चों को हमेशा अच्छे कार्यों को करने हेतु प्रेरित करना।
11. बच्चों को अच्छे संस्कार देना।
12. बच्चों को नशे से होने वाली हानियों को बताना तथा नशा मुक्ति में उनका सहयोग करना।
13. बुरी संगति से हटाकर अच्छे मित्रों के साथ मित्रता करवाना।
14. परिवार का पूर्णतः नशा मुक्त होना।

7.3.2.2 शिक्षा

यदि विद्यालयों में स्वास्थ्य शिक्षा को महत्त्व दिया जाता है तो विद्यार्थियों को स्वास्थ्य संबंधी जानकारी प्राप्त होती है। उनके दृष्टिकोण में सकारात्मक परिवर्तन आता है। इस शिक्षा का लाभ विद्यार्थियों के अतिरिक्त

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अभिभावकों व शिक्षकों को भी मिलना चाहिए। अर्थात् उन्हें भी इसकी जानकारी दी जानी चाहिए। इससे विद्यार्थियों में स्वस्थ जीवनशैली का विकास होगा तथा नशा न करने की प्रवृत्ति का विकास होगा। शिक्षा व्यक्तित्व विकास में सहायक होती है। इसलिए विद्यार्थियों को प्रारंभ से ही ऐसी शिक्षा देनी चाहिए जो विद्यार्थियों को भीतर से विधायक रूप से परिवर्तित करे।

7.3.2.3 अध्यापक

नशा मुक्ति में अध्यापक की भूमिका निम्न प्रकार से रहती है—

1. विद्यार्थियों से नशे से होने वाली हानियों पर खुली चर्चा करना तथा नशा मुक्ति में सहायता करना।
2. अध्यापकों द्वारा विद्यार्थियों तथा उसके क्रियाकलापों में ध्यान देना तथा रुचि रखना।
3. वयस्कता संबंधी समस्याओं के बारे में चर्चा करना तथा समाधान के तरीके बताना।
4. विद्यार्थियों को कैरियर बनाने वाले साधनों की जानकारी देना, उसमें विद्यार्थियों की सहायता करना तथा लक्ष्य निर्माण तथा लक्ष्य प्राप्ति में यथासंभव सहायता करना।
5. स्वास्थ्य की जानकारी देना।
6. विद्यार्थियों के साथ ऐसा व्यवहार करना जिससे उनमें हीन भावना पैदा न हो और न ही वे भयग्रस्त हों।
7. अनुशासन के साथ-साथ आत्मानुशासन को विकसित करना।
8. कर्त्तव्यों के प्रति जागरूकता पैदा करना।
9. व्यक्तित्व विकास हेतु सही शिक्षा देना ताकि उनकी आन्तरिक क्षमताएं विकसित हो सकें।
10. विद्यार्थी स्वयं अपनी समस्याओं का समाधान खोज सकें—इस योग्य बनाना।
11. विद्यालय का पूरा वातावरण नशामुक्त हो।
12. विद्यालय का वातावरण स्वस्थ हो।

7.3.2.4 चिकित्सकों की भूमिका

1. औषधियों के बारे में सही जानकारी देना।
2. नशे के मरीजों के साथ तादात्म्य (Repurt) स्थापित करना ताकि वे अपनी समस्याएं बता सकें।
3. मरीजों में रुचि रखना।
4. अच्छा व्यवहार करना।
5. अपने कर्त्तव्य का पालन सही तरह से करना ताकि मरीजों को उसका लाभ मिल सके।

7.3.2.5 कार्यक्रमों द्वारा (Programmes)

1. लोगों में जागरूकता पैदा करने वाले तथा ज्ञानवर्धक कार्यक्रम हों।
2. नशा मुक्ति हेतु जन-चेतना को जगाना।

7.3.2.6 सरकारी स्तर पर

1. सार्वजनिक स्थानों पर नशा सेवन का निषेध करना।
2. नशे से संबंधित विज्ञापनों पर रोक।
3. औद्योगिक क्षेत्रों, सिंचाई संस्थानों और अन्य जनसंस्थानों के निकट मादक पदार्थों के क्रय-विक्रय पर रोक।
4. राजमार्गों, शहरों, गांवों व आबादी के पास नशीले पदार्थों के क्रय-विक्रय पर रोक।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

5. वाहन चालकों के लिए नशा-निषेध करना।

6. अन्य कर्मचारियों को भी सेवा के दौरान नशा न करने का प्रावधान।

7. नशे को प्रोत्साहन देने वाले व्यक्तियों के लिए दंड की व्यवस्था।

8. नशीली वस्तुओं के मूल्यों में वृद्धि।

7.3.2.7 व्यवस्थाएं

1. व्यवस्थाएं व्यक्तिहित में हों। 2. व्यवस्था तंत्र स्वयं कमजोर न हो।

3. नशे को प्रोत्साहन न मिले। 4. नागरिकों को गुमराह करने में सहायक न हों बल्कि उनको मार्गदर्शन मिले।

7.3.2.8 सामुदायिक हस्तक्षेप

समुदाय का हस्तक्षेप महत्त्वपूर्ण रूप से प्रभावकारी सिद्ध हो सकता है। व्यक्ति में शारीरिक, मानसिक तथा सामाजिक समस्याएं समुदाय से ही प्राप्त होती हैं जो नशा सेवन का एक कारण बनती हैं। विभिन्न समुदायों में नशे का सेवन एक जीवनशैली के रूप में लिया जाता है। सामुदायिक स्तर पर ही चेतना को जागृत कर समस्या का समाधान भी किया जा सकता है। समुदाय निम्न प्रकार से क्रिया कर सकता है—

1. नशे को परिभाषित करना तथा इसके दुष्प्रभावों की जानकारी देना।

2. औषधियों के सेवन का उपयोग व दुरुपयोग बताना।

3. बीमारी, संक्रमण व स्वास्थ्य को पहचानना।

4. सामुदायिक हस्तक्षेप की सीमाओं व प्रभावों को समझना।

5. नशा सेवन के घटकों की जानकारी देना।

6. राजनीतिक, आर्थिक व सामाजिक गतिविधियों के प्रभावों की जानकारी देना।

समुदाय का कर्त्तव्य है कि वह नशा मुक्ति में प्रभावकारी योगदान दे। इसका माध्यम शिक्षा अथवा अन्य कोई साधन हो सकता है।

7.3.2.9 अन्य विकल्प

नशा सेवन रोकने के लिए अन्य विकल्पों को रखकर भी इच्छित परिणाम प्राप्त किए जा सकते हैं। जैसा कि लोग निम्न प्रभावों के लिए नशे का सेवन करते हैं—

1. अच्छा अनुभव करने हेतु। 2. आनन्द व पुरस्कार प्राप्ति हेतु।

3. आराम की प्राप्ति हेतु। 4. चेतना को प्रभावित करने हेतु।

5. वयस्कता को जांचने हेतु। 6. समूह का हिस्सा बनने हेतु, आदि।

इन सभी प्रभावों के लिए कई प्रकार के विकल्प भी हो सकते हैं जिनके द्वारा व्यक्ति नशा मुक्त जीवन जी सकते हैं, जैसे—

1. रचनात्मक कार्य में लगाकर। 2. सामाजिक व राजनैतिक गतिविधियों में लगाकर।

3. धार्मिक कार्यों में लगाकर। 4. योग-ध्यान की ओर लगाकर।

5. खेलकूद आदि में लगाकर। 6. छोटे-बड़े जिम्मेदारीपूर्ण कार्यों की ओर उन्मुख करके।

7.3.3 औषधियों तथा चिकित्सा पद्धतियों के द्वारा

नशामुक्ति में औषधियों का भी उपयोग किया जाता है। जैसा कि औषधियां तारक व मारक दोनों ही प्रकार की होती हैं। जिन औषधियों का उपयोग बीमारियों को दूर करने हेतु किया जाता है उनसे व्यक्ति लाभान्वित ही होता है।

Jain Vishwa Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

नशा मुक्ति के लिए भी कई औषधियां निर्मित की गई हैं जिनके द्वारा व्यक्ति नशे की आदत को छोड़ सकता है। ये दवाईयां कई तरह की होती हैं। कुछ औषधियों का लाभ जल्दी भी हो सकता है और किसी का धीरे-धीरे। व्यक्ति के नशे के अनेक कारण होते हैं। व्यक्ति मानसिक स्तर पर उनसे प्रभावित होता है। मानसिक स्तर को सही रखने हेतु कई प्रकार की औषधियां मिलती हैं। इनमें नींद के लिए ली जाने वाली औषधि भी एक है। व्यक्ति को धीरे-धीरे नींद की पूर्त्ति होती रहती है ताकि व्यक्ति मानसिक शिथिलता प्राप्त कर सके। इसी प्रकार नशा छुड़ाने हेतु और भी अन्य औषधियां हैं जिनका उपयोग कर नशामुक्त जीवन जीया जा सकता है। वर्तमान में कई दर्द निवारक औषधियां बाजार में उपलब्ध हैं, जिनका चिकित्सकीय सलाह से सेवन किया जाए तो रोगों से मुक्ति पाई जा सकती है। इसके अतिरिक्त निम्न चिकित्सा पद्धतियां हैं—

7.3.3.1 पुनरावर्तन रोकथाम (Relaps Prevention)

मादक पदार्थों की समस्या के समाधान हेतु ज्ञानात्मक व्यावहारिक चिकित्सा पद्धति को विकसित किया गया। इस चिकित्सा पद्धति में व्यक्ति सही-सही व्यावहारिक समस्याओं को पहचानने का प्रयत्न करता है। व्यक्ति को उन कारणों की व अनुभवों की जानकारी दी जाती है जो उन्हें पुन: गलत दिशा की ओर प्रेरित करते हैं तथा व्यवहार की तकनीक से उनका बचाव किया जाता है। इस चिकित्सा पद्धति में व्यक्ति को स्वयं पर नियंत्रण रखने के लिए प्रोत्साहित व अभ्यस्त किया जाता है। इसमें धनात्मक व ऋणात्मक स्थितियां लगातार सामने आती रहती हैं। इसमें मुख्यतया स्वयं का ध्यान रखना जिसमें कि प्राथमिक समस्याएं व उच्च घातक स्थितियों को पहचानना तथा इनसे बचने एवं पुन: नशा सेवन की प्रवृत्ति से बचने की मनोवृत्ति का विकास करना आदि बातें सम्मिलित होती हैं। इस चिकित्सा पद्धति का मुख्य केन्द्र व्यक्ति की समस्याओं का समाधान करने की प्रवृत्ति तथा स्व मदद कर उन समस्याओं का समाधान करने की क्षमता का विकास करना है।

7.3.3.2 माटरीन मॉडल (Matrin Model)

इस पद्धति में एक ढांचा प्रदान किया जाता है जिसमें उत्तेजना या उद्दीपन के कारण नशा सेवन करने वालों को व्यस्त रखकर उन्हें नशे से दूर रखा जाता है। इसमें मरीज को नशे की लत व पुन: नशे की प्रवृत्ति से बचने हेतु जानकारी दी जाती है। एक प्रशिक्षित चिकित्सक के द्वारा मरीजों को प्रोत्साहन व सहायता दी जाती है तथा मरीज स्वयं अपनी मदद कैसे कर सकता है— इन कार्यक्रमों की जानकारी भी दी जाती है। मरीज के पेशाब की जांच द्वारा भी मरीजों की स्थिति का ध्यान रखा जाता है। इसमें नशे से प्रभावित परिवारों के लिए शिक्षा की व्यवस्था भी की जाती है। इसमें चिकित्सक ही अध्यापक तथा प्रशिक्षक के रूप में भी कार्य करता है। वह एक विधायक तथा व्यावहारिक संबंध स्थापित करता है। इस चिकित्सा पद्धति में लघु अवधि के उद्देश्यों पर बल दिया जाता है तथा व्यक्तिगत नशा परामर्श के द्वारा मरीज को उन समस्याओं से लड़ने, उनका समाधान करने की योग्यताओं का विकास कर नशा सेवन को रोकने के लिए साधन प्रदान करता है। इस विधि में 12 चरणों में परामर्श दिया जाता है तथा इसके साथ ही चिकित्सकीय, मनोचिकित्सकीय, रोजगार व अन्य सुविधाओं की भी सहायता ली जाती है। व्यक्तियों को कार्यक्रमों में सप्ताह में एक या दो दिन बुलाया जाता है।

7.3.3.3 अभिप्रेरणात्मक वृद्धि चिकित्सा (Motivatational Enhancement therapy)

यह एक मरीज केन्द्रित परामर्श विधि है। इसमें व्यक्ति के व्यवहार को प्रोत्साहित कर उसे स्वयं समस्या समाधान के लिए प्रेरित कर नशा मुक्ति चिकित्सा के लिए तैयार किया जाता है तथा नशा सेवन को रोका जाता है। यह विधि धीरे-धीरे नशा सेवन को रोकने की बजाय तीव्र रूप से कार्य करती है। इसमें मरीज की चिकित्सकीय व प्रारंभिक जांच के पश्चात् चार व्यक्तिगत चिकित्सकीय परामर्श के कार्यक्रम किए जाते हैं। प्रथम चिकित्सकीय बैठक में मरीज को परिचर्चा के लिए अभिप्रेरित कर उसमें नशा सेवन से बचने व छोड़ने के लिए स्व-प्रेरित तथ्यों का विकास किया जाता है। अभिप्रेरित करने वाले कार्यक्रमों से व्यक्ति को मानसिक बल प्रदान कर परिवर्तन करने की योजना व

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

कार्यक्रम बनाए जाते हैं। उच्च घातक स्थितियों से लड़ने हेतु चिकित्सक द्वारा लगातार मरीज का ध्यान रखा जाता है। मरीज को नशा सेवन न करने हेतु अभिप्रेरित किया जाता है। साथ ही मरीज को इस बात के लिए भी प्रेरित किया जाता है कि वह दूसरे नशा सेवन करने वाले व्यक्तियों को भी नशा सेवन न करने के लिए प्रेरित करे। यह सिद्धान्त एल्कोहल तथा मैरिजुएना जैसे मादक पदार्थों का सेवन करने वालों पर ज्यादा प्रभावकारी होता है।

7.3.3.4 वयस्कों के लिए व्यावहारिक चिकित्सा पद्धति (Behavioural therapy)

इसका आधारभूत सिद्धान्त व्यक्ति के अनचाहे व गलत व्यवहार को परिवर्तन के लिए सही व उचित व्यवहार का स्वच्छ प्रदर्शन तथा मरीज को इसके लिए पुरस्कार देना है। इसमें चिकित्सा के निम्न बिन्दुओं को सम्मिलित किया जाता है—

1. विशिष्ट दस्तावेजों को भराना।
2. उचित व इच्छित व्यवहार का अभ्यास।
3. विकास को ध्यान में रखना व इसका अंकन करना।

इस विधि में मरीज की प्रशंसा व प्रोत्साहन का सहारा लिया जाता है। पेशाब की लगातार जांच के द्वारा मरीज का ध्यान रखा जाता है। इस पद्धति में चिकित्सा तीन प्रकार से नियंत्रित कर दी जाती है—

1. उद्दीपनों का नियंत्रण—नशा सेवन के लिए प्रेरित करने वाली परिस्थितियों से बचाना।

2. इच्छाओं का नियंत्रण—विचार, भाव, अनुभवों व योजनाओं को परिवर्तित करना जिससे नशा सेवन से मरीज को बचाया जा सके।

3. सामाजिक नियंत्रण—इसमें परिवार व अन्य सामाजिक सदस्यों की सहायता की जाती है।

7.3.3.5 बहुआयामी पारिवारिक चिकित्सा (Multidimensional family theropy)

यह चिकित्सा पद्धति उन छोटे बच्चों के लिए होती है, जो नशा सेवन करते हैं। इसमें बच्चों को परिवार में रखकर ही उपचार किया जाता है साथ ही सामूहिक परामर्श दिए जाते हैं। सामूहिक रूप में परिवार, विद्यालय, समाज आदि सम्मिलित हैं। व्यक्तिगत परामर्श में वयस्क व चिकित्सक विभिन्न समस्याओं पर विचार करते हैं तथा विकास हेतु निर्णय भी लेते हैं। समस्या समाधान हेतु योग्यताओं का विकास भी किया जाता है। बच्चों को जीवन में आने वाली समस्याओं को सुलझाने हेतु मार्ग बताया जाता है। साथ ही बच्चों के अभिभावकों अथवा उनसे जुड़े हुए व्यक्तियों को भी परामर्श दिया जाता है। बच्चों के माता-पिता से उनके व्यवहार, सीखने के तरीके, नियंत्रण का तरीका, विधायक विचारों व प्रवृत्तियों पर चर्चा की जाती है।

7.3.3.5 योग चिकित्सा

वर्तमान में योग चिकित्सा का उपयोग प्रत्येक समस्या के समाधान हेतु हो रहा है। योग चिकित्सा के अन्तर्गत व्यक्ति का आन्तरिक परिवर्तन हो सकता है, साथ ही अचेतन का परिष्कार भी किया जा सकता है। इसलिए योग में ऐसी शक्ति है जिसके द्वारा व्यक्ति का व्यक्तित्व निखारा जा सकता है। नशे जैसी समस्या को दूर करने के लिए योग के अन्तर्गत अनेक प्रकार की साधनाएं की जाती हैं। प्रयोगों से यह सिद्ध हुआ है कि विभिन्न ध्यान-साधनाओं द्वारा कई व्यक्ति व्यसनमुक्त हुए हैं।

बोध प्रश्न :

---

1. *भारतीय संविधान के किस अनुच्छेद में नशा निषेध की बात कही गई है?*
2. *नशा मुक्ति में अध्यापक की भूमिका को बताएं।*
3. *अभिप्रेरणात्मक वृद्धि चिकित्सा क्या है?*
4. *नशा मुक्ति में योग की भूमिका समझाएं।*

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

7.4 नशामुक्ति की सफलता

नशामुक्ति की योजना बनाने मात्र से ही नशामुक्ति नहीं हो सकती है वरन् उसके लिए आवश्यकता है उसकी क्रियान्विति की। यों तो कई योजनाएं बनाई जा सकती हैं, कई व्यवस्थाएं बनाई जा सकती हैं लेकिन यह समस्या का पूर्ण समाधान नहीं है। सिर्फ कानून बनाना ही नशामुक्ति नहीं है। कानून को व्यावहारिक व प्रभावी बनाना भी आवश्यक होता है। अत: सरकार को चाहिए कि वह इन बातों पर ध्यान दे। नशा करने वाले व्यक्ति अनेक स्तर के होते हैं। कोई कम नशा करते हैं, कोई ज्यादा। इसलिए उन व्यक्तियों की मनोवृत्तियों को भी ध्यान में रखा जाए तो सफलता मिल सकती है। हो सकता है नशा करने वाला व्यक्ति एकदम से नशामुक्त नहीं हो, तो ऐसी व्यवस्था भी हो कि धीरे-धीरे उसे नशामुक्त किया जाए। यदि एकाएक नशामुक्त करा दिया जाए तो इससे कई हानियां भी हो सकती हैं। इसलिए आवश्यक होगा कि ऐसे व्यक्तियों की चिकित्सकीय जांच करवाकर उचित तरीके से चिकित्सा की जाए। वर्तमान परिप्रेक्ष में आधुनिकता के अंधानुकरण के पीछे नशे को बुराई न मानना भी हो सकता है लेकिन फिर भी बुराई तो बुराई ही है। नई पीढ़ी को परामर्श देना व समझाना भी कठिन कार्य हो सकता है। इसलिए कानूनों को व्यावहारिकता देने हेतु व्यापक कार्यक्रम भी प्रस्तुत किए जा सकते हैं। कानून की सहायता से नशा क्रय-विक्रय के स्थानों पर प्रतिबंध लगाया जा सकता है। जब कोई कानून बनता है तो उसे तोड़ने का कार्य भी बन जाता है। ऐसी स्थिति में कानून की सफलता हेतु जन-सहयोग अपरिहार्य होता है। कानून की सफलता हेतु राष्ट्रीय स्तर पर ऐसी योजनाएं बनाई जा सकती हैं जो व्यक्ति को रचनात्मक कार्यों की ओर प्रवृत्त करें। फिर तो व्यक्ति के बदलने की संभावना भी बढ़ जाती है। हो सकता है निषेध से कुछ तात्कालिक समस्याएं हो सकती हैं, जैसे—वैयक्तिक आक्रोश, करोड़ों के राजस्व की हानि, बेरोजगारी में वृद्धि, कानूनों की अवहेलना आदि। इसके बावजूद भी नशा- निषेध आवश्यक हो जाता है। हो सकता है कि कोई भी कानून तुरन्त सफल नहीं हो लेकिन आवश्यक रूप से और धीरे-धीरे उसे लागू करने पर सफल बनाया जा सकता है। भारत जैसे विकासशील और मानवीय मूल्यों के प्रतिष्ठापक और संरक्षक देश के लिए तो यह अनिवार्य रूप से आवश्यक है। नशा-निषेध यदि लागू हो जाता है तो यह चौंकाने योग्य बात नहीं है बल्कि उस स्थिति की कल्पना अवश्य ही चौंकाने वाली होगी जब नशे के दुष्प्रभाव से समस्त युवा पीढ़ी विवेकशून्य तथा चेतनाशून्य हो जाएगी।

7.5 प्रश्नावली

I निबंधात्मक प्रश्न

1. नशा मुक्ति के उपाय बताइये।

II लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. नशा मुक्ति की आवश्यकता क्यों होती है?
2. नशा मुक्ति को कैसे सफल बनाया जा सकता है?

III वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. नशा मुक्ति के क्या लाभ हैं?
2. नशा निषेध के कानून बनते-टूटते रहते हैं, क्यों?
3. नशा मुक्ति के कितने उपाय हैं?
4. नशा मुक्ति हेतु कौन-सी चिकित्सा पद्धतियां हैं?
5. कानून की सफलता हेतु क्या आवश्यक है?
6. व्यक्ति में .... दोनों ही होती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

7. संकल्प की शक्ति .... होती है।
8. व्यक्ति के जीवन में .... का प्रभाव भी पड़ता है।
9. नशा करने वाले व्यक्ति .... होते हैं?
10. कानून की सहायता से .... लगाया जा सकता है।

7.6 संदर्भ पुस्तकें

1. भारतीय समाजिक समस्याएं — डॉ. जी. आर. मदन
2. Drugs — Rechord G.S. & Peter T.S.
3. Drug and Drug adiction — K.K. Kaul

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–8 : प्रेक्षाध्यान और नशा मुक्ति

संरचना

8.0 प्रस्तावना
8.1 उद्देश्य
8.2 सृष्टि परिवर्तन हेतु दृष्टि परिवर्तन आवश्यक
8.3 प्रेक्षा : परिवर्तन का आधार
8.4 योग का स्वरूप
8.4.1 योग का वैज्ञानिक स्वरूप
8.4.2 योग का मनोवैज्ञानिक स्वरूप
8.5 प्रेक्षाध्यान और नशा मुक्ति
8.5.1 आसन, प्राणायाम, मुद्रा एवं ध्वनि
8.5.1.1 आसन
8.5.1.2 प्राणायाम
8.5.1.3 मुद्रा
8.5.1.4 ध्वनि
8.5.2 नशा मुक्ति के प्रयोग
8.6 प्रश्नावली
8.7 संदर्भ ग्रंथ

8.0 प्रस्तावना

मनुष्य में विकास की असीम संभावनाएं हैं। उसके पास ज्ञान, आस्था और साथ में चरित्र बल है। चरित्र बल के आधार पर ही व्यक्ति का जीवन ऊंचा होता है। यह तभी संभव होता है जब व्यक्ति का जीवन पवित्र हो। व्यक्ति की सर्वोत्कृष्टता को निकृष्ट करने में कई तत्त्व सहायक हैं। उनमें से एक है नशा। नशा व्यक्ति के कद को छोटा कर देता है। इसलिए अपेक्षा है कि व्यक्ति का जीवन सब प्रकार के दुर्व्यसनों से मुक्त हो, नशामुक्त हो। कुछ लोगों का मानना है कि जो आदत पड़ जाती है उसे बदलना असंभव है लेकिन ऐसा नहीं है। यदि व्यक्ति बदलता ही नहीं तो उसे सीख देने की परम्परा नहीं होती। सभी धर्मों में उपदेश देने की प्रवृत्ति रही है और उसका प्रभाव भी परिलक्षित होता है। यदि व्यक्ति स्वयं बदलना चाहे, उसे योग्य वातावरण मिले और सुयोग्य प्रशिक्षक का योग मिले तो उसके जीवन में रूपान्तरण घटित हो सकता है।

परिवर्तन दो स्तरों पर होता है—शरीर के स्तर पर और भावना के स्तर पर। केवल शरीर के स्तर पर होने वाला परिवर्तन अस्थाई होता है। जब भावात्मक स्तर पर परिवर्तन होता है तो परिवर्तन में स्थायित्व आ जाता है। भीतर का परिवर्तन ही व्यवहार में प्रकट होता है। परिवर्तन स्वयं भी हो सकता है। इसके लिए व्यक्ति को अपायज्ञ और उपायज्ञ होना चाहिए। अपाय अर्थात् दोषों को जाने बिना किसी भी आदत को छोड़ने का मानस नहीं बन सकता है क्योंकि परिवर्तन वहां होता है जहां पूर्व में कुछ हो, समस्या हो, दोष हो आदि। यदि नशा करने वाला व्यक्ति उसके दुष्परिणामों को नहीं जानता है तो वहां परिवर्तन भी नहीं होगा। इसलिए मादक और नशीले पदार्थों की समुचित जानकारी व्यक्ति को उनसे बचने की प्रेरणा देता है। उसके बाद ही उपायों की खोज शुरू होती है। उपायों को जानने पर ही प्रयोगों की बात आती है। प्रयोगों से निश्चित परिवर्तन होना—यह आस्था रूपान्तरण की दिशा में उठा हुआ कदम है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

8.1 उद्देश्य

इस पाठ को पढ़ने के बाद निम्न जानकारियां प्राप्त की जा सकती हैं—

1. सृष्टि परिवर्तन हेतु दृष्टि परिवर्तन आवश्यक
2. प्रेक्षा : परिवर्तन का आधार
3. योग का वैज्ञानिक स्वरूप
4. योग का मनोवैज्ञानिक स्वरूप
5. प्रेक्षाध्यान एवं नशा मुक्ति

8.2 सृष्टि परिवर्तन हेतु दृष्टि परिवर्तन आवश्यक

दृष्टि को बदले बिना सृष्टि को नहीं बदला जा सकता है। यदि दृष्टि बदलती है तो प्रयोजन पूरा हो जाता है। सृष्टि अपने आप बदल जाती है। सबसे जटिल प्रश्न है दृष्टिकोण को बदलना। नशामुक्ति के संदर्भ में भी यही बात लागू होती है। जब तक व्यक्ति नशामुक्ति नहीं चाहता, उसका अपने प्रति विधायक दृष्टिकोण का निर्माण नहीं होता है, वह स्वयं को बदलना नहीं चाहता है तब तक प्रेक्षाध्यान भी सफल नहीं हो सकता है। इसलिए ध्यान के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि जब तक व्यक्ति की उसमें आस्था न हो, समर्पण न हो और व्यक्ति की उस दिशा में क्रियान्विति न हो, ध्यान को सफलता नहीं मिल सकती है। ध्यान कोई जादू तो है नहीं जिसका परिणाम बिना कुछ किए ही प्राप्त हो जाएगा। इसलिए व्यक्ति को नशामुक्ति का जीवन जीने के लिए अपना दृष्टिकोण भी बदलना चाहिए। दृष्टि बदलने के लिए आवश्यक है—स्वयं को देखने की आवश्यकता अनुभव करना। व्यक्तित्व दो भागों में विभक्त रहता है। बाह्य व्यक्तित्व को ज्यादा महत्त्व दिया जाता है। समस्या का समाधान भी बाहर ही खोजा जाता है। शक्ति और आनन्द भी बाहर ही खोजे जाते हैं। व्यक्ति की यह आस्था होनी चाहिए कि शक्ति, ज्ञान और आनन्द का मूल स्रोत भीतर में विद्यमान है। व्यक्ति केवल शरीर से ही अस्वस्थ नहीं होता बल्कि मन और भावों से भी अस्वस्थ होता है। यदि व्यक्ति अपनी बीमारी की खोज, आदतों की खोज भीतर में करे तो समाधान मिल सकता है। व्यक्ति सुख का जीवन जीना चाहता है लेकिन यह आवश्यक नहीं कि वह सुविधा में ही मिले। व्यक्ति को सुख का संवेदन भीतर से होता है। यदि सुख का संवेदन नहीं होता है तो सुविधाएं भी गौण हो जाती हैं। इसलिए व्यक्ति की समस्या का समाधान भीतर में निहित है। आवश्यकता है उसे प्रस्फुटित करने की।

8.3 प्रेक्षा : परिवर्तन का आधार

ध्यान की साधना ज्योति की साधना है, प्रकाश की साधना है। जीवन की सबसे बड़ी कठिनाई है—अज्ञान। यही अज्ञान कई समस्याओं की जड़ है। जितनी समस्याएं अज्ञानता के कारण होती हैं उतनी शायद दूसरों से नहीं होती हैं। इसलिए अज्ञानता जीवन का अंधकार है। कहा भी है—अज्ञस्य दु:खौधमयं, ज्ञस्याआनन्दमयं जगत्। अर्थात् अज्ञानी के लिए यह संसार दु:खमय है और ज्ञानी के लिए यही संसार आनन्दमय है। वही संसार दु:खमय भी बनता है और वही सुखमय भी। ज्ञान का उपयोग करने पर सुखमय तथा अज्ञान का आवरण होने पर दु:खमय अज्ञान को मिटाना चाहिए। पर कैसे? व्यक्ति का अपने प्रति, जीवन के प्रति अज्ञान है। यदि सूक्ष्म विषय पर अज्ञान होता तो आश्चर्य की बात नहीं होती। आश्चर्य की बात इसलिए होती है कि व्यक्ति जिस जीवन को जीता है उसी के प्रति अज्ञान रहता है। इस अज्ञानता को मिटाने का एक सशक्त माध्यम है ध्यान। जिसके द्वारा व्यक्ति अंधकार से प्रकाश का जीवन जीता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रेक्षाध्यान के दो रूप हैं—आध्यात्मिक और चिकित्सात्मक। प्रेक्षाध्यान के विशिष्ट प्रयोग समस्या समाधान में सहयोगी बनते हैं। इसका मूल हेतु है—प्रेक्षा अथवा देखना। देखने की यह कला हर कोई नहीं जानता है। देखना अपने आप में विशिष्ट कला है। वर्तमान में स्पर्श चिकित्सा तो प्रचलित है पर दर्शन चिकित्सा की आस्था कम है। दर्शन शक्ति है। देखने की शक्ति विचित्र होती है। शरीर के किसी भी अवयव पर पीड़ा का अनुभव हो तो उस स्थान पर अर्न्तदृष्टि टिका देने से कुछ समय के बाद पीड़ा का अनुभव ही नहीं होता है। ऐसा इसलिए होता है कि शरीर की सारी प्रक्रिया प्राण के द्वारा चलती है। मस्तिष्क पूरे शरीर को नियंत्रित करता है। मस्तिष्क संचालित होता है विद्युत तरंगों द्वारा, रसायनों के द्वारा। देखने से शरीर में विभिन्न प्रकार के रसायन पैदा होते हैं जिसकी व्यक्ति कल्पना नहीं कर सकता है। जहां भावों की पवित्रता होती है, भावों में विधेयात्मकता होती है, वहां अच्छे रसायन पैदा होते हैं। भावों की विशुद्धता से अमृत तुल्य रसायन पैदा होते हैं।

भावों के साथ बहुत गहरा संबंध है स्वास्थ्य का। भावों की अशुद्धि के कारण व्यक्ति कई बुरी आदतों का शिकार होता है। नशे की आदत भी इनमें से एक है। इसलिए प्रेक्षाध्यान में देखने की बात जहां होती है वहां समस्या का समाधान भी छिपा रहता है। व्यक्ति अपने आपको देखे, अपनी अच्छाई, बुराई को देखे, अपने भावों को देखें तो व्यक्ति की समस्या का समाधान उसी के भीतर रहता है। अच्छे स्वास्थ्य के स्थूल लक्षण हैं—अच्छी नींद, अच्छी भूख, अच्छा मन, अच्छा चिंतन, अच्छा भाव। व्यक्ति अज्ञानता के कारण अपने आपको रोगग्रस्त बनाता है। देखना जहां समस्या का समाधान है वहीं देखना एक बहुत बड़ी कठिनाई भी है। कठिनाई इसलिए है कि एकाग्रता नहीं रहती है। प्रेक्षाध्यान के सभी प्रयोग देखने के प्रयोग हैं, दर्शन के प्रयोग हैं। इसलिए आवश्यकता होती है एकाग्रता की। एकाग्रता साधने की। जैसे-जैसे एकाग्रता सधती है, दर्शन भी सरल हो जाता है। भगवान् महावीर ने कहा है—आत्मा के द्वारा आत्मा को देखो। यह अध्यात्म का उत्कृष्ट सूत्र है तो साथ-साथ व्यवहार का भी महत्त्वपूर्ण सूत्र है। अपने आप को देखो अर्थात् शरीर को देखो, शरीर के भीतर प्रकम्पनों को देखो, स्थूल प्रकम्पनों को देखो, सूक्ष्म प्रकम्पनों को देखो। अपने शरीर में होने वाले जैविक, रासायनिक परिवर्तनों को देखो। अपने शरीर में होने वाले पर्यायों को देखो, उत्पाद और व्यय को देखो। हर क्षण उत्पन्न हो रहा है और विनष्ट हो रहा है। उत्पन्न होते हुए अणु को देखो। आचारांग का महत्त्वपूर्ण सूत्र है—इस शरीर से होने वाले जो क्षण हैं उनको देखो।

देखने की शक्ति बहुत बड़ी शक्ति होने पर भी इस ओर ध्यान नहीं दिया गया। अगर इस ओर ध्यान दिया होता तो शायद तीन स्तरों पर चलने वाला जीवन का प्रवाह संतुलित होता। तीन स्तर हैं—शारीरिक स्तर, चैतसिक स्तर और आध्यात्मिक स्तर। जीवन का जब प्रवाह चलता है तो उसमें कई स्थितियां आती हैं। जहां देखना होता है वहां न कोई जप होता है, न मंत्र होता है, न ध्वनि होती है। सिर्फ देखना होता है। देखने से वहां के अवयव सक्रिय बन जाते हैं। यही देखने की शक्ति है। देखने से वहां पर विद्युत का गमन होता है। बीमारियों को, आदतों को मिटाने वाला है शरीर। शरीर में पैदा होने वाले रसायन ही उसे दुरुस्त करते हैं लेकिन इसके लिए आवश्यक है देखना। सारी शक्तियां हमारे शरीर में ही विद्यमान हैं। इसलिए शरीर को देखना है। इसे आंख खोलकर जितनी अच्छी तरह से देखा जा सकता है उससे अधिक अच्छा आंख बन्द करके देखा जा सकता है। इस प्रकार प्रेक्षाध्यान समस्या समाधान का आसान तरीका है।

8.4 योग का स्वरूप

योग आन्तरिक परिवर्तन का आधार है। ध्यान योग के द्वारा भीतरी परिवर्तन संभव है, पर कैसे? इसको समझने हेतु योग के वैज्ञानिक तथा मनोवैज्ञानिक स्वरूप को समझना आवश्यक होगा। वैज्ञानिकों तथा मनोवैज्ञानिकों ने अपने-अपने ढंग से योग के स्वरूप को प्रस्तुत किया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

8.4.1 योग का वैज्ञानिक स्वरूप

मस्तिष्क की क्रियाशीलता के आधार पर उसे दो भागों में विभक्त किया गया है—दायां भाग एवं बायां भाग। इन्हें सेरिब्रल हेमिस्फियर (Ceribral hemispher) कहते हैं। खोजों से ज्ञात हुआ है कि मस्तिष्क के दायां भाग का संबंध मेधा व प्रज्ञा से होता है, जबकि बायें का संबंध विश्लेषणात्मक बुद्धि से है। शिक्षाविदों, मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि मस्तिष्क का एक पक्षीय विकास मानव जीवन के लिए हानिकारक होता है। प्रसिद्ध शिक्षा शोधार्थी विवियन शेरमेन ने न्यूटन, आइंस्टीन जैसे महान् वैज्ञानिकों के उदाहरणों से यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि उन्हें वैज्ञानिक उपलब्धि अन्तरप्रज्ञा के विकसित होने से मिली है जो दाएं मस्तिष्क का भाग है। साथ ही बांए मस्तिष्क के सक्रिय होने से उसे भौतिक स्वरूप दिया। श्री विवियन का कहना है कि यदि भौतिक लिप्सा की प्राप्ति हेतु केवल बांए मस्तिष्क की कार्यकुशलता पर जोर दिया गया तो कुछ पीढ़ियों बाद वह पूर्ण निष्क्रिय हो जाएगा जिसके भयंकर परिणाम मानव समाज के समक्ष प्रस्तुत होंगे।

योग के अंतर्गत मस्तिष्क के दोनों पटलों के बीच संबंध स्थापित करने हेतु नाना प्रकार की यो साधनाएं की जाती हैं। जिसमें आसन, प्राणायाम, ध्यान, जप, मंत्र आदि शामिल होते हैं। वैज्ञानिकों ने यह भी सिद्ध किया है कि दाएं मस्तिष्क का संबंध इड़ा नाड़ी से तथा बाएं मस्तिष्क का संबंध पिंगला नाड़ी से है। वास्तव में योग विज्ञान के अवलंब पर ही है। अध्यात्म और विज्ञान दोनों एक ही हैं। अन्तर सिर्फ इतना है विज्ञान का संबंध स्थूल जगत् की वस्तुओं से है तथा अध्यात्म का संबंध सूक्ष्म, दृश्य और अदृश्य विश्व के सभी पदार्थों और नियमों से है।

8.4.2 योग का मनोवैज्ञानिक स्वरूप

ध्यान योग की क्रिया के संदर्भ में वैज्ञानिक तथ्य है कि इस दौरान मस्तिष्क का सक्रिय भाग तुरन्त पीनियल तथा पिच्यूटरी ग्रन्थियों से संबंध स्थापित कर लेता है। यह इनकी हारमोन्स स्राव करने की क्षमता में होने वाले परिवर्तनों से परिलक्षित होता है। ये दोनों ही स्थूल ग्रन्थियां अध्यात्म की दृष्टि से बड़ी रहस्यमय मानी जाती हैं। दोनों ही ऐसे हार्मोन्स का स्राव करती हैं जो चेतना के स्तर को प्रभावित करते हैं। पीनियल ग्रन्थि को दार्शनिकों ने, रहस्यवादियों ने तीसरा नेत्र एवं आत्मा का स्थान कहा है। उच्च शक्तियों से संबंध जोड़ने में यह ग्रंथि सहायक होती है। इसका पूर्णरूपेण जागरण चेतना को भावात्मक और बौद्धिक स्तर से ऊपर उठाकर और अधिक सूक्ष्म जगत् में ले जाता है। पिच्यूटरी ग्रंथि में स्नायु एवं हारमोन्स संस्थान की परस्पर प्रक्रिया से ही रस स्राव होता है। सारे शरीर की अन्य ग्रंथियों तथा भावनात्मक प्रतिक्रिया को पिच्यूटरी प्रभावित करती है। यह अनन्त विस्तृत परम चेतना का प्रवेश द्वार है। इसे आध्यात्मिक क्षेत्रों का मिलन बिन्दु माना गया है। ध्यान साधना द्वारा इस ग्रंथि को नियमित कर व्यक्ति अपने स्थूल, सूक्ष्म और आत्मिक आवरणों का परिमार्जन कर सकता है तथा पूर्ण मानव बना सकता है। यों तो देखने में मनुष्य हाड़-मांस का पिंड दिखाई देता है लेकिन वह सिर्फ इतना ही नहीं बहुत कुछ है। वस्तुतः वह चेतना का पुंज है। इसी चेतना में ही उसका व्यक्तित्व घुला रहता है। इसी को ही उसका अस्तित्व तथा मूल्य कहा जा सकता है। चेतना ही जीवन है। चित्त के संस्कार ही व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं। जैसे-जैसे चेतना का विकास होता है, संस्कार छूटते जाते हैं। योग के द्वारा मानव मन सशक्त, सक्षम एवं साथ ही निर्मल व परिष्कृत भी होता जाता है। चित्त बड़ा ही विलक्षण होता है। जब वह पूर्णरूपेण विशुद्ध हो जाता है तो उसकी अन्तिम स्थिति असाधारण शक्तिसंपन्न उसी तरह होती है जैसे कि यूरेनियम, प्लेटेनियम आदि की अवस्था होती है। विभिन्न स्तरों में ऊर्जा विभिन्न गुणों के रूप में प्रकट होती है। योग के अभ्यास से व्यक्ति चेतना के उच्च स्तर तक पहुंच सकता है।

मानवीय चेतना को मनोवैज्ञानिकों ने तीन भागों में बांटा है—

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(1) सचेतन (Conscious)—विवेक बुद्धि के रूप में कार्य करने वाला।

(2) अर्धचेतन (Sub-conscious)—रक्त संचार, श्वास-प्रश्वास, आंकुचन-संकुंचन आदि शरीर की संचालन क्रियाओं का नियंत्रण।

(3) अचेतन (Unconscious)—गहन पर्तें जहां भूतकालीन विचार सुसुप्त अवस्था में पड़े रहते हैं और अवसर पाते ही सजग हो जाते हैं।

अन्य जीव-जन्तुओं की अपेक्षा मनुष्य का सचेतन प्रबल होता है और वह अचेतन के प्रत्येक कारण को स्वीकारता है। वह परिस्थितियों और संभावनाओं के अच्छे-बुरे पक्ष को समझकर ही अंतिम फैसला करना चाहता है। इसलिए निर्णायक मार्गदर्शन अचेतन के हाथ से निकलकर सचेतन के पास चला जाता है। इस विशेषता के कारण ही उसे मननशील प्राणी कहा गया है। अचेतन वह तिजोरी है जिसमें अच्छे-बुरे, उपयोगी-अनुपयोगी सभी प्रकार के रस-विष भरे पड़े हैं। इसके अलावा पाशविक संस्कार भी उसमें भरे पड़े हैं। व्यक्ति जैसा भी है उसकी जड़ें अचेतन की गहराइयों में छिपी रहती हैं। इसीलिए योग में अचेतन को परिष्कृत करने की बात आती है। अचेतन परिष्कृत है तो व्यक्ति का व्यवहार भी परिष्कृत ही होगा।

अचेतन की व्याख्या की जाती है स्नायु सिद्धांत (Neurologycal Theory) द्वारा तथा मानसिक अस्तित्व की व्याख्या की जाती है मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त (Psychologycal Theory) के द्वारा। स्नायु सिद्धांत वादियों के अनुसार शरीरगत स्नायु संस्थान की उत्तेजना से अचेतन मन की स्थिति बनती है और मानसिक सिद्धांत वादियों का मत है कि मन:स्थिति का पूरे शरीर पर नियंत्रण होता है। व्यावहारिक जीवन में जो क्रिया- कलाप मनोयोगपूर्वक अधिक समय तक किये जाते हैं वही संस्कार बनकर अचेतन में समा जाते हैं और उसी के आधार पर व्यक्ति का व्यवहार निर्धारित होता है। जिस प्रकार बौद्धिक संस्थान को विकसित करने के लिए मस्तिष्क को शिक्षित किया जाता है उसी प्रकार अचेतन को पाशविक वृत्तियों से बचाने हेतु, बुरी आदतों से बचाने हेतु योग साधाना को अपनाना होगा। ज्ञान के लिए प्रशिक्षण की उपयोगिता है तो अचेतन को परिष्कृत करने हेतु योग की उपयोगिता है।

चेतन मस्तिष्क की सक्रियता अचेतन की शक्ति तरंगों को काटती है। इसलिए चेतन अधिक सक्रिय व अचेतन अविकसित रहता है। कीड़े-मकोड़े तथा अन्य जीव-जंतु बौद्धिक दृष्टि से पिछड़े होते हुए भी उनका चिंतन और चेतन शिथिल रहता है। इसी का लाभ अचेतन को मिलता है। कुत्तों की घ्राण शक्ति अति सूक्ष्म होती है। चमगादड़ के ज्ञानतंतु राडार क्षमता से संपन्न होते हैं व्हेल मछली के शरीर में पनडुब्बियों की सभी विशेषताएं पायी जाती हैं। उत्तरी अमेरिका की नदियों में रहने वाली ईल मछलियों के शरीर से 500 वोल्ट से अधिक विद्युत निकलती है। वह अचेतन के द्वारा ही नियंत्रित होती है। ऐसे कई उदाहरण हैं। अचेतन मन शक्तिशाली है पर वह स्वनिर्मित नहीं है। उसका निर्माता व्यक्ति स्वयं है। इसलिए उसका परिष्कार भी व्यक्ति स्वयं कर सकता है।

मस्तिष्क विज्ञान और मनोविज्ञान से भी आगे कई क्षेत्रों में खोजें हो रही हैं। जैसे अतीन्द्रिय क्षमता के संबंध में पैरासाइकोलॉजी, न्यूरोलॉजी, मैटाफिजिक्स, आकल्ट साइंस आदि इनसे सारांश यही निकलता है कि मनुष्य मस्तिष्क जादू का पिटारा है। इस प्रकार कहा जा सकता है योग, ध्यान के द्वारा इन असीम संभावनओं को जागृत कर व्यक्ति असीम सफलता प्राप्त कर सकता है। यही नहीं, बुरी आदतों को त्याग कर नई आदतों का निर्माण किया जा सकता है। जिसका परिणाम होगा अच्छा चिन्तन, अच्छी कल्पना, विधायक दृष्टिकोण, सर्वांगीण व्यक्तित्व का विकास।

खोजों से पता चला है कि यदि अचेतन में सन्निहित संभावनाओं को पूर्णरूपेण समझा जा सके और उसे कार्यान्वित किया जा सके तो पदार्थ विज्ञान से अधिक चमत्कार संभव हो सकते हैं। मस्तिष्कीय शक्तियों की खोजबीन करने वाले वैज्ञानिक खोपड़ी में रखे हुए इस छोटे से किन्तु रहस्यमय कम्प्यूटर की महत्ता और

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

संभावना पर विचार करते-करते दंग रह जाते हैं। साधारणतया मस्तिष्क सोचने-समझने में काम आने वाले अवयव अस्त्र न होकर असीम संभावनाओं का भंडार है। दैनिक जीवन में मस्तिष्क का 7 प्रतिशत चेतन भाग काम में आता है और 93 प्रतिशत अचेतन की परतों में रहता है।

8.5 प्रेक्षाध्यान और नशा मुक्ति

जैसाकि कहा गया है—प्रेक्षाध्यान दर्शन की प्रक्रिया है। दर्शन से नई क्षमताएं, योग्यताएं एवं आन्तरिक शक्तियां प्रस्फुटित होती हैं। प्रेक्षाध्यान के सभी प्रयोग आन्तरिक परिवर्तन के प्रयोग हैं। चाहे वे इसके सहायक अंग हों या मुख्य अंग। इन प्रयोगों के द्वारा नशामुक्त जीवन जीया जा सकता है। प्रेक्षाध्यान व्यक्ति की उन समस्याओं का समाधान करता है जो शरीर, मन तथा भावों के असंतुलन के कारण पैदा होती हैं। भले ही नशे के कई कारण हैं। यदि व्यक्ति भीतर से परिष्कृत होता है, अच्छे संस्कारों से युक्त होता है तो बाहरी परिस्थितियां उसे प्रभावित नहीं करती हैं। प्रेक्षाध्यान के प्रयोग आन्तरिक रूप से व्यक्ति को शक्तिशाली बनाते हैं। प्रेक्षाध्यान के प्रयोग नाड़ी ग्रंथितंत्र के संतुलन के प्रयोग हैं। चेतन को परिष्कृत करने के प्रयोग हैं, जिनका परिणाम होता है व्यक्ति की बुरी आदतों का परिष्कार।

नशा मुक्ति हेतु मुख्यतया कायोत्सर्ग, श्वास प्रेक्षा, चैतन्य-केन्द्र प्रेक्षा (अप्रमाद केन्द्र प्रेक्षा) तथा अनुप्रेक्षा प्रमुख हैं। कायोत्सर्ग जहां तनाव मुक्ति का उपाय है, वही श्वास प्रेक्षा द्वारा प्राणशक्ति को शक्तिशाली किया जा सकता है, चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा द्वारा जहां ग्रंथियों तथा नाड़ियों का शोधन होता है वहीं अनुप्रेक्षा एवं भावना द्वारा नए संस्कारों का निरूपण किया जा सकता है, जिससे व्यक्ति नशामुक्त जीवन जी सकता है।

कहा गया है कि हाइपोथेलेमस में व्यक्ति की अनैच्छिक क्रियाएं नियंत्रित होती हैं और भावनाएं भी उसी केन्द्र को प्रभावित करती है। इसलिए इनके द्वारा अनैच्छिक क्रियाओं पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। मनोवैज्ञानिक मानते हैं कि भावनाओं द्वारा कई रोग उत्पन्न होते हैं वहीं यह भी पाया गया है कि यदि मस्तिष्क को सही ढंग से प्रशिक्षत किया जाए तो आश्चर्यजनक सफलताएं प्राप्त की जा सकती हैं।

भावनाएं मानवीय मस्तिष्क को कई तरह से प्रभावित करती रहती हैं। स्नायु संबंधी खोजों से यह सिद्ध हुआ है कि इनके द्वारा मस्तिष्क में विष तथा अमृत दोनों तरह के रसायन बनते हैं। मस्तिष्क विज्ञानियों का कथन है कि स्नायु तंत्र का संचालन कोमल मस्तिष्कीय विद्युत धारा से ही प्रभावित नहीं होता है वरन् उसके संचालन में रासायनिक तत्त्व महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। इन रसायनों के प्रयोग द्वारा व्यक्ति की आदत बदलने, नशे की लत छुड़ाने तथा उसका व्यवहार परिवर्तित करने में सहायता मिल सकती है। इसलिए आदत परिवर्तन हेतु विधायक भावनाओं का अनुचिंतन करने, बार-बार उस भावना को दोहराने से आशातीत परिणाम प्राप्त किए जा सकते हैं। अनुप्रेक्षा में यही सब होता है। जिस प्रकार का निर्देश व्यक्ति स्वयं को देता है, उसका स्वभाव भी वैसा ही बन जाता है। उदाहरणार्थ—''साइकोलोजी एंड मोरल्स'' (Psychology and Monals) नामक पुस्तक में दिया गया है कि एक व्यक्ति को कोकीन खाने की लत पड़ गई थी। वह इस हानिकारक आदत को छोड़ना चाहता था लेकिन प्रयत्न करने पर भी वह इस आदत को नहीं छोड़ पा रहा था। वह अपने पास कोकीन रखता था। जब भी वह कोकीन की दुकान से गुजरता था तो वहां ठहर जाता और खरीद कर खा लेता था। इस लत को छोड़ने हेतु उसे मति-निर्देश का अभ्यास कराया गया। इस अभ्यास में वह व्यक्ति कल्पना में दुकान से निकलता और कुछ भी न करता हुआ ध्यान करता था। इस अभ्यास के कुछ समय बाद अद्‌भुत परिवर्तन हो गया। अब उस व्यक्ति को बार-बार दुकान से निकलने पर भी कोकीन की याद नहीं आती थी। इससे उसका कोकीन का व्यसन छूट गया। नशा मुक्ति हेतु यह भावना कि ''मैं व्यसन मुक्त हो रहा हूं''—इसका जागरूकता पूर्वक अभ्यास व्यक्ति को व्यसनमुक्त बना सकता है। अनेक प्रयोगों से यह सिद्ध हो चुका है कि प्रेक्षाध्यान के प्रयोग नशामुक्ति में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

8.5.1 आसन, प्राणायाम, मुद्रा एवं ध्वनि

शक्ति का अक्षय स्रोत व्यक्ति के भीतर विद्यमान रहता है। उसे कहीं भी हाथ फैलाने की आवश्यकता नहीं होती है बल्कि आवश्यकता है आत्मनिष्ठा, दृढ़ता, स्थिरता, जागरूकता और निरन्तरता के साथ जीवन की धरती पर प्रयोगों की फसल उगाने की। शक्ति संवर्धन के महत्त्वपूर्ण प्रयोगों में आसन, प्राणायाम मुद्रा एवं ध्वनि का भी ध्यान में विशिष्ट महत्त्व है जो प्रेक्षाध्यान के सहायक अंग हैं। ये प्रयोग व्यक्ति को ध्यान के लिए तैयार करते हैं। इन प्रयोगों से व्यक्ति अपने को भावित कर लेता है तो ध्यान में सफलता आसान हो जाती है। ये प्रयोग भी व्यक्ति के स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं। यदि व्यक्ति शारीरिक या मानसिक या भावनात्मक बीमारियों के कारण नशा करता है तो इन प्रयोगों के द्वारा वह शारीरिक, मानसिक तथा भावनात्मक स्वास्थ्य को प्राप्त कर नशा मुक्त जीवन जी सकता है।

8.5.1.1 आसन

अनेक समस्याओं का मूल कारण है शरीर। यदि शरीर स्वस्थ है तो मन स्वस्थ है, भाव स्वस्थ है। इसलिए शारीरिक स्वस्थता का विशेष महत्त्व है। रोगों की उत्पत्ति, समस्याओं की उत्पत्ति, अशुद्ध भावों की उत्पत्ति इसी शरीर में होती है। यदि शरीर को रोगमुक्त बनाना है, समस्या मुक्त बनाना है तो इसका एक उपाय है—आसन। आसन शरीर को लचीलापन प्रदान करते हैं। उसे कठोर होने से बचाते हैं। शरीर के अवरोधों को दूर करते हैं। आसन एक नहीं, दो नहीं असंख्य हैं लेकिन सुविधा की दृष्टि से कुछ मुख्य आसनों को महत्त्व दिया जाता है। शरीर के प्रत्येक अवयव हेतु आसन एवं विशिष्ट यौगिक क्रियाएं होती हैं। वैज्ञानिकों का कहना है कि जिन कोशिकाओं को उचित रक्त नहीं मिलता है वे सड़-गल जाती हैं और नई कोशिकाएं उत्पन्न नहीं कर पाती हैं। जिन कोशिकाओं को पूरा आहार नहीं मिलता, पूरा रक्त नहीं मिलता है वे निष्क्रिय हो जाती हैं। इसलिए श्रम करना उपयोगी ही नहीं अपितु शरीर की प्रबल आवश्यकता है। यदि मस्तिष्क अपना काम न करे तो उसकी शक्तियां क्षीण होती जाएंगी। जिन व्यक्तियों में बुद्धि और स्मृति होती है, वे यदि एक वर्ष तक मस्तिष्क को कार्य में न लें तो उनकी बुद्धि और स्मृति कुंठित होने लग जाएगी, इसलिए अवयवों से काम लेना अत्यन्त आवश्यक होता है। इसीलिए आसनों के विशेष महत्त्व है। यदि पूरे शरीर के पूरे अवयवों का आसन न भी हो तो शरीर के महत्त्वपूर्ण अंगों के आसन अवश्य करने चाहिए। ये अंग हैं—मस्तिष्क, पृष्ठरज्जु, हृदय, फेफड़े एवं पेट। जिन व्यक्तियों को शारीरिक श्रम नहीं करना पड़ता है उनके लिए दूसरा विकल्प है आसन। शरीर को जितना अधिक श्रममुक्त रखा जाएगा, वह उतना ही निष्क्रिय बनता जाएगा। इसलिए स्वस्थ रहने हेतु आसनों को महत्त्वपूर्ण माना गया है।

योगासनों से शारीरिक व मानसिक विकास तथा स्थिरता विकसित होती है। आसनों के अभ्यास से संपूर्ण मस्तिष्क केन्द्र (Higher and Lower centers of Brain) का उपयोग तल्लीनता और एकाग्रता के लिए किया जाता है। आसनों के द्वारा एकाग्रता का भी विकास होता है। चित्त की यही एकाग्रता प्राणायाम, धारणा और ध्यान को दृढ़ करती हुई समाधि तक पहुंचाती है। योगासनों से जहां शरीर में लचीलापन आता है वहीं ग्रन्थियों और जोड़ों में विशेष गतिशीलता आती है। मांसपेशियों का विकास होता है। शरीर में प्राणशक्ति का संचय होता है। स्फूर्ति, ओज एवं कांति की अभिवृद्धि होती है। योगासनों के अभ्यास के बाद शांति का विकास होता है। योगासनों के द्वारा अन्तःस्रावी ग्रन्थियों तथा नारएड्रेनेलीन एवं सेराटोनिन हार्मोन्स के बीच संतुलन किया जा सकता है जिससे मानसिक खिन्नता को दूर किया जा सकता है। मानसिक रोगों को दूर करने के लिए सूर्य नमस्कार, शीर्षासन, योगमुद्रा, भुजंगासन, सर्वांगासन, हलासन, विपरीत करणी मुद्रा, शशांकासन आदि का अभ्यास करना चाहिए। इन आसनों के नियमित अभ्यास से चमत्कारी लाभ प्राप्त हो सकते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

8.5.1.2 प्राणायाम

अध्यात्म के क्षेत्र में योगाचार्यों ने महत्त्वपूर्ण सत्य की खोज की एवं सर्व साधारण के लिए उपयोगी पद्धति प्राणायाम के रूप में लोगों के समक्ष रखा। प्राणशक्ति का अद्‌भुत चमत्कार है—प्राणायाम, यदि इस जीवनी शक्ति के द्वारा प्राण-प्रवाह में अभिवर्धन किया जाए, उसे विकसित व सुव्यवस्थित किया जाए तो न केवल रोगों से मुक्ति मिल सकती है वरन् पूरा व्यक्तित्व ही तेजस्वी-वर्चस्वी तथा अलौकिक क्षमताओं से भी निष्पन्न हो सकता है। इसके द्वारा अतीन्द्रिय चेतना को भी विकसित किया जा सकता है। रक्त वाहिनियों के साथ-साथ प्राण का प्रवाह भी चलता रहता है। यदि किसी कारण से इस प्रवाह में अवरोध आ जाता है तो प्राण संचार की प्रक्रिया अस्त-व्यस्त हो जाती है। इससे व्यक्ति कई समस्याओं से ग्रस्त हो जाता है। इसीलिए प्राणायाम अवरोध हटाने का सशक्त माध्यम है। महर्षि पतंजलि ने लिखा है—ततः क्षीयते प्रकाशावरणम् अर्थात् प्राणायाम के द्वारा प्रकाश पर आया हुआ आवरण क्षीण हो जाता है। प्राणायाम के द्वारा प्रकाश का अवतरण होता है। प्राणायाम के द्वारा चेतना को अनावृत किया जा सकता है। इसके अभ्यास से चैतसिक निर्मलता एवं प्रसन्नता का विकास होता है। मन तथा इन्द्रियों की शुद्धि होती है। एकाग्रता का विकास होता है, जागरूकता बढ़ती है। योगाचार्यों ने यहां तक कहा है कि प्राणायाम के द्वारा श्वास, मन तथा प्राण को वश में किया जा सकता है तथा सुप्त चेतना को जागृत किया जा सकता है।

प्राणायाम से रक्त वाहिकाओं की शुद्धि होती है, रक्त की उत्तमता और उसके समस्त स्नायुओं और ग्रन्थियों में अधिक मात्रा में विभक्त होने पर ही इनकी स्वस्थता निर्भर है। प्राणायाम से ग्रन्थितंत्र को भी उत्तम और पहले की अपेक्षा अधिक रक्त की आपूर्ति होती है। जिससे वे पहले की अपेक्षा अधिक स्वस्थ हो जाती हैं। इसी प्रकार से मस्तिष्क, मेरुदंड और इनकी नाड़ियों तथा अन्य नाड़ियों को भी स्वस्थ बनाया जा सकता है। शरीर विज्ञानी मानते हैं कि सांस लेते समय मस्तिष्क से दूषित रक्त निष्कासित होता है और शुद्ध रक्त उसमें संचारित होता है। प्राणायाम में गहरे श्वास से दूषित रक्त बह जाता है तथा शुद्ध रक्त उसे अधिक मात्रा में मिलता है। मेरुदंड और उससे संबंधित स्नायुओं के संबंध में देखा जाता है कि इन अंगों के चारों ओर रक्त की गति साधारण तथा मंद होती है। प्राणायाम से इन अंगों में रक्त की गति बढ़ जाती है। इस प्रकार के अंग स्वस्थ रहने लगते हैं। नाड़ी तंत्र को स्वस्थ रखने हेतु उत्तम प्राणायाम है—भस्त्रिका, इसमें श्वास की गति तीव्र होने से शरीर के प्रत्येक सूक्ष्म से सूक्ष्म अंग की मालिश हो जाती है। जिससे नाड़ी तंत्र प्रभावित होता है। इस प्रकार प्राणायाम शरीर को स्वस्थ रखने का सर्वोत्तम उपाय है। इसीलिए भारत के प्राचीन योगाचार्य प्राणायाम को शरीर की प्रत्येक आभ्यंतर क्रिया को स्वस्थ रखने का एकमात्र साधन मानते थे।

8.5.1.3 मुद्रा

स्वास्थ्य लाभ और स्वभाव में अभीष्ट परिवर्तन लाने में मुद्राओं का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। भीतर के भाव शरीर में उतरते हैं, अभिव्यक्त होते हैं, मुद्रित होते हैं, वही मुद्रा है। मनोगत भावों के आधार पर ही मुद्रा बनती है। मुद्राओं का प्रभावक प्रयोग वैज्ञानिक होने के साथ-साथ सरल और सर्वग्राह्य भी है। मुद्रा विज्ञान विशेषज्ञ व मर्मज्ञ आचार्य केशवदेव का गहन शोध व साधना का निचोड़ व स्वस्थ अनुभव है कि मुद्रा मानव शरीर रूपी महामंत्र की स्विच बोर्ड के समान नियंत्रक है। उनके द्वारा शरीर में अलौकिक शक्तियां अथवा विशेष प्रकार की ऊर्जा तरंगें आवश्यक प्रभाव में प्रवाहित की जा सकती हैं जिससे शरीर में असंतुलित पंचतंत्रों में संतुलन स्थापित किया जा सकता है। शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक लाभ की प्राप्ति होती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

मानव शरीर पांचों तत्त्वों का समावेश माना गया है—अग्नि, वायु, आकाश, पृथ्वी और जल। इसी प्रकार अंगूठे से क्रमश: कनिष्ठा तक प्रत्येक तत्त्वों की मुद्रा बनती है। इनके अलावा अलग-अलग तत्त्वों को मिलाकर भी मुद्राएं बनाई जाती हैं। इनका संतुलन भावनात्मक स्तर पर भी प्रभावशाली होता है। मुद्राएं दो प्रकार की होती हैं—कृत्रिम और सहज। शरीर सुप्त शक्तियों के जागरण हेतु सप्रयत्न बनाई जाने वाली मुद्राएं, शरीरस्थ चेतना को जागृत करती हैं जिससे प्राण शरीर सक्रिय होता है। प्रेक्षाध्यान के प्रयोगों में मुद्रा को भी महत्त्व दिया गया है। इस प्रकार मुद्रा प्रयोग के द्वारा भी सुप्त चेतना को जागृत कर शक्तियों को जगाया जा सकता है।

8.5.1.4 ध्वनि

भारतीय प्रज्ञा की खोज है कि समस्त अस्तित्व का मौलिक आधार ध्वनि है। ध्वनि मौलिक होती है। पश्चिमी भौतिक शास्त्र का कहना है कि ध्वनि भी विद्युत का एक प्रकार है। एक विशेष प्रकार की विद्युत की ध्वनि बन जाती है। विशेष रूप से की गई ध्वनि अग्नि पैदा कर देती है तथा अनेक अन्य चमत्कार भी हो सकते हैं। निश्चित लय तथा निश्चित तरंगों के द्वारा की गई ध्वनि से कई आशातीत परिणाम हो सकते हैं। एक वैज्ञानिक शोध से ज्ञात हुआ है कि रेचन के साथ की गई ध्वनियों के प्रकंपनों में शरीर की आन्तरिक मालिश हो जाती है। रक्त संचार निर्बाध गति से चलता है और रक्त की आपूर्ति होने पर प्राण शक्ति प्रदीप्त हो जाती है। इन ध्वनि तरंगों द्वारा न केवल शारीरिक प्रभाव पड़ता है अपितु ग्लानि, विषाद और हीन-भावना जैसी मनोदशाओं को भी दूर किया जा सकता है। अंत:स्रावी ग्रन्थियों पर इनका प्रभाव पड़ता है और व्यवहार प्रभावित होता है। ध्वनि प्रकंपनों द्वारा अनुकंपी तथा परानुकंपी के बीच संतुलन स्थापित किया जा सकता है। इस प्रकार ध्वनि के अभ्यास से इच्छित परिणामों को प्राप्त किया जा सकता है।

बोध प्रश्न :

---

1. सृष्टि परिवर्तन से क्या आशय है?

2. योग का वैज्ञानिक स्वरूप क्या है?

8.5.2 नशामुक्ति के प्रयोग

प्रेक्षाध्यान का प्रयोग

(1) दीर्घ श्वास प्रेक्षा — 20 मिनट
- i. महाप्राण ध्वनि — 2 मिनट
- ii. कायोत्सर्ग — 5 मिनट
- iii. दीर्घ श्वास प्रेक्षा
  - (क) नाभि पर श्वास प्रेक्षा — 5 मिनट
  - (ख) दोनों नथुनों पर श्वास प्रेक्षा — 5 मिनट
- iv. महाप्राण ध्वनि से प्रयोग सम्पन्न — 3 मिनट

(2) चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा — 20 मिनट
- i. महाप्राण ध्वनि — 2 मिनट

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

ii. कायोत्सर्ग 5 मिनट

iii. अप्रमाद केन्द्र पर हरे रंग का ध्यान
(कान के भीतर, मध्य, बाहर)
दाएं कान पर प्रेक्षा 5 मिनट
बाएं कान पर प्रेक्षा 5 मिनट

iv. महाप्राण ध्वनि से प्रयोग संपन्न 3 मिनट

नोट:- इस प्रयोग को दिन में तीन बार करें।

(3) अनुप्रेक्षा का प्रयोग 20 मिनट

i. महाप्राण ध्वनि 2 मिनट

ii. कायोत्सर्ग 5 मिनट

iii. दर्शन केन्द्र पर ध्यान को केन्द्रित कर अनुप्रेक्षा करें। 'मैं व्यसन मुक्त हो रहा हूं।' इस वाक्य को दो मिनट तक मंद वाचिक उच्चारण करें। उसके पश्चात् तीन मिनट तक मानसिक जाप करें एवं चमकते हुए अक्षरों में मानस पटल पर साक्षात्कार करें।

iv. अनुचिन्तन—मैं व्यसनमुक्त हो रहा हूं। शराब और तम्बाकू से बहुत हानियां होती हैं। जिगर खराब होता है, फेफड़े खराब होते हैं। हृदय रोग और कैंसर की संभावना बढ़ जाती है। सिगरेट से श्वसन-नली पर असर पड़ता है। ये नशीले पदार्थ बहुत खराब है अब मैं इनका प्रयोग नहीं करूंगा। मेरा दृढ संकल्प है कि अब मैं धूम्रपान, मदिरापान कभी नहीं करूंगा। मैं अब नशे से मुक्त हो गया हूं। 7 मिनट

v. महाप्राण ध्वनि से प्रयोग संपन्न 1 मिनट

(4) संकल्प शक्ति का प्रयोग

संकल्प शक्ति के प्रयोग के साथ व्यसन मुक्ति का सुझाव—

सुखासन में स्थित होकर 'अर्हम्' की ध्वनि से वातावरण को निर्मित कर संकल्प के अनुरूप बनाएं। बाएं हाथ को नाभि पर केन्द्रित करें।

श्वास की क्रिया भस्त्रिका के रूप में करें। अपना ध्यान श्वास पर केन्द्रित रखें। उच्छ्श्वास और नि:श्वास की गति सम रहे। साथ ही साथ संकल्प करें कि उच्छवास (ग्रहित श्वास) से प्राण गतिशील हो रहा है।

प्राणधारा दाहिने हाथ के अंगुष्ठ, तर्जनी अंगुली की ओर प्रवाहित होने लगी है। तर्जनी से मध्यमा की ओर, मध्यमा से अनामिका की ओर, अनामिका से कनिष्ठा अंगुली की ओर प्राण तेजी से प्रवाहित हो रहा है। इस प्रकार संकल्प करें। संकल्प के कुछ समय पश्चात् हाथों में झनझनाहट सी अनुभव होगी। ज्यों-ज्यों भावना की एकरूपता होगी, स्थूल हाथ का अनुभव नहीं रहेगा। उस समय संकल्प पूर्वक मानसिक चित्र बनाएं अथवा अनुभव करें कि आप दर्पण के सामने बैठे हैं आपको अपना चेहरा स्पष्ट दिखाई दे रहा है। सूक्ष्म हाथ धीरे-धीरे ऊपर उठकर ललाट के मध्य दर्शन केन्द्र को स्पर्श कर रहा है। दर्शन केन्द्र पर स्पर्श होते ही स्वत: ध्यान में प्रविष्ट हो जाएंगे। हाथ स्वयं ऊपर उठकर दर्शन केन्द्र को स्पर्श करने लगेगी। तब एक अकल्पनीय शांति का अनुभव होगा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इस अवसर पर व्यसनमुक्ति की अनुप्रेक्षा नम्बर 3 वाली कराएं। संकल्प का समय कम से कम पन्द्रह मिनट है। अधिक अपनी सुविधा के अनुसार किया जा सकता है।

8.6 प्रश्नावली

I निबंधात्मक प्रश्न

1. प्रेक्षाध्यान द्वारा नशा मुक्ति कैसे संभव है?

II लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. प्रेक्षा परिवर्तन का आधार है, कैसे?
2. योग का मनोवैज्ञानिक आधार क्या है?

III वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. परिवर्तन कितने स्तरों पर होता है?
2. प्रयोजन कब पूरा होता है?
3. प्रेक्षाध्यान के कितने रूप हैं?
4. जीवन की सबसे बड़ी कठिनाई क्या है?
5. मानवीय चेतना के कितने स्तर हैं?
6. नशा मुक्ति के .... करता है।
7. चेतन मस्तिष्क की सक्रियता .... काटती है।
8. प्रेक्षाध्यान के प्रयोग .... हैं।
9. भावनाएं मानवीय मस्तिष्क को .... करती हैं।
10. आदत परिवर्तन हेतु .... आशातीत परिणाम प्राप्त किए जा सकते हैं।

8.7 संदर्भ पुस्तकें

1. प्रेक्षाध्यान पत्रिका— जनवरी, मार्च, अप्रैल, जून, सितम्बर— 1997
2. अखंड ज्योति— अगस्त 1997, जनवरी 1980
3. साधना पद्धतियों का ज्ञान और विज्ञान— आचार्य पं. श्रीराम शर्मा
4. प्रेक्षाध्यान : नशा मुक्ति— मुनि किशनलाल, शुभकरण सुराणा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

संवर्ग–3 जीवन विज्ञान और पुनर्वास प्रक्रिया

इकाई–9 दृष्टिकोण परिवर्तन की प्रक्रिया

संरचना

9.0 प्रस्तावना

9.1 उद्देश्य

9.2 अपराध

9.2.1 अपराध के कारण

9.2.1.1 आनुवांशिकता

9.2.1.2 स्वास्थ्य एवं अंतःस्रावी ग्रन्थियां

9.2.1.3 शिक्षा।

9.2.1.4 पारिवारिक स्थिति

9.2.1.5 सामाजिक स्थिति

9.2.1.6 आर्थिक स्थिति

9.2.2 अपराध और मानवता

9.3 अपराध और पुनर्वास

9.3.1 पुनर्वास का अर्थ एवं परिभाषाएं

9.3.2 पुनर्वास की प्रक्रिया

9.3.2.1 पुनर्वास के सिद्धान्त

9.3.3 पुनर्वास और जीवन विज्ञान

9.3.3.1 दृष्टिकोण परिवर्तन

9.3.3.2 व्यवहार परिवर्तन

9.3.3.3 हृदय परिवर्तन

9.3.3.4 अहिंसक व्यवहार

9.4 दृष्टिकोण परिवर्तन की प्रक्रिया

9.4.1 दृष्टिकोण परिवर्तन का अर्थ एवं आवश्यकता

9.4.2 विधायक सोच की वैज्ञानिकता

9.4.3 दृष्टिकोण परिवर्तन के सूत्र

9.4.3.1 स्वार्थ संयम

9.4.3.2 कर्त्तव्य बोध

9.4.3.3 त्याग चेतना

9.4.3.4 समग्रता की दृष्टि

9.4.3.5 परस्परावलम्बन

9.4.3.6 समन्वय

9.4.3.7 सहिष्णुता

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

9.4.3.8 सह–अस्तित्व
9.4.4 दृष्टिकोण परिवर्तन की उपलब्धियां
9.4.4.1 मानसिक शान्ति
9.4.4.2 समस्या मुक्ति
9.4.4.3 अनासक्ति
9.4.4.4 करूणा
9.4.4.5 सत्यनिष्ठा
9.5 प्रश्नावली
9.6 संदर्भ ग्रंथ

9.0 प्रस्तावना

सृष्टि का शाश्वत नियम है–परिवर्तन। मानव समाज, संस्कृति एवं सभ्यता को प्रत्येक युग में परिवर्तन की प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है। जो मान्यताएं, विचार, दृष्टिकोण कभी उपयोगी एवं समयानुकूल लगते थे, उनमें भी परिवर्तन करना पड़ता है। विज्ञान के इस युग में चारों ओर परिवर्तन ही परिवर्तन दिखाई दे रहा है। परिवर्तन की इस दौड़ में सभी ओर उथल-पुथल मची हुई है। इसी परिवर्तन की चाह ने व्यक्ति के सामने सुख-सुविधाओं का अंबार लगा दिया है लेकिन साथ नें अपराध जैसी अनेक समस्याएं भी पैदा हुई हैं। क्या सिर्फ व्यवस्था परिवर्तन करना, सुख-सुविधाएं जुटाना, उपभोग के लिए परिवर्तन करना आदि से अपराध जैसी समस्याओं का समाधान हो सकता है? एक सीमा तक ही यह परिवर्तन सही है। मूल परिवर्तन है आंतरिक। जब तक अपराधी का आंतरिक परिवर्तन नहीं होता है तब तक समस्या का पूरा समाधान नहीं हो सकता है। जब तक अपराधी की चेतना निर्मल नहीं हो जाती है तब तक बाह्य परिवर्तन समस्या का समाधान भी नहीं हो सकता है। जब अपराधी भीतर से परिवर्तित है, विधायक गुणों से निष्पन्न है, दृष्टिकोण विधायक है तो समस्या का समाधान सरल हो जाता है।

जब व्यक्ति का दृष्टिकोण बदल जाता है तो सारी चीज ही बदल जाती है। दृष्टिकोण के बदले बिना दुनिया में कुछ भी नहीं बदलता है। दुनिया का सारा परिवर्तन दृष्टिकोण के आधार पर ही हुआ है। दृष्टिकोण बदलने पर जीवन का सारा ढांचा बदलता है। जिस देश, समाज तथा व्यक्ति का दृष्टिकोण नहीं बदलता है, वहां कुछ भी नहीं बदलता है, चाहे सारी दुनिया ही क्यों न बदल जाए। सही दृष्टिकोण से ही जीवन में नैतिकता का विकास होता है। दृष्टि के आधार पर सृष्टि का निर्माण होता है। कहा जाता है–जैसी दृष्टि, वैसी सृष्टि। जैसा दृष्टिकोण व्यक्ति का होता है, वह प्रत्येक वस्तु उसी अनुरूप देखता है। जहां जीवन निर्माण का सबसे बड़ा रहस्य सूत्र है–दृष्टिकोण का निर्माण, वहीं निर्माण का सबसे बड़ा बाधक तत्त्व है–दृष्टिकोण का विपर्यय। गलत दृष्टिकोण व्यक्ति को सफलता से दूर ले जाता है। अपराधी को बदलने से पूर्व यदि दृष्टि को बदला जाए तो समस्या ही नहीं बचेगी। जहां समस्या होगी भी तो सम्यक् दृष्टिकोण के आधार पर उसका समाधान किया जा सकता है।

प्रस्तुत पाठ में अपराध, मानवता एवं अपराधियों के पुनर्वास की चर्चा की गई है क्योंकि इस इकाई (3) के सभी पाठ पुनर्वास प्रक्रिया से जुड़े हुए हैं। यहां पुनर्वास प्रक्रिया उन व्यक्तियों के लिए लागू होती है जिनका संबंध आपराधिक जगत् से है। एक ओर अपराध तो दूसरी ओर मानवता। इसी मानवता के विकास हेतु पुनर्वास की प्रक्रिया आवश्यक मानी जाती है।

9.1 उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ को पढ़ने के बाद निम्न जानकारियां प्राप्त की जा सकेंगी–

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1.अपराध और उसके कारणों के बारे में जानकारी,

2.मानवता से संबंधित जानकारी,

3.अपराध जगत् और पुनर्वास संबंधित जानकारी,

4.पुनर्वास और जीवन विज्ञान से संबंधित जानकारी,

5.दृष्टिकोण परिवर्तन की प्रक्रिया,

6.दृष्टिकोण परिवर्तन की उपलब्धियां।

9.2 अपराध

अपराध ऐसे कार्य होते हैं जिनके लिए कानून से दंड की व्यवस्था होती है। समाज में ऐसे कुकृत्यों को मान्य नहीं किया जाता है। वस्तुतः अपराध एक रोग है। जिस प्रकार सर्दी–गर्मी, भोजन, जलवायु आदि की विषमता से अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं उसी प्रकार सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक मत–मतान्तर तथा स्वास्थ्य संबंधी परिस्थितियों की प्रतिकूलता से अपराध रूपी रोगों को प्रश्रय मिलता है। अपराध समाज में मूल्यों के विरूद्ध कार्य माना जाता है। जहां समाज में परस्पर सामूहिक कल्याण को महत्त्व दिया जाता है, वहीं अपराध को सामूहिक हित के लिए हानिकारक माना गया है। इसीलिए समाज में ऐसे कुकृत्यों को अमान्य घोषित किया गया है। साधारणतया अपराध सामाजिक रूप से अस्वीकृत या असामाजिक व्यवहार हैं जो सामूहिक रूप से निर्धारित आचरण प्रतिमानों के अनुकूल नहीं होते हैं। अपराध वास्तव में समाज के लिए हानिकारक हैं। यदि समाज में अपराध का बोलबाला अधिक होता है तो वह समाज स्वस्थ नहीं कहा जा सकता है। समाज के कल्याण के लिए ही समाज में नियमों, परम्पराओं तथा मूल्यों को महत्त्व दिया जाता है। रक्षा के लिए जो बाड़ लगायी गई हो यदि उसी पर प्रहार किया जाए तो रक्षा कैसे संभव हो सकती है। व्यक्ति की चेतना जब मूर्च्छित होती है तो व्यक्ति इस प्रकार के कुकृत्यों को करने लगता है। एक स्वस्थ व्यक्ति ऐसे कार्य नहीं करता है जो व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से अकरणीय हो।

अपराध कई प्रकार के होते हैं। इनको सीमाओं में बांधना तथा इन्हें परिभाषित करना आसान कार्य नहीं है। आधुनिक अपराध वैज्ञानिकों के समक्ष भी यह समस्या बनी रहती है कि नीतिशास्त्र, सांस्कृतिक मान–मूल्यों तथा सामुदायिक परंपराओं के कारण होने वाले अपराधों को किस प्रकार से ग्रहण किया जाए। साथ ही इन अनाचरणों से जो जन–जीवन की व्यवस्था ध्वस्त हो जाती है, उस पक्ष को कैसे विवेचन से बाहर रखा जाए। इसलिए अपराध वैज्ञानिकों ने चिंतन कर यह पाया कि यदि कानूनों को विलुप्त भी कर दिया जाए, नियम, अधिनियम भी नहीं रहेंगे तब भी हत्यारे, घातक, सम्पत्ति चुराने वाले को समाज दंडित करेगा। इस प्रकार कहा जा सकता है अनैतिक कार्य समाज में मान्य नहीं होते हैं। अपराध के अन्तर्गत कई प्रकार के कार्य हो सकते हैं। जैसे–किसी के अधिकार या सम्पत्ति का हनन, शरीर हनन, अमानवीय कार्य, सामाजिक मूल्यों का हनन आदि। अपराध व्यक्ति को बुरी तरह से प्रभावित करते हैं। व्यक्ति स्वयं को इनके रहते हुए सुरक्षित नहीं मानता है। उसके स्वास्थ्य पर भी इसका बुरा प्रभाव पड़ता है। व्यक्ति को वे क्रियाएं पसंद नहीं होती है जो उसे दुःखी करें। इसलिए समाज में ऐसे कार्यों का निषेध किया जाता है ताकि वैयक्तिक तथा सामाजिक अमन–चैन बना रहे।

9.2.1 अपराध के कारण

प्रत्येक क्रिया के पीछे एक कारण होता है। बिना कारण के कोई भी क्रिया निष्पन्न नहीं हो सकती है। अपराध के संबंध में विविध प्रकार के मत प्रकट हैं। विद्वानों एवं विशेषज्ञों ने अपने–अपने विचारों को प्रकट किया है। किसी ने एक कारण विशेष को प्रधानता दी है तो किसी ने दूसरे कारण विशेष को। इस प्रकार यदि देखा जाए तो अपराध के पीछे एक या दो कारण ही नहीं, कई कारण हो सकते हैं क्योंकि व्यक्ति एक, दो परिस्थितियों से नहीं, कई परिस्थितियों से प्रभावित हो सकता है। इसलिए अपराध के पीछे भी निम्न कारण उत्तरदायी हो सकते हैं–

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1. आनुवांशिकता,
2. स्वास्थ्य एवं अन्तःस्रावी ग्रंथियां,
3. शिक्षा,
4. पारिवारिक स्थिति,
5. सामाजिक स्थिति,
6. आर्थिक स्थिति।

9.2.1.1 आनुवांशिकता

व्यक्ति के अनेक गुण–अवगुण उसमें वंशानुगत व्याप्त होते हैं। साधारणतया व्यक्ति के चेहरे को देखकर उसकी सज्जनता या दुर्जनता का अनुमान किया जाता है लेकिन इसके आधार पर पूरी सच्चाई सामने नहीं आती है। चिकित्सा शास्त्री और मानसिक रोग विशेषज्ञ सी. लोम्ब्रोसो ने उपर्युक्त धारणा को वैज्ञानिक रूप देने का प्रयत्न किया। उनके अनुसार अपराधी आनुवांशिक होते हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि उनके माता–पिता भी अपराधी थे। इसका संबंध एक पीढ़ी से नहीं, कई पीढ़ियों के अंतर से हो सकता है। जन्मजात अपराधियों का शारीरिक और मानसिक गठन प्रारंभ से ही अन्य व्यक्तियों से भिन्न होता है। लोम्ब्रोसो ने सैकड़ों बड़े–बड़े अपराधियों के चरित्र तथा चेहरों का सूक्ष्म अध्ययन कर यह निष्कर्ष निकाला कि उनके आंख, कान, मुंह, नाक, दांत, बाल, कंधे आदि की बनावट अन्य व्यक्तियों से भिन्न होती है। उनकी शारीरिक क्रियाओं में विलक्षणता होती है। जैसे आघात होने पर त्वचा में दर्द कम मालूम होना, देखने, सुनने, चखने की शक्ति तीक्ष्ण होना, शारीरिक बल तथा फुर्तीलापन आदि का होना। भले ही यह सिद्धान्त पूर्ण रूप से सही नहीं हो लेकिन इसका बहुत महत्त्व है। इन व्यक्तियों के कुछ लक्षण जंगली या असभ्य व्यक्तियों से मिलते–जुलते हैं।

श्री गल्ट का मानना है कि बच्चे की चारित्रिक विशेषताओं में आधी माता–पिता से, एक चौथाई उनके माता–पिता से तथा आठवां हिस्सा उनके भी माता–पिता से प्राप्त होता है। भले ही ये बातें पूर्ण रूप से सत्य साबित न होती हों लेकिन वैज्ञानिकों तथा मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि आनुवांशिकता का प्रभाव व्यक्तित्व पर पड़ता है।

9.2.1.2 स्वास्थ्य एवं अंतःस्रावी ग्रंथियां

कहा जाता है कि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क का वास होता है। इसलिए स्वास्थ्य व्यक्ति के व्यक्तित्व में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यदि व्यक्ति शारीरिक रूप से स्वस्थ है तो उसमें अनेक निषेधात्मक भाव उत्पन्न नहीं होते हैं। शारीरिक अपंगता भी व्यक्ति के स्वास्थ्य को प्रभावित करती है। यदि किसी व्यक्ति के शारीरिक अवयव यथास्थान, यथास्थिति में होते हैं तो व्यक्ति का मनोबल बना रहता है। इसके विपरीत यदि शारीरिक अपंगता होती है तो व्यक्ति के भीतर हीन भावना हो जाती है। इसी कारण वह आपराधिक क्षेत्र में प्रवेश करता है। लंबी बीमारी से भी व्यक्ति में तनाव, चिड़चिड़ापन, अनिंद्रा आदि पैदा होने लगते हैं जिससे व्यक्ति की मानसिक स्थिति प्रभावित होती है।

अमरीका तथा इंग्लैंड में जेल के कैदियों के स्वास्थ्य पर कुछ खोजो के बाद यह परिणाम निकला कि साधारण स्वास्थ्य से तुलना करने पर कैदी कमजोर पाए गए। न्यूयार्क में 800 कैदियों की जांच से मालूम हुआ कि 25 प्रतिशत के सिर पर गहरी चोट के निशान थे या बेकार करने वाली बीमारियों का असर था। 28 प्रतिशत को तपेदिक तथा 43 प्रतिशत को अन्य बीमारियां थीं।

मानसिक स्वास्थ्य भी व्यक्ति को आपराधिक कार्यों की ओर प्रेरित करता है। व्यक्ति में मनःस्ताप, मनोविकृतियां, संवेगात्मक अस्थिरता आदि ऐसे विकार हैं जो व्यक्ति को अनैतिक कृत्यों की ओर ले जाते हैं। मनःस्तापी व्यक्ति अपनी वासनाओं पर नियंत्रण नहीं रख पाता है जिससे उसका व्यवहार विकृत होने लगता है। विकृत व्यक्ति का मानसिक

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

संतुलन ठीक नहीं रहता है। वह असामाजीकृत, झगड़ालू, क्रूर, शक्की तथा बदले की भावना से पूर्ण होता है। शारीरिक रूप से सुडौल होने पर भी यदि मानसिक रूप से व्यक्ति अस्वस्थ होता है तो वह अनेक प्रकार के अनैतिक कार्यों की ओर प्रेरित हो जाता है।

व्यक्ति के विकास में अंतःस्रावी ग्रंथियों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है। भले ही ये ग्रंथियां आकार में छोटी होती हैं लेकिन इनके कार्य भी उतने ही महत्त्वपूर्ण होते हैं। व्यक्ति के शरीर में कुछ विशेष स्थानों पर विभिन्न आकार प्रकारों में ये ग्रंथियां स्थित रहती हैं। ये अपना स्राव सीधे रक्त में छोड़ती हैं, इसलिए इन्हें अंतःस्रावी ग्रंथियां कहा जाता है। इनके स्रावों का संतुलन व्यक्तित्व विकास में सहयोगी बनता है। यदि इनके स्रावों में असंतुलन हो जाता है तो व्यक्ति अनेक प्रकार से प्रभावित होता है। शरीर, मन तथा भावों से उसकी स्थिति असंतुलित हो जाती है। व्यक्ति में निराशा, कुंठा, तनाव, भय, हिंसा, हीन भावना, क्रोध आदि निषेधात्मक भावधाराएं प्रकट होने लगती हैं। इनसे पीड़ित व्यक्ति अपराध की ओर प्रवृत्त होते हैं।

9.2.1.3 शिक्षा

शिक्षा ज्ञान का माध्यम होती है। जो शिक्षा उस कार्य को पूरा नहीं करती है तो वह शिक्षा पूर्ण नहीं मानी जा सकती है। प्रायः समझा जाता है कि शिक्षा अपराधों को कम करने का कार्य करती है तथा एक विद्यालय एक जेलखाने को बंद करने का सर्वोच्च उपाय है। लेकिन वर्तमान समय में यह बात पूर्णरूपेण सत्य नहीं मानी जा सकती है। यदि शिक्षा व्यक्ति को सदाचारी, स्वावलम्बी, संयमी, सामाजिक नियमों का यथेष्ट पालन करने वाली तथा सामाजिक उत्तरदायित्व को समझना सिखाती हो, नैतिकता को बढ़ावा देने वाली हो तो वह शिक्षा अवश्य ही कल्याणकारी सिद्ध होती है। यदि इसके विपरीत शिक्षा पाकर आडम्बर प्रिय, विलासिता, श्रम की अवहेलना, अनैतिक कार्यो की ओर प्रवृत्ति होती है तो इसका परिणाम भी सुखद नहीं होता है। शिक्षा का कार्य केवल सूचनाओं को ग्रहण करना मात्र नहीं माना जाता है। शिक्षा का कार्य है कि भीतर से परिवर्तन परिलक्षित हो। इसलिए बालक को प्रारंभ से ही मूल्यपरक शिक्षा का बोध कराया जाए तो उसका विकास सही रूप से हो सकेगा। मूल्यों से सम्पन्न बालक न अपना अहित कर सकता है और न समाज का अहित कर सकता है।

9.2.1.4 पारिवारिक स्थिति

परिवार को जहां प्रथम पाठशाला का नाम दिया है वहां अगर पाठशाला के अनुरूप वातावरण न मिले तो उसका परिणाम भी सही नहीं हो सकता है। जिस परिवार में मूल्यों को प्राथमिकता दी जाती है वहां का बच्चा स्वस्थ मानसिकता लिए हुए होगा। यदि परिवार में माता–पिता का आपसी व्यवहार सही नहीं होता है, घर का वातावरण संतुलित नहीं होता है तो बच्चे पर उसका प्रभाव पड़ता है। बच्चा परिवार में जैसा देखता है, उसी का अनुसरण करता है। जिस परिवार में माता–पिता द्वारा बच्चे का समुचित ध्यान नहीं रखा जाता है, उसकी संगति किस तरह की है, उसकी आवश्यकताएं किस प्रकार की हैं, उसकी मनोवृत्तियां किस प्रकार की हैं आदि का ध्यान रखा जाता है तो बच्चे का व्यक्तित्व नकारात्मक रूप से प्रभावित होता है। जिस परिवार में चोरी, नशाखोरी, कलह, धोखाधड़ी, भ्रष्टाचार आदि अनैतिक कार्यों को प्रश्रय दिया जाता है, वहां के बच्चे की मानसिक स्थिति पर इसका बुरा प्रभाव पड़ सकता है। जब बच्चा अपने परिवार में इस प्रकार का वातावरण देखता है तो उसमें भी वहीं आदतें बनने की संभावना रहती है। उसका व्यक्तित्व अविकसित हो सकता है इसलिए परिवार का वातावरण बच्चे को प्रभावित करता है। यदि बच्चा इस वातावरण से प्रभावित हो जाता है तो अपराध के क्षेत्र में बढ़ सकता है। डॉ. हीली नामक विद्वान् ने युवक अपराधियों पर अध्ययन करके यह निष्कर्ष निकाला कि प्रति चौदह में से केवल एक के घर की परिस्थिति मानसिक तथा नैतिक दृष्टि से स्वस्थ थी। उनके द्वारा किए गए शोध में युवक अपराधियों में चालीस प्रतिशत अपराधी उन घरों से थे जहां अनुशासन का सर्वथा अभाव था, आधे से अधिक अपराधी कुसंगति से प्रभावित थे। डॉ. हीनी के विचार में उचित परिवार वह है जहां माता–पिता का आपसी व्यवहार सही हो, अति व्यसनी न हो, संबंध विच्छेद न हो, क्रोधी, झगड़ालू, अति दरिद्र न हो। बच्चों की उपेक्षा न हो और सच्चरित्र, संयमी एवं यथेष्ट अनुशासन करने वाले हों।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

माता–पिता अपने कर्त्तव्य का पालन सही तरीके से करने वाले हों तो ऐसी स्थिति उत्पन्न होने से बचाया जा सकता है। माता–पिता यदि अपने कर्त्तव्यों की इतिश्री करके अपने उत्तरदायित्व का भार, स्कूल, सामाजिक संस्थाओं तथा अदालतों के ऊपर डालते रहें तो अपराध में कमी होने की संभावना कम रह जाती है।

9.2.1.5 सामाजिक स्थिति

सामाजिक स्थितियां जहां अपराध को कम करती हैं वहीं कुछ सामाजिक परिस्थितियां ऐसी होती हैं जो अपराध को बढ़ाती हैं। जिस समाज में व्यक्ति की आवश्यकताओं की पूर्ति होती है, उनके हितों का ध्यान रखा जाता हो तो व्यक्ति अपना जीवन निर्वाह सही तरीके से करता है। इसके विपरीत जहां समाज में परस्पर सहयोग न हो, एक–दूसरे के हितों की अवहेलना होती हो, व्यक्तिगत स्वार्थ को महत्त्व दिया जाता हो आदि कारणों से व्यक्ति अनैतिकता की ओर बढ़ता है। जब समाज में विघटन की स्थिति उत्पन्न होती है तब सामाजिक संबंध भी विश्रृंखलित हो जाते हैं। व्यक्ति के आदर्शों, मूल्यों तथा उद्देश्यों का सामंजस्य टूट जाता है। कर्त्तव्य–अकर्त्तव्य में भी वह अंतर नहीं कर पाता है। इसलिए विघटन भी अपराध के लिए उत्तरदायी होता है।। सामाजिक प्रतिद्वंद्विता एवं प्रतियोगिताएं भी व्यक्ति को अपराध की ओर ले जाती हैं। जहां ऊंचे पद की चाह होती है वहां पद की लालसा में व्यक्ति उचित–अनुचित का बोध नहीं कर पाता है। समाज में गतिशीलता से व्यक्तिवाद को प्रश्रय मिलता है तो संयुक्त परिवार और पड़ौस का नियंत्रण नहीं रहता है। जहां व्यक्तिगत नियंत्रण की बात नहीं होती हैं वहां निर्वैयक्तिक नियंत्रण अर्थात् पुलिस, न्यायालय, कानून, राज्य आदि ले लेते हैं। इससे व्यक्ति का व्यवहार असंतुलित हो जाता है। जब समाज में संघर्ष की स्थिति पैदा होती है तो वहां समाज में हिंसात्मक कार्यों को बढ़ावा मिलता है। राजनैतिक संस्थाओं के निर्बल होने से भी अपराध को बढ़ावा मिलता है। कट्टरता से कई जघन्य अपराधों को प्रश्रय मिलता है। सामाजिक कट्टरता भी अपराध में सहायक होती है।

9.2.1.6 आर्थिक स्थिति

समाज में धनाभाव से भी अपराधों की वृद्धि होती है क्योंकि धनाभाव के कारण व्यक्ति की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो पाती है। व्यक्ति अपनी आवश्यकता पूर्ति हेतु कई अनैतिक कार्य करने लगता है। विद्वानों ने अपने अध्ययन में देखा है कि निर्धनता के कारण अपराधों को प्रोत्साहन मिलता है। समाज में यदि एक वर्ग अमीर तथा एक वर्ग गरीब होता है तब भी इस प्रकार के कुकृत्य होते हैं। समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार, बेईमानी, मुनाफाखोरी के कारण व्यक्तियों का आर्थिक शोषण होता है। बेरोजगारी भी अपरधों को बढ़ाती है। रोजगार न मिलने पर व्यक्ति के मन में हीनता के भाव प्रकट होने लगते हैं। यही हीनता उसे अपराधों की ओर ले जाने में सहायक होती है। इसके अतिरिक्त व्यक्ति में यदि धन का लालच होता है तो वह येन–केन–प्रकारेण धन एकत्रित करने की चिंता में लगा रहता है। अधिकाधिक धन कमाने की दृष्टि से व्यक्ति भ्रष्टाचार, शोषण आदि अनैतिक कार्यों को करने लगता है जिससे उसके लालच की पूर्ति हो सके। कभी–कभी व्यक्ति परिश्रम को महत्त्व नहीं देता है। बिना परिश्रम के ही धनी बनने की इच्छा रखने से वह अनैतिक तरीकों को अपनाने में नहीं हिचकता है। जब व्यक्ति की आवश्यकताएं अत्यधिक होती हैं तो वह उनकी पूर्ति में लगा रहता है। ऐसा न होने पर उसे संतोष प्राप्त नहीं होता है। अत्यधिक आवश्यकताएं व्यक्ति को अनैतिकता की ओर ले जाती हैं। इसके अतिरिक्त नगरीकरण, औद्योगीकरण, अत्यधिक महंगाई आदि कई कारणों से व्यक्ति अपराध की ओर प्रवृत्त होता है। इसके अलावा कुछ आपदाओं के कारण भी व्यक्ति अपराध करता है।

9.2.2 अपराध और मानवता

प्रकृति द्वारा निर्मित प्रत्येक वस्तु अपना मौलिक गुण और प्रयोजन रखती है। उसका आचरण जिस सीमा तक इस गुणधर्मिता के अनुकूल होता है वह उतना ही मंगलकारी होता है। इसके विपरीत आचरण उतना ही अमंगलकारी भी होता है। जिस प्रकार सूर्य की गुणधर्मिता ताप और प्रकाश है, चांद की गुणधर्मिता शीतलता एवं चांदनी का विकीर्णन है तथा बादलों की जलवृष्टि में निहित है उसी प्रकार मानव जीवन की मौलिक गुणधर्मिता श्रेष्ठ कर्मों और रचनात्मकता में निहित होती है। यदि सूर्य, चंद्रमा एवं बादल अपनी गुणधर्मिता छोड़ दें तो सृष्टि में संकट उत्पन्न हो जाएगा। उसी प्रकार मानव अपनी गुणधर्मिता को छोड़ दे, पतित, विध्वंसात्मक, विघटनकारी, आपराधिक कार्यों में प्रवृत्त रहे तो उसका

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

जीवन निरर्थक होगा तथा साथ में वह मानवता के लिए भी कलंक बन जाएगा। इसीलिए यह आवश्यक हो जाता है कि प्रत्येक व्यक्ति देश, समाज तथा स्वयं के उत्थान हेतु नैतिक मूल्यों को आत्मसात् करे। यह कार्य कठिन अवश्य है लेकिन दृढ निश्चय, अभ्यास के साथ–साथ श्रद्धा और लगन इस कार्य में सहयोगी बन सकते हैं। व्यक्ति में सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दृष्टि और सम्यक् आचरण के प्रति प्रतिबद्धता हो तो व्यक्ति इस कठिन कार्य को भी सरल बना लेता है। मानवता का प्रकटीकरण समूह में होता है अर्थात् मानवता से निष्पन्न व्यक्ति में दूसरे जीवों के प्रति करुणा, दया, सहानुभूति, मैत्री आदि भावनाओं का समावेश होता है। यदि व्यक्ति प्रामाणिकता एवं लगन से इस भावना को क्रियान्वित करता है तो सामाजिक समस्या को प्रश्रय नहीं मिलता है क्योंकि व्यक्ति इन्हीं भावनाओं को स्व–जीवन में दूसरों से चाहता है।

मानवता एक मनोवृत्ति एवं कार्यविधि है जिसमें व्यक्ति समयानुकूल विपत्ति की घड़ी में पीड़ित व्यक्तियों के लिए अथवा आवश्यकता पड़ने पर सहानुभूति का प्रदर्शन एवं सहायता करता है। मानव इतिहास में अनेकों महान् व्यक्ति हुए हैं जिन्होंने मानवतावाद के आदर्शों की प्रगति के लिए कई आंदोलनों का सूत्रपात किया। मानवता की धारा में इन महापुरुषों ने समय–समय पर अपना उपयोगी योगदान दिया है। इनके मानवतावादी विचार मानवता से अछूते नहीं रहे हैं। यहां कुछ प्रमुख मानवतावादी विचारकों के मानवता संबंधी विचार प्रस्तुत किए गए हैं।

व्यक्ति जिस समाज में रहता है उसका विकास निश्चय ही व्यक्तियों के उस समुदाय से हुआ होगा जिसकी आधारशिला आत्म चैतन्य की एकता और स्थायी श्रेय के व्यापक प्रत्ययन (प्रतीत होने की क्रिया) की शक्ति है। मनुष्य परमार्थ के प्रभाव में रहता है। अपने को अधिक अच्छा करने का प्रत्यय आरंभ से ही समाज में किसी न किसी रूप में अभिव्यक्त होता है। अपने को पूर्ण बनाने के प्रयास में व्यक्ति औरों को भी साथ लेना चाहता है जिसमें उसकी रुचि होती है। साथ ही उसमें दूसरों के प्रति भी संवेदनशीलता होती है। अपने इसी गुण के कारण वह सामाजिक प्राणी होता है। व्यक्ति में यह भावना जितनी अधिक होती है, उसमें मानवीयता का उतना ही विस्तार होता है।

1. **भगवान् महावीर** के अनुसार मनुष्य स्वयं अपना भाग्य विधाता है जो अपने शुभ आचरण या शुभ कार्यों से स्वयं मुक्ति पा सकता है।

2. **बुद्ध** के जीवन का मूलभूत लक्ष्य अन्याय, अनाचार तथा दमन से युक्त मानव प्राणियों को मुक्त कराना था।

3. **सुकरात** के विचार मानव प्रेम से ओतप्रोत थे। पाखंड और बेईमानी के प्रति विद्रोह करने में सुकरात ने प्रबल समर्थन किया।

4. **रोमन चिंतक सिसरो** ने इस बात पर बल दिया कि मानव आचरण एवं सामाजिक संबंधों में संयम एवं संतुलन होना चाहिए। उनका यह अटूट विश्वास था कि व्यावहारिक जीवन में निर्णय लेने का आदर्श अपने साथियों के प्रति आदर भाव होना चाहिए।

5. **महान् दार्शनिक कन्फ्यूशियस** ने इस बात पर बल दिया कि व्यक्ति एक–दूसरे के प्रति अपना कर्त्तव्य करे जिससे मानव प्राणी सुसंगठित सामंजस्यपूर्ण स्थिति स्थापित कर सके। उनके चिंतन के विषय नैतिकता, व्यक्ति और राज्य थे। उनके मानवता का मूल सिद्धान्त है कि मनुष्य का मापदंड मनुष्य है। जिसका अर्थ है–शुभाचरण, दयालुता और श्रेष्ठता जो स्वयं व्यक्ति से प्रारंभ होकर परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व तक पहुंचते हैं।

6. **चीन के प्रमुख दार्शनिक मेन्सियस** ने व्यक्ति को मानव संबंधों की मूल इकाई माना है। उनके अनुसार व्यक्ति की नैतिक चेतना के आधार पर ही एक अच्छे तथा न्याययुक्त समाज का निर्माण हो सकता है। उनके अनुसार व्यक्ति स्वभाव से अच्छा है और चार बातों से सुसज्जित है प्रेम, शुभाचरण, ईमानदारी और बुद्धिमत्ता। उनका मानना था कि व्यक्ति इन चार गुणों का अनुसरण करता है तो वैयक्तिक एवं सामाजिक जीवन शुभ हो सकता है।

7. **डॉ. अम्बेडकर** के अनुसार व्यक्ति का व्यक्ति के प्रति प्रेम नैतिकता है, नैतिकता धर्म है और भ्रातृत्व मानव प्रेम है। समाज में कई प्रकार के व्यक्ति होते हैं–स्वस्थ, कमजोर, बुद्धिमान, मूर्ख, धनवान, निर्धन आदि–आदि। सभी प्राणियों को विकास के लिए संघर्ष करना पड़ता है। यदि समाज में असमानता को ही प्रश्रय मिले तो सबका विकास संभव नहीं हो सकता है। इसीलिए समाज में सहयोग और सम्मान की भावना को आवश्यक माना जाता है जिसमें कोई असमान नहीं रहे। समाज में सद्गुणों की आवश्यकता होती है। यदि व्यक्ति व्यवहार में समानता को महत्त्व देता है

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

तो ही सद्गुणी है। डॉ. अम्बेडकर ने अपनी मूल्य मीमांसा में जिस आदर्श मानव की कल्पना की है, वह व्यक्ति दैविक या अलौकिक व्यक्तित्व न होकर सामाजिक स्थिति में रहने वाला एक संयमी, उत्साही, निष्ठावान, कर्त्तव्यपरायण व्यक्ति है। उसमें उच्चतम मानवीय सद्गुण अधिकतम मात्रा में विद्यमान होते हैं। वे सद्गुण हैं– समता, भ्रातृत्व, करुणा एवं मैत्री। इनसे ओतप्रोत व्यक्ति ही माया, मोह, क्रोध, लोभ आदि से मुक्त होकर अपना व्यक्तित्व स्नेह, सहयोग, सहानुभूति, करुणा, मैत्री, त्याग आदि सद्प्रवृत्तियों से युक्त बना सकता है। वह व्यक्ति सिर्फ सैद्धान्तिक न होकर प्रयोगकर्त्ता होता है। वह व्यक्ति ही समाज के विकास का मार्गदर्शक होता है, जैसे कि भगवान् बुद्ध एवं भगवान् महावीर। एक आदर्श मानव का जीवन अनुकरणीय होता है। वह समाज में इन गुणों के विकास हेतु प्रेरणा देता है जिससे समाज लाभान्वित होता है। आदर्श मानव के जीवन का द्वितीय पक्ष चरित्र है। चरित्रवान् व्यक्ति को डॉ. अम्बेडकर बहुत सम्मान देते हैं। चाहे वह किसी भी धर्म या राष्ट्र का हो क्योंकि वह पक्षपात, प्रलोभन, ईर्ष्या आदि प्रवृत्तियों से मुक्त होता है, वह परिस्थितियों से डरता नहीं है। दृढ़ संकल्प से अभिप्रेरित होकर अपने लक्ष्य की ओर बढ़ता रहता है। जिस व्यक्ति में ज्ञान के प्रति आस्था तथा चरित्र के प्रति निष्ठा होती है वह व्यक्ति सामाजिक हित में सहयोगी हो सकता है।

8. रवीन्द्रनाथ टैगोर ने व्यक्ति की नैतिक तथा आध्यात्मिक स्वतंत्रता का अनुमोदन किया है। उनकी स्वतंत्रता की अवधारणा विशुद्धतः आध्यात्मिक है जिसकी जड़ें सम्पूर्ण मानवता में निहित हैं। उनका मुख्य उद्देश्य सार्वभौमिकता की प्राप्ति है। जिसका आधार प्रेम, सद्भाव, समायोजन हैं। उन्होंने इस संसार को मानव–प्राणियों का आवास–गृह माना न कि सत्ता और राजनीति का अखाड़ा। उनके अनुसार समस्त जातियों एवं राष्ट्रों का सच्चा स्नेह मिलन आध्यात्मिक संबंधों के द्वारा ही हो सकता है। सच्चा व्यक्ति सामाजिक, संवेदनशील और कल्पनायुक्त प्राणी होता है। सामाजिक कर्त्तव्य मानवीय संबंधों के क्षेत्र में आवश्यक होते हैं। सामाजिक कर्त्तव्यों की उपेक्षा करके शुद्धता की पूर्णता तथा सामाजिक सामंजस्यता प्राप्त कर लेना न्यायसंगत नहीं है। सामाजिक भलाई तथा कल्याण हेतु सामाजिक पारस्परिक सहयोग आवश्यक होता है। प्रेम तथा सद्भाव का प्रसार भी मानव कल्याण के लिए आवश्यक होता है। इसलिए व्यक्ति को एक–दूसरे के प्रति संवदेनशील होना चाहिए, उनके दुःख–दर्दों के प्रति उदासीन नहीं रहना चाहिए। इसके विपरीत यदि सामाजिक तानाशाही हो, व्यापक अज्ञान और अछूतपन की स्थिति में व्यक्तियों का शोषण करना आदि कार्य करना नैतिक दावों को खोना है। व्यक्ति अपने कल्याण हेतु स्वयं उत्तरदायी होता है।

9. पं. जवाहरलाल नेहरू ने मानवता को व्यक्ति का देवता तथा सामाजिक सेवा को उसका धर्म बताया है। वे उन सिद्धान्तों तथा विचारों को स्वीकार नहीं करते थे जो आंतरिक सौन्दर्यता को धूमिल करने वाले हों। नेहरू जी का मानना था कि व्यक्ति जो कुछ भी बनता है, उसका वह स्वयं उत्तरदायी है। समाज में मानवीय समस्याओं को दूर करने में वे श्रम को महत्त्व देते थे। व्यक्ति में निहित साहस की भावना ने नेहरू को अत्यधिक प्रभावित किया। विरोधी शक्तियों के प्रति निरन्तर संघर्ष, प्रकृति पर विजय प्राप्त करने का उसका साहस, उसकी असीम सहनशीलता, कठोर परिश्रम, साथियों के प्रति निष्ठा एवं क्षमा तथा दुर्भाग्य में भी प्रसन्नता की प्रवृत्ति आदि बातें यह प्रदर्शित करती हैं कि व्यक्ति में अपनी समस्याओं के समाधान की शक्ति तथा सामर्थ्य है। उनका यह भी मानना था कि वैयक्तिक एवं सामाजिक जीवन में आश्चर्य के कुछ ऐसे क्षण आते हैं जब मौलिक काम करने की अनिवार्यता महसूस होती है। यदि आवश्यक हो तो व्यक्तियों को क्रांतिकारी दृष्टिकोण अपनाना चाहिए जिसके द्वारा समाज में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन लाए जा सकें। मात्र वैचारिक दृष्टिकोण ही पर्याप्त नहीं होता, आवश्यक है सफलता हेतु उसे व्यवहार में परिणत करना। यदि समाज की स्थिति गंभीर है तो तुरन्त क्रांति का सूत्रपात होना चाहिए क्योंकि गंभीर स्थिति के समक्ष क्रांति को अधिक दिनों तक टाला नहीं जा सकता है। वर्तमान जीवन की समस्याओं का समाधान ढूंढना सबका कर्त्तव्य बन जाता है। क्रांति का लक्ष्य होना चाहिए अमन–चैन स्थापित करना।

10. स्पेन्सर का मानना है कि शुभ कर्म वातावरण के साथ मनुष्य के समायोजन में सहायक होते हैं तथा सामाजिक जीवन के संरक्षण तथा विकास में सहायक होते हैं। इसी कारण से समस्त शुभाशुभ कर्मों, नैतिक नियमों एवं सद्गुणों की सार्थकता है। पूर्वजों ने अपने व्यापक अनुभवों के आधार पर ऐसे नैतिक नियमों तथा सद्गुणों की खोज की जो व्यक्ति तथा समाज के जीवन संरक्षण एवं विकास में सहायक सिद्ध होते हैं। इस प्रकार नैतिक व्यवस्था का मूल उद्देश्य यह है कि व्यक्ति और समाज की जीवन रक्षा और उनके विकास में अर्थात् समन्वय की स्थिति तक पहुंचाने में सहायता प्रदान करना। नैतिक नियम साध्य न होकर साधन मात्र हैं। व्यक्ति की सुख–शांति, रक्षा एवं वृद्धि पर्यावरण

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

के साथ व्यक्ति के समायोजन में निहित रहती है। स्पेन्सर ने समायोजन को बहुत महत्त्व दिया। उन्होंने बाह्य परिस्थितियों के साथ प्राणी के निरन्तर समायोजन को ही 'जीवन' की संज्ञा दी।

व्यक्ति अपने भाग्य अर्थात् स्थिति का निर्माता स्वयं ही है। जीवित अवस्था तक उसमें समाज के अन्य सभी प्राणियों के साथ गहरी एकता होती है। शरीर के विघटन के साथ भले ही उसकी भौतिक पहचान नष्ट हो जाती है, फिर भी उसकी सत्ता की निरन्तरता बनी रहती है। भौतिक तत्त्वों के रूप में वह प्रकृति के साथ जुड़ा रहता है, विचार एवं मानसिक तत्त्वों के रूप में मानव समाज में निरन्तर रहता है। उसके विचारों तथा क्रियाओं को अन्य व्यक्ति संचित करते हैं। उसके विचार मानवता के प्रवाह को सुसाध्य या अवरोधित करते रहते हैं। अत: नि:स्वार्थ विचारों एवं क्रियाओं की सदैव समाज में आवश्यकता रहती है इसलिए अपने जीवनकाल में प्रत्येक व्यक्ति को यह प्रयास करना चाहिए कि उसके विचार नैतिकतापरक हों तथा उसके कार्य शुभ हों जिससे मानवता का प्रवाह अवरुद्ध न हो। व्यक्ति को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उसके विचार तथा कार्य उसकी मृत्युपरान्त भी मनुष्य में सेवा तथा सद्भाव पैदा करने में सहायक बने रहें।

9.3 अपराध जगत् और पुनर्वास

प्रत्येक समाज की अपनी आस्थाएं, परम्पराएं तथा अपने मूल्य होते हैं। यदि प्रत्येक व्यक्ति इनका पालन करें तो सामाजिक अमन–चैन बना रहता है। इसके विपरीत परिस्थिति सामाजिक रूप से हानिप्रद होती है। इसलिए समाज व्यक्ति से तथा व्यक्ति समाज से इन्हीं मान्यताओं, आस्थाओं, परम्पराओं तथा मूल्यों के अनुरूप व्यवहार चाहता है। इसी कारण से समाज में पुनर्वास को महत्त्व दिया जाता है ताकि व्यक्ति को सही मार्गदर्शन मिल सके। जो व्यक्ति तथा समाज के लिए लाभकारी होता है। पुनर्वास की आवश्यकता तब पड़ती है जब व्यक्ति अपने सामाजिक मूल्यों, नियमों के विपरीत कार्य करने लगता है अथवा जब व्यक्ति के जीवन में किसी भी प्रकार की विसंगति उत्पन्न होती है। यह आवश्यक नहीं कि पुनर्वास सिर्फ आपराधिक क्षेत्र से जुड़े व्यक्तियों का ही होता है। पुनर्वास का क्षेत्र विस्तृत है। सामान्यतया व्यक्ति के जीवन में जब शारीरिक, मानसिक, सामाजिक तथा अन्य किसी भी प्रकार की विसंगति या व्यवधान उत्पन्न होता है तब उसे उपचार के पश्चात् पुनः पूर्व स्थिति (साम्यावस्था) में समायोजित करने की आवश्यकता पड़ती है।

9.3.1 पुनर्वास का अर्थ एवं परिभाषाएं (Meaning and Definitions of Rehabilitation)

पुनर्वास दो शब्दों से मिलकर बना है–पुनः+वास अर्थात् पुनः स्थित करना, पूर्व अवस्था में लाना। विभिन्न विद्वानों ने पुनर्वास को अपने-अपने ढंग से परिभाषित किया है।

वल्फेंस वेगर (1980) के अनुसार–"पुनर्वास उन साधनों का उपयोग है जो परिवेश या संस्कृति में होते हैं और जिन्हें व्यवहार में स्थापित या व्यवस्थित किया जा सकता हो।"

जाहिर है कि जब पुनर्वास की प्रक्रिया को अपनाना होगा तो उन्हीं साधनों का उपयोग करना पड़ेगा जो व्यक्ति के परिवेश या संस्कृति में पाए जाते हैं। यदि इसके अलावा अन्य साधनों का उपयोग किया जाएगा तो व्यक्ति उन्हें अपने व्यवहार में स्थापित नहीं कर पाएगा क्योंकि व्यक्ति जिस परिवेश या संस्कृति में रहता है, उन्हीं के अनुरूप मान्यताओं को ग्रहण करता है।

बेनेट (1978) के अनुसार–"पुनर्वास एक ऐसी सहायक विधि है जिसके द्वारा शारीरिक या मानसिक रूप से अयोग्य व्यक्ति को उसके पास उपलब्ध आवासीय योग्यताओं को इस प्रकार से उपयोग कराना जो सामान्य वातावरण या परिवेश में संभव हो।"

शरीर और मन से अयोग्य व्यक्ति अपनी संपत्ति या संपदा का सही उपयोग नहीं कर पाता है। पुनर्वास प्रक्रिया के द्वारा उसके वातावरण के अनुरूप उसे उसी प्रकार से समायोजित किया जाता है ताकि वह अपने जीवन को सुखपूर्वक जी सके।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

एंटनी एटल (1984) के अनुसार–"दार्शनिक आधार पर पुनर्वास वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा प्रयोज्य को निर्देशित किया जाता है ताकि उसकी शक्तियां विकसित हों, जिसके द्वारा वह अपने भीतर क्षमताओं को विकसित कर सके ताकि वह अनाश्रित जीवन जी सके और सारभूत कैरियर बना सके।"

अर्थात् जब व्यक्ति के भीतर से शक्तियों का विकास होता है, उसकी क्षमताएं विकसित होती हैं तो व्यक्ति विषम परिस्थितियों में भी अपना संतुलन नहीं खोता है तथा किसी दूसरे पर निर्भर नहीं रहता है क्योंकि समाधान उसके स्वयं के पास होता है। व्यक्ति जब भीतर से सामर्थ्यवान हो जाता है तो वह स्वयं समस्याओं का सामना करने योग्य हो जाता है।

9.3.2 पुनर्वास की प्रक्रिया

जब व्यक्ति का पुनर्वास करना हो तो कुछ मुख्य बातें उसमें शामिल होनी चाहिए। जिससे यह प्रक्रिया आसानी से क्रियान्वित हो सके और इसका सही परिणाम भी प्राप्त हो सके। इसमें दो बातें मुख्य मानी गई हैं–

1. पुनर्वास के द्वारा व्यक्ति की आंतरिक क्षमताओं का विकास हो तथा उसे प्रोत्साहन दिया जाए। जिसका उद्देश्य यह होना चाहिए कि व्यक्ति स्वयं की मदद कर सके तथा पुनः से सीखने की योग्यता को विकसित करे।

2. सामाजिक तथा भौतिक वातावरण में भी सुधार होना चाहिए जिससे अपराध को प्रोत्साहित करने वाली परिस्थितियों से बचा जा सके।

एक तरफ व्यक्ति की आंतरिक क्षमताएं हैं तो दूसरी तरफ बाह्य परिस्थितियां। इन दोनों पर विशेष ध्यान देना चाहिए। यदि आंतरिक स्थितियां कमजोर होती हैं तो बाह्य परिस्थितियां अनुकूल होने पर भी समाधान नहीं हो पाता है। इसलिए आंतरिक परिस्थितियां मजबूत होनी आवश्यक हो जाती हैं। दूसरी तरफ बाह्य परिस्थितियां निमित्त बनती हैं। यदि इन परिस्थितियों को हटा लिया जाए तो समस्या रहेगी ही नहीं। क्योंकि निमित्त ही नहीं रहेगा तो समस्या उत्पन्न नहीं होगी। इसलिए सामाजिक तथा मौलिक वातावरण में सुधार आवश्यक माना जाता है। व्यक्ति समाज की प्रत्येक क्रिया से प्रभावित होता है। इसलिए उसके व्यवहार में भी परिवर्तन आ जाता है। यदि पुनर्वास प्रक्रिया के लिए इन बातों पर ध्यान दिया जाए तो वांछित परिणाम प्राप्त किया जा सकता है।

9.3.2.1 पुनर्वास प्रक्रिया के सिद्धान्त

पुनर्वास प्रक्रिया के कुछ सिद्धान्त माने गए हैं जिनके आधार पर यह प्रक्रिया प्रभावशाली साबित हो सकती है–

1. पुनर्वास प्रक्रिया विस्तृत और अनिवार्य मानवीय आवश्यकताओं पर आधारित होनी चाहिए तथा प्रयोज्य के अधिकारों के अंतर्गत होनी चाहिए।
2. पुनर्वास प्रक्रिया में प्रयोज्य का मूल्य होना चाहिए अर्थात् उसको महत्त्व देना चाहिए तथा प्रोत्साहित करना चाहिए। इस कार्य में उसकी वास्तविक इच्छा भी होनी चाहिए।
3. प्रयोज्य को इस प्रकार प्रोत्साहित करना जिससे वह सामुदायिक वातावरण के अनुरूप अपने को तैयार कर सके।
4. प्रयोज्य को सामाजिक जीवन के तौर–तरीकों के लिए प्रोत्साहन देना ताकि वह सामाजिक भूमिका निभाने हेतु स्वयं को स्थापित कर सके।
5. प्रयोज्य में अनाश्रितता का विकास करना चाहिए जिससे वह अपनी संपत्ति तथा सहयोग तंत्र का विकास कर सके।
6. प्रक्रिया वैयक्तिक आवश्यकओं पर आधारित होनी चाहिए।
7. प्रक्रिया का सतत् रूप से मूल्यांकन करना चाहिए जिससे उसकी स्वीकार्यता, समता या अनिवार्यता प्रभावित न हो।
8. प्रक्रिया का उद्देश्य अपने कार्यक्षेत्र में लागू करने योग्य होना चाहिए।
9. प्रक्रिया एजेंसी और प्रयोज्य के मध्य होनी चाहिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

10. प्रक्रिया सहयोग और प्रोत्साहित करने वाली होनी चाहिए जिससे प्रयोज्य का वैयक्तिक विकास हो सके।

उपरोक्त सिद्धान्तों में स्पष्ट रूप से आंतरिक पक्ष को मजबूत करने की बात कम बताई गई है। जब तक आंतरिक पक्ष मजबूत नहीं होता है व्यक्ति बाह्य वातावरण के साथ समायोजन सही ढंग से नहीं कर पाता है। जीवन विज्ञान में पुनर्वास प्रक्रिया के चार बिन्दु बताए गए हैं—दृष्टिकोण परिवर्तन, व्यवहार परिवर्तन, ह्रदय परिवर्तन, अहिंसक व्यवहार। जिनके द्वारा व्यक्ति का आंतरिक पक्ष मजबूत किया जा सकता है तथा वैयक्तिक एवं सामाजिक जीवन में सफलता प्राप्त की जा सकती है।

9.3.3 पुनर्वास और जीवन विज्ञान

जीवन विज्ञान एक ऐसी शिक्षा प्रणाली है जो व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास पर बल देती है। यह शिक्षा प्रणाली उन मूल्यों एवं योग्यताओं को विकसित करने में सहायक है जो व्यक्ति के जीवन में आवश्यक माने जाते हैं। यह शिक्षा प्रणाली केवल सैद्धान्तिक न होकर प्रायोगिक भी है जिसमें प्रेक्षाध्यान के प्रयोगों के द्वारा आंतरिक परिवर्तन किया जा सकता है। ध्यान, योग, आंतरिक परिवर्तन की प्रक्रिया हैं। वैज्ञानिकों एवं मनोवैज्ञानिकों ने अपने शोधों में ध्यान-योग की उपयोगिता को स्पष्ट किया है। इनसे व्यक्ति का व्यक्तित्व संतुलित किया जा सकता है। योग में इन्द्रिय परिष्कार का जो आदर्श प्रतिपादन हुआ है, वह अपराध नियंत्रण में अक्षरशः लागू होता है। इन्द्रियां जब नियंत्रित रहती हैं, परिष्कृत रहती हैं एवं वासनाएं परिमार्जित होती हैं तो व्यक्ति के भीतर हाहाकार अथवा अशांति की स्थिति नहीं रहती है। जो व्यक्ति जितेन्द्रिय हो जाता है वह किसी भी प्रकार का अमानवीय कृत्य नहीं करता है। वहां किसी प्रकार की हिंसा नहीं होती है। हिंसा के अभाव में कोई अपराध भी संभव नहीं होता है। योग द्वारा प्रतिपादित यह आदर्श अपराध प्रवृत्ति के उपचार हेतु सर्वथा चिंतनीय एवं ग्राह्य है। आंतरिक पवित्रता, परिमार्जन व्यक्ति को बुराई से दूर करते हैं एवं सद् आचरण हेतु प्रेरित करते हैं। जीवन विज्ञान की शिक्षा में प्रेक्षाध्यान के सभी प्रयोग आंतरिक परिष्कार के लिए महत्त्वपूर्ण माने गए हैं। आवश्यकता है इन प्रयोगों के अभ्यास की। इन प्रयोगों से व्यक्ति का पुनर्वास संभव है क्योंकि व्यक्ति का व्यवहार जब असंतुलित होता है तो उसका कारण या तो बाह्य होता है या आंतरिक। प्रेक्षाध्यान आंतरिक कारणों को मिटाने में सहायक है। यदि व्यक्ति भीतर से परिष्कृत हो जाता है, परिवर्तित हो जाता है तो बाह्य परिस्थितियां उसे प्रभावित नहीं करती हैं। वह अपना संतुलन स्वयं बना लेता है। व्यक्ति के व्यवहार, उसका दृष्टिकोण तथा भावों में परिष्कार हो जाता है। तब वह वैयक्तिक एवं सामाजिक जीवन सुखपूर्वक जी सकता है।

9.3.3.1 दृष्टिकोण परिवर्तन

व्यक्ति का दृष्टिकोण जैसा होता है वह प्रत्येक क्रिया को उसी के अनुरूप देखता है। व्यक्ति के भीतर निषेधात्मक तथा विधायक दो प्रकार के दृष्टिकोण होते हैं। निषेधात्मक दृष्टिकोण व्यक्ति की भावनाओं को कुंठित कर देता है। व्यक्ति में हीनता, व्यग्रता, चिंता, तनाव आदि भावनाओं को विकसित कर उसके व्यक्तित्व को विघटित कर देता है। वहीं दूसरी ओर विधायक दृष्टिकोण व्यक्ति के भीतर व्यक्तित्व विकास की नई संभावनाओं को उजागर करता है। इसलिए आवश्यक है कि व्यक्ति का दृष्टिकोण संतुलित बने, सम्यक् बने। गलत दृष्टिकोण के कारण व्यक्ति आपराधिक क्षेत्र में प्रवेश करता है। जिससे सामाजिक व्यवस्था में व्यवधान उत्पन्न हो जाता है। समाज में ऐसे व्यक्ति हानि पहुंचाने वाले होते हैं। इसलिए आवश्यक हो जाता है कि समाज में आपराधिक कार्यों पर रोक लगाई जाए। उसके लिए परिवर्तन की बात आती है जिसका केन्द्र व्यक्ति ही होता है। यदि ऐसे व्यक्तियों का दृष्टिकोण सम्यक् हो जाता है तो उनमें करुणा, अहिंसा, मैत्री, सामंजस्य, कर्त्तव्यनिष्ठा आदि मूल्यों का विकास होता है जिनकी समाज में आवश्यकता होती है। जीवन विज्ञान की शिक्षा व्यक्ति में विधायक दृष्टिकोण को विकसित करने में सहायक है। व्यक्ति का एकांगी दृष्टिकोण नहीं बनता, अनेकता का दृष्टिकोण नहीं बनता, साथ ही उसकी समस्या का समाधान भी हो जाता है। इसलिए दृष्टिकोण परिवर्तन सफल जीवन के लिए आवश्यक माना जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

9.3.3.2 व्यवहार परिवर्तन

जब व्यक्ति का व्यवहार सामाजिक मूल्यों के अनुरूप नहीं होता है तब वह असामाजिक कार्यों की ओर प्रेरित हो जाता है। अपने इस असंतुलित व्यवहार के कारण वह स्वयं सुखपूर्वक नहीं रहता है और कभी कभी सामाजिक समस्याओं का कारण भी बन जाता है। इसलिए स्वस्थ समाज में भी उसी व्यवहार की अपेक्षा की जाती है जो समाज मान्य करता है। इसलिए ऐसे व्यक्तियों को पुनर्वास की आवश्यकता पड़ती है जिनका व्यवहार विकृत होता है। प्रेक्षाध्यान के प्रयोगों द्वारा व्यक्ति का व्यवहार संतुलित किया जा सकता है। व्यक्ति का व्यवहार सामान्य हो जाने पर वह पुनः अमन–चैन का जीवन जी सकता है। वह व्यक्ति जब सामाजिक मूल्यों के अनुरूप व्यवहार करता है तो सामाजिक स्थिति स्वस्थ रहती है।

9.3.3.3 हृदय परिवर्तन

हृदय परिवर्तन एक महान् उपलब्धि मानी जाती है। हृदय परिवर्तन का तात्पर्य भाव परिवर्तन से किया जाता है। व्यक्ति के भीतर निषेधात्मक तथा विधेयात्मक दो प्रकार की भावधाराएं चलती हैं। निषेधात्मक भावधारा जहां व्यक्ति को असफलता की ओर ले जाती है, वही विधायक भावधारा सफलता की ओर ले जाती है। इतिहास की तरफ देखें तो हृदय परिवर्तन के बहुत उदाहरण मिलते हैं। जब तक व्यक्ति की भावधारा निर्मल नहीं होती है वह सही–गलत का सही उपयोग नहीं कर पाता है। भाव का स्रोत भीतर है। जब तक भीतर से सही भावधारा नहीं निकलती है व्यक्ति सही कार्य भी नहीं कर पाता है। भावात्मक रूप से अस्वस्थ व्यक्ति क्रूरता, हिंसा, ईर्ष्या, अनैतिकतापूर्ण कार्यों आदि के प्रति प्रेरित होता है। यदि उसके भीतर इनकी प्रधानता रहती है तो वह आपराधिक कार्य करने लगता है जिसका प्रभाव समाज पर पड़ता है। व्यक्ति के भीतर से जब यह भावधारा खत्म हो जाती है तभी वह व्यक्ति अहिंसक जीवन जी सकता है तथा सबको अभय दे सकता है। हृदय परिवर्तन के बिना अहिंसा संभव नहीं है। जब व्यक्ति का भाव शक्तिशाली होता है तो कोई भी परिस्थिति उसे प्रभावित नहीं करती है। इसलिए हृदय परिवर्तन के द्वारा व्यक्ति का जीवन तो सुखी एवं शांतिमय बनता ही है साथ में सामाजिक व्यवस्था भी सुचारू रूप से चलती है।

9.3.3.4 अहिंसक व्यवहार

अहिंसा का अर्थ है–किसी भी जीव को मन, वचन तथा काया से कष्ट न पहुंचाना। जब व्यक्ति इन बातों को अपने व्यवहार का एक अंग बना लेता है तो सुख शांति को प्राप्त किया जा सकता है। अहिंसा एक परिणाम है तो हिंसा भी एक परिणाम है, निष्पत्ति है। इसे मिटाया जा सकता है। यदि हिंसा के कारणों को मिटाया जाए तो हिंसा का प्रादुर्भाव ही नहीं होगा। व्यक्ति अहिंसक व्यवहार करे, इसके लिए आवश्यक होगा हिंसा को मिटाया जाए। उन कारणों को खोज निकाला जाए जो हिंसा को उत्पन्न करते हैं। व्यक्ति के भीतर कुछ मौलिक मनोवृत्तियां पाई जाती हैं जो उसके व्यवहार को प्रभावित करती हैं। व्यक्ति के भीतर अधिकार की भावना, परिग्रह की भावना, भय का भाव आदि व्यक्ति में हिंसा उत्पन्न करते हैं। व्यक्ति की जब इच्छाएं असीम हो जाती हैं तब भी व्यक्ति इनकी पूर्ति येन-केन-प्रकारेण करना चाहता है। उसकी यही इच्छाएं उसे अपराध की ओर प्रवृत्त करती हैं। हत्या, लूट, चोरी आदि अनैतिक कार्य व्यक्ति करने लगता है जो एक सामाजिक समस्या बन जाती है। अहिंसक व्यवहार हेतु आवश्यक है इन बुराइयों का त्याग। व्यक्ति के भीतर से जब परिवर्तन घटित होता है, उसकी चेतना शुद्ध बन जाती है तो व्यक्ति ऐसे कृत्यों से अपने आप को दूर रखता है। ध्यान, योग का प्रशिक्षण, अहिंसा प्रशिक्षण आदि साधन हैं जो व्यक्ति का सही मार्गदर्शन करते हैं।

यहां पर संक्षेप में व्यवहार परिवर्तन, दृष्टिकोण परिवर्तन, हृदय परिवर्तन तथा अहिंसक व्यवहार की चर्चा की गई है। व्यक्ति इनके द्वारा अपने जीवन में सुधार ला सकता है तथा आपराधिक कुकृत्यों से स्वयं को बचा सकता है। व्यक्ति–व्यक्ति का सुधार ही समाज का, देश का सुधार है। इसी सुधार में प्राणी मात्र का कल्याण निहित होता है। जीवन विज्ञान की शिक्षा इस सुधार में सहायक बनती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

बोध प्रश्न 1:

1. अपराध के कारणों पर प्रकाश डालें।

2. पुनर्वास प्रक्रिया के सिद्धांतों को लिखें।

3. अहिंसक व्यवहार से आपका क्या अभिप्राय है?

9.4 दृष्टिकोण परिवर्तन की प्रक्रिया

व्यक्ति का दृष्टिकोण सही होता है तो उसकी प्रत्येक क्रिया उसी अनुरूप होती है। उसका चिंतन, मनन, विश्वास आदि दृष्टिकोण पर ही निर्भर करते हैं। यही दृष्टिकोण सही न हो, मिथ्या हो तो व्यक्ति में मिथ्या धारणाएं, निरपेक्ष चिंतन तथा एकांगी आग्रह पनपते हैं। ये कारण ही समस्या को जन्म देते हैं। मानवीय संबंधों में कटुता, आतंक, भय आदि बुराइयां निरपेक्ष चिंतन के कारण ही होती हैं। प्राणियों के प्रति क्रूरता, पदार्थ के प्रति आसक्ति, विचारों के साथ आग्रह, शरीर के साथ मूर्च्छा आदि बातें सम्यक् दृष्टिकोण के अभाव में होती हैं। उपरोक्त बुराइयां व्यक्ति को आपराधी के जगत् की ओर ले जाती हैं।

प्रसिद्ध दार्शनिक डेकार्ट ने कहा–"मैं सोचता हूं, इसलिए मैं हूं। मेरे अस्तित्व का प्रमाण है कि मैं सोचता हूं और सोचता हूं, इसलिए मैं हूं।"

आचार्य महाप्रज्ञ का कथन है–"मैं हूं और विकसित मस्तिष्क वाला प्राणी हूं, इसलिए सोचता हूं।" सोचना मस्तिष्क का लक्षण नहीं अपितु एक अभिव्यक्ति है। व्यक्ति तीन स्थितियों का अनुभव करता है–जानना, देखना और सोचना। जानना और देखना नहीं होने पर ही सोचने की स्थिति आती है। जो परोक्ष है, अस्पष्ट है, जिसके बारे में सहसा कुछ नहीं कहा जा सकता, वहां सोचना होता है, चिंतन करना पड़ता है। जो व्यक्ति सोचना नहीं जानता, जिसमें चिंतन की क्षमता विकसित नहीं होती, वह अज्ञानी होता है।

सोचना एक कला है, हर व्यक्ति इस कला को नहीं जानता। जो इस कला को जानता है उसका मार्ग प्रशस्त हो जाता है। चिंतन की दो दृष्टियां हैं–निषेधात्मक दृष्टि और विधेयात्मक दृष्टि। जो व्यक्ति निषेधात्मक दृष्टि से सोचता है, उसका परिणाम है–जीवन में असफलता। जीवन की सफलता का सबसे बड़ा सूत्र है–विधायक दृष्टिकोण। इसी में व्यक्ति की सफलता छिपी रहती है।

दो दृष्टियां हैं–व्यवहार की दृष्टि और निश्चय की दृष्टि। एक स्थूल है तो दूसरी सूक्ष्म। स्थूल दृष्टि से देखने पर लगता है कि जगत् व्यवस्था से चलता है और सूक्ष्म से देखने पर लगता है कि जगत् चेतन से चलता है। व्यवस्था स्वयं में नहीं है। वह चेतना के द्वारा संचालित होती है। व्यक्ति के सामने जितनी भी व्यवस्थाएं हैं वे सब व्यक्ति द्वारा संचालित हैं, चेतना के द्वारा संचालित हैं। आवश्यकता यह समझने की है कि चेतना किस तरह से बदलती है, मनःस्थिति किस तरह से बदलती है। मनःस्थिति तथा परिस्थिति दो हैं। सारी अच्छाई और बुराई का दोष कभी-कभी परिस्थिति पर लाद दिया जाता है। यह सही नहीं है। यदि व्यक्ति की भीतरी दृष्टि शक्ति सम्पन्न है तो समस्या का समाधान आसानी से हो जाता है। व्यक्ति समाज में जीता है। समाज में जीने का अर्थ है–समस्या में जीना। समाज एक ओर समस्या है तो दूसरी ओर समाधान। इसलिए देखना होगा कि समस्या समाज की ओर से है या व्यक्ति के भीतर से। मानसिक समस्या ही अन्य समस्याओं को जन्म देती है। व्यक्ति की आकांक्षा अनन्त होती है। वह सबकुछ चाहता है। वह आकांक्षा किसी भी शासन प्रणाली से नहीं मिट सकती है। यह एक मौलिक वृत्ति है। आकांक्षा का अंत न होने का मूल कारण है–दृष्टिकोण का अपरिवर्तन। दृष्टिकोण का परिवर्तन अत्यन्त आवश्यक है और इसके लिए आध्यात्मिक विकास आवश्यक है। जब तक व्यक्ति के बदलने की बात नहीं होगी, चेतन को बदलने की बात नहीं होगी तब तक चाहे प्रणालियां बदलती रहें समाधान नहीं मिलता है। व्यवस्थाएं बदलना भी दृष्टिकोण को परिवर्तित करता है लेकिन भीतरी परिवर्तन भी अनिवार्य है। प्रत्येक बात को एकांगी दृष्टि से न सोचकर अनेकान्तिक दृष्टि से सोचा जाए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

9.4.1 दृष्टिकोण परिवर्तन का अर्थ एवं आवश्यकता

दृष्टिकोण परिवर्तन का अर्थ है–सत्य का साक्षात्कार, भीतर में शक्ति की खोज, आनन्द की खोज और ज्ञान की खोज। जाहिर है जब तक व्यक्ति का दृष्टिकोण सही नहीं होता है तब तक वह भीतर से आनन्द की प्राप्ति नहीं कर पाता है क्योंकि वह सही को गलत तथा गलत को सही मानता है या वह जानते हुए भी कि सही, गलत क्या है लेनिक अपना आग्रह नहीं छोड़ता है। जब तक व्यक्ति के भीतर आग्रह रहता है, परिवर्तन संभव नहीं होता है। आग्रह ज्ञान के मार्ग को अवरुद्ध कर देता है। इसलिए दृष्टिकोण से ही व्यक्ति के भीतर प्रज्ञा का जागरण होता है।

सामाजिक जीवन में कठिनाइयों का होना अपरिहार्य है। कठिनाइयों के साथ-साथ कुछ विशेष सुविधाएं भी वहां होती हैं। इसलिए व्यक्ति सामूहिक जीवन स्वीकार करता है। जब समूह चेतना को विकास का अवसर नहीं मिलता है जो वहां जड़ता पैदा होने लगती है। विकास का मूल आधार है विधायक भाव। यदि समाज के लोगों का चिंतन विधायक हो तो उस समाज में विकास का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। इसके अभाव में व्यक्ति निराशा, कुंठा, चिंता, कर्त्तव्य विमुखता आदि शिकंजों से बंधा रहता है। श्रमशीलता, सहनशीलता, आचारनिष्ठा, विनम्रता, प्रामाणिकता आदि भावों का उदय विधायक दृष्टिकोण से होता है। इस दृष्टिकोण वाले व्यक्ति श्रम को महत्त्व देते हैं। समाज में आत्मीयता बनाए रखते हैं। ऐसे व्यक्तियों का समाज ही उत्तरोत्तर विकास के मार्ग में प्रशस्त होता है। समाज का विकास स्वार्थ चेतना से ऊपर उठकर ही किया जा सकता है।

समाज विकास का मूल आधार है–मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा। जिस समाज में करुणा, सहिष्णुता, संयम, स्वावलम्बन आदि नहीं होते हैं उस समाज का विकास भी संभव नहीं हो सकता है। मूल्यों की धरती पर ही विकास के बीजों का वपन किया जा सकता है। जब तक धरती उपजाऊ नहीं होती है, बीज का मूल्य भी अधिक नहीं होता है। आर्थिक विकास समाज की अपेक्षा होती है पर जब अर्थ ही प्रधान बन जाता है तो वहां समस्या ही पैदा होती है। अर्थ के बल पर समाज का विकास अधिक समय तक नहीं टिका रहता है। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि एक समीक्षात्मक दृष्टिकोण का निर्माण हो। उसके द्वारा व्यक्ति यह तय कर सकता है कि किस तत्त्व को मूल्य दिया जाए, किसे नहीं। समाज का घटक तत्त्व है–व्यक्ति। जैसा व्यक्ति होता है वैसा ही समाज होता है। व्यक्ति और समाज को सर्वथा भिन्न नहीं किया जा सकता है। सामाजिक जीवन में समस्या का मूल है–व्यक्ति की विभिन्नता। यदि सभी व्यक्तियों का चिंतन, मंथन, रहन-सहन, एक-सी जीवन शैली, एक-सी राजनीतिक तथा धार्मिक प्रणाली, मान्यताएं हों तो सबका दृष्टिकोण समान होता। वहां न तो मतभेद होता और न मनभेद। जब सभी में भिन्नता है तो मतभेद के साथ-साथ मनभेद भी पैदा हो जाता है। मतभेद और मनभेद की ग्रंथियों के कारण ही समाज संत्रस्त होता है। व्यक्ति तथा समाज की प्रकृति है विरोध। इसी विरोध के कारण जटिलताएं पैदा होती हैं। यदि व्यक्ति इन समस्याओं को दूर करना चाहे तो उसके सामने समाधान भी संभव है।

9.4.2 विधायक सोच की वैज्ञानिकता

व्यक्ति के भीतर जो विचार रहते हैं, इसका परिणाम है कि व्यक्ति के पूर्व में किस तरह के विचार थे। व्यक्ति जैसा सोचता है, जैसा विचार करता है, वही एक सच्चाई बन जाती है। विचारों को पैदा करने तथा उन्हें अचेतन में सुरक्षित रखने में घटनाएं, अनुभव, कार्य तथा जीवन पथ सहायक होते हैं। मस्तिष्क विशेषज्ञों के अनुसार मस्तिष्क वही कार्य करता है जैसा विचार उसमें डाला जाता है। व्यक्ति के विचार व्यक्ति के स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं। जैसा व्यक्ति का दृष्टिकोण बन जाता है वह प्रत्येक क्रिया में उसी के अनुरूप देखता है। व्यक्ति के विचार, उसका दृष्टिकोण यदि सकारात्मक होता है तो व्यक्ति का स्वास्थ्य भी सही रहता है। इसके विपरीत निषेधात्मक विचार तथा निषेधात्मक दृष्टिकोण उसके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव डालते हैं।

शोधों से निष्कर्ष निकला है कि व्यक्ति में जब भय एवं तनाव की स्थिति रहती है तो उससे उच्च रक्तचाप होने की संभावना रहती है। क्रोध एवं ईर्ष्या से हार्ट-अटैक एवं लकवा की संभावना रहती है। लालचीपन एवं अत्यधिक व्यसन मधुमेह तथा हृदय रोगों की जननी हैं। डॉ. रबेका वियर्ड का मानना है कि निराशा एवं कुंठा इन्सुलिन को गलाती हैं जिससे मधुमेह नामक रोग उत्पन्न होता है। होलिस्टिक मैडिसिन का सिद्धान्त है कि यदि व्यक्ति अपने

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

भीतर से खराब विचारों को निकाल दे तो स्वस्थ होने की संभावना प्रबल हो जाती है। सकारात्मक विचारों के प्रणेता डॉ. नार्मन विन्सेट पीले ने कई समस्याओं को केवल प्रार्थना द्वारा सुलझाया। विश्वविख्यात लेखक जार्ज आलेख का कहना है कि विचारों से भाषा प्रभावित होती है तथा भाषा द्वारा विचार प्रभावित होते हैं। सफल, प्रसन्न, स्वस्थ एवं शक्तिशाली व्यक्ति की सोच सकारात्मक होती है। मेडिकल अनुसंधानों द्वारा यह प्रमाणित हुआ है कि आशावादी व्यक्तियों के मस्तिष्क में एंडोर्फिन नामक हार्मोन अधिक मात्रा में पाया जाता है जिसका असर मार्फिन से हजारों गुना अधिक होता है।

इसी प्रकार शांति की मनःस्थिति में न्यूरोपेप्टाइड नामक हार्मोन पाया जाता है जिससे प्राकृतिक एवं मानवीय सुख-शांति का अनुभव होता है। अन्य शोधों के अनुसार तनाव उत्पन्न करने वाले विचार रोग-प्रतिरोधकता को कम करते हैं। अनुसंधानों से यह भी निष्कर्ष निकला है कि सब व्यक्तियों की स्नायु संरचना समान होती है। यह इस बात पर निर्भर करता है कि व्यक्ति उसका उपयोग किस प्रकार से करता है। डॉ. जान शिन्डलर का मानना है कि व्यक्ति चेतन मन एवं विचारों से अपने अवचेतन विचारों, विश्वासों एवं अनुभवों को नियंत्रित कर सकता है। व्यक्ति विचारों का निर्माता स्वयं होता है इसलिए व्यक्ति ही विचारों का नियंत्रक भी होता है। अपने विचारों को नियंत्रित न करने वाले व्यक्ति नकारात्मक विचारों द्वारा उत्पादित व्यवहारों, भावनाओं एवं कार्यकलापों के गुलाम बने रहते हैं। मात्र विचार बदलने से ही जीवन नियंत्रण की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। यह ठीक उसी प्रकार होता है जिस प्रकार कम्प्यूटर में नया आदेश (कमांड) देने से स्क्रीन पर नया परिणाम आना प्रारंभ हो जाता है। व्यक्ति शरीर एवं मस्तिष्क का नियंत्रक है, उसका अधीनस्थ नहीं। यदि व्यक्ति विश्वास कर ले कि वह स्वयं का भाग्य विधाता बनेगा तो यह प्रारंभ हो जाता है।

9.4.3 दृष्टिकोण परिवर्तन के सूत्र

स्वास्थ्य की परीक्षा तीन दृष्टियों में की जाती है–शारीरिक, मानसिक तथा भावनात्मक। इसी प्रकार समाज की स्वस्थता एवं अस्वस्थता भी व्यक्तियों के दृष्टिकोण तथा आचार-व्यवहार पर निर्भर करती है। जिस समाज का दृष्टिकोण सही नहीं होता है वह समाज रुग्ण कहलाता है। जिस समाज का दृष्टिकोण सही होता है वह समाज स्वस्थ समाज कहलाता है। रचनात्मक दृष्टिकोण समाज के स्वास्थ्य का लक्षण है। जाहिर है जब दृष्टिकोण सही होता है तो वह रचनात्मक ही होता है। रचनात्मक दृष्टिकोण वहां होता है जहां स्वार्थ को संयमित करने की क्षमता होती है। जिस समाज में स्वार्थ को महत्त्व दिया जाता है, वह समाज ध्वंसात्मक होता है। जहां व्यक्ति अपने ही स्वार्थ को महत्त्व देता है, वहां समाज गौण बन जाता है। स्वार्थ प्रधान दृष्टिकोण से समाज बीमार हो जाता है। व्यक्ति जब अपने स्वार्थ के लिए ही सोचता है तो उसके इस चिंतन से समाज प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता है। समाज की समस्या ही व्यक्ति की समस्या बनती है। व्यक्ति और समाज भिन्न नहीं हैं। समाज का घटक है व्यक्ति। व्यक्ति इकाई है तो समाज उन इकाइयों का समूह है। इसलिए व्यक्ति की बीमारी समाज को तथा समाज की बीमारी व्यक्ति को प्रभावित करती है। व्यक्ति जब इस तथ्य को नकारता है तो समाज की समस्या बढ़ती ही जाती है। व्यक्ति तथा समाज की स्वस्थता बनी रहे, इसके लिए कुछ प्रमुख सूत्र इस प्रकार हैं–

9.4.3.1 स्वार्थ संयम

व्यक्तिगत स्वार्थ को कभी छुड़ाया नहीं जा सकता है। यह व्यक्ति की प्रकृति है किन्तु स्वार्थ संयम की क्षमता का विकास किया जा सकता है। स्वार्थ की एक सीमा होनी चाहिए। स्वार्थ इतना प्रबल न हो जाए कि प्रत्येक क्रिया स्वार्थ से पूर्ण हो। जब व्यक्ति अपने ही स्वार्थ की सोचता है, दूसरों की परवाह नहीं करता है तो यह स्थिति समाज के लिए खतरनाक होती है। इसलिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति-व्यक्ति में स्वार्थ संयम चेतना जागे। जिस व्यक्ति की मनोवृत्ति स्वार्थपूर्ण होती है वह व्यक्ति अनैतिक कार्य करने में नहीं हिचकिचाता है क्योंकि उसके समक्ष स्वार्थपूर्ति का महत्त्व अधिक रहता है। अपनी इस मनोवृत्ति के कारण व्यक्ति दूसरे के सुख–दुःख का ध्यान नहीं रखता है। स्वार्थ वहां तक सही है जहां वह दूसरों के लिए हानिकारक न बने। जहां व्यक्ति का स्वार्थ दूसरों को पीड़ित करता है, वहां समस्या उत्पन्न हो जाती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

9.4.3.2 कर्त्तव्य बोध

सामाजिक स्वस्थता के लिए आवश्यक है–कर्त्तव्य बोध। इसके अभाव में व्यक्ति के भीतर भय बढ़ता है। यदि व्यक्ति अपने कर्त्तव्यों का पालन करे तो उसके लिए दंड, कानून की कोई आवश्यकता नहीं होती है। इनकी आवश्यकता तब पड़ती है जब व्यक्ति अपने कर्त्तव्य से दूर भागे। जहां एक ओर व्यक्ति अपने अधिकारों की मांग करता है, वहीं यदि वह अपने कर्त्तव्यों का पालन करे तो उसके अधिकार सुरक्षित रहते हैं। व्यक्ति में जब कर्त्तव्य की भावना नहीं होती है तो वह कई सफलताओं से वंचित रह जाता है। समाज में रहते हुए भी सामाजिक प्राणी नहीं बन पाता है। जब तक व्यक्ति के मन में यह चेतना नहीं जागती है, व्यक्ति वैयक्तिक तथा सामाजिक जीवन का निर्वाह सुखपूर्वक नहीं कर पाता है। प्रत्येक व्यक्ति के अपने-अपने कर्त्तव्य होते हैं–स्वयं के लिए, विचार के लिए, समाज के लिए तथा राष्ट्र के लिए। जो व्यक्ति इन कर्त्तव्यों का पालन पूर्ण रूप से करता है, वह सफलता के उच्चतम शिखर पर पहुंच जाता है। सफलता उन्हीं के कदम चूमती है जो कर्त्तव्य के लिए हमेशा सजग व सचेत रहते हैं। समाज में कई समस्याएं ऐसी हैं जो कर्त्तव्य बोध के अभाव में पैदा होती हैं। यदि व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करना चाहता है तो उसे अपने कर्त्तव्यों के प्रति सचेत रहना पड़ेगा, यदि व्यक्ति बिना कर्त्तव्य के ही आवश्यकता पूर्ति करने में लगा रहे तो वह समस्या को बढ़ावा देता है। इसमें व्यक्ति अनैतिक साधनों का उपयोग भी कर सकता है। यदि आवश्यकता पूर्ति आवश्यक है तो कर्त्तव्य भी आवश्यक है। व्यक्ति आराम तलब जिंदगी जीना चाहता है। यदि सुख–सुविधाओं को चाहता है लेकिन कर्त्तव्य को आवश्यक नहीं मानता है तो यह कैसे संभव होगा कि व्यक्ति सफल होगा। इसलिए व्यक्ति को अपने कर्त्तव्य पालन करने में ही सफलता मिलती है। उसमें एक उत्साह की चेतना विकसित होती है। जो उसे सत्कर्म की ओर प्रवृत्त करती है। इसलिए सम्यक् दृष्टिकोण के लिए आवश्यक है कर्त्तव्य बोध की चेतना का जागरण।

9.4.3.3 त्याग की चेतना

कुछ व्यक्ति पदार्थ को ही जीवन का सार मानते हैं, पर यह उनकी गलत धारणा है। यदि भोग अनिवार्य है तो त्याग उसका अलंकरण। व्यक्ति में भोग के साथ-साथ त्याग की भावना भी होनी चाहिए। व्यक्ति संग्रह करता रहे, लोभ को बढ़ाता रहे, उसे कम न करे तो समस्या पैदा होती है। भोगवादी दृष्टिकोण में अधिक उत्पादन, अधिक अर्जन और अधिक भोग–ये तीन सूत्र माने गए हैं। इस दृष्टिकोण ने किसी को तो भोगी बना दिया है, किसी को अभावग्रस्त तथा किसी को दीन-हीन बना दिया है। भोगवादी दृष्टि वाकई एक समस्या है। व्यक्ति कई कारणों, जैसे–एकांगी दृष्टिकोण, अहं का भाव, आदि कारण भोगवाद को बढ़ावा देता है, अर्जन करता रहता है। व्यक्ति अगर इस भोगवादी वृत्ति को कम करे, इच्छाओं का अल्पीकरण करे, अपनी अहम् केन्द्रित चेतना को निर्मल बनाए तो समस्या का समाधान संभव है। व्यक्ति अपने भीतर की कमियों को त्यागे, अच्छाइयों को ग्रहण करे तो व्यक्ति का जीवन सार्थक बन जाता है। यदि अर्जन के साथ विसर्जन की चेतना भी जागे तो अभावग्रस्त तथा दीन-हीन स्थिति नहीं आ पाती है। सबको मूल आवश्यकताओं की पूर्ति का मौका मिल जाता है। एक तरफ भोग ही भोग और दूसरी तरफ अभाव। यह कैसे संभव होगा कि सामाजिक स्वस्थता बनी रहेगी। इसलिए व्यक्ति के भीतर त्याग की चेतना, परोपकार की चेतना का विकास हो तो स्वस्थ समाज की कल्पना की जा सकती है।

9.4.3.4 समग्रता की दृष्टि

समग्रता की दृष्टि से चिंतन करने वाला व्यक्ति विधायक दृष्टि से सोच सकता है। व्यग्रता की दृष्टि से सोचने वाला व्यक्ति एकांगी आग्रह में फंस जाता है और अपने चिंतन को विकृत बना देता है। जब तक व्यक्ति के सामने पूरा चित्र नहीं होता है तब तक उसके आधार पर किया गया चिंतन भी अधूरा ही होता है। सम्यक् और संतुलित चिंतन के लिए आवश्यक होता है–समग्रता का दृष्टिकोण। इसी से अनेक संघर्षों को टाला जा सकता है। व्यग्र चिंतन के कारण कई दुर्घटनाएं घटित हो सकती हैं। साम्प्रदायिक और जातीय विवाद, पारिवारिक और सामाजिक विवाद–ये सब व्यग्र चिंतन के परिणाम हैं। समग्रता की दृष्टि होने पर ही सत्य की ओर झुकाव होता है। फलतः परिणाम यह आता है कि हमें सत्य उपलब्ध हो जाता है। व्यक्ति के जीवन के दो पहलू बन जाते हैं–वैयक्तिक तथा सामाजिक। केवल

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

वैयक्तिक की प्रबलता होने पर व्यक्ति अपनी ही बात सोचता है। अपने हित, अपने स्वार्थ की बात सोचता है। इन्हीं दो दृष्टिकोणों से समाज में अनेक समस्याएं उत्पन्न हुई हैं।

9.4.3.5 परस्परावलम्बन

परस्परावलम्बन अर्थात् एक-दूसरे को आलंबन, एक दूसरे को सहारा। जहां परस्परावलम्बन की विस्मृति होती है, वहां सामाजिक जीवन में समस्याएं आती हैं। वर्तमान की समस्याओं का यदि विश्लेषण किया जाए तो गरीबी से भी भयंकर समस्या है–परस्परावलम्बन की। व्यक्ति सामाजिक जीवन जी रहा है किंतु वह परस्परावलम्बन का अंकन नहीं करता है। जब समाज में परस्परावलम्बन होता है, इसी से अनुशासन बढ़ता है। जब व्यक्ति अपने स्वार्थ को भुलाकर परमार्थ की बात सोचता है तो उसका वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण विशाल बनने लगता है। जहां परस्पर सहयोग की बात आती है वहां वस्तुनिष्ठता का चिंतन नहीं रहता है। पारस्परिक सहयोग का जितना मूल्यांकन किया जाएगा, उतना ही अनुशासन व्यक्ति के जीवन में विकसित होता है। वैयक्तिक जीवन में जहां स्वतंत्रता के स्वावलम्बन का मूल्य होता है, वहीं सामाजिक जीवन में परतंत्रता, सामाजिक सहयोग का भी मूल्य होता है। सामाजिक जीवन में यदि सहयोग नहीं होता तो व्यक्ति के सामने कई समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं। सामाजिक जीवन का निर्माण ही पारस्परिक सहयोग के आधार पर हुआ है। जब व्यक्ति योग की बात को भुला देता है, इस पारस्परिक सहयोग को भुला देता है तब वह अकेलेपन, व्यक्तिगत जीवन की बातें सोचता है। यदि व्यक्ति दूसरे कोण से सोचता है कि इस योग बिना अकेला व्यक्ति कुछ भी नहीं कर सकता है तो समाज की प्रतिमा उसके सामने उपस्थित हो जाती है। इस योग के बिना व्यक्ति की जीवन यात्रा नहीं चलती है तथा वह अपना स्वतंत्र अस्तित्व कायम नहीं कर सकता है। जहां इसकी बात छूट जाती है तो समाज रुग्ण बन जाता है, सामाजिक जीवन अस्त–व्यस्त हो जाता है। उसमें हिंसा, असत्य, क्रूरता आदि सारी कठिनाइयां पैदा होती हैं।

9.4.3.6 समन्वय

जहां एक व्यक्ति होता है, वहां विरोध नहीं होता है। किंतु जहां दो व्यक्ति हो जाते हैं विरोध होता है। उसे टाला नहीं जा सकता। विचार, रुचि, चिंतन आदि को रोका नहीं जा सकता है। लेकिन इस विरोध में, इस भेद में जीवन कैसे चलेगा? संघर्ष, विरोध और विचार भेद–ये सामाजिक जीवन की अनिवार्य शर्त हैं। इनसे जीवन में कई कठिनाइयां उत्पन्न होती हैं। इसी स्थिति में समन्वय की बात आती है। अनेकान्त का बड़ा सूत्र है–समन्वय। दो विरोधी बातों में तीसरा रास्ता खोजना, वहीं सामंजस्य स्थापित हो जाता है। जहां एक–दूसरे को सहन नहीं किया जाता, सहिष्णुता नहीं रखी जाती, वहां समन्वय की बात नहीं आती है। समन्वय की पृष्ठभूमि में वीतरागता का दर्शन है। राग और द्वेष का उपशम, चित्त की निर्मलता, अहिंसा और मैत्री का मूल्य समझ लेने पर समन्वय का सिद्धान्त समझ में आ जाता है।

9.4.3.7 सहिष्णुता

जब व्यक्ति स्वयं सहन करता है तो दूसरा भी सहन करता है। यदि व्यक्ति स्वयं ही सहनशील नहीं है तो समस्या का समाधान कैसे हो सकता है? व्यक्ति जिस दुनिया में जीता है, वह संयोग–वियोग की दुनिया है। न जाने प्रतिदिन कितनी करुण घटनाएं घटित होती हैं, कितनी दुर्घटनाएं होती हैं, कई विकट परिस्थितियां आती हैं, जब व्यक्ति में इन सबको झेलने की शक्ति नहीं होती है तो वह समस्याओं को कैसे पार कर सकता है? वर्तमान युग की यह एक भयंकर बीमारी है। सहिष्णुता का विकास शक्ति का विकास है। इससे दूसरों की कमियों को सहा जाता है, दूसरों की विशेषताओं को भी सहा जा सकता है। जब सहिष्णुता का विकास होता है तब व्यक्ति संतुलित हो जाता है। तब वह न प्रियता में फलता है और न अप्रियता में मुरझाता है। जो व्यक्ति सहन करना जानता है वह क्षमता के आदर्श तक पहुंच सकता है। सामाजिक जीवन की सफलता और सरसता का राज है–सहिष्णुता।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

बोध प्रश्न 2:

1. *'मैं सोचता हूं, इसलिए मैं हूं' यह किसका कथन है?*
2. *दृष्टिकोण परिवर्तन का क्या अर्थ है?*
3. *परस्परावलम्बन से क्या तात्पर्य है?*

9.4.3.8 सह–अस्तित्व

सह–अस्तित्व अर्थात् एक साथ रहना। सामान्य धारणा यह है कि दो विरोधी धर्म एक साथ नहीं रह सकते। भगवान् महावीर ने कहा–दो विरोधी धर्म एक साथ रह सकते हैं। दार्शनिक भाषा में नित्य–अनित्य, सामान्य–विशेष –ये एक साथ रहते हैं। सामाजिक जीवन के परिप्रेक्ष्य में विचार किया जाए तो समाज में सभी व्यक्ति विचारों में, रुचियों में भिन्न हैं। फिर भी वहां सह–अस्तित्व है। जहां व्यक्ति अपने स्वार्थवश, एकांगी दृष्टिकोण से सिर्फ स्व की बात सोचता है, स्व का हित चाहता है, दूसरों को नकारता है तो सामाजिक जीवन कष्टमय बन जाता है। जहां दूसरे व्यक्ति का अस्तित्व ही नकार दिया जाए, वहां क्या शांति की बात हो सकती है? सामाजिकता की बात हो सकती है? इसलिए सामाजिकता का आवश्यक तत्व है–सह–अस्तित्व।

अनेकान्त का प्रशिक्षण मिथ्या धारणा, निरपेक्ष चिंतन और आग्रह से मुक्त होने का प्रयोग है। परिवर्तन केवल जानने से नहीं होता। इसके लिए दीर्घकालीन अभ्यास अपेक्षित है। सर्वांगीण दृष्टिकोण को विकसित करने के लिए निम्न निर्दिष्ट अनेकान्त के सिद्धान्त और प्रायोगिक अभ्यास-अनुप्रेक्षाओं का प्रशिक्षण आवश्यक है।

9.4.4 दृष्टिकोण परिवर्तन की उपलब्धियां

दृष्टिकोण परिवर्तन से कई प्रकार की उपलब्धियां प्रस्फुटित होती हैं। सही दृष्टिकोण के अभाव में समाज इन अनेक उपलब्धियों से वंचित रह जाता है। यदि समाज का दृष्टिकोण सम्यक् हो जाता है, रचनात्मक हो जाता है तो वहां निम्न उपलब्धियां प्राप्त होती हैं–

9.4.4.1 मानसिक शांति

व्यक्ति के पास अनेक सुख-सुविधाएं होने पर भी कई बार वह अशांत–सा रहता है। उसके भीतर द्वंद्व चलता है, वह शांति से कोसों दूर रहता है। मानसिक उधेड़-बुन में वह व्यक्ति इस तरह से फंसा रहता है कि शांति का उसके पास कोई स्थान नहीं होता है। शरीर से स्वस्थ व्यक्ति यदि मन से अस्वस्थ है तो वह शांति को प्राप्त नहीं कर सकता है। चिंता, कुंठा, तनाव आदि मानसिक स्वास्थ्य से जुड़ी समस्याएं हैं। जब तक व्यक्ति का दृष्टिकोण सम्यक् नहीं होता है व्यक्ति इन समस्याओं से घिरा रहता है। दृष्टिकोण सही होते ही ये समस्याएं व्यक्ति के लिए बाधक नहीं बनती हैं। तब वह प्रसन्नता का जीवन जीता है। उसकी सारी उलझनें समाप्त हो जाती हैं। वह भयमुक्त जीवन जीने लगता है। व्यक्ति, स्मृति, कल्पना और चिंतन करता है। सम्यक् दृष्टिकोण वाले व्यक्ति के लिए इनका उपयोग एक सीमा तक ही उपयोगी होता है। सीमा से बाहर ये कष्टदायक बनते हैं। इनका अनावश्यक उपयोग मानसिक अशांति पैदा करता है। सम्यक् दृष्टि व्यक्ति को इन समस्याओं से दूर रखती है। मन की अशांति, मानसिक अशांति परिस्थिति के कारण पैदा नहीं होती है बल्कि उस स्थिति के प्रति व्यक्ति का दृष्टिकोण गलत होता है। इसी से समस्या उत्पन्न होती है। सामान्यतया यह तर्क होता है कि परिस्थिति ही व्यक्ति के दृष्टिकोण को बनाती है। वास्तविकता यह है कि व्यक्ति के दृष्टिकोण पर ही यह निर्भर होता है कि व्यक्ति समस्या को या परिस्थिति को किस रूप में स्वीकार करता है। अनुकूलता और प्रतिकूलता को स्वीकार सकता है किंतु अशांति के तत्त्व को वह स्वीकार नहीं करता है।

9.4.4.2 समस्या मुक्ति

व्यक्ति के जीवन में समस्याओं का उतार–चढ़ाव होता रहता है। एक होती है समस्या तो दूसरा होता है समस्या चक्र। समस्या आकर चली जाती है पर समस्या चक्र चलता रहता है। यह चक्र ही व्यक्ति के लिए पीड़ादायक

बनता है। एक समस्या दूसरी समस्या को जन्म देती है। इस प्रकार समस्याओं का अंत नहीं होता है। वे बढ़ती जाती हैं। वे समस्याएं तब पीड़ादायक बनती हैं जब व्यक्ति का दृष्टिकोण सम्यक् नहीं होता है। सम्यक् दृष्टिकोण वाला व्यक्ति समस्या चक्र से दूर रहता है। उसकी समस्याएं अंतहीन नहीं होती हैं क्योंकि उसके पास समाधान होता है। उसका दृष्टिकोण इन समस्याओं को सुलझा देता है। समस्या तब आती है जब व्यक्ति का दृष्टिकोण अस्पष्ट होता है। दृष्टिकोण स्पष्ट होते ही समस्या विकराल रूप में नहीं लगती है। दृष्टि के असम्यक् होने से व्यक्ति प्रत्येक छोटी–छोटी बातों में ही परेशान हो जाता है। प्रत्येक क्रिया जो उसके मनोनुकूल न हो, वे उसे परेशान करती रहती हैं, जाहिर है जब व्यक्ति का दृष्टिकोण इस तरह का बनता है तो वह व्यक्ति किस प्रकार सुखी जीवन जी सकता है। सामाजिक जीवन में समस्याओं का होना परिहार्य है। प्रत्येक क्रिया यदि व्यक्ति के लिए बाधक बनती है या वह उस क्रिया से प्रभावित होता है तो वह अपने जीवन में सुख–शांति का अनुभव नहीं करता है।

9.4.4.3 अनासक्ति

व्यक्ति की कई आवश्यकताएं होती हैं। वह उनकी पूर्ति करता रहता है। आवश्यकता पूर्ति एक बात है और आसक्ति दूसरी बात है। आवश्यकता पूर्ति की बात सदैव बनी रहती है पर यथार्थ के प्रति आसक्ति नहीं होती है। जीव में उपयोगी पदार्थों की आवश्यकता पूर्ति करना अनिवार्य होता है क्योंकि कुछ विशिष्ट आवश्यकताओं की पूर्ति न हो तो व्यक्ति का जीवन असंतुलित, अव्यवस्थित तथा समस्याग्रस्त हो जाता है। इसलिए आवश्यकताओं की पूर्ति भी अनिवार्य मानी जाती है। यदि व्यक्ति उन पदार्थों के प्रति आसक्त है जो उसकी आवश्यकता है वहां समस्या पैदा हो जाती है। पदार्थ का उपयोग अलग है और उस पदार्थ के प्रति आसक्ति अलग है। इसलिए उपयोग और आसक्ति जहां एक हो जाते हैं वहीं समस्या पैदा होती है। जब व्यक्ति का दृष्टिकोण सम्यक् बन जाता है तो पदार्थ और आसक्ति, उपयोग और आसक्ति भिन्न–भिन्न हो जाते हैं। यही सच्चाई है। पदार्थ आसक्ति बने तो यह कैसे संभव हो सकता है कि समाधान मिले। यह सब गलत दृष्टिकोण के कारण पैदा होता है। जब व्यक्ति की दृष्टि खुल जाती है, यथार्थ–अयथार्थ का उसे बोध होता है, सूक्ष्मता से वह देखता है तो समस्या समस्या नहीं रह जाती है। वहां समाधान स्वतः मिल जाता है। इसलिए जिस व्यक्ति का दृष्टिकोण सम्यक् है, रचनात्मक है, उसका पदार्थ के प्रति आसक्त भाव नहीं रहता है। वह पदार्थ को पदार्थ रूप में ग्रहण करता है। उसकी पदार्थ के प्रति आसक्ति छूट जाती है। अनासक्त व्यक्ति समस्या को पैदा नहीं करता है, समस्या का समाधान करता है क्योंकि आसक्ति अनिवार्य नहीं होती है। अनिवार्य है उन आवश्यकताओं की पूर्ति जो जीवन के लिए अनिवार्य मानी जाती है। जब व्यक्ति का व्यामोह नष्ट हो जाता है तो उसे यथार्थ का ज्ञान हो जाता है। व्यामोह तब नष्ट होता है जब व्यक्ति का दृष्टिकोण सही हो जाता है।

9.4.4.4 करुणा

संस्कृत में कहा गया है–

विद्या विवादाय धनं मदाय, शक्तिः परेषां परपीडनाय।
खलस्य साधोः विपरीत मेतत्, ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय।।

अर्थात् दुर्जन व्यक्ति के लिए विद्या विवाद के लिए, धन अहम तुष्टि के लिए और शक्ति दूसरों को पीड़ित करने के लिए होती है। सज्जन व्यक्तियों के लिए तीनों विपरीत रूप में होती हैं। उसके लिए विद्या, ज्ञान के लिए धन तथा शक्ति का उपयोग दूसरों की रक्षा के लिए होता है। वह क्रूर नहीं होता है। उसमें करुणा का अजस्र स्रोत बहता रहता है। यह इसलिए होता है कि उस व्यक्ति की दृष्टि सम्यक् होती है। अपनी उसी दृष्टि के कारण वह ज्ञानियों की श्रेणी में आता है। दृष्टि में दोष के कारण ही व्यक्ति में क्रूरता का भाव उत्पन्न होता है। प्रारंभ से ही समाज में दंड शक्ति का स्थान रहा है। यह तब तक सही है जब तक दंड शक्ति का उपयोग किसी सार्थक कार्य के लिए किया जाता है। लेकिन इसके विपरीत दंड शक्ति यदि

Jain Vishva Bharati Institute, Deemed University, Ladnun

क्रूरता में बदल जाती है तो सामाजिक अव्यवस्था उत्पन्न होती है। वर्तमान में भी कई घटनाएं ऐसी घटित होती हैं कि व्यक्ति का यह अमानवीय दृष्टिकोण उभर कर सामने आता है। यदि समाज में मूल्यों की स्थापना करनी है या सार्थक कार्य करना है तो क्रूरता के आधार पर यह कार्य संभव नहीं होता है। केवल क्रूरता से अपराध को नहीं मिटाया जा सकता है। केवल दंड से समस्या का समाधान नहीं किया जा सकता है। क्रूरता का मूल होता है—लोभ और अमानवीय दृष्टिकोण, इसी के कारण व्यक्ति दूसरों को सताता है, मारता है और अमानवीय कृत्यों को करता है। जितने भी अनैतिक कार्य होते हैं वे दृष्टिकोण की अशुद्धि के कारण ही होते हैं। भीतर से निर्मलता होने पर बाहरी व्यवहार भी निर्मल ही होता है। क्रूरता को कम करने के लिए ही मानवीय दृष्टिकोण का विकास आवश्यक है। इसे ही आत्मौपम्य दृष्टि कहा जाता है। इसका अर्थ है—प्रत्येक प्राणी को अपने ही समान समझना। इस दृष्टि का विकास आवश्यक है। व्यक्ति की दृष्टि एवं दिशा के बदलते ही सब कुछ बदल जाता है, सारा वातावरण सुखद बन जाता है। दृष्टिकोण बदलता है तो व्यक्ति के भीतर करुणा का स्रोत फूटता है। फिर तो बाहर भी वही धारा बहती है जो भीतर में है। व्यक्ति में इस मानवीय धारा का स्रोत फूटता है तो समझना चाहिए कि व्यक्ति के भीतर करुणा की ज्योति, करुणा की दीपशिखा प्रज्ज्वलित हुई है। सामाजिक जीवन में करुणा का विकास आवश्यक माना जाता है। इसी से सार्थक परिवर्तन लाया जा सकता है। निर्माण को सही दिशा प्रदान की जा सकती है ऐसा तभी संभव होता है जब व्यक्ति का दृष्टिकोण संकुचित न होकर व्यापक हो, उसका दृष्टिकोण सम्यक् हो। जब दृष्टिकोण बदलता है तो व्यक्ति के भीतर करुणा की भावधारा बहती है।

9.4.4.5 सत्यनिष्ठा

जब तक व्यक्ति का दृष्टिकोण सही नहीं होता है, उसका सत्य पर विश्वास नहीं होता है। अर्थात् जो सत्य है, उसको वह असत्य मानता है। यथार्थ का उसे ज्ञान नहीं होता है। या तो उसे ज्ञान तो है पर सत्य को मानता नहीं है। यही दृष्टि उसे अंधकार की ओर ले जाती है। जब व्यक्ति का दृष्टिकोण सम्यक् हो जाता है वह सत्य को सत्य ही मानता है। उसका आचरण भी वैसा ही होता है।

भारतीय संस्कृति का महत्त्वपूर्ण सूत्र है—'परं पश्यत माऽपरं'—अर्थात् पर (परम) को देखो, अपर (अपरम) को मत देखो। भारत में विद्या की दो धाराएं हैं—पराविद्या और अपराविद्या। अपराविद्या भौतिक पदार्थों की ओर ले जाती है, वह पदार्थ विज्ञान सिखाती है। उसके द्वारा व्यक्ति अपनी आजीविका संबंधी कार्यों को संचालित करता है। जीवन-यापन के लिए यह भी आवश्यक है। इसे छोड़ा भी नहीं जा सकता है किंतु यही अंतिम बिंदु नहीं है। यदि इसी को अंतिम बिंदु मान लिया जाए तो समस्या का समाधान नहीं हो पाएगा। जो इस बिंदु पर अटक जाता है वह भटक भी जाता है। इसी के कारण अनैतिकता को बढ़ावा मिलता है, भ्रष्टाचार पनपता है। जब व्यक्ति पदार्थनिष्ठ हो जाता है, धन पर केन्द्रित हो जाता है तो उसके आगे की दृष्टि रुक जाती है। अर्थात् वह उससे आगे नहीं देखना चाहता है। वह किसी-न-किसी तरह से अर्थ संग्रह की ओर उन्मुख हो जाता है। साधन शुद्धि की बात उसके लिए समाप्त हो जाती है। जाहिर है जब व्यक्ति की असीम इच्छाएं ज्वालामुखी की तरह फूटती है और व्यक्ति का उन पर कोई नियंत्रण नहीं होता है तब रागरया पैदा हो जाती है। व्यक्ति गें विवेक न होने से, संयम न होने से तथा दृष्टि का विपर्यय होने से व्यक्ति इन इच्छाओं की पूर्ति में लगा रहता है। वह उन्हीं आवश्यकताओं को प्रमुख अंग मानता है। यही समाज की रुग्णता का कारण बनता है। वह समाज स्वस्थ होता है जहां प्रामाणिकता को महत्त्वपूर्ण माना जाता है। व्यक्ति का साध्य भले ही कितना ऊंचा हो यदि उसकी प्राप्ति के लिए साधन शुद्ध नहीं हैं तो साध्य का मूल्य भी कम हो जाता है। साध्य शुद्ध हो तो साधन भी शुद्ध होना चाहिए। इससे समाज में अनैतिकता को प्रश्रय नहीं मिलेगा। स्वस्थ समाज के लिए आवश्यक है सत्यनिष्ठा, पराविद्या की निष्ठा। सिर्फ अपरा पर रहने से समस्या का समाधान नहीं होता है। पराविद्या भी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

आवश्यक होती है। इन दोनों का संतुलन बना रहे तो समस्या पैदा नहीं होती है। जब दृष्टिकोण सम्यक् हो जाता है तब व्यक्ति के भीतर सत्यनिष्ठा का प्रादुर्भाव हो जाता है।

9.5 प्रश्नावली

निबंधात्मक प्रश्न

1. अपराध एवं मानवता को स्पष्ट कीजिए।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1.पुनर्वास क्या है? उसकी प्रक्रिया को स्पष्ट कीजिए।

2.दृष्टिकोण परिवर्तन में जीवन विज्ञान का योगदान समझाइए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1.अपराध को किसकी संज्ञा दी गई है?

2.आर्थिक शोषण कब होता है?

3.ज्ञान का माध्यम क्या है?

4.समाज में सामंजस्यपूर्ण वातावरण कब स्थापित किया जा सकता है?

5.जड़ता कब पैदा होने लगती है?

9.6 संदर्भ पुस्तकें

1. अपराध चिकित्सा—श्री भगवानदास केला
2. समाजिक एवं मानववादी विचारक—श्री डी. आर. जाटव
3. Rehabilitation and Community Care - Stephen Pilling, 1993
4. मोक्ख मग्गो : अध्यात्म साधना—श्री विजय मुनि
5. एकला चलो रे—आचार्यश्री महाप्रज्ञ
6. युवा दृष्टि—अक्टूबर, 2000
7. अहिंसा के अछूते पहलू—आचार्य महाप्रज्ञ
8. अहिंसा प्रशिक्षण—संपादक—मुनि धर्मेश

❑❑❑

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–10 प्रेक्षाध्यान एवं व्यवहार परिवर्तन

संरचना

10.0 प्रस्तावना
10.1 उद्देश्य
10.2 व्यवहार
    10.2.1 व्यवहार परिवर्तन का अर्थ एवं आवश्यकता
    10.2.2 व्यवहार को प्रभावित करने वाले कारक
        10.2.2.1 आनुवांशिकता
        10.2.2.2 शारीरिक संरचना एवं स्वास्थ्य
        10.2.2.3 प्राकृतिक कारक
        10.2.2.4 परिवार
        10.2.2.5 शिक्षा
        10.2.2.6 सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारक
        10.2.2.7 आर्थिक कारक
10.3 नैतिक व्यवहार की कसौटी : सदाचार
    10.3.1 चरित्र एवं आचरण
        10.3.1.1 चरित्र का विकास
        10.3.1.2 अभ्यास
    10.3.2 विवेक एवं व्यवहार
10.4 आचरण से संबधित विभिन्न मत
10.5 व्यवहार के बाधक तत्व
    10.5.1 इच्छा
    10.5.2 अहम् भाव
    10.5.3 अनास्था
    10.5.4 मूल्यों का अभाव
    10.5.5 अन्य
10.6 सम्यक जीवन शैली के सूत्र
    10.6.1 सम्यक् दर्शन
    10.6.2 अनेकान्त
    10.6.3 अनावश्यक हिंसा का वर्जन
    10.6.4 सम, उपशम, श्रम
    10.6.5 इच्छा परिणाम
    10.6.6 सम्यक् आजीविका
    10.6.7 संस्कार
    10.6.8 आहार शुद्धि
    10.6.9 साधार्मिक वात्सल्य
10.7 व्यवहार परिवर्तन में सम्यक् दृष्टिकोण की भूमिका
10.8 प्रेक्षाध्यान एवं व्यवहार परिवर्तन
10.9 प्रश्नावली
10.10 संदर्भ पुस्तकें

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

10.0 प्रस्तावना

व्यक्ति की पहचान का माध्यम होता है उसका व्यवहार। भीतर से कौन कैसा है, इसका पता लगाना कठिन काम है किंतु व्यवहार के सामने आते ही व्यक्ति को पहचाना जा सकता है। व्यक्ति का बाहरी प्रकटीकरण अपने प्रति, दूसरों के प्रति, पदार्थ के प्रति, वस्तु के प्रति आदि–आदि बातें हैं जिससे उसका व्यवहार परिलक्षित होता है। इसी से व्यक्ति का पूरा व्यक्तित्व झलकता है। इसीलिए व्यवहार को व्यक्तित्व का प्रतिबिम्ब माना जाता है। व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी है। समाज में रहते हुए उसका व्यवहार भी समाज को प्रभावित करता है। यदि उसका व्यवहार संतुलित है तो वह वैयक्तिक एवं सामाजिक जीवन को सुखपूर्वक जी सकता है अन्यथा उसका जीवन कष्टमय बन जाता है। इसलिए आवश्यक है कि व्यक्ति का व्यवहार, मृदु, करुणाशील, संयमशील, चरित्रशील आदि विधेयात्मक मूल्यों से परिपूर्ण बने। व्यक्ति का व्यवहार इतना जटिल है कि उसे समझ पाना आसान कार्य नहीं है। व्यवहार परिवर्तनशील होता है। यह प्रकृति प्रदत्त तथा अर्जित दोनों प्रकार का होता है। व्यवहार दो प्रकार का होता है– सामान्य तथा असामान्य। सामाजिक मूल्यों, रीति-रिवाजों आदि की अवहेलना, समाज विरोधी कार्य, अपने तथा दूसरों को क्षति पहुंचाना या अपने या दूसरों के प्रति निरन्तर निषेधात्मक दृष्टिकोण जिसमें मानव कल्याण की सोच न हो, असामान्य व्यवहार है। समाज में ऐसा व्यवहार हानिकर माना जाता है।

एक दिन में व्यक्ति न जाने कितने ही प्रकार के व्यवहार करता है, कितनी ही प्रतिक्रियाएं करता है। उसका सूत्र ही बन जाता है–'शठे शाठ्यम समाचरेत्' अर्थात् जैसे को तैसा। व्यक्ति के साथ बनते और बदलते रहते हैं। एक स्थिति में व्यक्ति हंसता है तो दूसरी स्थिति में रोता है। कभी क्रोध करता है तो कभी शांत रहता है। ये प्रत्येक व्यवहार अहेतुक नहीं हैं। इनके पीछे भाव होते हैं। एक त्रिपदी है–व्यवहार, व्यवहार की पृष्ठभूमि में भाव और भाव के पीछे लौकिक चेतना। यह एक चक्र है। जिस प्रकार की वस्तु सामने आती है, व्यक्ति के भाव बन जाते हैं और उसी प्रकार का प्रतिक्रियात्मक व्यवहार होता है। सारा व्यवहार प्रतिक्रियात्मक होता है। व्यक्ति का सारा जीवन इसी व्यवहार से भरा पड़ा है। यह लौकिक चेतना का परिणाम है। अर्थात् सामने जो भी आए, उसे ही स्वीकार कर लेना। जहां व्यक्ति में अलौकिक चेतना का अभाव होता है वहां व्यक्ति अपना स्वार्थ देखता है। जब–जब व्यक्ति के भीतर अलौकिक चेतना का जागरण होता है तब–तब व्यक्ति प्रतिक्रियामुक्त हो जाता है। भगवान् बुद्ध, भगवान् महावीर आदि के जीवन में इस अलौकिक चेतना का दर्शन होता है।

10.1 उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ को पढ़ने के बाद निम्न जानकारियां प्राप्त हो सकेंगी–

1.व्यवहार का अर्थ,
2.व्यवहार परिवर्तन का अर्थ एवं आवश्यकता,
3.व्यवहार को प्रभावित करने वाले कारक,
4.नैतिक व्यवहार की कसौटी : सदाचार,
5.आचरण से संबंधित विभिन्न मत,
6.व्यवहार के बाधक तत्त्व,
7.सम्यक् जीवन शैली के सूत्र,
8.व्यवहार परिवर्तन में सम्यक् दृष्टिकोण की भूमिका।

10.2 व्यवहार

मनुष्य की तीन मौलिक विशेषताएं हैं–विचार, वचन और व्यवहार। विचार की क्षमता उसमें है तो वचन की क्षमता भी उसमें है। व्यवहार की क्षमता जैसी मनुष्य में है वैसी किसी भी प्राणी में नहीं है। एक जानवर हजारों

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

वर्ष पूर्व से एक–सा व्यवहार कर रहा है। उसके व्यवहार में कोई परिवर्तन नहीं आया। मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जिसने व्यवहार में परिवर्तन किया है, व्यवहार का परिष्कार किया। इसी आधार पर व्यवहार की कई शाखाएं, कई शास्त्र हैं तथा व्यवहार का मनोविज्ञान ही बन गया। ल्या करना चाहिए, क्या नहीं करना चाहिए, इस पर विशाल साहित्य रचा गया।

सन्मति टीका में एक प्रसंग आता है–व्यवहार क्या है? उत्तर मिलता है–व्यवहार त्रयात्मक होता है। उसके तीन अंग होते हैं–प्रवृत्ति, निवृत्ति और उपेक्षा। किसी कार्य में प्रवृत्ति तो किसी कार्य में निवृत्ति और किसी कार्य की उपेक्षा, व्यवहार में तीन आधार हैं। मनुष्य ने अपने सारे व्यवहार को तीन भागों में विभक्त कर दिया। अच्छे के लिए प्रवृत्ति करता है, जो अच्छा नहीं है उसे छोड़ता है, निवृत्ति करता है ओर जो उपेक्षणीय है उसकी उपेक्षा करता है। व्यवहार अपने तक सीमित नहीं रहता है। विचार व्यक्तिगत हो सकता है लेकिन वचन और व्यवहार प्रसरणशील होते हैं। ये दोनों एक–दूसरे को प्रभावित करते हैं। भगवान् महावीर ने अनेकांत दृष्टि की प्रस्थापना की। विचार का आग्रह न हो, वचन का विवाद न हो और व्यवहार का असंतुलन न हो। मनुष्य का व्यवहार विचार और वचन सापेक्ष है। कोई विचार निरपेक्ष नहीं है, परिपूर्ण नहीं है, कोई भी वचन निरपेक्ष नहीं है अर्थात् पूर्ण सत्य का वाचक नहीं है। प्रत्येक व्यवहार सापेक्ष है अर्थात् देश और काल के अनुसार व्यवहार बदलता रहता है। यह सापेक्षता की समझ विकसित हो जाने पर विचार में अनाग्रह का विकास होता है। मन विवाद से मुक्त हो जाता है और व्यवहार में बन जाता है प्रवृत्ति, निवृत्ति और उपेक्षा का संतुलन।

10.2.1 व्यवहार परिवर्तन का अर्थ एवं आवश्यकता

व्यवहार परिवर्तन का अर्थ है–व्यवहार को सकारात्मक बनाना, दोषमुक्त बनाना, मूल्यों के अनुरूप बनाना। सामाजिक प्राणी का व्यवहार मूल्यों के अनुरूप होना आवश्यक समझा जाता है। इसी के आधार पर उसका सर्वांगीण विकास निर्भर करता है तथा इसी पर स्वस्थ सामाजिक संरचना आधारित होती है। स्वस्थ सामाजिक जीवन का आधार है–व्यक्ति का व्यवहार सामान्य हो। इसी से समाज में सुख–शांति बनी रहती है क्योंकि व्यक्ति समाज में अकेला प्राणी नहीं होता है। व्यक्ति अपने जीवन में सुख चाहता है। सुखी जीवन के लिए आवश्यक होता है व्यवहार परिवर्तन। व्यक्ति के व्यवहार में सकारात्मक परिवर्तन होने से अनेक बुराइयों को दूर किया जा सकता है, अनेक समस्याओं का समाधान किया जा सकता है। व्यक्ति के समक्ष कई प्रकार की परिस्थितियां आती हैं तथा उसे प्रभावित करती हैं। यदि व्यक्ति ऐसे समय में संतुलन रखेगा तो विषम परिस्थितियां भी उसे प्रभावित नहीं कर सकती हैं। अनेकों महापुरुषों ने अपने संतुलित व्यवहार द्वारा सफलता प्राप्त की है। व्यक्ति में उत्तेजना, कपटता, छल, प्रपंच आदि निषेधात्मक भाव उसे सफलता से दूर ले जाते हैं। ये निषेधात्मक भाव ही उसके व्यवहार का एक अंग बन जाते हैं। इसलिए सुखी जीवन एवं स्वस्थ सामाजिक संरचना हेतु व्यवहार परिवर्तन आवश्यक है। संतुलित व्यवहार व्यक्ति को जोड़ता है, तोड़ता नहीं। इसी में मानव जीवन की सफलता छिपी रहती है। व्यवहार परिवर्तन सिर्फ बाहर से नहीं, आंतरिक रूप से आवश्यक होता है। जब तक व्यक्ति अंदर से परिवर्तित नहीं होगा, उसके व्यवहार में सम्यक्त्व नहीं आ सकता है। इसलिए आवश्यकता है व्यक्ति का व्यवहार भीतर से बदले। जब तक भीतरी व्यक्तित्व नहीं बदलेगा तक तब बाहरी परिवर्तन भी अधिक समय तक नहीं रहता है। व्यक्ति का व्यवहार असामान्य होने से सामाजिक समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं। नशाखोरी, चोरी, डकैती आदि आपराधिक गतिविधियां स्वस्थ समाज का परिचायक नहीं है। इसलिए ऐसे व्यक्तियों के व्यवहार में सकारात्मक परिवर्तन लाया जाए तो कई समस्याओं का समाधान हो सकता है।

10.2.2 व्यवहार को प्रभावित करने वाले कारक

यहां संक्षेप में व्यवहार को प्रभावित करने वाले कारकों का वर्णन किया गया है। व्यवहार को प्रभावित करने वाले कारक निम्न हैं–

1. आनुवांशिकता,
2. शारीरिक संरचना एवं स्वास्थ्य,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

3. प्राकृतिक कारक,
4. परिवार,
5. शिक्षा,
6. सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारक,
7. आर्थिक कारक।

10.2.2.1 आनुवांशिकता (Haridity)

व्यक्ति के व्यक्तित्व में अनेक गुण उसको आनुवांशिक रूप में मिलते हैं। उसका रंग, रूप, शरीर संरचना आदि उसे अपने माता–पिता से प्राप्त होते हैं। यही नहीं कुछ गुण तो अन्य पूर्वजों से भी मिलते हैं। उसमें अच्छाई, बुराई दोनों ही हो सकते हैं। बुद्धि, मानसिक क्षमताएं आदि भी इससे प्रभावित होती हैं। कुछ बीमारियां भी व्यक्ति को पूर्वजों से प्राप्त होती हैं। इसलिए यह माना जाता है कि आनुवांशिकता का भी व्यवहार में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

10.2.2.2 शारीरिक संरचना एवं स्वास्थ्य (Body Structure and Health)

व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करने में उसकी शारीरिक संरचना एवं स्वास्थ्य भी कम सहयोगी नहीं हैं। व्यक्ति की लंबाई, चौड़ाई, वर्ण आदि शारीरिक संरचना के अंतर्गत आते हैं। यदि व्यक्ति की शारीरिक संरचना सामान्य होती है तो उसमें आत्मविश्वास और स्वावलम्बन की भावना पैदा होती है। यदि इसके विपरीत उसकी शारीरिक संरचना पूर्ण नहीं है तो उसमें हीन भावना आ सकती है तथा वह असामान्य व्यवहार की ओर प्रेरित हो सकता है। शारीरिक विकलांगता व्यक्ति में निराशा पैदा कर देती है। इसके साथ यदि व्यक्ति लंबे समय तक किसी बीमारी से ग्रस्त रहता है तो भी उसमें तनाव, चिड़चिड़ापन आदि लक्षण प्रकट होने लगते हैं जो व्यक्ति के व्यवहार को असामान्य कर देते हैं। शरीर के विभिन्न भागों में विशेष प्रकार की ग्रंथियां पाई जाती हैं जिन्हें अंतःस्रावी ग्रंथियां कहते हैं। ये ग्रंथियां अपने रासायनिक द्रव्यों (हार्मोन्स) को रक्त में छोड़ देती हैं। जिससे हार्मोन्स पूरे शरीर में पहुंच जाते हैं। इन स्रावों की कमी या अधिकता होने से व्यक्ति की चयापचय क्रियाओं, व्यवहार तथा व्यक्तित्व पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। हार्मोन्स का व्यवहार पर प्रत्यक्ष प्रभाव देखने के लिए विद्वानों ने कई प्रयोग किए, जिनमें उन्हें सफलता मिली। इन ग्रंथियों के असामान्य कार्य करने पर शरीर के अंतः वातावरण में असंतुलन पैदा हो जाता है और साम्यावस्था समाप्त हो जाती है। इसी के फलस्वरूप व्यक्ति के व्यवहार में असामान्यता पाई जाती है। उदाहरणार्थ–थायराइड ग्रंथि के हार्मोन्स में कमी होने से स्मरण शक्ति कम हो जाती है, शारीरिक तथा मानसिक विकास भली–भांति नहीं हो पाता है। यदि इसी ग्रंथि के हार्मोन्स में अधिक सक्रियता होती है तो प्राणी में बेचैनी, निराशा, संवेगात्मक असंतुलन आदि लक्षण प्रकट होते हैं। इस अवस्था में मानसिक विकृति भी उत्पन्न होती है।

10.2.2.3 प्राकृतिक कारक (Natural Factor)

व्यक्ति प्राकृतिक वातावरण में रहता है, इसलिए इन प्राकृतिक परिस्थितियों का उसके व्यवहार पर भी प्रभाव पड़ता है। भौगोलिक परिस्थितियों के कारण उसकी शारीरिक संरचना प्रभावित होती है। ठंडी तथा गर्म जलवायु का भी व्यवहार पर प्रभाव पड़ता है। यदि इनके पर्यावरण में परिवर्तन कर दिया जाए तो कार्यक्षमता प्रभावित होती है, स्वास्थ्य प्रभावित होता है। यदि पुनः परिस्थितियों को परिवर्तित किया जाता है तो व्यवहार भी पुनः परिवर्तित होता है। जलवायु की विषमता भी व्यवहार को असामान्य बना देती है। इससे व्यक्ति आपराधिक कार्यों की ओर प्रवृत्त होने लगता है। जैसे–ठंडे इलाकों में रहने वाले लोगों को उस मौसम में गर्म पदार्थों की आवश्यकता रहती है। इसकी पूर्ति न होने पर वह असामान्य हो सकता है।

10.2.2.4 परिवार (Family)

बालक की प्रथम पाठशाला उसका घर है। यहीं से उसे त्याग, सहिष्णुता, मैत्री, करुणा आदि मूल्य प्राप्त होते हैं। यदि परिवार में अच्छे संस्कार मिलते हैं तो बालक का विकास भी सही होगा अन्यथा सुसंस्कारों के अभाव में बालक का व्यक्तित्व विकास सामान्य नहीं हो पाता है। मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि घर के परिवेश का प्रभाव व्यक्तित्व

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

पर पड़ता है। यदि बालक को माता–पिता का स्नेह मिलता है तो उसका विकास उचित तरह से होने लगता है। यदि माता–पिता का स्नेह नहीं मिलता है, पारिवारिक समस्याएं अधिक रहती हैं तो बालक का व्यवहार इससे प्रभावित होता है। माता–पिता का आपसी व्यवहार, परिवार के अन्य सदस्यों का व्यवहार, बालक के जन्म क्रम आदि बालक के व्यवहार के निर्धारक माने जाते हैं। यदि परिवार में अशांति, कलह, मूल्यों की अवहेलना है तो बच्चे का विकास भी उसी प्रकार का होगा। भग्न परिवार, माता–पिता का अति संरक्षण, अशिक्षा, दोषपूर्ण अनुशासन आदि कारक हैं जो बालक के व्यवहार को नकारात्मक रूप से प्रभावित करते हैं।

10.2.2.5 शिक्षा (Education)

शिक्षा विकास का माध्यम होती है। उचित शिक्षा व्यक्ति को सफलता की ओर ले जाती है। यदि बालक को प्रारंभ से ही उचित शिक्षा मिलती है तो उसका व्यवहार भी उसी प्रकार का होगा। शिक्षा में नैतिक मूल्यों की मान्यता हो तो बालक का चरित्र नैतिक बनेगा। यदि बालक को सर्वांगीण व्यक्तित्व के विकास के अनुरूप शिक्षा दी जाती है तो उसका व्यवहार भी संतुलित होगा। शरीर, मन और भावों की स्वस्थता में ही बालक की संपूर्ण स्वस्थता निर्भर करती है।

10.2.2.6 सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारक (Social&Cultural Factors)

समाज एक बहुत बड़ी शक्ति मानी जाती है। मनुष्य का व्यवहार भी इसी की देन होती है। सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों, रीति–रिवाजों, आदर्शों, आदर, मान, प्रतिष्ठा आदि का समाज में वर्चस्व होता है तो सामाजिक स्थिति स्वस्थ मानी जाती है। इनके अभाव में सामाजिक स्थिति रुग्ण होती है। इसलिए व्यवहार को प्रभावित करने में समाज का हाथ भी होता है। यदि समाज में व्यक्ति को उचित मान–सम्मान, प्रतिष्ठा मिल जाती है तो वह अपना विकास आसानी से कर लेता है। अन्यथा उसके भीतर हीन भावना उत्पन्न हो जाती है जो उसे मानसिक रूप से पीड़ित करती है।

10.2.2.7 आर्थिक कारक (Economical Factor)

एक समय ऐसा था जब जीवन–यापन के लिए धन ही एकमात्र साधन नहीं माना जाता था। प्रगति के लिए इस युग में धन के बिना जीवन–यापन कठिन हो जाता है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति को यह ध्यान नहीं रहता है कि उसे क्या करना चाहिए, क्या नहीं। यदि वह इस तरह का व्यवहार करता रहेगा तो मानसिक रूप से रोगग्रस्त हो सकता है। धन के अभाव में व्यक्ति अपनी आवश्यकता पूर्ति भी नहीं कर पाता है तो वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु अनैतिक कार्य करने लग जाता है, आपराधिक एवं हिंसक कार्यों की ओर प्रवृत्त होकर आवश्यकता पूरी करता है। इसलिए आर्थिक विपन्नता व्यक्ति के लिए बाधक भी हो सकती है।

10.3 नैतिक व्यवहार की कसौटी : सदाचार

सामाजिक जीवन जीने वाला व्यक्ति अकेला नहीं रह सकता है। वह दूसरों के साथ व्यवहार करता है। जब व्यक्ति के व्यवहार का अध्ययन करते हैं, तो यह प्रश्न सामने आता है कि उसका कौन–सा व्यवहार अच्छा है, कौन–सा बुरा, कौन–सा शुभ है, कौन–सा अशुभ और कौन–सा सत् एवं पुण्य है, कौन–सा असत् एवं पाप। भारतीय चिंतन में पुण्य–पाप, सत्–असत् के आधार पर व्यवहार की चर्चा की गई। पश्चिमी आचार–शास्त्र में शुभ–अशुभ के आधार पर व्यवहार की चर्चा हुई। मूल बात है कि अच्छे और बुरे व्यवहार की कसौटी क्या है? इस कसौटी के प्रश्न पर अनेक शाखाओं ने चिंतन किया, अनेक मनोवैज्ञानिक एवं नीतिशास्त्रीय कसौटियां हैं। व्यक्ति का कौन–सा व्यवहार अच्छा है, कौन–सा बुरा। स्वभाव से सभी प्राणी दुःख नहीं सुख चाहते हैं। इस स्वाभाविकता को मनोविज्ञान ने सुख का आधार माना। आचारांग सूत्र का वाक्यांश है–'सुहसाया, दुहपडिकूला' अर्थात् सभी सुख चाहते हैं, दुःख किसी को प्रिय नहीं है। प्राणी का स्वभाव ही है कि वह अनुकूल वेदना चाहता है, प्रतिकूल नहीं। इस स्वभाव को ही आचार, नैतिकता और व्यवहार की कसौटी बना लिया गया है। सुखद ही नैतिक है के आधार पर अनेक उलझने पैदा हो जाती हैं। इससे समाज की व्यवस्था पर बुरा असर पड़ता है। यदि शराब सुखद है तो शराबी का व्यवहार नैतिक नहीं हो सकता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

यदि इसे ही नैतिक माना जाए तो अनैतिक कर्म तो फिर बचेगा ही नहीं। सुख की परिभाषा एक नहीं है। यह भिन्न–भिन्न रुचियों और इच्छाओं पर आधारित होती है। प्रत्येक व्यक्ति की सुखानुभूति भिन्न–भिन्न हो सकती है। किसी को क्रोध करने में सुख मिलता है तो किसी को गाली देने में। व्यक्ति के ऐसे अनेक व्यवहार हैं जो दुःखद होकर भी नैतिक होते हैं और सुखद होकर भी अनैतिक होते हैं।

नैतिकता की कसौटी पर दो चिंतन प्रस्तुत होते हैं। प्रथम चिंतन है कि जिस देश, काल में जिस कर्म या व्यवहार को समाज के द्वारा या जनसमूह द्वारा वांछनीय माना जाए, वह व्यवहार नैतिक है। यह स्वीकृति लौकिक है। यह नितांत व्यावहारिक कसौटी है, सार्वभौमिक नहीं क्योंकि नैतिकता की परिभाषाएं भी बदलती रहती हैं। एक देश काल में जो नैतिक होता है वही दूसरे देश काल में अनैतिळ माना जाता है। इसलिए ये कसौटियां व्यवहार के धरातल पर ही हैं। नैतिकता की वास्तविक कसौटी है–'जे निज्जण्णे से सुहो' अर्थात् जिस आचरण के द्वारा संस्कार बंधते हैं, सघन होते हैं, वह अनैतिक है। जो निर्जरा है, वह सुख है और जो बंध है, वह दुःख है। जो सुख कर्म विलय से और दुःख कर्मबंध से होता है वह नैतिकता-अनैतिकता का आधार बनता है। समग्रता से चिंतन करने पर यह स्पष्ट होता है कि व्यवहार के मूल्यांकन में नैतिकता की कसौटी ही सहयोगी हो सकती है। इसी के आधार पर सारे व्यवहार की समस्या को सुलझाया जा सकेगा।

शाब्दिक व्युत्पत्ति की दृष्टि से सदाचार दो शब्दों से मिलकर बना है–सत्+आचार। अर्थात् जो आचरण सत् है, उचित है, वह सदाचरण है। फिर भी यह प्रश्न बना रहता है कि सत् आचरण क्या है? यद्यपि आचरण के कुछ प्रारूपों को सदाचार तथा कुछ आचरण को दुराचार कहते हैं कितु मूल प्रश्न यह है कि कौन-सा तत्त्व है जो किसी आचरण को सदाचार या दुराचार बनाता है। अक्सर कहा जाता है कि झूठ बोलना, चोरी करना, हिंसा करना, व्याभिचार करना आदि दुराचार है तथा करुणा, मैत्री, दया, सहानुभूति, सत्यवादिता आदि सदाचार है। किंतु वह आधार कौन–सा है जो चोरी, हिंसा आदि को दुराचार तथा मैत्री, करुणा आदि को सदाचार की कोटि में रखता है। यदि सत् या उचित के अंग्रेजी पर्याय पर विचार करें तो यह लैटिन शब्द (Rectwo) से बना है। जिसका अर्थ है नियमानुसार। अर्थात् जो आचरण नियमानुसार है वह सदाचार है और जो नियम विरुद्ध है वह दुराचार है। यहां नियमों से तात्पर्य सामाजिक एवं धार्मिक नियमों या परंपराओं से है। भारतीय परंपरा में भी सदाचार शब्द की ऐसी ही व्याख्या मनुस्मृति में मिलती है–

तस्मिनदेशे य आचारः पारम्पर्यक्रमागतः।
वर्णनां सान्तरालानां स सदाचार उच्यते।।

अर्थात् जिस देश, काल और समाज में जो आचरण परंपरा से चला आता है, वही सदाचार कहा जाता है। इसका अर्थ है कि परंपरागत आचरण के नियमों का पालन करना ही सदाचार है।

कोई भी आचरण समाज में स्वीकृत है, केवल इसी आधार पर सत् या उचित नहीं होता है। वास्तविकता यह है कि वह सत् है, उचित है इसलिए स्वीकृत होता है। महाभारत के शांतिपर्व में दुर्योधन ने कहा था–

जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः।
जानम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः।।

अर्थात् मैं धर्म को जानता हूं किंतु प्रवृत्ति नहीं होती और मैं अधर्म को जानता हूं पर उससे निवृत्ति नहीं होती।

आचरण की मूल्यवत्ता स्वयं आचरण पर न होकर उसके परिणाम या साधन पर निर्भर करती है। किसी आचरण की मूल्यवत्ता का निर्धारण उसके समाज पर पड़ने वाले प्रभाव के आधार पर भी होता है। अर्थात् अमुक आचरण का समाज में क्या प्रभाव पड़ता है, समाज की क्या प्रतिक्रिया रहती है आदि। फिर भी मूल्यवत्ता का अंतिम आधार तो कोई साध्य या आदर्श पर ही विचार करना होगा। वस्तुतः मानव जीवन का परम साध्य ही वह तत्त्व है जो सदाचार का मापदंड या कसौटी बनता है।

10.3.1 चरित्र एवं आचरण (Character and Conduct)

साधारणतया चरित्रवान व्यक्ति वह होता है जिसका आचरण अच्छा होता है पर यह इसका व्यापक अर्थ नहीं है। चरित्र का अर्थ है व्यक्ति की शारीरिक तथा मानसिक प्रकृति जिसके कारण वह अन्य व्यक्तियों से भिन्न होता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

विवेक बुद्धि (Rationality) व्यक्ति का विशेष गुण होता है। इसके कारण व्यक्तियों में समानता है। व्यक्ति की शारीरिक प्रकृति या उनकी मानसिक और नैतिक प्रकृति के कारण ही उनमें भेद होता है। व्यक्ति में निहित मानसिक या नैतिक विशेषताओं को ही चरित्र कहा जाता है। व्यक्ति में कुछ प्रवृत्तियां जन्मजात होती हैं। बचपन में व्यक्ति की क्रियाएं समान नहीं होती हैं। विकास के साथ–साथ व्यक्ति का अपने कार्यों पर नियंत्रण या परिष्कार कर उचित–अनुचित संकल्प करने का अभ्यास पड़ जाता है। इसलिए चरित्र का अर्थ संकल्प (इच्छा) का अभ्यास है। जो व्यक्ति अभ्यासपूर्वक अच्छा आचरण करता है उसे चरित्रवान कहा जाता है। व्यक्ति में स्वतंत्र इच्छाशक्ति होने के कारण वह अन्य प्राणियों से भिन्न होता है। वह स्थितियों के अनुरूप तथा उसके विपरीत भी कार्य करता है। उचित–अनुचित का विचार कर अपनी स्वतंत्र इच्छाशक्ति के अनुरूप कर्म करता है। वह अच्छे संकल्पों से अपने चरित्र का विकास कर सकता है। सिर्फ एक दो अवसरों पर ही अच्छे कर्म करने से ही चरित्र अच्छा नहीं हो जाता है। जो व्यक्ति हमेशा उचित इच्छा रखता है, अच्छे कर्म करता है, उसका ही चरित्र अच्छा कहा जाता है।

आचरण व्यक्ति के ऐच्छिक तथा अभ्यासजन्य कर्म को माना जाता है। इसलिए आचरण इच्छा के अभ्यास अर्थात् चरित्र पर निर्भर है। आचरण व्यक्ति के चरित्र का व्यक्त रूप होता है। इसलिए चरित्र का संबंध व्यक्तित्व से है तो आचरण का संबंध कर्म से। इन दोनों का संबंध उसी प्रकार का होता है जैसा कि वृक्ष का जड़ और उसके फल से संबंध होता है। चरित्र और आचरण एक–दूसरे के पूरक हैं। चरित्र के आधार पर आचरण और आचरण के आधार पर चरित्र का निर्माण होता है।

10.3.1.1 चरित्र का विकास

मानव चरित्र परिवर्तनशील है। जीवन काल में इसका विकास होता रहता है जो निम्न बातों पर निर्भर करता है–

1. संकल्प बल एवं संयम के आधार पर,
2. नैतिक आदर्श की व्यापक धारणा तथा कर्त्तव्य की गहरी अंतर्दृष्टि पर,
3. कर्त्तव्यों का नित्य पालन,
4. कर्मों की सच्चाई और सदाचार।

व्यक्ति यदि उपरोक्त चारों बातों को अपने जीवन में उतारे तो उसका चरित्र विकसित होता है।

10.3.1.2 अभ्यास (Habit)

ऐच्छिक कर्मों को बार–बार करने से उनका अभ्यास हो जाता है। प्रारंभ में यह कार्य कठिन अवश्य है पर इसके लिए संकल्प या प्रयत्न की आवश्यकता होती है। यदि बार–बार उसी कर्म को किया जाए तो इसके लिए संकल्प या चेतना की आवश्यकता नहीं रहती है। सुकरात ने जहां ज्ञान को धर्म (सद्गुण) कहा है वहीं अरस्तू ने धर्म को अभ्यास कहा है। सुकरात के ज्ञान का अर्थ है विशेष अवस्था में मनुष्य के कर्त्तव्य का ज्ञान। ऐसा ज्ञान जो विवेक से ही संभव है। नैतिक विवेक से ही व्यक्ति अच्छे कर्म करता है। इसलिए कर्तव्यों के अभ्यास से ही धर्म की उत्पत्ति होती है। धर्म के लिए विवेक और अभ्यास दोनों आवश्यक हैं। इसलिए मैकेंजी का यह विचार मान्य होता है कि धर्म में विवेक और अभ्यास दोनों हैं।

10.3.2 विवेक एवं व्यवहार

व्यक्ति यदि भीड़ से हटकर एक व्यक्ति के रूप में अपने विवेक का उपयोग करता है तो उसका व्यवहार बुरा नहीं हो सकता है। कई बार व्यक्ति भीड़ में रहकर वैसा ही व्यवहार करता है जैसे भीड़ का व्यवहार होता है। यदि व्यापक रूप से विचार किया जाए तो व्यक्ति कभी–कभी उस लकड़ी के लट्ठे की भांति हो जाता है जिसका अपना कोई अस्तित्व नहीं है। लकड़ी का लट्ठा जब नदी या नाले की धारा में बहता है तो कभी वह किनारों से टकराता है या झाड़–झंकाड़ों या सेवार में उलझकर रह जाता है क्योंकि वह लकड़ी का लट्ठा पानी की धारा से जुड़ा हुआ है। यदि उस लकड़ी को नौका का आकार दिया जाए तो वह मल्लाह द्वारा इच्छानुसार यात्रा करती है। इसी प्रकार

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

यदि प्रवाह में बहने वाले व्यक्ति को भी नौका का रूप दे दिया जाए तो उसका व्यक्तित्व भी निखर जाता है। व्यक्ति लट्ठे के रूप में नहीं नौका के रूप में होता है। यह उसका दुर्भाग्य है कि उसका विवेक जागृत नहीं रहता है इसी कारण से वह सही रूप से नहीं रहता है। यदि उसका विवेक जागृत हो जाए तथा वह अपने कर्त्तव्य के प्रति जागरूक हो जाए तो वह भीड़ या जानवरों के समूह की भांति व्यवहार नहीं करेगा वरन् वह एक व्यक्ति अथवा प्रयत्न द्वारा बनाई गई नौका की तरह सही राह का चुनाव करेगा। व्यक्ति का विवेक उसका स्वामी है। उसका उपयोग व्यवहार में महत्त्वपूर्ण माना जाता है अन्यथा व्यवहार सामान्य नहीं रहता है। विवेक प्रकृति का वरदान है। यदि इसकी उपेक्षा की जाती है तो हानिकारक परिणाम व्यक्ति के सामने आते हैं। वर्तमान समय में इस दुःखद परिणाम की छाया समाज में व्याप्त है। यदि व्यक्ति विवेकपूर्ण व्यवहार करता है तो व्यक्तिगत, सामाजिक तथा राष्ट्रीय जीवन का स्वरूप परिवर्तित हो जाता है। इसके अभाव में अराजकता, भ्रष्टाचार, तानाशाही आदि प्रवृत्तियों को उभरने का अवसर मिल जाता है। भौतिकवादी चकाचौंध में यदि विवेकपूर्ण व्यवहार न किया जाए तो व्यक्ति के सामने समस्याएं ही रहेंगी। यदि व्यक्ति को नौका बनकर व्यवहार करना है तो उसे सभी समस्याओं का भी सामना करना पड़ेगा। नौका को आगे बढ़ाने हेतु नाविक (विवेक) को सभी समस्याओं एवं परिस्थितियों को पार कर विजय प्राप्त करनी होगी।

विवेक को सुरक्षित जीवन का नियामक माना गया है। व्यक्ति अपने विवेक को जब चिंतन तक सीमित कर देता है तब वह भीड़ या समूह के रूप में व्यवहार करता है व्यक्ति इसलिए भ्रष्ट व्यवहार करने लगता है क्योंकि अन्य व्यक्ति भी वैसा व्यवहार करते हैं अर्थात् दूसरों की गलत देखा–देखी। यदि सदाचार अच्छा है तो पहले स्वयं को सदाचारी बनना होगा। जब व्यक्ति की कथनी-करनी में, चिंतन और वाणी में सामंजस्य स्थापित हो जाता है तो वह सदाचार का मार्ग ही अपनाता है। इसी में जीवन की सार्थकता निहित रहती है। ज्ञान का मात्र संकलन करना उपयोगी नहीं होता है। उपयोगी है उसके अनुरूप आचरण। ज्ञान की सार्थकता तब होती है जब उस ज्ञान का सही उपयोग किया जाता है। स्वामी विवेकानंद का कथन है कि विवेक व्यक्ति का सर्वश्रेष्ठ और सर्वाधिक पराक्रम है। इतिहास साक्षी है कि विवेक के अभाव में जो भी कार्य हुए हैं, वे विध्वंसात्मक थे। इसलिए इतिहास से सबक लेकर भी यदि व्यक्ति अपने विवेक का उपयोग कर व्यवहार करेगा तो उसका जीवन आनन्द एवं शांति से भर उठेगा। यही उसके जीवन की सार्थकता भी है।

बोध प्रश्न 1:

1. *व्यवहार के तीन अंग कौन से हैं?*
2. *व्यवहार और परिवार का क्या सम्बन्ध है?*
3. *चरित्र का विकास कैसे होता है?*

10.4 आचरण से संबंधित विभिन्न मत

व्यक्ति की समस्त जिज्ञासाओं एवं उपलब्ध ज्ञानराशियों की चरितार्थता उसके आचार की शुद्धता एवं व्यवस्था में निहित हैं। सदाचार के द्वारा ही व्यक्ति के जीवन में तरलता एवं गतिमत्ता आती है। सदाचारी व्यक्ति अपना जीवन तो सुखपूर्वक जीता है साथ ही दूसरों को भी सद्मार्ग पर ले जाता है। सदाचारी व्यक्ति का जीवन परोपकार, प्रामाणिकता, निःस्वार्थ भाव, मैत्री, अहिंसा, सत्य आदि मूल्यों से समावेशित होता है। ये गुण वैयक्तिक तथा सामाजिक परिप्रेक्ष्य में व्यक्ति के जीवन में आवश्यक माने जाते हैं।

व्यक्ति सामाजिक प्राणी है। समाज में रहकर ही वह अपना विकास कर सकता है। व्यक्ति के कर्मों का प्रभाव समाज पर पड़ता है। इसीलिए व्यक्ति के कर्मों की प्रशंसा या निंदा की जाती है अर्थात् उसके कर्मों का मूल्यांकन किया जाता है। अच्छे कर्मों की प्रशंसा तथा खराब कर्मो की निंदा होती है। कभी–कभी एक ही कर्म किसी के लिए अच्छा होता है तो दूसरे के लिए बुरा। अर्थात् एक ही कर्म पर भिन्न–भिन्न दृष्टिकोण होते हैं। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि बचपन से ही बच्चों को उनके परिवार से जो शिक्षा मिलती है, उन्हीं का आचरण वह करता

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

है। व्यक्ति के बचपन का वातावरण एक–सा न होकर भिन्न–भिन्न होता है। इसलिए व्यक्ति का दृष्टिकोण भी भिन्न–भिन्न होता है। उसके विचार भी भिन्न होते हैं। साधारणतः समाज में जो प्रचलित तरीके होते हैं, वे ही व्यक्ति के अच्छे–बुरे कर्मों को पहचानने के आधार बनते हैं क्योंकि वही समस्त विचारों के आधार बनते हैं। इसीलिए बिना शास्त्र अध्ययन के ही दूसरों की प्रशंसा या निंदा की जाती है। प्रश्न है कि व्यक्ति के किसी कार्य को अच्छा या बुरा क्यों कहते हैं? साधारणतः इसके दो उत्तर मिलते हैं– प्रथम तो यह है कि यह कार्य अच्छा या बुरा है। इसलिए उसे वैसा ही कहा जाता है। व्यक्ति को यह चेतना रहती है कि क्या अच्छा है, क्या बुरा? भले ही अच्छा–बुरा क्या है, कौन–से आदर्श ऐसे हैं जिन्हें अच्छा या बुरा कहा जाए इसकी जानकारी नहीं होती है। दूसरा उत्तर है–समाज जिन कर्मों को अच्छा या बुरा मानता है, इसलिए उन्हें उसी रूप में लिया जाता है। यदि सामाजिक तौर–तरीके, रीति–रिवाज भिन्न–भिन्न होते हैं तो क्या अच्छा–बुरा भी भिन्न होगा? इन दोनों ही परिस्थितियों में आचरण क्या होना चाहिए, इसे अनायास ही मान लिया जाता है। या तो व्यक्ति को उसकी चेतना नहीं रहती है या व्यक्ति उसकी मीमांसा नहीं करते हैं। इसी कारण से विचार भिन्न होते हैं और आपसी संघर्ष पैदा होते हैं। जो कर्म एक के लिए उचित है, वही दूसरे के लिए अनुचित हो सकता है।

विभिन्न दार्शनिकों ने नीति या आचरण की व्याख्या इस प्रकार से की है–

सुकरात–सुकरात के विचारों का मूल मंत्र आत्मज्ञान (Know thy self) है। उनका विचार था कि जीवन का वास्तविक सुख उसके उचित कर्मों का ही परिणाम होता है। व्यक्ति को जो दुःख या दुर्भाग्य मिलता है वह परिणाम है उसके अशुभ कर्मों का अर्थात् व्यक्ति शुभ कर्म करता है तो उसका परिणाम भी शुभ होता है और अशुभ कर्म करता है तो उसका परिणाम भी अशुभ होता है। व्यक्ति न दुःखी होना चाहता है और न ही जान–बूझकर कोई गलत कार्य करता है। जिस व्यक्ति को शुभ के बारे में जानकारी होती है, वह शुभ कर्म करता ही है। सुकरात ने ज्ञान को सद्गुण माना है। सद्गुण सार्वभौम तथा वस्तुनिष्ठ है। व्यक्ति को किसी भी परिस्थिति में अशुभ आचरण नहीं करना चाहिए। अशुभ आचरण की अपेक्षा दुःख झेलना श्रेयस्कर है। सुकरात का मानना था कि व्यक्ति जितना चिंतन और ज्ञानोपार्जन करता है, उतना ही उसका कर्म शुभ होता है। कोई भी व्यक्ति दुर्गुणी इसलिए होता है कि उसमें ज्ञान का अभाव रहता है।

प्लेटो–प्लेटो ने विवेक को सद्गुण कहा है। न्याय को मौलिक सद्गुण माना है जो सभी सद्गुणों की जननी है। उन्होंने मानव स्वभाव की तीन शक्तियों–बुद्धि, संकल्प शक्ति और संवेदन शक्ति से संबंधित तीन प्रकार के सद्गुणों का उल्लेख किया है। बुद्धि का सद्गुण है सही विचार, संकल्प शक्ति का साहस और संवेदन शक्ति का आत्म नियंत्रण। कोई व्यक्ति तब साहसी होता है जब विवेक की आज्ञाओं का पालन करता है। आत्म नियंत्रित व्यक्ति वह होता है जिसका संकल्प और वासनाएं बुद्धि का पालन करे। जब इन तीनों शक्तियों को समायोजित किया जाए तो वह क्रिया न्यायपूर्ण ही होगी।

बौद्ध नीति दर्शन–बौद्ध दर्शन मुख्यतः आचार प्रधान दर्शन है। बुद्ध का कहना था कि यदि किसी को विषैला तीर लग जाए तो उसका पहला कार्य है उस तीर को निकालना, घाव का उपचार करना, न कि यह चिंतन करना कि तीर किसने, क्यों, कैसे चलाया आदि पर चिंतन करना। उन्होंने व्यक्ति और समाज की उन्नति के लिए सही मार्ग के विषय में चिंतन किया। उनके चार आर्य सत्य हैं–संसार में दुःख है, उसका कारण है, उस दुःख को मिटाया जा सकता है तथा दुःख मिटाने हेतु मार्ग है। इसमें आठ अंग होने के कारण ही इसे अष्टमार्ग कहा गया है। इसका पालन सभी के लिए बताया गया है। ये अंग हैं–सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाणी, सम्यक् कर्म, सम्यक् आजीविका, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति एवं समाधि। व्यक्ति जब इस मार्ग का पालन करता है व्यक्ति का आचार पक्ष सुदृढ़ हो जाता है। इसी में व्यक्ति तथा समाज का कल्याण निहित है।

जैन नीति दर्शन–जैनदर्शन में भी आचार नीति को बहुत महत्त्व दिया गया है। यहां सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन और सम्यक् आचरण पर बल दिया गया है। पांच व्रतों का उल्लेख किया गया है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह। इनके पालन से व्यक्ति के जीवन में सही दिशा का निर्माण होता है। व्यक्ति के भीतर यदि अच्छी भावनाएं विद्यमान रहती हैं तो व्यक्ति किसी का अहित नहीं कर सकता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

गांधी का नैतिक चिंतन–गांधी जी ने नैतिकता को सर्वोच्च माना है। नीति दर्शन को शुभ–अशुभ का विवेचन तथा मानव कल्याण हेतु मार्ग बतलाया है। इसके अभाव में सामाजिक प्रगति संभव नहीं होती है। इसके बिना मानव दिशाहीन तथा उद्देश्यहीन हो जाता है। अतः कर्त्तव्यों का ज्ञान किसी भी समाज के लिए आवश्यक है। गांधीजी नैतिकता के सैद्धान्तिक पक्ष से व्यावहारिक पक्ष को अधिक महत्त्व देते थे। गांधीजी के अनुसार सारे अनैच्छिक कर्म नीतिशून्य हैं और ऐच्छिक कर्म नीतियुक्त कर्म हैं। गांधीजी ने ग्यारह प्रकार के सद्‌गुणों की चर्चा की है जिनका उपयोग मानव व्यवहार को उत्तम बनाने में सहायक बनता है–अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, अस्तेय, अस्वाद, अभय, शारीरिक श्रम, स्वदेशी, अस्पृश्यता निवारण, सर्वधर्म समभाव।

वेदान्त–वेदान्त में बताया है कि आचरण कर्त्तव्य की भावना से होना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति में ब्रह्म माना गया है। अतः किसी भी व्यक्ति को अपने किसी भी लक्ष्य पूर्ति हेतु साधन नहीं बनाना चाहिए। सभी समान हैं। अतः व्यक्ति का एक–दूसरे के प्रति सम्मान का दृष्टिकोण होना चाहिए। वेदान्त में यह भी बताया गया है कि व्यक्ति को अपनी इच्छाओं को दबाने की अपेक्षा विवेक द्वारा उन्हें सही रास्ते पर लाना चाहिए। वेदान्त का मत व्यावहारिक मत है। वेदों में प्रत्येक व्यक्ति को समाज तथा ईश्वर के प्रति कर्त्तव्यों के पालन का आदेश दिया गया है।

10.5 व्यवहार के बाधक तत्त्व

10.5.1 इच्छा

फ्रायड ने लिखा है कि व्यक्ति के प्रत्येक व्यवहार के पीछे एक इच्छा होती है। बिना इच्छा के व्यक्ति एक अंगुली भी नहीं हिलाता है। व्यक्ति का सारा व्यवहार अनुबंधित होता है। जहां इच्छा का अभाव होता है वहां कोई व्यवहार घटित नहीं होता है। भले ही चेतन जगत् में इच्छा विद्यमान रहती है। अचेतन इच्छा का जगत् बहुत बड़ा माना जाता है। हमारा चेतन इच्छाओं पर ही नहीं बल्कि अचेतन इच्छओं पर भी अनुशासन होना चाहिए। इच्छाओं का संघर्ष बहुत बड़ा होता है। व्यक्ति के भीतर एक प्रकार का द्वन्द्व चलता रहता है। एक प्रेरणा उसे लक्ष्य की ओर प्रेरित करती है तो दूसरी प्रेरणा उसे रोक देती है। इच्छाओं के संघर्ष को कम करने हेतु व्यक्ति को चुनाव की आवश्यकता पड़ती है। इच्छा के साथ यदि विवेक होता है, समस्या नहीं होती है। जहां विवेक का अभाव है वहां इच्छा व्यक्ति को अभिभूत कर देती है। व्यक्ति के पास एक ऐसा मस्तिष्क है जो इच्छाओं की कांट–छांट कर सकता है, उनका चुनाव कर सकता है। यही महत्त्वपूर्ण बात है। व्यक्ति में कभी सद् तथा कभी असद् इच्छाएं जागती रहती हैं। ऐसे समय में यदि व्यक्ति सही चुनाव करता है, वह अपने सद् आचरण पर अडिग रहता है तो समस्या उसे नहीं घेरती है। व्यक्ति बुराई को जानते हुए भी उसका आचरण करता है क्योंकि इच्छाओं का संघर्ष उसके भीतर चलता रहता है। इच्छओं पर अनुशासन करने वाला व्यक्ति पराजित नहीं होता है। उसकी सारी समस्याएं सुलझ जाती हैं। इच्छा का भी अपना महत्त्व होता है। वह जीवन यात्रा का एक अनिवार्य अंग है। उसकी उपेक्षा करना भी संभव नहीं है और उसकी हर आज्ञा को स्वीकार करना भी हानिकारक है इसलिए इन दोनों के बीच का मार्ग है–इच्छा का परिष्कार अर्थात् नैतिकता।

10.5.2 अहं भाव

अहं भाव व्यक्ति को सदाचारी होने से रोकता है। जिस व्यक्ति में अहं भाव का आधिक्य होता है वह व्यक्ति नैतिकता से दूर रहता है। अहं भाव व्यक्ति को सच्चाई से दूर ले जाता है। जब व्यक्ति सत्य का अवलोकन नहीं करता है तो वह सम्यक् व्यवहार भी नहीं कर सकता है। अहं भाव से वशीभूत व्यक्ति स्वयं को ही शक्तिशाली, ज्ञानसपन्न समझ बैठता है। यह उसकी भूल होती है। यथार्थ क्या है, वह इससे दूर रहता है। अहम् भाव में व्यक्ति के भीतर आग्रह होता है। व्यक्ति के भीतर विनम्रता होती है तो व्यक्ति सत्य की प्राप्ति कर सकता है। व्यवहार में विनम्रता होने पर व्यक्ति सफलता की ओर बढ़ता है। इसी के कारण व्यक्ति में अनेक गुणों के पैदा होने की संभावना रहती है। अहं भाव होने पर व्यक्ति सही आचरण नहीं कर पाता है। जिस व्यक्ति में विनय है, विनम्रता है वह व्यक्ति ज्ञानी होने पर भी उसका प्रदर्शन नहीं कर सकता है। उसका ज्ञान उसके व्यवहार में झलकता है। अहंकारी व्यक्ति भीतर से खोखला होने पर भी अपनी प्रतिष्ठा बनाने की कोशिश करता है। अपने को प्रतिष्ठित करने में ऐसा व्यक्ति सही–गलत,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

शुभ–अशुभ, पुण्य–पाप, सदाचार–कदाचार आदि को विशेष महत्त्व नहीं देता है। इसलिए जीवन में विनय को, सदाचरण को महत्त्व दिया गया है। इसी में मानव कल्याण निहित होता है।

10.5.3 अनास्था

एक जमाने में सतत् परोपकार करने वाला व्यक्ति भी कभी-कभी दूसरों का शोषण करते समय थोड़ा–सा भी नहीं हिचकिचाता है। इसका कारण उसके मन की यह शंका है कि क्या सरलतापूर्ण व्यवहार से कल्याण हो सकता है? इसी आशंका ने उसके व्यवहार को अमानवीय बनाया है, अशुद्ध बनाया है। व्यवहार शुद्धि को साधन शुद्धि भी कहा जाता है। व्यक्ति में भोगोपभोग की जब अति लालसा उत्पन्न होती है तो वह अपने लक्ष्य को किसी न किसी प्रकार से प्राप्त करने का प्रयास करता है। इसी क्रम में साधन शुद्धि की बात धरी की धरी रह जाती है। व्यक्ति के इस व्यवहार से व्यक्ति स्वयं तथा समाज दोनों ही प्रभावित होते हैं। जब व्यक्ति को यह पता है कि अच्छा या बुरा क्या है तथा उसके बाद भी वह गलत कार्य करता है तो इससे यही लगता है कि व्यक्ति में अच्छे साधन के प्रति आस्था नहीं है। जिस व्यक्ति की आस्था पवित्र साधनों में होती है वह व्यक्ति अपवित्र कार्य नहीं कर सकता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि व्यक्ति में अनास्था की भावना उसके व्यवहर को प्रभावित करती है। जब व्यक्ति का साध्य और साधन दोनों ही शुद्ध होंगे तो उसका प्रभाव व्यवहार में प्रकट होगा। साधन शुद्धि के साथ–साथ साध्य शुद्धि तथा साध्य शुद्धि के साथ–साथ साधन शुद्धि अनिवार्य है। जब तक व्यक्ति का इनमें विश्वास है, उसकी इन दोनों पर आस्था है तब तक उसका व्यवहार अशुद्ध नहीं हो सकता है।

10.5.4 मूल्यों का अभाव

सामाजिक जीवन जीने वाला व्यक्ति यदि मूल्यों में विश्वास करता है, उनका पालन करता है तो इससे व्यक्ति का जीवन सुखमय होता है। इनके अभाव में व्यक्ति समस्या ही पैदा करता है। नैतिकता, प्रामाणिकता, कर्त्तव्य, सहिष्णुता आदि मानवीय मूल्यों के अभाव में व्यक्ति अमानवीय व्यवहार करने लगता है तो वह समस्या का विषय बन जाता है जो सिर्फ व्यक्ति या समाज ही नहीं वरन् राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की समस्या बन जाती है। इस समस्या को उत्पन्न भी व्यक्ति करता है तो समाधान भी उसी के हाथ में है। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी का कहना है कि नैतिक मूल्यों की समस्या जागतिक समस्या है। मूल्यों का ह्रास हो रहा है। प्रत्येक चिंतनशील व्यक्ति इस समस्या से व्याकुल है। मूल्यों की प्रतिष्ठा हो, यही सबकी आकांक्षा और अपेक्षा है। मूल्यों की प्रतिष्ठा करना ही हमारे कर्त्तव्य का विषय है।

10.5.5 अन्य

व्यक्ति के व्यवहार में वे सभी तत्त्व बाधक हैं जो उसके व्यवहार को असामान्य बनाते हैं। अति क्रोध, उत्तेजना, सामंजस्य का अभाव, परिग्रह, लालच आदि वृत्तियां उसके व्यवहार को असंतुलित बनाती हैं। व्यक्ति में कुछ मौलिक वृत्तियां पाई जाती है लेकिन उन वृत्तियों का संतुलन ही व्यक्ति के लिए लाभकारी होता है। जहां इन वृत्तियों का असंतुलन होता है वहीं ये व्यक्ति के लिए समस्या का कारण बनती हैं।

10.6 सम्यक् जीवन शैली के सूत्र

व्यक्ति का सारा प्रभाव उसकी जीवन शैली पर निर्भर करता है। जैसी व्यक्ति की जीवन शैली होगी, जीने का तरीका होगा, व्यक्ति का प्रभाव भी वैसा ही होगा। जीना अलग बात है तो जीने की कला दूसरी बात है। व्यक्ति जब कलात्मक ढंग से जीता है तो उसका जीवन सार्थक और सफल बन जाता है। कलात्मक ढंग से न जीने वाले व्यक्ति का जीवन नीरस, बोझिल तथा निरर्थक–सा प्रतीत होने लगता है। इसलिए जीवन शैली का ज्ञान और उसका उपयोग आवश्यक माने जाते हैं। व्यक्ति यदि अपने जीने की शैली बदल दे तो उसका संपूर्ण जीवन सुख और शांतिपूर्ण होगा। उसकी जीवन शैली परिवर्तित होने का अर्थ है—व्यवहार में परिवर्तन क्योंकि व्यक्ति जो भी कार्य करता है उसका मूल्यांकन होता है उसके व्यवहार से। इसलिए व्यवहार दर्पण है। व्यक्ति के क्रियाकलापों का उसमें प्रतिबिम्ब बन जाता है। इसलिए वह प्रतिबिम्ब सही तरीके का

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

हो उसके लिए व्यक्ति को पुरुषार्थ करना होगा। बिना पुरुषार्थ के उपलब्धि नही होती है। व्यक्ति अपने जीवन में कुछ छोटी-छोटी परंतु महत्त्वपूर्ण बातों का समावेश कर ले, अपने जीने का तौर-तरीका बदल दे तो व्यक्ति का जीवन सार्थक बन जाता है। ऐसा व्यक्ति स्वयं तथा दूसरों के लिए समस्या पैदा नहीं करता है वरन् सहायक ही बनता है। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने जीवन शैली परिवर्तन के कुछ प्रमुख सूत्र दिए है जो व्यवहार परिवर्तन में सहायक सिद्ध होते हैं–

10.6.1 सम्यक् दर्शन

दृश्य जगत् में अनेक वर्ण और अनेक आकृतियां हैं। वे चक्षु द्वारा देखी जा सकती हैं इसलिए चक्षुदृष्टा हैं। वस्तुएं सीमित नहीं हैं, चक्षुदर्शन से भी परे हैं। चक्षु में वर्ण और आकृति से अधिक देखने की शक्ति नहीं होती है। जब आंतरिक चक्षु का उद्‌घाटन होता है तब वस्तु के असंख्य रूप प्रत्यक्ष होते हैं जो इंद्रियातीत हैं। यह अंत:चक्षु का दर्शन है। जब मोहकर्म की चेतना का विलय होता है तब दर्शन की चेतना जागती है। उसके जागने पर ही व्यक्ति वस्तु को यथार्थ दृष्टि से देखने लगता है। उसे चेतन और अचेतन की भिन्नता का स्पष्ट बोध हो जाता है। यही सम्यक् दर्शन है। आंतरिक तत्त्व बाहर नहीं आता है, बाहर आती है ध्वनि या उसका व्यवहार। व्यक्ति के लिए दृष्टि का बहुत मूल्य होता है। दृष्टि है तो संसार है वरन् सब कुछ शून्य है। भगवान् महावीर द्वारा प्रतिपादित दर्शन में भी दृष्टि का स्थान प्रथम है। 'सम्यक्-दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि-मोक्षमार्ग:' अर्थात् सम्यक् दृष्टि, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् आचरण–ये तीनों जिस बिंदु पर मिलते हैं, वहीं से मोक्ष का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। दृष्टि के सम्यक् होने पर ही ज्ञान और आचरण भी सम्यक् हो जाते हैं। दृष्टि का विपर्यय ज्ञान को भी अज्ञान बना देता है। एक ज्ञानी व्यक्ति का आचरण भी निर्विवाद नहीं रह सकता है। जब व्यक्ति की आंतरिक दृष्टि फूटती है तो व्यक्ति की जीवन धारा ही बदल जाती है।

सम्यक् दर्शन आचार-व्यवस्था का आधार माना जाता है। इसे संघ रूपी सुमेरु पर्वत की अत्यन्त सुदृढ़ और गहन आधारशिला कहा गया है। जिस पर ज्ञान और चरित्र रूपी उत्तम धर्म की मेखला अर्थात् पर्वतमाला स्थित हुई है। सम्यक् दर्शन के बिना न सम्यक् ज्ञान होता है और न ही सम्यक् ज्ञान के बिना सम्यक् आचरण होता है। सम्यक् आचरण के बिना सद्‌चरित्रता नहीं आती है। सद्‌चरित्रता के अभाव में कर्मावरण से मुक्ति नहीं होती है और न प्राणी का निर्वाण होता है। सम्यक् दृष्टिकोण वाला व्यक्ति पापाचरण नहीं करता है। व्यक्ति जो सत् या असत् आचरण करता है वह उसके दृष्टिकोण (दर्शन) पर ही निर्भर करता है। जिस व्यक्ति का दर्शन सम्यक् नहीं होता है उसका समस्त दान, तप, पुरुषार्थ आदि फलयुक्त होने पर भी अशुद्ध माना जाता है। भगवान् बुद्ध भी सम्यक् दर्शन को नैतिक जीवन के लिए आवश्यक मानते हैं। गीता में भी कहा गया है कि जिस व्यक्ति की जैसी श्रद्धा होती है, उसका दृष्टिकोण भी वैसा ही होता है। सम्यक् दर्शन एक जीवन दृष्टि है। बिना जीवन दृष्टि के जीवन का कोई अर्थ नहीं रह जाता है। व्यक्ति की जैसी दृष्टि होती है, वैसा ही उसका चरित्र बन जाता है। असम्यक् जीवन दृष्टि पतन की ओर तथा सम्यक् दृष्टि उत्थान की ओर ले जाती है। इसलिए यथार्थ जीवन दृष्टि का निर्माण जीवन में आवश्यक माना जाता है। सभी आचार-दर्शनों में अनासक्त एवं वीतराग जीवन दृष्टि को ही यथार्थ जीवन दृष्टि माना गया है।

किसी भी पदार्थ का मिलना संयोग है और उसका अलग होना वियोग है। संयोग और वियोग शुभ-अशुभ दोनों का होता है। संसार में संयोग-वियोग, शुभ-अशुभ, अनुकूलता-प्रतिकूलता का समय सबके जीवन में आता है। चाहे सम्यक् दृष्टि वाला हो या असम्यक् दृष्टि वाला हो परंतु दोनों में अंतर होता है। जिस व्यक्ति का दृष्टिकोण सम्यक् नहीं होता है वह अनुकूल पदार्थ का वियोग तथा प्रतिकूल पदार्थ का संयोग होने पर रागग्रस्त रहता है एवं आंसू बहाता है। इसके विपरीत सम्यक् दृष्टिकोण वाला व्यक्ति अनुकूल-प्रतिकूल पदार्थ के संयोग तथा वियोग में सम रहता है। वह उसमें उलझता नहीं है। जब तक व्यक्ति के भीतर सच्ची श्रद्धा एवं सत्य दृष्टि नहीं जागती है, तब तक व्यवहार में द्रव्य सम्यक्त्व का कोई मूल्य नहीं रहता है। दृष्टि

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

में परिवर्तन होने से जीवन स्वत: ही बदल जाता है। स्थान बदलने से जीवन नहीं बदलता है। जीवन की दिशा एवं दृष्टि परिवर्तन के बिना स्वयं का विकास नहीं हो पाता है।

10.6.2 अनेकान्त

अनेकान्त का दर्शन विस्तृत है। यदि व्यक्ति अपने जीवन में अनेकान्त के सिद्धान्तों का पालन करे तो व्यक्ति की समस्या का स्वत: समाधान हो जाता है। पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन में अनेक भेद देखे जा सकते हैं। जैसे—रुचि भेद, विचार भेद, चिंतन भेद आदि-आदि। ये भेद स्वाभाविक भी हैं क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति का चिंतन, मनन, दृष्टिकोण आदि भिन्न-भिन्न होते हैं। ऐसे भेदों की वजह से आपसी मन-मुटाव तथा संघर्ष आदि पैदा होते हैं। इसे अस्वीकार भी नहीं किया जा सकता है। इसका अर्थ यह भी नहीं है कि व्यक्ति हमेशा इन समस्याओं से ग्रसित रहे। स्वयं तथा दूसरों के लिए समस्याएं पैदा करे। ऐसे व्यवहार में परिवर्तन की आवश्यकता होगी। अपने जीवन में अनेकान्त दर्शन को उतारना होगा। सह-अस्तित्व के सिद्धान्त को जीवन में महत्त्व देना होगा। सभी व्यक्तियों का अपना-अपना अस्तित्व होता है। इसलिए व्यक्ति को एक-दूसरे की रुचियों, विचारों, भावनाओं का मूल्यांकन करना चाहिए। स्वयं को ही सत्य तथा दूसरों को असत्य मानना जीवन व्यवहार को कटु बनाना है। जीवन व्यवहार को मृदु बनाने हेतु दूसरे के विचारों का आदर करना चाहिए। उसमें सत्य खोजना चाहिए। यही मानव जीवन की सफलता का राज है। सिर्फ एक ही पक्ष से सोचना तथा दूसरे पक्ष को गौण कर देना सामाजिक जीवन में बाधक बनता है। इसलिए सभी विरोधी गुणधर्मों का सहावस्थान होगा तो व्यक्ति-व्यक्ति के बीच भेद-रेखा समाप्त हो जाएगी। अनेकान्त में सापेक्षता का भी समावेश होता है। व्यक्ति का जीवन सापेक्ष होता है, निरपेक्ष नहीं। प्रत्येक व्यक्ति दूसरों से कुछ अपेक्षाएं रखता है। एक व्यक्ति अगर भोजन भी करता है तो उसके पीछे न जाने कितने ही व्यक्तियों का हाथ होता है। व्यक्ति यदि निरपेक्ष हो जाए तो उसका जीवन मुश्किल हो जाता है। कई व्यक्तियों के सहयोग से ही उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। इस अवस्था में यदि व्यक्ति अहंकारवश स्वयं को निरपेक्ष माने तो इससे कई समस्याएं पैदा होती हैं। अनेकान्त की जीवन शैली विनम्रता की जीवन शैली है। समन्वय, सह-अस्तित्व, सापेक्षता आदि सूत्र उसके जीवन को आनन्दमय बना देते हैं।

10.6.3 अनावश्यक हिंसा का वर्जन

अहिंसा की पृष्ठभूमि में दया, करुणा, मैत्री, समत्व आदि की अनुभूति होती है। जो व्यक्ति आंतरिक धरातल पर नहीं जीता है, वह अहिंसा का आचरण भी नहीं कर सकता है। सामाजिक जीवन में पूर्ण अहिंसा तो नहीं किन्तु न्यूनतम अहिंसा का उपयोग और अनावश्यक हिंसा का न्याय किया जाए तो समस्याओं का समाधान आसान हो जाता है। जीवन जीने हेतु कुछ अनिवार्य हिंसा को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है लेकिन हिंसा का समर्थन भी नहीं किया जा सकता है। अहिंसा को जीवन में प्रविष्ट करने हेतु सामाजिक जीवन में अहिंसा का महत्त्व, अहिंसक समाज की दिशा में प्रस्थान हेतु तथा सामाजिक जीवन में हिंसा के तांडव को कम करने हेतु अहिंसा की न्यूनतम आचार संहिता का पालन किया जाए। इसी से फलितार्थ होगा संयममय जीवन। जब व्यक्ति संयममय जीवन जीएगा तो जाहिर है कि वह जीवन में अनावश्यक चीजों का उपभोग नहीं करेगा, उसकी सीमा होगी, उसके भीतर संवेदनशीलता होगी। इसका परिणाम होगा एक नई सृष्टि का निर्माण, सुखद जीवन का निर्माण।

10.6.4 सम, उपशम, श्रम

सम अर्थात् समानता। समानता समस्त प्राणीमात्र के प्रति। जब तक प्राणीमात्र को समानता की दृष्टि से नहीं देखा जाएगा, व्यक्ति स्वयं को भी दूसरे के समान नहीं देख पाएगा। यदि व्यवहार में प्राणीमात्र के प्रति समत्व का भाव है तो समस्या का प्रश्न ही नहीं होता है। उपशम अर्थात् शांति। व्यक्ति के भीतर निषेधात्मक भावों का अभाव होगा, क्रोध, मान, माया, लोभ का अल्पीकरण होगा तभी शांति का जीवन जीया जा सकता है। यदि व्यक्ति शांति का जीवन जीता है तो उसके सामने अन्य पदार्थ भी गौण हो जाते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जब व्यक्ति श्रमशीलता अर्थात् श्रम को महत्त्व देता है उस पर भरोसा करता है तो व्यक्ति अपने जीवन को सार्थक दिशा में लगा सकता है। कहा भी जाता है कि खाली दिमाग शैतान का घर होता है। व्यक्ति कुछ चिंतन करता है, उसकी क्रियान्विति करता है, किसी भी रचनात्मक कार्य में संलग्न रहता है तो व्यक्ति बुरे विचार, बुरे व्यवहार से बचा रहता है। श्रम अर्थात् परिश्रम करना।

10.6.5 इच्छा परिणाम

व्यक्ति की इच्छाएं अनन्त होती हैं। जब व्यक्ति इनमें उलझ जाता है तो वहां समस्याएँ पैदा हो जाती हैं। अति इच्छा से जीवन असंतुलित हो जाता है। जीवन में संतुलन के लिए आवश्यक हो जाता है कि व्यक्ति इच्छा का परिणाम करे। इच्छा की अति मृत्यु की जीवन शैली मानी जाती है। इच्छा का परिणाम कर, उस पर अंकुश लगाना, उसको सीमित करना, यथोचित इच्छा रखने का परिणाम होगा– वैयक्तिक तथा सामाजिक स्वस्थता। व्यक्ति इच्छाओं के आधार पर अपना जीवन–यापन करता है लेकिन समस्या तब उत्पन्न होती है जब व्यक्ति की इच्छा इतनी प्रबल हो जाती है कि वह सारी संपदा को ही समेटना चाहे, संग्रह करे। अति इच्छा समस्या का कारण न बने, इसलिए आध्यात्मिक, सामाजिक तथा व्यावहारिक दृष्टि से इच्छा परिणाम का सूत्र महत्त्वपूर्ण माना गया है।

10.6.6 सम्यक् आजीविका

सामाजिक प्राणी के जीवन निर्वाह हेतु आजीविका भी आवश्यक होती है। आजीविका ऐसी होनी चाहिए जिसमें प्रामाणिकता हो, क्रूरता न हो, लूट–खसोट न हो, ऐसी आजीविका हो जिसके कोई समस्या उत्पन्न न हो। कई बार व्यक्ति अपनी आजीविका के लिए गलत तरीकों को प्रयोग में लाता है, जिससे सामाजिक जीवन में समस्या का होना अस्वाभाविक नहीं होता है। ऐसे कार्यों से अपराधों को बढ़ावा मिलता है, सामाजिक सुख–शांति भंग होती है। इसलिए व्यक्ति को सम्यक् आजीविका को अपनाना चाहिए।

10.6.7 संस्कार

व्यक्ति के जैसे संस्कार होंगे, वैसा ही उसका व्यवहार होता है। यदि प्रारंभ से अच्छे संस्कारों की नींव पड़ी हो तो जीवन अच्छा बनता है। इसलिए व्यक्ति के जीवन में अच्छे संस्कारों का बहुत महत्त्व होता है। अच्छे संस्कार ही व्यक्ति को सही दिशा की ओर प्रेरित करते है।

10.6.8 आहार शुद्धि

आहार से आचार, विचार तथा व्यवहार का निकटस्थ संबंध होता है। इसलिए आहार शुद्धि पर ध्यान देना आवश्यक हो जाता है। आयुर्वेद में आहार के विषय में निर्देश है—हित, मित, और ऋत भोजन करो अर्थात् हितकर, मितकर, परिमित तथा प्रामाणिक भोजन अर्थात् प्रामाणिकता से कमाया गया भोजन। विज्ञान का निर्देश रहा है—संतुलित और पोषक भोजन करो। अनुसंधानों से यह निष्कर्ष निकला है कि आहार केवल स्वास्थ्य का विषय न होकर समग्र जीवन को प्रभावित करने वाला है। व्यक्ति का व्यवहार न्यूरोट्रांसमीटर से प्रभावित होता है। आहार से न्यूरोट्रांसमीटर का निर्माण होता है इसलिए जैसा आहार होगा, वैसा ही व्यवहार होगा। वर्तमान में यह सिद्धांत बहुत महत्त्वपूर्ण बन गया है। मनोचिकित्सा के क्षेत्र में भी आहार का संबंध जुड़ा हुआ है। वहाँ भोजन को आधार मानकर ही बीमारी का पता लगा लिया जाता है। इसलिए शुद्ध सात्विक भोजन व्यक्ति के लिए महत्त्वपूर्ण माना गया है।

10.6.9 साधर्मिक वात्सल्य

समान धर्म वाले के प्रति वात्सल्य तथा बंधुत्व की भावना। उसे आगे बढ़ाने तथा सहारा देने का भाव, उसके साथ आत्मीयता आदि बाते हैं जो साधर्मिक वात्सल्य को बढ़ावा देती हैं। व्यक्ति के भीतर जब ऐसे भाव उत्पन्न हो जाते हैं तो वसुधैव कुटुम्बकम् की बात चरितार्थ हो जाती है।

जीवन शैली के उपरोक्त नौ सूत्र सभी के लिए समान रूप से महत्त्वपूर्ण माने गए हैं। आवश्यकता है—इनके चिंतन, मनन तथा अनुशीलन की। इन्हें अपने जीवन व्यवहार में उतारने की। इनके आधार पर जीवन शैली को निर्मित

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

करने वाला व्यक्ति स्वयं सुखी तथा स्वस्थता का जीवन तो जीएगा ही साथ में परिवार, समाज तथा राष्ट्र हेतु भी सुख का मार्ग प्रशस्त करेगा।

10.7 व्यवहार परिवर्तन में सम्यक् दृष्टिकोण की भूमिका

विश्व कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने अपने एक गीत में लिखा है–दो व्यक्ति आपस में बातें कर रहे थे। उस समय एक तीसरा व्यक्ति आया और वह उनसे पूछने लगा–तुम स्वर्ग में जाना पसंद करोगे या नर्क में? दोनों ने एक साथ कहा–स्वर्ग में जाना चाहते हैं, नरक में नहीं। तीसरे व्यक्ति ने कहा–एक शर्त है कि यदि आप स्वर्ग में जाना चाहते हैं तो आपको अपने साथ एक दुष्ट व्यक्ति को भी ले जाना पड़ेगा। यदि आप नरक में जाना चाहेंगे तो आपके साथ सज्जन व्यक्ति रहेगा। तो बताइए कि स्वर्ग में जाना है या नरक में? उनमें से एक व्यक्ति ने कहा– दुष्ट के साथ मैं कदापि स्वर्ग में जाना नहीं चाहूंगा लेकिन सज्जन के साथ नरक में जाना मुझे स्वीकार है क्योंकि उसकी सज्जनता से नरक भी स्वर्ग बन जाएगा।

सम्यक् दृष्टि में इसी प्रकार का विचार प्रस्तुत होता है। वह स्थान को नहीं दृष्टि की विशुद्धता को महत्त्व देता है। यदि व्यक्ति की दृष्टि और व्यवहार शुद्ध होता है तो कैसा भी स्थान क्यों न हो, वह आत्म विकास में, परम आनन्द को प्राप्त करने में बाधक न होकर साधक ही हो सकता है। वर्तमान समय में व्यक्ति दृष्टि को नहीं पदार्थों को अधिक महत्त्व देता है। इसी कारण वह इस प्रकाश को छोड़कर अंधकार में भटकता है।

एक गुरु ने अपने अंतिम समय में अपने शिष्यों से कहा–'मैंने जो ज्ञान की ज्योति जलाई है, वह बुझने न पाए, इसके प्रतीक में सामने जो मेरी मशाल प्रज्ज्वलित है, उसकी तरह यह जलती रहे। शिष्यों ने प्रतिज्ञा ली कि हम अंतिम सांस तक इसे सुरक्षित रखेंगे और आपके आदेश का पालन करेंगे। कुछ दिनों बाद तेल समाप्त होने से वह मशाल बुझने लगी। तब शिष्यों ने विचार–विमर्श कर यह निर्णय लिया कि भले ही यह मशाल बुझ जाए पर गुरु द्वारा प्रदत्त इस मशाल के डंडे को सुरक्षित रखेंगे।

जो व्यक्ति दृष्टि को शुद्ध तथा सम्यक् बनाने की कला सीख जाता है वह उस ज्योतिर्मय दर्शन एवं ज्ञान की मशाल को प्रज्ज्वलित रखने में अपने पथ से नहीं भटकता है। यदि विवेक की ज्योति को बुझाकर के जड़ क्रिया-काण्ड के डंडों को प्रमुखता दी जाए तो उससे कभी भी विकास नहीं होता है और न ही परम आनंद की प्राप्ति होती है। इसलिए दृष्टिकोण का सम्यक् होना जीवन में महत्त्वपूर्ण उपलब्धियां प्रदान करता है। व्यक्ति अपनी दृष्टि से तो देखता है पर उसकी दृष्टि प्रायः दोषों पर ही जाती है। दोष देखना एकांत रूप से बुरा नहीं है। इससे सुधार की संभावना बनी रहती है। यदि व्यक्ति स्वयं के दोषों को देखे और उन्हें दूर करने का प्रयत्न करे तो यह दोष-दर्शन दुर्गुण नहीं, सद्गुण है। दोष-दर्शन की दृष्टि तब बुरी होती है जब व्यक्ति अपने को छोड़कर दूसरों के दोष देखता है। यही उसके पतन का कारण बनता है। यदि व्यक्ति में अपने दोषों को छिपाकर दूसरों के दोषों को प्रकाशित करने की दृष्टि बन जाती है तो उसका ज्ञान भी अशुद्ध ही बना रहता है। सम्यक् दृष्टि अर्थात् जिसका ज्ञान पर्याय शुद्ध होता है वह दूसरों के गुणों को देखता है और अपने दोषों को देखकर उन्हें निकालने का प्रयत्न करता है।

प्रश्न है कि सम्यक् दर्शन को क्यों इतना महत्त्व दिया जाता है। क्यों इसे मूल्यवान माना जाता है? समाधान यह है कि सम्यक् दृष्टिकोण से दृष्टि शुद्ध एवं ज्योतिर्मय बनती है। व्यक्ति अंधकार से प्रकाश में आ जाता है। जिस प्रकार से जन्मान्ध व्यक्ति को यदि दृष्टि मिल जाती है तो उसे जो प्रसन्नता मिलेगी, उसका अनुभव वह स्वयं ही कर सकता है। इससे भी अधिक आनंद का अनुभव तब होता है जब व्यक्ति की दृष्टि असम्यक् से सम्यक् हो जाती है वह स्व–पर को यथार्थ रूप से देखने लगता है। पाप–पुण्य, धर्म–अधर्म का ज्ञान व्यक्ति को हो जाता है। जब व्यक्ति की दृष्टि सम्यक् हो जाती है, शुद्ध हो जाती है, व्यक्ति की सारी समस्याएं समाप्त हो जाती है। वह सुख का जीवन जीने लगता है क्योंकि व्यक्ति भीतर से परिवर्तित होता है तो उसका प्रभाव उसके व्यवहार में दृष्टिगोचर होता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

बोध प्रश्न 2:

1. वेदान्त में आचरण के बारे में क्या कहा गया है?
2. अनास्था व्यवहार में बाधक कैसे हैं?
3. सम्यक् दृष्टिकोण से आपका क्या अभिप्राय है?

10.8 प्रेक्षाध्यान एवं व्यवहार परिवर्तन

ध्यान का परिणाम है—जागरूकता। जब भीतर परिवर्तन होता है तो बाहर भी परिवर्तन दिखने लगता है। परिवर्तन दोनों दिशाओं में आता है। सिर्फ बाहर से बदलने पर यह जरूरी नहीं हो सकता कि भीतर से भी बदलाव आ जाता है। इसलिए सिर्फ बाहरी परिवर्तन के आधार पर परिवर्तन मानना पूर्ण नहीं है। भीतर में प्रवंचना हो, क्रूरता हो लेकिन बाहर से मृदु हो। इसलिए भीतरी परिवर्तन महत्त्वपूर्ण है। जब व्यक्ति भीतर से बदलता है तो भावशुद्धि एवं विचारशुद्धि—ये दो शुद्धियां घटित होती हैं। इन दो शुद्धियों के विकसित होने से व्यवहार जगत् में अनेक सकारात्मक परिवर्तन आते हैं। इसी भीतरी और बाहरी जागरूकता में ही जीवन व्यवहार की पवित्रता का रहस्य छिपा हुआ है।

प्रेक्षाध्यान के प्रयोग व्यक्तित्व विकास में सहायक सिद्ध हुए हैं। प्रेक्षाध्यान के समस्त प्रयोग व्यवहार शुद्धि के प्रयोग हैं। इसके सभी प्रयोग आंतरिक परिवर्तन के प्रयोग हैं। कायोत्सर्ग, अन्तर्यात्रा, श्वास प्रेक्षा, शरीर प्रेक्षा, लेश्याध्यान, चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा एवं अनुप्रेक्षाएं व्यवहार परिवर्तन में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करने में सहायक हैं। इनके द्वारा व्यक्ति की शारीरिक तथा मानसिक स्वस्थता को बनाया जा सकता है। यदि व्यक्ति का भावपक्ष भीतर से मजबूत हो जाता है तो व्यक्ति के सामने परिस्थितियां हावी नहीं होती हैं। जब व्यक्ति स्वयं को देखने लगता है तो परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। प्रेक्षाध्यान के प्रयोग व्यक्ति को भीतर की ओर ले जाने में, अन्तर्दृष्टि को जागृत करने में महत्त्वपूर्ण पाए गए हैं। यदि इन प्रयोगों को आस्था एवं समर्थन भाव से प्रयोग में लाया जाए तो व्यक्ति का व्यवहार सकारात्मक बनने में शायद ज्यादा समय नहीं लगेगा। जब व्यक्ति की चेतना निर्मल हो जाती है तो व्यक्ति की दृष्टि सम्यक् बन जाती है। उचित–अनुचित का ज्ञान उसे हो जाता है। आसन, प्राणायाम भी शारीरिक एवं मानसिक हैं। इन प्रयोगों के द्वारा भीतरी रसायनों का संतुलन स्थापित किया जा सकता है। यदि व्यक्ति के भीतर में संतुलन रहता है तो उसका व्यवहार भी संतुलित रहता है।

10.9 प्रश्नावली

निबंधात्मक प्रश्न

1. नैतिक व्यवहार का आधार सदाचार है, स्पष्ट कीजिए।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. व्यवहार परिवर्तन की आवश्यकता क्यों होती है?
2. व्यवहार परिवर्तन हेतु सम्यक् जीवन शैली के सूत्रों को स्पष्ट कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. व्यवहार का प्रतिबिम्ब क्या है?
2. मनुष्य की मौलिक विशेषताएं क्या हैं?
3. अशुभ कर्म किसका परिणाम है?
4. गांधीजी नैतिकता के किस पक्ष को अधिक महत्त्व देते थे?
5. सम्यक् दृष्टिकोण से दृष्टि क्या बनती है?
6. व्यवहार..होता है।
7. शारीरिक विकलांगता.......................................पैदा करती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

8. प्लेटो ने विवेक को.......................................कहा है।
9. गांधीजी ने................................माना है।
10. प्रेक्षाध्यान के समस्त प्रयोग....................................के प्रयोग हैं।

10.10 संदर्भ पुस्तकें

1. नीतिशास्त्र की रूपरेखा–प्रो. अशोक कुमार वर्मा
2. अहिंसा के अछूते पहलू–आचार्यश्री महाप्रज्ञ
3. मोक्खमग्गो–विजयमुनि शास्त्री

❑❑❑

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–11 प्रेक्षाध्यान और हृदय परिवर्तन

संरचना

11.0 प्रस्तावना

11.1 उद्देश्य

11.2 हृदय परिवर्तन की आवश्यकता

11.3 हृदय परिवर्तन का अर्थ

11.4 हृदय परिवर्तन का आधार

11.4.1 आचार्य महाप्रज्ञ और भाव

11.5 हृदय परिवर्तन का वैज्ञानिक आधार

11.6 हृदय परिवर्तन के सूत्र

11.6.1 एकाग्रता का विकास

11.6.2 समता का विकास

11.6.3 जागरूकता का विकास

11.6.4 आत्मानुशासन

11.6.5 अभय का विकास

11.6.6 सहिष्णुता का विकास

11.6.7 संकल्प शक्ति का विकास

11.6.8 करूणा का विकास

11.7 हृदय परिवर्तन का प्रशिक्षण

11.7.1 आस्था

11.7.2 उपाय बोध

11.7.3 अभ्यास

11.8 हृदय परिवर्तन एवं प्रेक्षाध्यान

11.8.1 कायोत्सर्ग

11.8.2 अन्तर्यात्रा

11.8.3 श्वास प्रेक्षा

11.8.4 शरीर प्रेक्षा

11.8.5 चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा

11.8.6 लेश्याध्यान

11.8.7 अनुप्रेक्षा

11.8.8 भावना

11.8.9 मंत्र

11.8.10 स्वाध्याय

11.9 प्रश्नावली

11.10 संदर्भ ग्रंथ

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

11.0 प्रस्तावना

विश्व का समूचा विकास, सभ्यता और संस्कृति का पूरा विकास परिवर्तन का विकास है। जैसे के तैसे रहने से विकास संभव नहीं होता है। मनुष्य स्वयं को, अपनी परिस्थितियों को तथा वातावरण को बदलना चाहता है। इसके लिए प्रयत्न व पुरुषार्थ से वह आगे बढ़ा है। मनुष्य की सबसे बड़ी उपलब्धि है–हृदय परिवर्तन। कोई भी प्राणी हृदय परिवर्तन करना नहीं जानता है। मात्र मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जो हृदय परिवर्तन करना जानता है। उसने हृदय परिवर्तन के सिद्धान्त की स्थापना की है, उसका प्रयोग किया है तथा उसमें वह सफल हुआ है। व्यक्ति में कुछ मौलिक प्रवृत्तियां होती हैं जिनका परिष्कार व्यक्ति ही कर सकता है और उसने यह परिष्कार किया है।

11.1 उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ को पढ़ने के बाद निम्न जानकारियां प्राप्त की जा सकेंगी–

1. हृदय परिवर्तन की आवश्यकता को जान सकेंगे।
2. हृदय परिवर्तन का अर्थ समझ सकेंगे।
3. हृदय परिवर्तन का आधार समझ सकेंगे।
4. हृदय परिवर्तन के वैज्ञानिक आधार को जान सकेंगे।
5. हृदय परिवर्तन के सूत्रों को जान पायेंगे।
6. हृदय परिवर्तन के लिए आवश्यक प्रशिक्षण माध्यमों को जान पायेंगे।
7. हृदय परिवर्तन में प्रेक्षाध्यान संबंधी प्रयोगों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

11.2 हृदय परिवर्तन की आवश्यकता

हृदय परिवर्तन के आधार पर ही समाज में नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा हो सकती है साथ ही मानसिक रोगों से बचा जा सकता है। ये मानसिक रोग ही विकृतियां पैदा करते हैं। कहीं राग अधिक है तो कहीं द्वेष अधिक। इसलिए समीकरण की आवश्यकता पड़ती है। हृदय परिवर्तन के द्वारा व्यक्ति की भावधारा को निर्मल बनाया जा सकता है जिससे सामाजिक मूल्यों की प्रतिष्ठा की जा सकती है। जिसमें व्यक्ति का स्वयं तथा दूसरों का कल्याण निहित होता है। सामाजिक प्राणी होने के नाते व्यक्ति की क्रियाएं ऐसी न हों जो समाज के लिए हानिकारक हों। स्वस्थ समाज की संरचना तभी संभव हो सकती है जब व्यक्ति के भावों का परिष्कार हो, इसमें विधायक भावों—करुणा, मैत्री, सत्य, क्षमा आदि का विकास हो। अन्यथा व्यक्ति न 'स्व' का कल्याण कर सकता है और न 'पर' का कल्याण कर सकता है। स्वस्थ समाज का आधार है—परस्परावलम्बन। जब तक व्यक्ति में यह चेतना नहीं जागती है तब तक वह सुखी जीवन नहीं जी सकता है। इसलिए सामाजिक प्राणी के हृदय परिवर्तन का विकास महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। मूल में यदि निषेधात्मक भाव है तो प्रत्येक क्रिया में भी वही भाव नजर आता है। निषेधात्मक भाव व्यक्ति को सफलता से दूर ले जाते हैं। सुखी एवं स्वस्थ सामाजिक जीवन जीने हेतु हृदय परिवर्तन आवश्यक समझा जाता है। मानसिक विकृतियों के द्वारा जो व्यक्ति गलत कार्य करते हैं, आपराधिक कार्यों की ओर प्रवृत्त होते हैं, उन्हें सही दिशा प्रदान की जा सकती है। जिससे व्यक्तिगत एवं सामाजिक अमन-चैन सुरक्षित रहे। यदि व्यक्ति आंतरिक रूप से मजबूत होता है तो बाह्याकर्षण, बाह्य परिस्थितियां उसे प्रभावित नहीं करती है। इसलिए आंतरिक परिवर्तन समस्या समाधान के लिए आवश्यक हो जाता है।

व्यक्ति की बुरी अवधारणा के कारण शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य बिगड़ता है। भाव विशुद्धि के द्वारा सारे लाभ प्राप्त होते हैं। भाव शुद्धि के द्वारा पहले व्यक्ति के स्वयं का रूपान्तरण होता है। उसका आचार, व्यवहार बदलता है फिर समाज का भी रूपान्तरण हो जाता है। वर्तमान की समस्या है कि मूल की चिंता नहीं की जाती है। फूल, पत्तियों की चिंता की जाती है। जब तक समस्याओं के मूल का रूपान्तरण नहीं होता है, ऊपरी तौर पर भी समाधान नहीं हो पाता है। व्यक्ति उन्हें सुलझाना चाहता है लेकिन एक बार वे समस्याएं सुलझ भी जाती हैं तो आगे फिर वे उलझ ही

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जाती हैं। वर्तमान में समस्या समाधान का सूत्र है–पदार्थ। पदार्थ ही एकमात्र समस्या का समाधान माना जाता है। वर्तमान में कुछ हद तक समस्या का समाधान कर सकता है पर पूर्ण रूप से नहीं। व्यक्ति को उसकी उपयोगिता का सीमाबोध होना चाहिए। भाव परिवर्तन के द्वारा व्यक्ति की चेतना को विशुद्ध किया जा सकता है, जिससे व्यक्ति का विवेक जागृत हो सके।

11.3 हृदय परिवर्तन का अर्थ

हृदय परिवर्तन का तात्पर्य यह नहीं है कि दूसरे हृदय को लगा लेना, कृत्रिम हृदय को लगा लेना अथवा दूसरा हृदय प्रत्यारोपित कर देना। हृदय परिवर्तन का तात्पर्य है–भाव परिवर्तन, निषेधात्मक भावों को समाप्त कर विधायक भावों को जगाना। मनोविज्ञान के संदर्भ में हृदय परिवर्तन का अर्थ हो सकता है–मौलिक वृत्तियों का परिष्कार। मौलिक वृत्तियों का परिष्कार ही चेतना का परिष्कार है, हृदय का परिवर्तन है।

11.4 हृदय परिवर्तन का आधार

मनुष्य एक विवेकशील एवं चिंतनशील प्राणी है। उसके पास वह शक्ति है जिसके द्वारा वह अपने जीवन को ऊंचा उठा सकता है। वह आत्मा से महात्मा एवं महात्मा से परमात्मा बन सकता है। समस्या इस बात की है कि व्यक्ति अपनी शक्ति का सदुपयोग कम करता है। जिस शक्ति का वह दुरुपयोग करता है, वह शक्ति उसे अमानवीय वृत्तियों की ओर ले जाती है। इसे शक्ति का दोष नहीं कहा जा सकता है। दोष है उस शक्ति के गलत उपयोग का। अच्छी वस्तु का यदि सही तरीके से उपयोग नहीं होता है तो वह अहितकर सिद्ध हो जाती है। जितने भी विकास के साधन हैं वे गलत प्रयोग के कारण ह्रास के साधन बन जाते हैं। व्यक्ति इस उपयोग के कारण ऊंचा भी उठ जाता है और पतन की ओर भी गिर जाता है। वह विकास की ओर भी बढ़ जाता है तो ह्रास की ओर भी बढ़ जाता है। व्यक्ति के इस उत्थान और पतन, विकास और ह्रास के पीछे के भावों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है।

प्रत्येक व्यक्ति के भीतर निषेधात्मक और विधेयात्मक–दोनों प्रकार की भावधाराएं चलती हैं। निषेधात्मक भाव हैं–घृणा, ईर्ष्या, राग-द्वेष आदि तथा विधायक भाव हैं–करुणा, मैत्री, सह-अस्तित्व, ऋजुता आदि। इस दुनिया में निषेधात्मक भावों की धारा को प्रकट होने का बहुत अवसर मिलता है, अनेक निमित्त मिल जाते हैं। निमित्त मिलने पर ही भाव प्रकट होते हैं। किसी भी आचरण, व्यवहार की व्याख्या भाव धारा के आधार पर की जा सकती है। व्यक्ति भीतर में जाकर विधायक भावधारा को सक्रिय करने का प्रयत्न करता है। निषेधात्मक भावों की अधिकता के कारण ही वाणी की विषमता, भावों की विषमता, आचरणों की विषमता अधिक है। व्यक्ति परिस्थिति से सीखता है तथा उसी आधार पर उसका विकास हुआ है। प्रत्येक व्यक्ति के सामने तीन प्रकार की परिस्थितियां रहती हैं–बाह्य आंतरिक और अन्तरतम्। पूरे व्यक्ति की व्याख्या इन्हीं के आधार पर होती है। बाह्य परिस्थितियां हैं–सामाजिक, भौतिक तथा भौगोलिक। आंतरिक परिस्थिति है–जो शरीर के भीतर काम हो रहा है तथा अन्तरतम् परिस्थिति है–सूक्ष्म या सूक्ष्मतम शरीर का वातावरण।

1. **बाह्य परिस्थितियां**–इसमें सामाजिक, भौतिक तथा भौगोलिक वातावरण सम्मिलित हैं। ये तीनों ही वातावरण व्यक्ति को प्रभावित करते हैं। इनके आधार पर भी उसके भावों की उत्पत्ति होती है। यदि ये परिस्थितियां अनुकूल होती हैं तो भाव विधायक बन जाते हैं तथा प्रतिकूल होने पर निषेधात्मक भाव उत्पन्न होते हैं। इसलिए भाव की उत्पत्ति में ये परिस्थितियां सहायक बनती हैं।
2. **आंतरिक परिस्थितियां**–आंतरिक वातावरण में मुख्यतया दो तत्त्व काम करते हैं–विद्युत और रसायन। विद्युत के बिना शरीर का कोई अवयव कार्य नहीं कर सकता है। शरीर में बनने वाले विभिन्न प्रकार के रसायन भी भावधारा को उत्पन्न करते हैं इन रसायनों के आधार पर ही व्यक्ति की संवेगात्मक अवस्थाएं, मानसिक विकास के बिन्दु तथा व्यवहार की सारी प्रणालियां आधारित हैं।
3. **अन्तरतम्**–इसके अंतर्गत पुराने संस्कार आते हैं। व्यक्ति के जैसे संस्कार होते हैं, जैसे कर्म होते हैं, उसी के आधार पर उसकी भावधारा प्रवाहित होती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

भाव अन्तरतम् से आने वाला स्रोत है। जैसा भाव होता है उसी के अनुरूप विचार बनते हैं तथा उसी के अनुरूप रसायन बनते हैं। ये तीनों एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। भगवान् महावीर ने लेश्या के सिद्धान्त में एक महत्त्वपूर्ण प्रतिपादन किया–'असंखेज्जाइं ठाणाइं'। जब लेश्या के असंख्य स्थान हैं तो ग्रंथियों के रसायन भी असंख्य हो जाएंगे। महावीर की वाणी में ये रसायन असंख्य प्रकार के हो सकते हैं। जितने भाव, उतने ही रसायन। मेडिकल साइंस में भी स्रावों की चर्चा होती है। विभिन्न ग्रंथियों से निकलने वाले स्रावों की क्रियाशीलता से व्यक्तित्व प्रभावित होता है। भावधारा प्रवाहित होती है। यदि भाव परिवर्तन की बात पकड़ में आ जाती है तो बाह्य तथा अन्तरतम् परिस्थितियों से उत्पन्न भावों में परिवर्तन किया जा सकता है।

जब तक भाव को नहीं समझा जाएगा तब तक मन की समस्याओं का समाधान नहीं हो पाएगा। सभी मानसिक समस्याओं का मूल कारण भाव ही होता है। इसी के द्वारा सारी समस्याएं उत्पन्न होती हैं लेकिन वह उनकी क्रियान्विति मन के द्वारा करवाता है। व्यक्ति की सारी प्रवृत्तियां इसी भाव के द्वारा संचालित होती हैं। भाव व्यक्तित्व के गहनतम अंतराल का स्रोत है। भाव अच्छा व बुरा–दोनों प्रकार का होता है। भाव का स्रोत है–सूक्ष्म शरीर। जहां से छनकर वे स्थूल शरीर में प्रकट होते हैं तथा व्यक्ति के मन, शरीर एवं वाणी इसके द्वारा प्रभावित होते हैं। जब भावधारा अशुद्ध होती है तो शुद्ध भावधारा उसके पीछे छिप जाती हैं। निमित्त मिलते ही भावधारा अभिव्यक्त हो जाती है। शुद्ध और अशुद्ध भावधारा एक साथ नहीं रह सकती हैं। कर्मशास्त्रीय खोजों के अनुसार व्यक्ति के शरीर में जितने कर्म हैं उतने ही रसायन हैं। प्रत्येक घटना रसायन के साथ तथा प्रत्येक रसायन कर्म के साथ जुड़ा रहता है। कर्म से भाव और भाव से कर्म पैदा होते हैं–कर्मतोजायतेभावःभावात्कर्मोऽपि सर्वदा।

मनोभावों का उत्पादन सूक्ष्म शरीर में होता है, चेतना के सूक्ष्म अध्यवसायों में होता है किन्तु भावों की अभिव्यक्ति निमित्तों के द्वारा होती है। शरीर में बनने वाले रसायन, जैविक कण आदि उसकी अभिव्यक्ति में निमित्त बनते हैं। भाव से रसायन और रसायन से भाव प्रभावित होते हैं।

मनोविज्ञान की भाषा में व्यक्ति जागृत चेतना के स्तर पर जीता है। उसके पीछे अवचेतन और अचेतन का स्तर है लेकिन व्यक्ति उनसे अनजान है। व्यक्ति दो व्यक्तित्वों के आधार पर जीता है–आंतरिक तथा बाह्य। जब तक ये दोनों एक न बने, व्यक्तित्व अखण्ड न बने तो समस्या का समाधान नहीं हो सकता है। कर्मशास्त्र कहता है कि भावों के कारण आचरण तथा व्यवहार के कारण ही व्यक्ति के भीतर दो व्यक्तित्वों का निर्माण होता है। एक व्यक्ति एक समय में शांत, क्षमाशील और निर्द्वन्द्व जान पड़ता है तो दूसरे समय में वही क्रोध, अशांत तथा द्वन्द्वयुक्त होता है। एक दिन में न जाने व्यक्ति कितने ही रूप बदलता है।

आयुर्वेद में तीन दोष माने जाते हैं–वात, पित्त और कफ। जब इन तीनों का संतुलन होता है तो व्यक्ति स्वस्थ रहता है। इनके असंतुलन से व्यक्ति का स्वास्थ्य भी गड़बड़ा जाता है। इसी असंतुलन के कारण शारीरिक व मानसिक व्याधियां उत्पन्न होती हैं। इनका प्रभाव भावों पर भी पड़ता है। भाव इन तीनों दोषों से प्रभावित होते हैं। वायु का प्रकोप अधिक होने पर अस्थिरता एवं भय की स्थिति उत्पन्न होती है, कल्पनाएं जागती हैं तथा पित्त का प्रकोप होने पर क्रोध एवं चंचलता बढ़ती है। कफ की मात्रा अधिक होने पर तन्द्रा सताती है, मन में शोक उत्पन्न होता है। व्यक्ति के भीतर जितनी भी अभिव्यक्तियां हैं वे निमित्तों के कारण उत्पन्न होती हैं।

स्वास्थ्य केवल शरीर से जुड़ा हुआ नहीं है। उसका संबंध भाव से होता है। भावना के स्तर पर जो बीमार होता है, शरीर से बीमार न होने पर भी वह बीमार होता है। धीरे धीरे मानसिक रोग उसे घेर लेते हैं। बीमारी कर्मज भी होती है जो भावगत है। भावों के अर्जन एवं संचय के आधार पर बीमारियां उत्पन्न होती हैं। आचार्य महाप्रज्ञ जी के अनुसार भाव शुद्ध होते हैं तो विचार भी शुद्ध होते हैं भाव का संबंध है कषाय के स्पन्दनों से और विचार का संबंध है मस्तिष्क के आचरणों से। व्यक्ति के सूक्ष्म शरीर में दो प्रकार के स्पन्दन समानान्तर रेखा में चलते हैं–मोह का स्पन्दन तथा मोह विलय का स्पन्दन। वे दोनों स्पन्दन चलते हैं और भाव बनते हैं। कषाय जितना क्षीण होता है मोह का स्पन्दन उतना ही निर्वीर्य, निष्क्रिय बन जाता है। जब मोह के विलय का स्पन्दन शक्तिशाली होता है तब भाव मंगलमय एवं कल्याणकारी होते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

11.4.1 आचार्य महाप्रज्ञ और भाव

व्यक्ति की वृत्तियां, भाव और आदतें–इन सबको उत्पन्न करने वाला सशक्त तंत्र है–लेश्यातंत्र। लेश्यातंत्र की शुद्धि के बिना आदतों का परिवर्तन नहीं हो सकता है। इस लेश्यातंत्र की शुद्धि प्रक्रिया को समझने से पहले अशुद्धि के मूल को समझना आवश्यक हो जाता है कि अशुद्धि कहां पैदा होती है। यदि उस तंत्र को सही तरीके से समझा जाता है तो शुद्धि की बात सरल हो जाती है।

बुरी आदतें तीन लेश्याओं के कारण उत्पन्न होती हैं। ये तीन लेश्याएं हैं–कृष्ण लेश्या, नील लेश्या एवं कपोत लेश्या। हिंसा, क्रूरता, छल, कपट, असत्य, प्रमाद, आलस्य आदि जितने भी दोष हैं वे सभी इन्हीं तीन लेश्याओं के कारण पैदा होते हैं। इन तीन लेश्याओं के संवादी स्थान हैं–एड्रीनल और गोनाड्स ग्रंथियां। इन तीन लेश्याओं के भाव यहां जन्म लेते हैं। वर्तमान विज्ञान के अनुसार कामवासना का स्थान है–गोनाड्स ग्रंथियां। इस स्थान पर भय, आवेग एवं बुरे भाव पैदा होते हैं। इन दोनों ग्रंथियों को योगशास्त्र की भाषा में स्वाधिष्ठान चक्र तथा मणिपूर चक्र की संज्ञा दी गई हैं। योग का एक ग्रंथ है–आत्मविवेक। उसमें बताया गया है कि क्रूरता, बैर, मूर्च्छा, अवज्ञा और अविश्वास आदि स्वाधिष्ठान चक्र में उत्पन्न होते हैं। तृष्णा, ईर्ष्या, लज्जा, भय, मोह, कषाय और विषाद आदि मणिपूर चक्र में उत्पन्न होते हैं। लोलुपता, तोड़फोड़ की भावना, चिंता, अविवेक, अहंकार, अनाहत चक्र में उत्पन्न होते हैं। लेश्या की दृष्टि से विचार किया जाए तो अविरति, क्षुद्रता, निर्दयता, नृशंसता, अजितेन्द्रियता–ये कृष्ण लेश्या के परिमणन हैं। अज्ञान, माया, निर्लज्जता, विषय, वासना, क्लेश, रस–लोलुपता नील लेश्या के परिणमन हैं। वक्रता, अपने दोषों को ढकने की मनोवृत्ति, परिग्रह का भाव, मिथ्यादृष्टि, दूसरे के मर्म को भेदने की प्रवृत्ति, अप्रिय कथन कापोत लेश्या के परिणमन हैं।

लेश्या की दृष्टि से लेश्या के सिद्धान्त में तीन लेश्याएं, योगशास्त्र में तीन चक्र और शरीर शास्त्र में तीन ग्रंथियां हैं। इन सबका वर्णन समान–सा लगता है। इन तीनों प्रतिपादनों में अद्भुत समानता है। इससे एक बात स्पष्ट हुई कि सारी बुरी वृत्तियों का स्थान नाभि, पेडू और हृदय के स्थान पर है।

भगवान् महावीर ने कहा है–"जे आसवा ते परिसवा, जे परिसवा ते आसवा" अर्थात् जो आने के मार्ग हैं वे ही जाने के मार्ग हैं और जो जाने के मार्ग हैं वे ही आने के मार्ग हैं। तेजो लेश्या, पद्म लेश्या और शुक्ल लेश्या शुभ हैं। इन शुभ लेश्याओं द्वारा व्यक्तित्व को रूपान्तरित किया जा सकता है।

11.5 हृदय परिवर्तन का वैज्ञानिक आधार

व्यक्ति के विचार न्यूनाधिक रूप से भावनाओं द्वारा प्रभावित होते हैं। प्रेम, घृणा, प्रतिशोध, ईर्ष्या, परोपकारिता आदि वृत्तियाँ व्यक्ति के आचरण के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। लिम्बिक तंत्र मस्तिष्क का वह भाग है जो वृत्तियों से संबंधित होता है। इसमें चेतन, अवचेतन व मस्तिष्क का जालीदार रचना वाला भाग, मस्तिष्क के प्रान्तावस्था का भावना–विभाग तथा कुछ अन्य मस्तिष्कीय हिस्से होते हैं। भावना तंत्र का कार्य है भावनात्मक संतुलन स्थापित करना, भूख, यौन, चिंता, निराशा आदि वृत्तियों द्वारा जब मानसिक असंतुलन पैदा होता है तब उस परिस्थिति में संतुलन स्थापित करने का कार्य इसी तंत्र का है। यह तंत्र असंतुलन की मूल समस्या को पकड़ सकता है। इसके लिए यह तंत्र ऐसे संकेतों को प्रयुक्त करता है जो पकड़ने तथा उनको समाहित कर पुनः संतुलन स्थापित करने में सहायक होते हैं। मनुष्य के अतिरिक्त अन्य प्राणियों में भावना–तंत्र की कार्यप्रणाली संज्ञाओं के द्वारा संचालित होती है। ये संज्ञाएं इन्द्रियों द्वारा वातावरण से गृहीत सूचनाओं की प्रतिक्रिया स्वरूप होती हैं। भूख, प्यास, यौन, क्रोध, भय, ममत्वभाव आदि मनोवृत्तियां हैं जो सहज होती हैं। ये वृत्तियां केवल संवेदन ही पैदा नहीं करती वरन् इच्छापूर्ति के अनुरूप प्रवृत्ति करने के लिए बाध्य करती हैं लेकिन व्यक्ति अपनी क्षमताओं को विकसित कर अपनी इन प्रवृत्तियों का परिष्कार कर सकता है। अपनी विवेक चेतना द्वारा वह वृत्तियों पर नियंत्रण कर सकता है। व्यक्ति की यह विवेक चेतना उसके उच्च स्तरीय मस्तिष्क के विवेकपूर्ण निर्णयों का परिणाम है। व्यक्ति के भीतर भावधाराएं और मौलिक वृत्तियां एक-दूसरे को प्रभावित करती हैं। कभी ये भावधाराएं मौलिक मनोवृत्तियों के आवेग को पुष्ट करती हैं तो कभी उसको क्षीण करती हैं। कभी-कभी भावना तंत्र और व्यक्ति की विवेक चेतना के बीच संघर्ष हो जाता है। इसी निरंतरता से

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

ऐसे द्वन्द्व पैदा होते हैं जो मनःकायिक बीमारियों के रूप में व्यक्त होते हैं। मनुष्य के अलावा दूसरे प्राणी इस प्रकार के मानसिक तनाव के शिकार नहीं बनते क्योंकि उनके क्रियातंत्र पर एक समय में केवल एक ही आवेग अधिकार कर सकता है। व्यक्ति की इस मानसिक संघर्ष की तीव्रता के कम करने का उपाय प्रकृति प्रदत्त है, वह है–व्यक्ति की दो परस्पर विरोधी वृत्तियों में एक का दमन करके उसे अचेतन में निर्वासित कर देना। अचेतन में दबी वृत्ति कुंठा का रूप लेती है जिसका रूपान्तरण हिंसक और आक्रामक प्रवृत्तियों को जन्म देता है। मनोवैज्ञानिकों द्वारा इस प्रक्रिया को दमन की संज्ञा दी गई है। इसी के द्वारा भावनात्मक विकृतियां उत्पन्न होती हैं। स्नायुरोग–मनोविक्षिप्तता, खंडित मनस्कता और उन्माद जैसे कई मानसिक रोगों की जड़ इस भावनात्मक संकटावस्था में निहित होती है।

वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध किया है कि व्यक्ति की सारी वृत्तियों और उन्हें उभारने वाले हार्मोन तंत्रिका हार्मोन नामक रासायनिक संदेश वाहकों (स्रावों) के संश्लेषण के द्वारा उत्पन्न होते हैं। इन हार्मोनों का स्राव अंतःस्रावी ग्रंथि तंत्र तथा तंत्रिका तंत्र की विशिष्ट कोशिकाओं द्वारा होता है। इनके रासायनिक स्राव रक्त में छोड़े जाते हैं। इन स्रावों का शारीरिक क्रियाकलापों तथा मनोवृत्तियों पर गहरा प्रभाव पड़ता है। ग्रंथितंत्र और भावनाओं का गहरा संबंध होता है। एक ग्रंथि अधिक स्राव करती है तो दूसरी कम। किसी व्यक्ति में कोई ग्रंथि काम करती है तो किसी में कोई। जब पीनियल ग्रंथि अधिक सक्रिय रहती है तो व्यक्ति में द्वेष, तनाव, आवेग अधिक मात्रा में होता है। पिट्यूटरी ग्रंथि के सही कार्य से व्यक्ति में शीघ्र निर्णय क्षमता अथवा अंतर्प्रज्ञा का जागरण होता है। जिस व्यक्ति की गोनाड्स ज्यादा सक्रिय रहती है उस व्यक्ति की कामवासना सक्रिय रहती है। प्रत्येक व्यक्ति में अंतर होता है। यह अंतर ग्रंथियां स्रावों के असंतुलन के कारण होता है। व्यक्ति की भावना हाइपोथेलेमस को प्रभावित करती है और वह ग्रंथियों को प्रभावित करता है। फिर भाव प्रभावित होते हैं। जब भाव अशुद्ध होते हैं तब ग्रंथियों के स्राव भी असंतुलित होते हैं। व्यक्ति का चिंतन, प्रवृत्ति और संवेदन यदि सही रहे तो ग्रंथियों के स्राव भी सही रहते हैं। एक वैज्ञानिक ने लिखा है–यदि हम ग्रंथियों के प्रति अच्छा व्यवहार करते हैं तो ग्रंथियां भी हमारे प्रति अच्छा व्यवहार करेंगी। यदि विचार बुरे हैं, प्रवृत्तियां बुरी हैं तो व्यक्ति की ग्रंथियों के स्राव भी असंतुलित हो जाते हैं तथा व्यक्ति अपराधी मनोवृत्ति वाला हो जाता है। तस्करी करने वाले व्यक्ति की पिट्यूटरी प्रभावित होती है तो शराबी व्यक्ति की एड्रिनल ग्रंथि प्रभावित होती है। वर्तमान वैज्ञानिक युग में दूसरों के सूक्ष्म भावों का ज्ञान करने के लिए अनेक यंत्रों का आविष्कार हुआ है। इजरायल में एक यंत्र बनाया–'माइक्रोवेव रेस्पीरेशन मोनीटर' अर्थात् अणु प्रबोध अणु तरंग, भाव प्रबोध। यह यंत्र आध ेा मील की दूरी से ज्ञात कर लेता है कि व्यक्ति झूठ बोल रहा है या सच बोल रहा है। श्वास के प्रकंपनों द्वारा भाव का अनुमान लगाया जा सकता है कि भावों का संबंध श्वास के साथ कितना है। मनोभाव के आधार पर श्वास की गति होती है।

व्यक्ति का मस्तिष्क विद्युत प्रवाह और रसायनों द्वारा बहुत प्रभावित होता है। वर्तमान में मनोवैज्ञानिक यंत्रों के माध्यम से इस सच्चाई का पता लगा रहे हैं और निष्कर्ष पर पहुंच रहे हैं। कौन रसायन क्या प्रतिक्रिया करता है? कौन–से केन्द्र पर इलेक्ट्रोड लगाने से क्या प्रतिक्रिया होती है, आदि। शरीर में ऐसे केन्द्र हैं जो आवेग, संवेग और प्रवृत्तियों को उत्पन्न करते हैं। आंतरिक प्रक्रिया मे यह कार्य सहज भाव से होता रहता है। एक केन्द्र है हाइपोथेलेमस में 'डोसोमिलियन न्यूक्लीयस'। यह क्रोध को उत्पन्न करता है, उत्तेजना बढ़ाता है। वहीं दूसरा केन्द्र है–'वेन्ट्रामिलियन न्यूक्लीयस' जो क्रोध एवं उत्तेजना को नियंत्रित करता है। एक अमरीकी डॉक्टर ने 90 ऐसे रसायन खोजे हैं जो चिंता उत्पन्न करते हैं। यदि एक व्यक्ति शांत है, उसे चिंता के रसायन का इंजेक्शन लगाया जाए तो उसके प्रभाव रहने तक वह व्यक्ति चिंताग्रस्त रहता है। यदि चिंता मिटाने वाला रसायन दिया जाए तो चिंता मिट जाती है। जितने भी भाव बनते हैं उतने ही रसायन बनते हैं, उतना ही उन पर प्रभाव हो सकता है। योग, ध्यान के द्वारा व्यक्ति अपने भीतर के रसायनों को संतुलित कर सकता है। समस्या से संबंधित प्रयोग करने से समाधान प्राप्त किया जा सकता है।

11.6 हृदय परिवर्तन के सूत्र

हृदय परिवर्तन के निम्नांकित सूत्र हैं–

1. एकाग्रता का विकास,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2. समता का विकास,

3. जागरूकता का अभ्यास,

4. आत्मानुशासन,

5. अभय का विकास,

6. सहिष्णुता का विकास,

7. संकल्प शक्ति का विकास,

8. करुणा का विकास।

11.6.1 एकाग्रता का विकास

जो व्यक्ति एक बात या बिंदु पर एकाग्र होना नहीं जानता है, अकेला होना नहीं जानता वह कभी सफल नहीं हो सकता है। अकेला होना और समाज के बीच में जीना, यही जीने की सबसे बड़ी कला है और यही सफलता का रहस्य है। जिसमें एकाग्रता होती है वह अकेला होना भी जानता है। जो व्यक्ति एकाग्रता नहीं जानता है वह जंगल में भी भीड़ से ही घिरा रहता है। वह भीड़ कल्पनाओं की होती है। वह उनसे बच नहीं सकता है। इसीलिए एक अनुभवी आचार्य ने कहा है–यदि राग–द्वेष को कम नहीं किया तो जंगल में जाने से फायदा नहीं होगा। अकेला होने का अर्थ है–चित्त को एकाग्र करना। चित्त की एकाग्रता ही जीवन की सबसे बड़ी सफलता है। चित्त की एकाग्रता से शक्तियों का जागरण होता है। भीड़ में शक्ति का जागरण नहीं होता है। एकाग्रता से सधने पर ही शक्ति का स्रोत फूटता है।

हृदय परिवर्तन के लिए आवश्यक है–एकाग्रता का विकास। इसके लिए मन की, वाणी की और शरीर की चंचलता को कम करना होगा। चंचलता को मिटाए बिना सफलता नहीं मिल सकती। चंचलता का कारण बनता है–आकर्षण। जब तक आकर्षण का संतुलन नहीं होता है, एकाग्रता को नहीं साधा जा सकता है। व्यक्ति के सामने अनेक आकर्षण हैं। व्यक्ति उन्हीं आकर्षणों में खिंचा चला जाए तो वह एकाग्रता कैसे साध सकता है? यदि आकर्षण एक ही दिशा में हो तो समस्या हो सकती है। इसलिए जितना आकर्षण बाहर है, उतना ही अंदर की तरफ हो तो संतुलन स्थापित हो सकता है। व्यक्ति में चंचलता अंतिम समय तक रहती है। सारी परिस्थितियां, सारे व्यवधान समाप्त हो जाते हैं, दृष्टिकोण सम्यक् बन जाता है तब शरीर की चंचलता को कम किया जा सकता है। वह अभ्यास है–एकाग्रता का। जब व्यक्ति एकाग्रता को साध लेता है तो आकर्षण–विकर्षण उसके मार्ग में बाधक नहीं बनते हैं। चंचलता एक सीमा तक तो आवश्यक भी मानी जाती है, लेकिन सीमा के बाद अनिष्ट करने वाली भी बन जाती है। कोई भी सिद्धान्त तब तक क्रियान्वित नहीं होता जब तक चंचलता कम नहीं हो जाती है, कोई भी समस्या तब तक समाधान नहीं पा सकती जब तक चंचलता कम नहीं हो जाती। जिस व्यक्ति ने चंचलता को कम किया है, वह ज्यादा सफल हुआ है। एकाग्रता के द्वारा दस घंटे का काम पांच घंटे में निपटाया जा सकता है। इसके लिए आवश्यक है–अभ्यास। अभ्यास के बिना हृदय परिवर्तन की बात दूर रह जाती है।

11.6.2 समता का विकास

प्रत्येक चिंतनशील व्यक्ति की यह कामना होती है कि जीवन का उपवन आनंद के फलों और शांति के फूलों से हरा–भरा रहे। फल–फूलों को तभी प्राप्त किया जा सकता है जब पौध समता की हो। समता, समरसता एवं संतुलन की क्षमता होने से जीवन के किसी भी क्षण में आनंद की अनुभूति की जा सकती है। समता के अभाव में सुख दुःख बन जाता है। समता की पृष्ठभूमि पर घटित होने वाली हर प्रवृत्ति व्यक्ति को ऐकान्तिक और आत्यन्तिक आनंद की अनुभूति करा सकती है।

वर्तमान में सबसे अधिक प्रिय शब्द समता है तो सबसे अप्रिय शब्द विषमता। वर्तमान के विचारकों ने सामाजिक आर्थिक विषमता पर बहुत चिंतन किया पर चैतसिक विषमता के विषय में उतना चिंतन नहीं किया है। जब तक व्यक्ति की चित्त की स्थिति समतामय नहीं होती है तो उसका प्रतिबिम्ब सामाजिक व्यवस्था पर भी पड़ता

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

है, अर्थ व्यवस्था पर भी पड़ता है, इसलिए समस्या का समाधान नहीं हो पाता है। व्यक्ति के समक्ष सुख–दुःख की स्थितियां आती रहती हैं तथा व्यक्ति उन्हीं परिस्थितियों से प्रभावित होता रहता है। इससे यह ज्ञात होता है कि व्यक्ति की चेतना का अपना कोई अस्तित्व नहीं होता है। सुख के समय अहम् का भाव तथा दुःख के समय हीनता की भावना उसे घेरे रहती है। अहम् की भावना के साथ व्यक्ति अपने को सम्राट से कम नहीं समझता है। यही भावना धीरे–धीर उसमें कुंठा पैदा करती है।

जब तक व्यक्ति में चित्त की विषमता रहती है वह मोहग्रस्त रहता है। व्यक्ति के भीतर जितने भी द्वन्द्व हैं–सुख-दुःख, अनुकूलता-प्रतिकूलता आदि यदि इनके प्रति समता नहीं है तो व्यक्ति का भाव पक्ष मजबूत नहीं होता है। व्यक्ति स्वयं तो समता चाहता है लेकिन व्यवहार में विषमता रहती है तो कैसे संभव होगा कि व्यक्ति का व्यवहार संतुलित बनेगा। इतिहास बताता है कि समता सम्पन्न व्यक्ति को ही आदर्श कहा गया है। उन्हीं का जीवन अनुकरणीय रहा है। व्यक्ति विषमताओं में भी समता को जब ढूंढ निकालता है तो वह सफलता का जीवन जीता है। सामाजिक क्षेत्र में भी उसी व्यक्ति को मूल्य दिया जाता है जो समतापूर्ण व्यवहार में विश्वास रखता है, उसका आचरण करता है। भले ही समता का जागरण एक साथ नहीं होता है। फिर भी यदि व्यक्ति इसके लिए प्रयत्न करता है। सत्य को जानने की चेष्टा करता है तो वह व्यक्ति जरूर सफल होता है। व्यक्ति के भीतर बुराई है तो अच्छाई भी है। क्रोध का केन्द्र व्यक्ति के भीतर है तो क्रोध का उपशम का केन्द्र भी उसके भीतर है। वृत्तियों को उभारने वाले केन्द्र हैं तो उनके क्षायोपशमिक भाव (समता) भी विद्यमान हैं। इसलिए कहा जा सकता है कि व्यक्ति के भीतर चित्त की विषमता होती है तो वहां कुछ न कुछ समता भी रहती है। लेकिन पूर्ण समता का भाव वही व्यक्ति पा सकता है जो चेतना के विकास के अंतिम बिंदु तक पहुंचता है। समता जागती है तो व्यक्ति राग–द्वेष से मुक्त हो जाता है।

समता के अभाव में व्यक्ति सुख का जीवन नहीं जी सकता है। पदार्थ, सत्ता, धन, वैभव आदि सभी सुख के हेतु बन सकते हैं, सुख के निकट रह सकते हैं पर सुख के निकटतम नहीं हो सकते हैं। सुख का निकटतम साधन है समता। व्यक्ति के भीतर यदि समता का भाव होता है तो व्यक्ति सुख और दुःख में भी सम रहता है। समता के अभाव में हजारों पदार्थों के होते हुए भी व्यक्ति उदास रहता है। जब व्यक्ति के भीतर समता का भाव पुष्ट होता है तो व्यक्ति सुख एवं शांति का जीवन जी सकता है। साधन न होने पर भी यदि व्यक्ति के पास समता है तो वह व्यक्ति आनंद से परिपूर्ण रह सकता है। व्यक्ति के भीतर जितनी पापकारी वृत्तियां होती हैं वे व्यक्ति में विषमता पैदा करती हैं। यदि मन सुखी नहीं रहता है तो शारीरिक सुख भी कम हो जाता है। प्रतिशोध, क्रोध, अहंकार आदि ग्रंथियां विषमता पैदा करती हैं। भगवान् महावीर ने अठारह प्रकार की मानसिक ग्रंथियों का उल्लेख किया है। उन्होंने कहा कि ये ग्रंथियां पापकारी हैं। समता की साधना का यही अर्थ है कि ये ग्रंथियां कमजोर पड़ जाएं, रेशम की गांठ बंधी न रहे, खुलती चली जाए। भगवान महावीर ने समता की साधना के लिए सामयिक व्रत का निर्माण किया। इस सामयिक के दो पक्ष हैं–बाधक तत्त्वों का वर्जन तथा साधक तत्त्वों का प्रयोग। व्यक्ति में समता का विकास तब होता है जब उसके भीतर यह भावना आती है कि मैं अकेला हूं। इसी भावना के अभाव में क्रोध, अहं, घृणा, ईर्ष्या आदि प्रवृत्तियां पैदा होती हैं। जब व्यक्ति इस एकत्व बोध को हृदयंगम कर लेता है तो विषमता स्वयं ही फूट जाती है। फिर न क्रोध रहता है, न अहंकार, न घृणा रहती है न ईर्ष्या आदि। यह परिवर्तन भले ही अल्प समय में न हो लेकिन समता के प्रति जागरूकता रखने पर इसको विकसित करने पर सफलता मिलना असंभव नहीं हो सकता है। जब व्यक्ति समता की साधना करता है तो परिवर्तन घटित होने लगते हैं, विषमता के कीटाणु समाप्त हो जाते हैं, समता के अंकुर प्रस्फुटित हो जाते हैं। इसका परिणाम होता है कि समता का कल्पवृक्ष हरा–भरा, शीतल छांव और मनोकामना की पूर्ति करने वाला बन जाता है। जिसकी छाया में आनंदपूर्वक जीवन जीया जा सकता है।

समता का विकास अर्थात् प्रिय–अप्रिय संवेदनों की कमी। प्रिय–अप्रिय संवेदनों से मुक्त रहकर समता के क्षणों का अनुभव किया है तो हृदय परिवर्तन की बात आगे बढ़ जाती है। इन संवेदनों से बचना सरल कार्य नहीं है। जहां प्रियता तथा अप्रियता में सारे तर्क, बुद्धि एवं शक्ति का प्रयोग होने लगता है, वहीं समता चकनाचूर हो जाती है। जो व्यक्ति ध्यान की साधना कर लेता है वह समता की भूमिका पर चला जाता है। चित्त निर्विकल्प रहे, विकल्प शून्य रहे। यह विकल्प शून्य होना राग–द्वेष मुक्त क्षण में जीना है। यही क्षण समता है। समता की साधना बड़ी कठोर साधना

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

है। भूखे रहने से भी कठिन कार्य है–समता भाव में रहना। राग–द्वेष में यदि कोई उलझ जाता है तो बड़ी समस्या पैदा होती है। इसलिए ध्यान समता को बढ़ाने में सहायक होता है।

11.6.3 जागरूकता का अभ्यास

व्यक्ति चाहता है कि उसका व्यक्तित्व प्रभावी बने, शक्तिशाली एवं सफल बने। वह आगे बढ़कर विकास करता है। व्यक्तित्व के निर्माण का सूत्र है–अपने प्रति जागरूकता। जागरूकता का अर्थ है–वर्तमान में जीना। व्यक्ति का ज्यादा समय अतीत की स्मृति तथा भविष्य की कल्पनाओं में व्यतीत होता है पर वर्तमान की ओर नहीं देखता है। जो वर्तमान को पकड़ना जानता है, वर्तमान में जीना जानता है, उसकी शक्तियां संग्रहीत हो सकती हैं, वह उनका उपयोग कर सकता है। 'जागरमाणस्स वड्ढए बुद्धि' अर्थात् जो जागृत होता है उसकी बुद्धि बढ़ती है। अर्थात् स्मृति तथा विवेक का विकास होता है। ऐसे ही व्यक्ति का चिंतन ज्यादा काम करता है जिसकी शक्तियां संग्रहीत होती हैं। अनावश्यक कल्पना और चिंतन शक्ति को क्षीण करते हैं। शक्ति के दुरुपयोग से बचने का सूत्र है–वर्तमान में जीना, जागरूकता का अभ्यास करना। जागरूकता का एक सूत्र है–तन्मयता। अर्थात् जो काम करें उसी मय बन जाना। जब व्यक्ति कर्त्ता और क्रिया में भेद को समाप्त कर लेता है, कर्त्ता क्रियामय बन जाता है तब वह सफल हो जाता है। कर्त्ता जब स्वयं क्रियामय बन जाता है तो उस समय एक विशेष चेतना जागती है तथा विशेष बातें निष्पन्न होती हैं। व्यक्ति अपने लक्ष्य के प्रति जागरूक हो जाता है तो पदार्थ कोरा पदार्थ मात्र रह जाता है। जब व्यक्ति जागरूक रहता है तो वह इन्हें आसानी से पार कर सकता है। जागरूकता प्रकाश है। जब तक व्यक्ति मूर्च्छा का जीवन जीता है, यह प्रकाश उसके भीतर नहीं रहता है। वह अंधकार का जीवन जीता है। कई बार व्यक्ति जानते हुए भी इस अंधकार का जीवन जीता है क्योंकि वे अपने लक्ष्य के प्रति जागरूक नहीं रहते हैं। जब भीतर से जागरूकता फूटती है तब व्यक्ति स्वयं सोचता है कि यह काम करना चाहिए, यह नहीं करना चाहिए। परिष्कार का महत्त्वपूर्ण सूत्र है–जागरूकता। जो व्यक्ति अपने अस्तित्व के प्रति जागरूक हो जाता है उसके जीवन के हर व्यवहार में जागरूकता आ जाती है। जब भीतर से प्रकाश की रश्मियां फैलती हैं तो वे चारों दिशाओं में अपना तेज फैलाती हैं। इससे जीवन की सारी दिशाएं बदल जाती हैं, सारा जीवन प्रकाशमय बन जाता है। जब व्यक्ति जागरूक होता है तो अपने भीतर में चलने वाली अच्छी व बुरी भावधाराओं को पहचान लेता है। इस जागरुकता के द्वारा व्यक्ति अपने आचरण और व्यवहार को प्रभावित करने वाले रसायनों का परिष्कार कर सकता है। यह उसकी सबसे बड़ी उपलब्धि होगी। जो व्यक्ति वर्तमान के प्रति जाग जाता है, वह वास्तव में अतीत और भविष्य के प्रति भी जाग जाता है। इसलिए वर्तमान का मूल्य अधिक है। वर्तमान में रहते हुए व्यक्ति अतीत का मूल्यांकन कर भविष्य की योजनाएं बना सकता है। इसलिए वर्तमान का महत्त्व अधिक है। जिसका वर्तमान सफल है उसका भविष्य सफल होता है। हृदय परिवर्तन के संबंध में जागरूकता अति आवश्यक है।

जागरूकता का अभ्यास क्षणभर में नहीं किया जा सकता है। इसके लिए भी अभ्यास आवश्यक है। जैसे–जैसे जागरूकता बढ़ती है, व्यक्ति प्रत्येक क्रिया के प्रति सावधान हो जाता है। विचार के प्रति, वाणी के प्रति और शरीर के प्रति यदि जागरूकता बढ़ जाती है तो कोई बुरा विचार सहजतया भीतर नहीं जा सकता है। यदि कोई बुरा विचार मन में आए और उसके प्रति जागरूक रहा जाए तो वह विचार शांत हो जाएगा। वाणी के प्रति जागरूक रहने पर बुरा शब्द एवं बुरी भाषा पर रोक लग जाती है। शरीर की क्रिया के प्रति जागरूकता होने पर अन्यायपूर्ण कार्यों के प्रति कदम नहीं उठेगा।

11.6.4 आत्मानुशासन

कुछ नियम प्राकृतिक होते हैं, कुछ नियम शाश्वत होते हैं। प्रकृति के नियम शाश्वत होते हैं तथा वे सभी पर लागू होते हैं। सामाजिक क्षेत्र में दंड का विधान होता है तो आध्यात्मिक जीवन में अनुशासन का मूल्य होता है। अनुशासन के क्षेत्र में क्रोध, प्रतिरोध वर्जित होता है। अनुशासन परतंत्र बनने के लिए नहीं दूसरों को स्वतंत्रता का आधार देने के लिए है। व्यक्ति की स्वतंत्रता को आधार देने के लिए है। व्यक्ति की स्वतंत्रता का सम्मान ही अनुशासन का उद्‌गम स्थल है। भारतीय संस्कृति का प्रखर स्वर रहा है कि बाहरी अनुशासन के साथ–साथ आत्मानुशासन भी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

रहे। जहां केवल परानुशासन होता है वहां आत्मानुशासन नहीं होता है। वहां व्यक्तित्व का विकास नहीं होता है। आत्मानुशासन के बिना जागरूकता का अभ्यास नहीं होता है। कोरा बाहरी नियंत्रण होता है तब चेतना यांत्रिक बन जाती है। आत्मानुशासन की चेतना जागने पर ही स्वतंत्र चेतना की अनुभूति होती है। अनुशासन का स्वरूप होता है–इच्छा का निरोध करना। व्यक्ति की असीम इच्छाएं होती हैं। वे इच्छाएं ही उसे उनकी पूर्ति हेतु प्रेरित करती हैं। इच्छाओं के इस महासागर में व्यक्ति जब उलझ जाता है तो उसे समस्याओं के अलावा कुछ नहीं दिखता है। जब व्यक्ति आत्मानुशासन का विकास कर लेता है तो कोई भी आकर्षण उसे प्रभावित नहीं करता है। व्यक्ति के भीतर जब यह चेतना जागती है कि क्या अच्छा है, क्या बुरा है? क्या करना चाहिए, क्या नहीं करना चाहिए? इससे उसका आत्मानुशासन दृष्टिगोचर होता है। उसका चिंतन बदल जाता है। व्यक्ति जब अभाव को देखता है तभी वह परेशान होता है। समस्या तभी पैदा होती है। अभाव को देखने वाला अनुशासन में स्थिर नहीं हो सकता है। जो व्यक्ति भाव पक्ष को देख लेता है उसका अनुशासन एक दिन आत्मनुशासन बन जाता है। इसलिए भाव परिवर्तन के लिए आत्मानुशासन का बहुत बड़ा मूल्य है।

आत्मानुशासन के अभाव में ह्रदय परिवर्तन की बात घटित नहीं हो सकती है। समूचे प्राणी जगत् में दंड और बल प्रयोग की व्यवस्था चलती है। मनुष्य ने दंड शक्ति के स्थान पर आत्मानुशासन का विकास किया है। ह्रदय परिवर्तन चेतना की एक अमूर्त्त क्रिया है। उसे देखा नहीं जा सकता है लेकिन आत्मानुशासन के विकास को देखकर उसका पता लगाया जा सकता है। आत्मानुशासन का विकास समाज और सामाजिक मूल्यों की प्रतिष्ठा हेतु महत्त्वपूर्ण अवदान है। आत्मानुशासन के बिना अहिंसा की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। व्यक्ति जब स्वयं आत्मानुशासन सीख जाता है तो समस्याएं उसे प्रभावित नहीं करती हैं।

11.6.5 अभय का विकास

भय एक मौलिक वृत्ति है। व्यक्ति को भूत, वर्तमान तथा भविष्य का भय सताता है। भय का सीधा काम है– पलायन करना। भय उत्पन्न करने में चार कारण सहायक होते हैं–प्राकृतिक नियमों की जानकारी का अभाव, शरीर के नियमों की जानकारी का अभाव, मन के नियमों की जानकारी का अभाव तथा चेतना के नियमों की जानकारी का अभाव। जो व्यक्ति इन जागतिक नियमों को जान लेता है वह भयमुक्त हो जाता है। अभय का दान वही व्यक्ति दे सकता है जिसने स्वयं अभय प्राप्त किया है और जिसमें से अभय की तरंगें निकलती हैं। वे तरंगें आपस में मिलकर सारे वातावरण में अभय का विकिरण करती हैं। अभय के द्वारा ही भय को समाप्त किया जा सकता है।

11.6.6 सहिष्णुता का विकास

सहिष्णुता का अर्थ है–सहन करना। इसका दूसरा अर्थ है– शक्ति। दोनों अर्थों के योग से ही सहिष्णुता व्यक्ति के लिए उपयोगी बनती है। मानवीय स्पर्श होता है जहां सहिष्णुता शरीर के साथ होती है। उसमें न अहम् का भाव होता है और न हीन भाव होता है। अहम् भाव और हीन विषमता पैदा करते हैं। इसके द्वारा मानवीय अंतःकरण का स्पर्श नहीं हो पाता है। व्यक्ति की रुचियां भिन्न–भिन्न हैं। जब व्यक्ति अनेक भेदों में भी सामंजस्य स्थापित कर लेता है तो वही सहिष्णुता है। सहिष्णुता के अभाव में योग नहीं हो सकता है, वियोग ही होता है। व्यक्ति की व्यक्तिगत तथा सामाजिक शक्ति के निर्माण में सहिष्णुता का बहुत महत्त्व है। सहन करने वाला ही महान बनता है। सहिष्णु वही व्यक्ति हो सकता है जो शक्तिशाली होता है। व्यक्ति अपने भीतर सहिष्णुता का भाव पुष्ट करके भी अपने को शक्तिशाली बना सकता है। मानसिक शांति के लिए सहिष्णुता आवश्यक है। सहिष्णुता के साथ प्रमोद भावना का विकास होता है। ऐसा व्यक्ति समाज में सफल हो सकता है। व्यक्ति के भीतर असहिष्णुता का भाव होता है तो वह दूसरों को नीचा दिखाने की कोशिश करता है। सारी अच्छाइयों और बुराइयों का कारण मन को माना जाता है। यदि मन की शक्ति का विकास करना है, मानसिक क्षमताओं को विकसित करना है तो सहिष्णुता का विकास आवश्यक है। जब व्यक्ति सहिष्णुता सीख लेता है तथा उसे अपने व्यवहार में उतार लेता है तो वह कई समस्याओं का समाधान आसानी से कर सकता है। सहिष्णुता का स्वर प्रबल होने पर व्यक्ति में सिद्धान्त के अनुकूल धारणा का निर्माण होता है। सहिष्णुता के द्वारा ही भिन्नता होने पर भी परस्पर सौहार्द की भावना का उदय होता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

सहिष्णुता का फलित है शांति। सहिष्णुता के अभाव में शांति नहीं हो सकती है। सहिष्णुता अर्थात् सहन करना। भिन्न आचार, भिन्न विचार, भिन्न संस्कार, भिन्न रुचि सब कुछ भिन्न है। इनकी भिन्नता होने पर भी शांतिपूर्ण सह–अस्तित्व हो जाता है। विरोधी तत्त्वों का सह–अवस्थान हो सकता है।पर इसका मूल सूत्र है–सहिष्णुता का विकास। यही शांति का बहुत बड़ा आलंबन है। परिवर्तन के लिए आवश्यक है सहिष्णुता।

11.6.7 संकल्प शक्ति का विकास

परिवर्तन का शक्तिशाली माध्यम है–संकल्प शक्ति। विकास तभी होता है जब उसके पीछे संकल्प शक्ति होती है। आदिकाल से लेकर वर्तमान तक का जो विकास है वह संकल्प शक्ति का ही योगदान है। संकल्प शक्ति का अर्थ है–कल्पना करना और उस कल्पना को भावना का रूप देना, दृढ़ निश्चय करना। जब व्यक्ति के भीतर कल्पना उठती है और वह कल्पना यदि दृढ़ निश्चय में बदल जाती है तो वह कल्पना संकल्प शक्ति बन जाती है। संकल्प शक्ति को एक बड़ी शक्ति के रूप में माना गया है। जब व्यक्ति के भीतर यह शक्ति जाग जाती है तो वह असंभव कार्य को भी संभव कर लेता है। संकल्प शक्ति के लिए आवश्यक है–अस्वीकार की शक्ति का विकास। इन्द्रिय, मन आदि परिस्थितियों की मांग को अस्वीकार करने की क्षमता जब तक नहीं होगी, संकल्प शक्ति का विकास नहीं हो सकता है क्योंकि व्यक्ति का बाह्याकर्षण ही उसकी समस्या बनता है। इन्हीं के कारण उसके भावों में अशुद्धि पैदा होती है। जब व्यक्ति परिवर्तन चाहता है तो उसे इन सबको अस्वीकार करना पड़ेगा तभी वह सफलता प्राप्त कर सकता है।

11.6.8 करुणा का विकास

करुणा मैत्री का प्रयोग है। जो व्यक्ति पूरे जगत् को मित्र मानता है, उसकी करुणा भी जागतिक हो जाती है। करुणा का संबंध है–संवेदनशीलता से। हर प्राणी प्रेमपूर्ण व्यवहार चाहता है। वैज्ञानिकों का मानना है कि वनस्पति जगत् भी प्रेमपूर्ण भावना को समझते हैं। दुनिया का नियम है कि प्रेमपूर्ण व्यवहार से सफलता को प्राप्त किया जा सकता है। प्रत्येक व्यक्ति की बौद्धिक क्षमता, कार्यक्षमता एक–सी नहीं हो सकती है फिर भी इंसान–इंसान है। यदि व्यक्ति की सोच इतनी विकसित हो जाती है तो कई समस्याओं का समाधान आसान हो जाता है। इसलिए व्यक्ति क्रूरता को छोड़कर करुणा का विकास करे तो सामाजिक जीवन सुखमय बनता है।

11.7 हृदय परिवर्तन का प्रशिक्षण

जीवन में अनेक समस्याएं आती हैं। इन समस्याओं का पार पाना कठिन है पर प्रशिक्षित व्यक्ति इन समस्याओं का पार पा जाता है। जिसका मस्तिष्क और हृदय प्रशिक्षित नहीं है, वह समस्या का पार नहीं पा सकता है। जीवन में प्रशिक्षण का बहुत महत्त्व है। जो कार्य सामान्य व्यक्ति नहीं कर पाता है एक प्रशिक्षित व्यक्ति वह कार्य कर लेता है। सारे कार्य प्रशिक्षण के द्वारा संपन्न हो जाते हैं। हृदय परिवर्तन की बात भी प्रशिक्षण के अभाव में सर्वथा संभव नहीं हो सकती है। प्रशिक्षण के तीन घटक तत्त्व हैं–आस्था, उपाय बोध और अभ्यास।

11.7.1 आस्था

कार्य के प्रति आस्था न होने पर व्यक्ति अपने कार्य में सफल नहीं हो सकता है। इसलिए सफलता की पहली शर्त है– आस्था।

11.7.2 उपाय बोध

आस्था के साथ उपाय बोध, उपाय मार्ग, ज्ञान, युक्ति का अवबोध नहीं है तो कार्य निष्पन्न नहीं हो सकता है।

11.7.3 अभ्यास

प्रशिक्षण तभी संभव होता है जब वह अभ्यास से जुड़ जाता है। जो सिद्धान्त के द्वारा समझ में नहीं आता है, वह अभ्यास के द्वारा समझ में आ जाता है। केवल ग्रहण मात्र जान लेने से सफलता नहीं मिलती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

बोध प्रश्न :

1. हृदय परिवर्तन से आप क्या समझते हैं?
2. लेश्यातंत्र, भावतंत्र कैसे हैं?
3. हृदय परिवर्तन के लिए अभय का होना क्यों जरूरी है?

11.8 हृदय परिवर्तन एवं प्रेक्षाध्यान

ध्यान के द्वारा प्रवृत्तियों का परिवर्तन तथा मस्तिष्क का नियमन होता है। नाड़ी–संस्थान और ग्रंथितंत्र पर नियंत्रण होता है एवं ध्यान के द्वारा ही प्राणधारा को संतुलित किया जाता है। ध्यान के द्वारा शरीर, मन तथा भावों का अवरोध समाप्त होता है। प्रेक्षाध्यान में जब केवल देखने की बात आती है तब वहां उसका अर्थ है– समता भाव से देखना तथा राग–द्वेष मुक्त भाव से अनुभव करना। जब इस शुद्ध चेतना द्वारा देखा जाता है वहां परिवर्तन घटित होने लगता है।

ध्यान मूर्च्छा को तोड़ने की प्रक्रिया है। व्यक्ति की चेतना कषायों के कारण जब मूर्च्छित होती है तो दृष्टिकोण भी सम्यक् नहीं होता है। ध्यान के द्वारा जब कर्म तंत्र को पार कर भाव तंत्र का स्पर्श होता है तब मूर्च्छा टूटती है। भाव तंत्र का स्पर्श केवल चेतना के द्वारा ही किया जा सकता है। वहां किसी और पदार्थ की पहुंच नहीं होती है। कोई उपकरण इस कार्य में सहयोगी नहीं बनता है। केवल चेतना ही है जो वहां तक पहुंच सकती है। प्रेक्षाध्यान के प्रयोगों द्वारा व्यक्ति अपने भावतंत्र को विशुद्ध बना सकता है। भाव रूपान्तरण का पहला बिन्दु है। प्रेक्षाध्यान के सभी प्रयोग आंतरिक परिवर्तन के प्रयोग हैं, हृदय परिवर्तन के प्रयोग हैं।

11.8.1 कायोत्सर्ग

कायोत्सर्ग का प्रयोग चैतन्य केन्द्र के जागरण का प्रयोग है। शरीर के प्रत्येक अवयव के प्रति जागरूकता, शरीर की प्रवृत्ति को समझ लेना, शरीर की सच्चाई तथा प्राणधारा को जान लेना, यह फलश्रुति है कायोत्सर्ग की। जो व्यक्ति अभ्यास के द्वारा इतना जागरूक हो जाता है, वही अपने व्यक्तित्व को जान सकता है। कायोत्सर्ग के द्वारा यह किया जा सकता है। चित्त की चंचलता का कारण है नाड़ी संस्थान। नाड़ी संस्थान के द्वारा भी चित्त की चंचलता उत्पन्न होती है। दोनों का पारस्परिक समझौता है। चित्त को सीधा नहीं पकड़ा जा सकता है। उसके लिए स्थूल शरीर का आलंबन आवश्यक होता है। यदि शरीर की चंचलता को नियंत्रित किया जाए तो चित्त की चंचलता स्वयं कम हो जाती है। कायोत्सर्ग के द्वारा शरीर, मन तथा भावों संबंधी तनाव को कम किया जा सकता है। इस प्रयोग द्वारा शक्ति का संरक्षण किया जा सकता है तथा आध्यात्मिक विकास की ओर व्यक्ति अग्रसर हो सकता है।

11.8.2 अन्तर्यात्रा

यह शक्ति के ऊर्ध्वारोहण की प्रक्रिया है जिससे विधायक भावों का विकास संभव है। अन्तर्यात्रा द्वारा शक्ति का ऊर्ध्वरोहण होता है। जब चेतना वासना केन्द्रों पर होती है तो व्यक्ति के भाव स्वस्थ नहीं होते हैं। चेतना को ऊर्ध्वामुखी बनाकर भावों को शुद्ध किया जा सकता है। अन्तर्यात्रा इसमें सहायक बनती है।

11.8.3 श्वास प्रेक्षा

दीर्घ श्वास का प्रयोग स्वयं के व्यक्तित्व को पहचानने का प्रयोग है। जैसे–जैसे श्वास के प्रति जागरूकता बढ़ती है, परिष्कार होने लगता है। श्वास प्रेक्षा द्वारा राग–द्वेष मुक्त क्षण को जीया जा सकता है। यह वीतरागता का क्षण होता है। यह क्षण जितना लंबा होता है उतनी ही आंतरिक शुद्धि होती जाती है। श्वास दर्शन से नाड़ी संस्थान पर नियंत्रण किया जा सकता है। जब नाड़ी संस्थान नियंत्रित होता है तो चित्त भी शांत हो जाता है। दीर्घश्वास का अभ्यास बढ़ने से भाव क्रिया का विकास होने लगता है। फिर तो व्यक्ति अपनी हर क्रिया के प्रति जागरूक हो जाता है। इस प्रयोग से अहं–चेतना क्षीण होती है। जब अहम् टूटता है तो क्रोध, लोभ आदि मनोवृत्तियां समाप्त होने लगती

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

हैं। जब मनोवृत्तियां समाप्त होने लगती हैं तो व्यक्ति का भाव जगत् निर्मल बनने लगता है। इसलिए दीर्घ श्वास प्रेक्षा, स्मृति श्वास प्रेक्षा भावों को परिष्कृत करने के महत्त्वपूर्ण प्रयोग हैं।

11.8.4 शरीर प्रेक्षा

शरीर प्रेक्षा के अभ्यास से शरीर के भीतरी रहस्यों का बोध होता है। शरीर प्रेक्षा से शरीर में व्याप्त प्राण का संतुलन किया जा सकता है। जब व्यक्ति का प्राण संतुलित होता है तो बुरे भाव, बुरे विचार उसे प्रभावित नहीं करते हैं। शरीर प्रेक्षा से शरीर के भीतर सच्चाई का ज्ञान होने लगता है जिससे व्यक्ति की अनेक भ्रांतियां टूटने लगती हैं तथा व्यक्ति के मनोभाव इससे परिवर्तित होने लगते हैं। शरीर प्रेक्षा में जब स्नायु जागृत हो जाते हैं तो वे व्यक्ति द्वारा किए गए सभी निर्देशों का पालन करने लगते हैं। भीतर से आने वाले प्रवाह को वे बाहर प्रकट नहीं होने देते हैं बल्कि उपशम की क्रिया प्रारंभ होने लगती है।

11.8.5 चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा

चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा सुषुप्त केन्द्रों को जगाने की प्रक्रिया है। चैतन्य केन्द्र जब अपरिष्कृत रहते हैं तो विषमता के भाव उत्पन्न करते हैं तथा जब ये परिष्कृत हो जाते हैं तो समता के भाव उत्पन्न करते हैं। जब तक चैतन्य केन्द्र नहीं बदलते हैं, भाव परिवर्तन की संभावना भी नहीं रहती है। भाव, स्वभाव या आदत को बदले बिना व्यक्तित्व को नहीं बदला जा सकता है, आध्यात्मिक विकास नहीं किया जा सकता है। चैतन्य केन्द्रों में कुछ केन्द्र भाव परिवर्तन के लिए विशेष रूप से उत्तरदायी हैं।

आनन्द केन्द्र—यह केन्द्र भाव का प्रतिनिधि केन्द्र है। भावधारा ग्रंथितंत्र के माध्यम से व्यक्त होती है। भावनाओं के साथ हृदय बहुत जल्दी जुड़ता है। हृदय और उसके आसपास का पूरा क्षेत्र आनन्द केन्द्र से प्रभावित होता है। इस केन्द्र का संबंध थाइमस ग्रंथि से माना जाता है। मंत्रों के जप के साथ इस केन्द्र पर ध्यान करना बहुत उपयोगी माना गया है।

विशुद्धि केन्द्र—भावना की स्वच्छता के लिए इस केन्द्र पर ध्यान करना बहुत आवश्यक है। इस प्रयोग के अभ्यास से जीवन की अनेक कठिनाइयों को पार कर सफलता के बिन्दु तक पहुंचा जा सकता है। मन की चंचलता को कम करने में इस केन्द्र की प्रेक्षा सहायक बनती है।

ब्रह्म केन्द्र— इस केन्द्र का उपयोग अनिवार्य है। इस केन्द्र का संबंध जननेन्द्रिय से भी होता है। जीभ की विद्युत तरंगें शांत रहती हैं तो जननेन्द्रिय की विद्युत तरंगे भी शांत रहती हैं।

प्राण केन्द्र—नासाग्र चेतना का विशिष्ट स्थान है। यह विद्युत का केन्द्र है। प्राण शक्ति की प्रखरता के लिए इस केन्द्र पर ध्यान करना उपयोगी होता है। निराशा एवं कुंठा को तोड़ने के लिए प्राण केन्द्र प्रेक्षा महत्त्वपूर्ण मानी गई है।

चाक्षुष केन्द्र—चाक्षुष केन्द्र प्रेक्षा से भाव तरंगों का परिष्कार तथा मानसिक शांति का विकास किया जा सकता है।

अप्रमाद केन्द्र—इस केन्द्र पर ध्यान करने से जागरूकता को बढ़ाया जा सकता है। शरीर शास्त्री भी कान के ऊपर तथा नीचे के भाग को कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण मानते हैं। इस केन्द्र पर ध्यान करने से व्यसन मुक्त जीवन जिया जा सकता है।

ज्योति केन्द्र—ज्योति केन्द्र पर ध्यान करने से क्रोध शांत होता है तथा ब्रह्मचर्य की दृष्टि से इसका महत्त्व है। इस केन्द्र का स्थान पीनियल ग्रंथि से माना गया है। यह नीचे की सभी ग्रंथियों पर अपना नियंत्रण स्थापित करता है। इसके परिष्कार से अनेक शारीरिक तथा मानसिक समस्याओं को सुलझाया जा सकता है। दर्शन केन्द्र का स्थान पिट्यूटरी ग्रंथि को माना जाता है। इस पर ध्यान करने से अंतःप्रज्ञा का जागरण होता है। व्यक्ति में अन्तर्मुखता आने से बाहरी वृत्तियां उसे प्रभावित नहीं कर पाती हैं।

शांति केन्द्र—आंतरिक आवेगों से छुटकारा पाने के लिए शांति केन्द्र पर ध्यान करना उत्तम माना जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

ज्ञान केन्द्र—नाड़ी संस्थान का महत्त्वपूर्ण भाग है—मस्तिष्क, जो सारे क्रियाकलापों को नियंत्रित करता है। ज्ञान केन्द्र प्रेक्षा के द्वारा अंतःप्रज्ञा को जागृत किया जा सकता है। जब व्यक्ति की अंतःप्रज्ञा जागृत हो जाती है। व्यक्ति का प्रत्येक कार्य जागरूकता से जुड़ जाता है। उसका भाव पक्ष मजबूत हो जाता है।

11.8.6 लेश्याध्यान

भावों को निर्मल बनाने का सरल उपाय है—रंगों का ध्यान, लेश्याध्यान। चमकते रंगों का ध्यान भाव विशुद्धि में महत्त्वपूर्ण माना जाता है। पीला, लाल और सफेद रंग भाव विशुद्धि के साधन हैं। व्यक्ति के समूचे भावतंत्र पर रंगों का प्रभुत्व होता है। रंगों के द्वारा शारीरिक बीमारियां दूर की जा सकती हैं, मानसिक दुर्बलताओं को मिटाया जा सकता है तथा आध्यात्मिक मूर्च्छा को तोड़ा जा सकता है। दूषित भावों और विकृत विचारों को रंगों के ध्यान के द्वारा दूर किया जा सकता है। आंतरिक शोधन की यह प्रक्रिया भावों और विचारों को शुद्ध बनाती है।

श्वेत रंग में अर्हं का ध्यान करने से नाना प्रकार की व्याधियां दूर हो सकती हैं। शरीर से विषों का शोध होता है। अरुण रंग का ध्यान करने से तेजोलेश्या के स्पन्दन जागते हैं। मन की दुर्बलता को, मन की कठिनाइयों को इस ध्यान के द्वारा दूर किया जा सकता है। मन को शक्तिशाली बनाया जा सकता है। तंत्र शास्त्र में भी आंतरिक परिवर्तन के प्रयोग बताए हैं, जो निम्न प्रकार हैं—

1. पूरे शरीर पर लाल सूर्य जैसे रंग का ध्यान करने से छः महीने में वीतरागता सिद्ध हो सकती है।
2. स्वयं के शरीर को आकाश में स्थित देखकर शरद ऋतु की संध्या के जैसे रंग का ध्यान छः महीने तक निरन्तर करने से वीतराग भाव घटित होने लगता है।
3. नासाग्र पर स्वर्ण या श्वेत रंग-रंग का ध्यान करने से दूषित भावना को दूर किया जा सकता है। तंत्र शास्त्र के कई महत्त्वपूर्ण प्रयोग लेश्याध्यान से संबंधित हैं।

11.8.7 अनुप्रेक्षा

सच्चाइयों को ज्ञात करने का यह महत्त्वपूर्ण प्रयोग है। आदतों को बदलने में इसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है। वर्तमान में चिकित्सा के क्षेत्र में इसका प्रयोग किया जाता है। यह प्रयोग स्वभाव परिवर्तन की अचूक पद्धति है, बुरा आचरण, बुरा व्यवहार, व्यसन, बुरी आदतें आदि इसके द्वारा परिवर्तित किए जा सकते हैं। अनुप्रेक्षाओं के द्वारा, समता, सहिष्णुता, अहिंसा, मानसिक संतुलन, अभय आदि विधायक भावों को अपने भीतर पुष्ट किया जा सकता है। व्यक्ति के भाव अशुद्ध हों तो उसका आभामण्डल मलिन बनता है। यदि उसका आभामण्डल शुद्ध है तो भाव भी शुद्ध होते हैं। लेश्याध्यान में प्रशस्त रंगों के ध्यान के द्वारा भावों को विशुद्ध किया जा सकता है। भावों का संबंध ग्रंथियों से होता है। लेश्या का प्रयोग रसायनों को परिवर्तित करने का प्रयोग है। अनुप्रेक्षाएं विधायक भावों को जगाने के महत्त्वपूर्ण प्रयोग हैं। इनके द्वारा निषेधात्मक भावों को दूर किया जा सकता है। व्यक्ति में विधायक भावधारा को जगाया जा सकता है।

इनके अतिरिक्त शारीरिक प्रशिक्षण के अंतर्गत योगासन एवं प्राणायाम का अभ्यास एक महत्त्वपूर्ण प्रशिक्षण है। इन प्रयोगों के द्वारा व्यक्ति का शारीरिक स्वास्थ्य सही रहता है। इनके द्वारा शरीर में बनने वाले रसायनों में संतुलन स्थापित हो जाता है। यदि शरीर स्वस्थ रहता है तो मन भी स्वस्थ रहता है।

11.8.8 भावना

प्रतिपक्षी भावना द्वारा भी नकारात्मक भावों में परिवर्तन हो सकता है। आचार्य महाप्रज्ञ जी ने मंगल भावना के नौ सूत्र दिए हैं, जिनके द्वारा भी भाव संस्थान को निर्मल बनाया जा सकता है। ये नौ सूत्र निम्न हैं—

1. श्री संपन्नोऽहम्स्याम्—मैं श्री सम्पन्न बनूं।
2. ह्री—संपन्नोऽहम्स्याम—मैं लज्जा सम्पन्न बनूं।
3. धी संपन्नोंऽहम् स्याम्—मैं बुद्धि सम्पन्न बनूं।
4. धृति संपान्नोऽहम् स्याम्—मैं धैर्य सम्पन्न बनूं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

5. शक्ति संपन्नोऽहम् स्याम्—मैं शक्ति सम्पन्न बनूं।
6. शांति संपन्नोऽहम् स्याम्—मैं शांति सम्पन्न बनूं।
7. नन्दि संपन्नोऽहम् स्याम्—मैं आनन्द सम्पन्न बनूं।
8. तेजः संपन्नोऽहम् स्याम्—मैं तेज सम्पन्न बनूं।
9. शुक्लः संपन्नोऽहम् स्याम्—मैं पवित्रता सम्पन्न बनूं।

11.8.9 मंत्र

शब्द (मंत्र) के द्वारा भावों को शुद्ध किया जा सकता है। मन तथा शरीर के साथ मंत्रों का बहुत संबंध है। मंत्र का प्रयोग शाश्वत का प्रयोग है। जब व्यक्ति के मन में एक भाव निर्मित हो जाता है तो उसे तोड़ना कठिन हो जाता है। यदि व्यक्ति प्रयास करे तो वह मूल तक जाकर समस्या का समाधान कर सकता है। जब शब्द भाव तक पहुंचता है तब सही काम बन जाता है। इसके लिए सही शब्दों, मंत्रों का चुनाव करना पड़ता है। जब वह शब्द भीतर जाकर भावतंत्र को प्रकंपित करता है, मोह के स्पन्दनों को शांत कर देता है तो सचमुच भाव परिवर्तन की प्रक्रिया प्रारंभ हो जाती है। शब्द जब भाव का स्पर्श करते हैं तो यथार्थ घटित होने लगता है। आवश्यकता है सही शब्दों के चयन तथा उनके सही उपयोग की। यदि ऐसा हो तो भाव संस्थान में बहुत बड़ा परिवर्तन संभव हो सकता है।

11.8.10 स्वाध्याय

भाव परिवर्तन के लिए स्वाध्याय को सही पद्धति माना गया है। अच्छा विचार, अच्छा चिंतन तथा अच्छे साहित्य का अध्ययन—मनन भावधारा को बदल देता है। यह एक शोधन का उपाय है। यदि विधि के अनुसार स्वाध्याय किया जाए तो इसका प्रभाव पड़ेगा। पढ़ने मात्र को स्वाध्याय नहीं कहा जा सकता है। स्वाध्याय तब होता है जब पढ़ने के साथ चिंतन—मनन जुड़ता है। इसके अभाव में स्वाध्याय लाभप्रद नहीं होता है। कोरा सुनना या पढ़ना प्रभावी नहीं हो सकता है। मनन के द्वारा जो प्राप्त किया जाता है वह निश्चित ही भाव परिवर्तन के लिए प्रभावी हो सकता है। मनन के द्वारा जो नवनीत प्राप्त होता है वह पढ़ने मात्र से नहीं मिलता।

प्रेक्षाध्यान के प्रयोगों के द्वारा व्यक्ति की चेतना को विशुद्ध किया जा सकता है। जब चेतना विशुद्ध हो जाती है तब व्यक्ति के भीतर मलिनता समाप्त हो जाती है। इन प्रयोगों के द्वारा व्यति पुनः सही व्यवहार, सही चिंतन करने लगता है। पुनर्वास की प्रक्रिया में प्रेक्षाध्यान के प्रयोग महत्त्वपूर्ण साबित हो सकते हैं। आवश्यकता है इन प्रयोगों के अभ्यास की। यदि व्यक्ति वास्तव में परिवर्तन चाहता है, प्रयोगों में आस्था रखता है और उनका अभ्यास करता है तो वह अपने लक्ष्य तक पहुंच सकता है।

11.9 प्रश्नावली

निबंधात्मक प्रश्न

1. हृदय परिवर्तन का अर्थ बताते हुए इसकी आधारभूमि पर प्रकाश डालिए।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. हृदय परिवर्तन की आवश्यकता क्यों होती है?
2. हृदय परिवर्तन के कौन—कौन—से सूत्र हैं?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. मनुष्य की सबसे बड़ी उपलब्धि क्या है?
2. व्यक्ति में कितने प्रकार की भावधाराएं चलती हैं?
3. डोसोमिलियन न्यूक्लियस क्या है?
4. मंगल भावना के कितने सूत्र हैं?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

5. स्वाध्याय कब होता है?
6. मात्र मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जो .... जानता है?
7. मनुष्य ने दण्ड शक्ति के स्थान पर.............................का प्रयोग किया है?
8. शरीर प्रेक्षा से शरीर में व्याप्त.........................का संतुलन किया जा सकता है?
9. लेश्या तंत्र की शुद्धि के बिना..................................हो सकता है?
10. ध्यान.................................तोड़ने की प्रक्रिया है?

11.10 संदर्भ पुस्तकें

1. कैसे सोचें?–आचार्य महाप्रज्ञ
2. अवचेतन मन से सम्पर्क–आचार्य महाप्रज्ञ
3. आभामण्डल–आचार्य महाप्रज्ञ
4. एकला चलो रे–आचार्य महाप्रज्ञ
5. अध्यात्म विद्या–आचार्य महाप्रज्ञ
6. प्रेक्षा–अनुप्रेक्षा–आचार्य तुलसी
7. प्रेक्षाध्यान : चिकित्सा–मुनि महेन्द्र कुमार
8. अभ्युदय–आचार्य महाप्रज्ञ

❑❑❑

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–12 : अहिंसक व्यवहार की प्रक्रिया एवं लाभ

संरचना

12.0 प्रस्तावना
12.1 उद्देश्य
12.2 अहिंसा का अर्थ एवं महत्व
12.3 सामाजिक व्यवस्था
12.3.1 सामाजिक समस्या का कारण
12.3.1.1 अहम् की समस्या
12.3.1.2 व्यक्तिवादी दृष्टिकोण
12.3.1.3 भोगवादी दृष्टिकोण
12.3.1.4 अधिकार की मनोवृत्ति
12.3.2 समाज व्यवस्था के सूत्र
12.3.2.1 स्वतंत्रता
12.3.2.2 समानता
12.3.2.3 सहयोग
12.3.2.4 सहानुभूति
12.3.2.5 सहिष्णुता
12.4 आर्थिक व्यवस्था
12.4.1 आर्थिक जीवन से जुड़े पहलू
12.4.1.1 इच्छा
12.4.1.2 आवश्यकता
12.4.1.3 उपार्जन और स्वामित्व
12.4.1.4 भोग
12.4.1.5 शोषण
12.4.1.6 कर्मवाद
12.4.1.7 आर्थिक असंतुलन
12.4.1.8 हिंसा
12.4.1.9 अशांति
12.4.1.10 युद्ध
12.4.2 आर्थिक क्षेत्र की समस्याएं एवं समाधान
12.4.3 अर्थ व्यवस्था के पैरामीटर
12.4.3.1 विश्वशांति में सहयोगी बनें
12.4.3.2 अपराधों में कमी लाएं
12.4.3.3 हिंसा को प्रोत्साहन न मिले
12.4.3.4 शोषण विहीन अर्थव्यवस्था हो
12.5 राजनैतिक व्यवस्था
12.5.1 लोकतंत्र की समस्याएं
12.5.1.1 अक्षमता

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

12.5.1.2 विकेन्द्रित उत्तरदायित्व
12.5.1.3 भ्रष्टाचार
12.5.1.4 चारित्रिक समस्याएं
12.6 व्यवस्थाएं एवं धर्म
12.7 बुद्धिजीवियों का दायित्व
12.8 अहिंसा प्रशिक्षण
12.8.1 अहिंसा प्रशिक्षण की भूमियां
12.8.1.1 अहिंसा प्रशिक्षण की प्रयोग भूमि
12.8.1.2 अहिंसा प्रशिक्षण की आधार भूमि
12.8.2 अहिंसा और अणुव्रत
12.8.3 अहिंसक व्यवहार के लाभ
12.9 प्रश्नावली
12.10 संदर्भ ग्रंथ

12.0 प्रस्तावना

प्रत्येक व्यक्ति दो आयामों में जीता है—बाहर और भीतर। मांग भीतर में हो तो पूर्ति बाहर। व्यक्ति के इन आयामों में जीने के कारण समस्या और जटिल बन जाती है। समस्या को समाहित करने हेतु अनेक प्रणालियां बनीं—सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक। पर ऐसा प्रतीत होता है कि ये प्रणालियां समाधान देने में पूर्ण रूपेण सक्षम नहीं हुई। समस्या ज्यों की त्यों बनी हुई है। ऐसी स्थिति में कोई ऐसा उपाय खोजा जाए जो समस्या का समाधान दे सके। इसके लिए आवश्यक होगा कि समस्या का कारण क्या है? उसे खोजा जाए और फिर सही तरीके से उसका समाधान दिया जाए। इससे हिंसा को बढ़ावा नहीं मिलेगा। यदि अहिंसक समाज की संरचना करनी है तो उसके लिए अपेक्षित है अहिंसक व्यवहार। अहिंसक व्यवहार हेतु आवश्यक है व्यक्ति का आंतरिक तथा बाह्य सुधार।

व्यक्ति का जीवन दो धाराओं में प्रवाहित है—वस्तु जगत् और भाव जगत्। परिवर्तन के सारे प्रयोग वस्तु जगत् पर हुए हैं। अर्थ व्यवस्था, राजनैतिक व्यवस्था एवं समाज व्यवस्था में परिवर्तन किया गया लेकिन भाव जगत् को नकार दिया गया, यही सबसे बड़ी भूल है। अहिंसक व्यवहार के लिए जहां आन्तरिक परिवर्तन आवश्यक है वहीं दूसरा महत्त्वपूर्ण परिवर्तन बाह्य वातावरण को भी सुधारना है। जब तक इन दोनों पक्षों पर ध्यान नहीं दिया जाएगा तब तक समस्या का समाधान नहीं हो पाएगा। इसलिए दोनों तरफ से सुधार आवश्यक है। व्यक्ति सामाजिक प्राणी होने के कारण समाज में रहता है। वह समाज के नियमों को मानता है तथा समाज द्वारा बनाई गई व्यवस्थाओं का पालन करता है। इसलिए व्यवस्थाएं भी ऐसी होनी चाहिए जो व्यक्ति के लिए समस्या का समाधान दें। व्यक्ति द्वारा बनाई गई व्यवस्था यदि व्यक्ति को ही बाधित करे तो यह समस्या का प्रश्न है। आवश्यकता इस बात की है कि सामाजिक जीवन जीने के लिए जो व्यवस्थाएं बनाई जाती हैं वे सबके हित में होनी चाहिए। व्यवस्था के मुख्यतया तीन पहलू हैं—सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक।

12.1 उद्देश्य

इस पाठ को पढ़ने से निम्न जानकारियां प्राप्त हो सकेंगी—

1. अहिंसा का अर्थ एवं महत्त्व,
2. व्यवस्था परिवर्तन—सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक,
3. व्यवस्थाएं एवं धर्म,
4. बुद्धिजीवियों का दायित्व,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

5. अहिंसा प्रशिक्षण — आधारभूमि एवं प्रयोगभूमि,
6. अहिंसा और अणुव्रत,
7. अहिंसक व्यवहार के लाभ।

12.2 अहिंसा का अर्थ एवं महत्त्व

अहिंसा का अर्थ है किसी भी प्राणी को मन, वचन और काया से कष्ट न पहुंचाना। अहिंसा जीवन का परम आदर्श है। विधायक भावों से अनुप्रणित अहिंसा का पथ सदैव प्रशस्त रहा है। अहिंसा को अनेक उपमाओं से उपमित करते हुए सूत्रकार ने कहा है — अहिंसा भयभीत प्राणियों के शरण, पक्षियों के लिए गमन, प्यासों के लिए जल, भूखों के लिए भोजन, समुद्र के मध्य जहाज, रोगियों के लिए औषध तथा वन में सार्थवाह के सार्थ की तरह प्राणियों का आधारभूत है। धर्म के समस्त अंगों में अहिंसा ही प्रधान है। अहिंसक परिणाम वाला व्यक्ति तप, नियम करता है और वे फलदायी भी होते हैं। इसका कारण है कि अहिंसा की उर्वर भूमि में ही विधायक गुणों की पौध विकसित होती है। जिस प्रकार तीन लोकों का आधार आकाश, द्वीप-समुद्रों का आधार पृथ्वी है उसी प्रकार व्रत, गुण और शील का आधार अहिंसा है। अहिंसा को जगत् की माता कहा गया है। यह समस्त प्राणियों की रक्षा करने वाली तथा सुख-कल्याण व अभ्युदय का निमित्त बनती है। अहिंसा को माता से उपमित करना एक बहुत बड़े मनोवैज्ञानिक तथ्य को प्रकट करता है। अहिंसा माता की तरह षड् जीवनिकाय की संरक्षिका है। इस जगत् में माता को ही सर्वाधिक हितकारी माना गया है। अहिंसा सर्वदा सबके लिए हितकारी होती है। वह सूखे प्रदेश में अमृत की सरणि तुल्य है, दु:ख रूपी दावानल के लिए मेघपटली है, संसार में भ्रमण करने वाले रोगी और पीड़ित व्यक्तियों के लिए परम औषधि है। इन्हीं भावों का समर्थन करते हुए उपाध्याय यशोविजय जी ने कहा है — अहिंसा पुण्य कार्यों के लिए क्रीड़ास्थली है, पाप रूपी रजों का हरण करने के लिए वायु की तरह है, दावाग्नि के लिए मेघपटली है, कल्याणकारी सूचना देने के लिए दूती की तरह है, स्वर्ग व अपवर्ग के लिए सोपान की तरह है, मुक्ति की प्रियसखी, कुगति के लिए अर्गला की तरह है।

पातंजल योगदर्शन में अहिंसा के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए कहा है — "अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः।" अहिंसा की प्रतिष्ठा होने पर ही वैर त्याग स्वत: हो जाता है। अहिंसा में परमाणु प्रलय के विरुद्ध आवाज उठाने की शक्ति है। अहिंसा की कठोर साधना के बाद ही महावीर ने कहा था — मा हण, मा हण अर्थात् किसी को मत मारो, मत मारो। मारोगे तो मरना पड़ेगा। किसी का छेदन मत करो, छेदन करोगे तो छिदना पड़ेगा, किसी को परितप्त मत करो। परितप्त करोगे तो पीड़ा का अनुभव करना पड़ेगा।

अहिंसा आध्यात्मिक विकास का मूल मंत्र है। सार्वभौम शांति का सृजन अहिंसा के द्वारा ही संभव है और यह विश्व के लिए वरदान है। आचारांग सूत्र में अहिंसा को महापथ कहा गया है क्योंकि यह मोक्ष का मार्ग है। अहिंसा का विकास त्रैकालिक समस्याओं का समाधान हो सकता है। अहिंसा प्रधान जीवनशैली से न केवल व्यक्तिगत जीवन सुखी रहता है अपितु समाज और राष्ट्र भी विकास के शिखरों का आरोहण कर सकते हैं क्योंकि अहिंसा सदैव सृजनात्मक होती है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि अहिंसा का जीवन में बहुत महत्त्व है। इसके लिए आवश्यक है अहिंसा का जीवन में आचरण, अहिंसा व्यवहार। जब तक व्यक्ति इसे व्यवहार में नहीं उतारेगा तब तक यह केवल सिद्धान्त के रूप में ही रह जाएगी। आवश्यक है इसे व्यवहार के धरातल पर उतारना। तभी इसका महत्त्व व्यक्ति जानेगा। समस्या का समाधान तभी संभव है जब समाधान हेतु क्रियान्विति हो। जब व्यक्ति अहिंसक व्यवहार को महत्त्व देगा तो समाधान उसके पास होगा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

12.3 सामाजिक व्यवस्था

समाज के दो चित्र सामने आते हैं—पदार्थ प्रतिबद्ध तथा पदार्थ मुक्त। दोनों भिन्न बातें हैं। पदार्थ प्रतिबद्ध समाज में धन साध्य बन जाता है। इसमें प्रतिबद्धता पैदा हो जाती है। इसी कारण व्यक्ति क्रूर, हिंसक बन जाता है। इसमें व्यक्ति का दोष है तो समाज व्यवस्था भी दोषी है। समाज की अवधारणा पर ही व्यक्ति का रूप बनता है। इसलिए सामाजिक व्यवस्था बनाते समय उचित-अनुचित का ध्यान रखना महत्त्वपूर्ण है।

12.3.1 सामाजिक समस्या का कारण

सर्वप्रथम यह देखना होगा कि समाज की बीमारी का कारण क्या है, क्यों समाज शोषण से घिरा हुआ है? इसके लिए मुख्य कारणों की खोज आवश्यक होगी। समाज की रुग्णता के निम्न कारण हैं—

12.3.1.1 अहम् की समस्या

अहम् की समस्या ने समाज को रुग्णता प्रदान करने में अपनी पूरी भूमिका अदा की है। सारा प्रदर्शन अहंकार के कारण ही चलता है। व्यक्ति प्रदर्शन के लिए न जाने क्या-क्या करता है। अहम् एक ऐसी दौड़ है जिसने आवश्यकता के पक्ष को ही गौण कर दिया तथा अनुपयोगिता एवं प्रदर्शन के पक्ष को उभार दिया। जीवन की आवश्यकता पूर्त्ति वह व्यक्ति भी कर सकता है जिसकी आय कम हो। खाने में रोटी की आवश्यकता होती है, सोने-चांदी की नहीं। अहंकार की चेतना से प्रभावित व्यक्ति अर्थोपार्जन में ही लगा रहता है। इस अहम् भावना से समाज और समस्या ग्रस्त हो गया। एक तरफ अतिभाव तो दूसरी तरफ अभाव। ऐसी स्थिति में समस्या ही पैदा होगी। अभाव वाले व्यक्ति के भीतर यह इच्छा हो सकती है कि हमारे पास भी धन हो, हम भी उसका प्रदर्शन करें। अधिकतर कमजोर मानसिकता वाले व्यक्ति इससे ज्यादा प्रभावित होते हैं। वे भी किसी न किसी प्रकार से इच्छा पूर्त्ति में लग जाते हैं। उसमें चाहे सही तरीके से कमाया गया धन हो या गलत तरीके, इसका ध्यान नहीं रखा जाता है। सिर्फ इच्छा पूर्त्ति महत्त्वपूर्ण बन जाती है। इसके विपरीत कई लोग इस प्रदर्शन की देखादेखी से हीन भावना से ग्रसित हो जाते हैं, मानसिक तनाव, कुंठा, उदासी और भावनात्मक रोगों के शिकार हो जाते हैं। ये भी समाज में एक नई समस्या का वातावरण पैदा कर सकते हैं।

12.3.1.2 व्यक्तिवादी दृष्टिकोण

व्यक्ति स्वयं ही स्वस्थ समाज संरचना में बाधक बनता है। व्यक्ति जब अपने और अपने परिवार के लिए सुख-सुविधा जुटाने का प्रयत्न करता है तो दूसरों के सुख-सुविधा की उसे चिंता नहीं रहती है। समाज में ऐसा दृष्टिकोण समस्या ही पैदा करता है। इस संसार में सबका अस्तित्व है। यदि व्यक्ति सिर्फ अपने को ही देखे तो दूसरे के अस्तित्व का क्या होगा? साधन संपन्न व्यक्ति या अपने को योग्य कहलाने वाले व्यक्ति तो ऐसा कर भी सकते हैं लेकिन साधन विहीन व्यक्ति क्या करेगा? जहां परमार्थ की चेतना नहीं होती है वहां ऐसा ही वातावरण पैदा होता है। स्वार्थ चेतना से समाज ग्रस्त है। यह स्वार्थ चेतना समाज के लिए सही नही है।

12.3.1.3 भोगवादी दृष्टिकोण

व्यक्ति प्रत्येक पदार्थ का भोग करना चाहता है। वर्तमान की आर्थिक व्यवस्था इसमें सहायक सिद्ध हुई है। अधिक उत्पादन, अधिक अर्जन और अधिक उपभोग। इस दृष्टिकोण ने किसी को भोगी बना दिया, किसी को अभावग्रस्त बना दिया तो किसी को दीन-हीन बना दिया। व्यक्ति के इस भोगवादी दृष्टिकोण ने उसी के लिए समस्या पैदा कर दी है। उसने अपने को प्राणियों में श्रेष्ठ होने का जो दुरुपयोग किया है उसका परिणाम व्यक्ति ही भुगत रहा है। भोगवादी वृत्ति ने व्यक्ति की सभी संभावित आवश्यकताओं की पूर्त्ति में सहयोग प्रदान किया है। इसी वृत्ति का एक दुष्परिणाम सामने है—पर्यावरण प्रदूषण। अंधाधुंध पेड़ों की कटाई, पदार्थों का अधिक से अधिक

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

उत्पादन आदि कई कारण हैं जिनसे व्यक्ति के लिए खतरा उत्पन्न हो गया है। पर्यावरण की समस्या जग जाहिर है। व्यक्ति का यह भोगवादी दृष्टिकोण कई समस्याओं को पैदा करने वाला है।

12.3.1.4 अधिकार की मनोवृत्ति

प्राणी की मौलिक मनोवृत्ति है—अधिकार। यदि देखा जाए तो सारी समस्याओं की जड़ अधिकार की मनोवृत्ति ही है। इसमें सभी का समावेश हो जाता है। इसे संग्रह या परिग्रह की मनोवृत्ति भी कहा जा सकता है। व्यक्ति सबको अपने अधिकार में रखना चाहता है। इससे समस्याएं उलझती हैं।

12.3.2 समाज व्यवस्था के सूत्र

अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये हमारे चरित्र के मूल आधार माने जाते हैं। इनकी व्याख्या जैनागम, बौद्ध दर्शन, पातंजल योग दर्शन और महात्मा गांधी ने भी की है। दो-तीन हजार वर्ष पूर्व से जिसकी व्याख्या चरित्र या आचार के रूप में होती रही है वह चरित्र समाज के संदर्भ में ही है। चरित्र और आचार के विकास की बात तब होती है जब समाज की व्यवस्था का भी ज्ञान हो। समाज कैसे चलता है, उसका आधार क्या है आदि समाज के संदर्भ की जानकारी होने के बाद ही आचार-व्यवहार की बात कही जा सकती है। क्योंकि जब तक समाज के मूलभूत आचार को नहीं समझा जाएगा तब तक चरित्र और आचार पक्ष को समझना भी आसान नहीं होगा। चरित्र और आचार पक्ष का संबंध समाज पर ही आधारित है। इसलिए समाज व्यवस्था को समझना आवश्यक हो जाता है। समाज व्यवस्था के निम्न आधार हैं—

12.3.2.1 स्वतंत्रता

समाज के साथ स्वतंत्रता अक्षुण्ण रहनी चाहिए। समाज व्यवस्था का प्रथम आधार स्वतंत्रता ही है लेकिन इससे समस्या पूर्णरूपेण हल नहीं होती है। जहां ज्यादा व्यक्ति मिलते हैं वहीं समस्या खड़ी हो जाती है। समाधान मिला कि स्वतंत्रता के साथ नियंत्रण भी आवश्यक है। अनेकान्त का पहला सूत्र बनाया स्वतंत्रता और नियंत्रण। स्वतंत्रता की एक सीमा होनी चाहिए। नियंत्रण इसलिए आवश्यक होता है कि सभी की स्वतंत्रता बनी रहे। नियंत्रण के अभाव में स्वतंत्रता टिक नहीं सकती है। नियंत्रण का अर्थ है—एक शक्तिशाली व्यक्ति भी कमजोर व्यक्ति की स्वतंत्रता में बाधक न बने। जब तक स्वतंत्रता और नियंत्रण का संतुलन नही होगा, समाज व्यवस्था सही नही चल पाएगी। इसलिए इन दोनों का संतुलन आवश्यक है।

12.3.2.2 समानता

समानता अर्थात् सबके प्रति समान व्यवहार होना चाहिए। न कोई ऊंच है न नीच, न कोई अतिरिक्त है न कोई हीन। भगवान् महावीर ने भी कहा है कि 'णो हीणे णो अइरित्ते'। यह बात निश्चियनय हो सकती है पर व्यवहारमय नहीं हो सकती है। व्यवहार के धरातल पर हीनता और अतिरिक्तता का ही बोलबाला होता है। जहां व्यक्ति शरीर, प्राण और मस्तिष्क के साथ जीता है वहां असमानता ही असमानता भरी हुई है। समानता की बात सर्वत्र एकरूपता में लागू नहीं हो सकती है। न्याय और औचित्य के साथ समानता, असमानता दोनों ही हैं। आर्थिक दृष्टि से समानता की बात सोची गई तो वहां एक मजदूर की न्यूनतम आय का तो निर्धारण कर दिया गया लेकिन अधिक आय का कोई निर्धारण नहीं किया गया। समाज व्यवस्था में समानता-असमानता दोनों का ही अपना-अपना मूल्य है। जीवन की मूल आवश्यकताएं सबके लिए समान होती हैं इसलिए उनकी पूर्त्ति भी समानता के आधार पर होनी चाहिए। जहां व्यवस्था, न्याय, बुद्धि और कौशल का प्रश्न है वहां समानता की बात असंभव ही होती है। अनेकान्तवाद पर आधारित समाज व्यवस्था का महत्त्वपूर्ण अभ्युपगम है—समानता और असमानता का औचित्यपूर्ण सामंजस्य।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

12.3.2.3 सहयोग

सहयोग के बिना समाज का औचित्य ही नहीं होता है। सहयोग के आधार पर समाज व्यवस्था सही बनी रहती है। व्यक्ति यदि समूह में रहते हैं पर उनका परस्पर सहयोग नहीं होता है तो वहां प्रत्येक के आगे विराम लग जाता है। अर्ध विराम और पूर्ण विराम जहां लगता जाता है वहां समाज नहीं बनता है। जैसे 1, 1, 1, के आगे अर्ध विराम लग जाने से ये तीन बन जाते हैं। यदि इनके आगे से अर्ध विराम हटा दिया जाए तो 111 बन जाते हैं। समाज में इन विरामों का अभाव होगा तभी एकसूत्रता होगी, सहयोग होगा। चिंतनीय प्रश्न तब बनता है जब दो व्यक्ति साथ रहें और वे एक दूसरे को योगदान न दें। इसका अर्थ है कि उन्हें समाज की मूल्यवत्ता का बोध नहीं है, उन्हें साथ रहने की उपयोगिता का ज्ञान नहीं है। समाज तभी चलता है जब वहां योग हो, सहयोग हो। सहयोग के साथ यह भी विवेक होना चाहिए कि सहयोग कहां करना है और कहां नहीं। सहयोग जितना महत्त्वपूर्ण होता है, असहयोग भी उतना ही महत्त्वपूर्ण होता है। बुराई के साथ असहयोग करना समाज व्यवस्था का सूत्र है।

12.3.2.4 सहानुभूति

समाज में सहानुभूति का बहुत विकास हुआ है। एक व्यक्ति को कष्ट होने पर कई व्यक्ति सहानुभूति व्यक्त करने लगते हैं। जहां एक ओर सहानुभूति विद्यमान है, वहीं दूसरी ओर असहानुभूति की चेतना भी विकसित है जो व्यक्ति को गलत और अनैतिक कार्यों की ओर ले जाती है। इसलिए समाज में सहानुभूति की भावना प्रबल हो तो समाज में समस्या पैदा नहीं होती है।

12.3.2.5 सहिष्णुता

समाज में विभिन्न रूचि, विचार, प्रकृति वाले व्यक्ति होते हैं। इस स्थिति में यदि सहिष्णुता न हो तो समाज नहीं चल सकता है। समाज में सहिष्णुता-असहिष्णुता दोनों ही विद्यमान रहती है। यदि सहिष्णुता का पक्ष मजबूत रहता है तो समाधान आसान हो जाता है।

उपरोक्त मौलिक तत्त्वों की अनिवार्यता हेतु अणुव्रत की अनिवार्यता है। यदि इन तत्त्वों के प्रति व्यक्ति की धारणा या आस्था नहीं बनती है, समाज व्यवस्था के प्रति व्यक्ति की धारणा या आस्था नहीं बनती है तो समाज व्यवस्था के मूल आधार ही लड़खड़ा जाएंगे। वर्तमान में जो समाज में नैतिकता है, वह समाज व्यवस्था पर ही कुठाराघात कर रही है। कई व्यक्ति ऐसे हैं जो बुराई करना नहीं चाहते पर अज्ञान के कारण वे अंधेरे में भटक रहे हैं। व्यक्तियों के लिए अणुव्रत आलोकदीप बन सकता है।

12.4 आर्थिक व्यवस्था

आचार्यश्री महाप्रज्ञ जी का कहना है कि अर्थ की प्रकृति में ही हिंसा है इसलिए अर्थशास्त्र एवं आर्थिक व्यवस्था को पूर्णतः अहिंसक नहीं बनाया जा सकता है लेकिन इससे अपराध, क्रूरता, शोषण, विलासिता जैसी समस्याओं को समाप्त किया जा सकता है। इसलिए आर्थिक व्यवस्था सबके लिए कल्याणकारी हो, हितकारी हो, किसी का आर्थिक शोषण न हो। समान कार्य हेतु समान वितरण हो, सबकी आवश्यकताओं की पूर्त्ति हो तो समाज में हिंसा को प्रश्रय नहीं मिलता है। आर्थिक समस्याएं व्यक्ति को बुराइयों की ओर प्रवृत्त करती हैं। इसलिए व्यवस्था बनाते समय विशेष बातों का ध्यान रखना चाहिए।

12.4.1 आर्थिक जीवन से जुड़े पहलू

आर्थिक जीवन से निम्न बातें जुड़ी हुई हैं—

12.4.1.1 इच्छा

यह आर्थिक जीवन का प्रथम पहलू है। प्रत्येक प्राणी के साथ जो समस्या जुड़ी हुई है वह है इच्छा की। यह प्राणी का एक लक्षण है। इच्छा ही एक ऐसा माध्यम होती है जो प्राणी और अप्राणी के बीच भेदरेखा खींचती

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

है। मानसिक चेतना न रखने वाले जीवों में भी इच्छा होती है। यह एक ऐसा सामान्य लक्षण है जो अत्यन्त अविकसित जीव से लेकर विकसित जीव तक सभी में उपलब्ध होता है। यदि इच्छा जीवन का लक्षण है तो इच्छा एक समस्या भी है। इच्छा एक सीमा तक हो तब तो समस्या का प्रश्न खड़ा नहीं होता है। जहां इच्छा सीमा को लांघ देती है वहीं समस्या पैदा हो जाती है। अर्थात् इच्छा स्वयं समस्या बन जाती है। इच्छा के असीम बनने से व्यक्ति कई समस्याओं से घिर जाता है। व्यक्ति के भीतर इस इच्छा के रहते हुए न जाने कितनी भावनाएं पैदा होती हैं, कितनी वृत्तियां उत्पन्न होती हैं और न जाने कितनी समस्याएं पैदा होती हैं।

12.4.1.2 आवश्यकता

जीवन के साथ आवश्यकता जुड़ी हुई है। आवश्यकता विहीन जीवन नहीं जीया जा सकता है। व्यक्ति की मुख्य आवश्यकताओं में रोटी, कपड़ा, मकान, पानी, दवा आदि सम्मिलित हैं। आवश्यकता का भी कोई अंत नहीं है। मार्क्सवाद की उत्पत्ति में भी मूल बीज आवश्यकता ही था। मार्क्स ने जब देखा कि उसका लड़का भूख से तड़पते हुए प्राण छोड़ रहा है तो उसके मन में एक प्रश्न उठा कि भूख क्या है? क्या इसी के द्वारा सब कुछ संचालित हो रहा है। इस प्रश्न की खोज में ही नया अर्थशास्त्र प्रस्फुटित हो गया—'मार्क्सवाद'। कोई भी व्यक्ति ऐसा नही होगा जो आवश्यकता से मुक्त हो सकता है अर्थात् शरीरधारी प्राणी आवश्यकता विहीन नहीं हो सकता है।

12.4.1.3 उपार्जन और स्वामित्व

व्यक्ति की मौलिक वृत्तियों में एक वृत्ति है—उपार्जन वृत्ति। व्यक्ति ही नहीं अन्य प्राणियों में भी उपार्जन की वृत्ति है। वह प्रकृति से उपार्जन करता है। प्राणी में उपार्जन के साथ-साथ स्वामित्व की भावना भी होती है।

12.4.1.4 भोग

आर्थिक जीवन के साथ भोग की बात जुड़ी हुई है। यदि भोग की बात ही न हो तो आसक्ति न होगी और न ही आर्थिक जीवन जटिल बनेगा।

12.4.1.5 शोषण

व्यक्ति अधिकार पाने के प्रयत्न में दूसरों का शोषण करता है। यदि व्यक्ति न्यायोचित तरीके से कमाता है तो वह शोषण नहीं कर सकता है।

12.4.1.6 कर्मवाद

प्राय: यह अवधारणा रहती है कि व्यक्ति अपने कर्मों से ही गरीब या अमीर होता है। इस अवधारणा ने आर्थिक समस्या को और अधिक जटिल बना दिया है। शोषण के साथ यही कर्मवाद धारणा जुड़ी हुई है।

12.4.1.7 आर्थिक असंतुलन

आर्थिक क्षेत्र में बढ़ती प्रतिस्पर्धा ने अपराध को पनपने का अवसर दिया है। इसी आर्थिक प्रतियोगिता के कारण ही नैतिक-अनैतिक जैसी अवधारणाएं भी समाप्त हो गई हैं।

12.4.1.8 हिंसा

परिग्रह और हिंसा को पृथक् नहीं किया जा सकता है। ये एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। व्यक्ति प्रत्येक चीज के लिए हिंसा करता है। वर्तमान में जंगली जीवों की जो समाप्ति हो रही है उसके पीछे हिंसा ही है। आर्थिक पक्ष से स्वयं को सुदृढ़ बनाने के लिए हिंसा हो रही है। परिग्रह हिंसा का मूल हेतु है।

12.4.1.9 अशांति

अर्थ के अभाव में अशांति तथा अर्थ होने पर अशांति अर्थात् दोनों ओर से ही अशांति है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

12.4.1.10 युद्ध

आर्थिक प्रणाली के आधार पर ही युद्ध की समस्या सामने आती है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि अर्थव्यवस्था से जुड़े पहलू समस्या का कारण भी बनते हैं।

12.4.2 आर्थिक क्षेत्र की समस्याएं एवं समाधान

भगवान् महावीर ने कहा—जो व्यक्ति सुख और सुविधा के लिए आकुल रहता है, प्रिय संवेदन के लिए व्याकुल रहता है, जो ज्यादा सोता है, आरामतलबी का जीवन जीता है, उसे सुगति दुर्लभ होती है। जिस व्यक्ति का दृष्टिकोण सुख-सुविधा और आराम का बन जाता है, उसे अधिकतम सुख-सुविधा और आराम की आवश्यकता होती है। ऐसे व्यक्ति की चेतना सो जाती है। महात्मा कौटिलय ने कहा—''अर्थमेव प्रधानमिति कौटिल्य'' अर्थात् अर्थ ही प्रधान है, यह मेरा मत है। वर्तमान का सारा वातावरण अर्थ से प्रभावित है। सब अर्थ के चक्रव्यूह में फंसे हैं। अर्थ की प्रधानता होकर भी वह मूल समस्या नहीं है। मूल समस्या अलग ही है जिस पर ध्यान बहुत कम दिया जा रहा है। वह समस्या है सुविधावादी दृष्टिकोण की। वर्तमान वैज्ञानिक युग में बड़ी-बड़ी कंपनियों, बहुउद्देश्यी, बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा सुविधा के जो अधिकतम साधन उपलब्ध कराये जा रहे हैं, उनसे चेतना जिस प्रकार सुप्त हो गयी है ऐसा पहले कभी नहीं हुआ है। सुविधा की इतनी दृष्टि बन गई है जो कि असीमित है। यही सुविधावाद भ्रष्टाचार की जड़ है। यदि सहिष्णुता का विकास किया जाए तो इस समस्या का समाधान मिल सकता है। सुविधा की सीमा का विवेक होना चाहिए। जो सुविधा शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक स्वास्थ्य को हानि न पहुंचाए, वह सुविधा मान्य है। इसके विपरीत सुविधा अमान्य है। वर्तमान में कुछ पदार्थ हैं जो सुविधाजनक तो लगते हैं लेकिन वास्तविकता यह होती है कि वे स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होते हैं। विलासिता सर्वथा अनावश्यक है। इसका पूर्ण संयम बताया गया है।

यदि व्यक्ति अपने विवेक का उपयोग करे तो वह सुख एवं शांति का जीवन जी सकता है। गीता में भी कहा गया है—'न चाभावयतः शांतिः अशान्तस्य कुतः सुखम्' अर्थात् भावना के बिना शांति नहीं होती तथा शांति के बिना सुख का सपना भी नहीं लिया जा सकता है। एक ओर धन से मिलने वाला सुख और दूसरी ओर शांति से मिलने वाला सुख। यदि धन की सीमा होगी तो शांति और सुख स्वतः प्राप्त हो जाएंगे।

भगवान् महावीर ने मनुष्य को व्याख्यायित करते हुए उसकी प्रकृति के चार तत्त्व बताए—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। भारतीय चिंतन में चार पुरुषार्थों का समन्वय माना गया है। इन्हें छोड़कर व्यक्ति को समग्रता से नहीं समझा जा सकता है।

चाणक्य ने अर्थशास्त्र में लिखा है—

सुखस्य मूलं धर्मः, धर्मस्य मूलं अर्थः।
अर्थस्य मूलं राज्यः, राज्यस्य मूलं इन्द्रिय जयः।।

अर्थात् सुख का मूल धर्म है, धर्म का मूल अर्थ है, अर्थ का मूल राज्य और राज्य का मूल इन्द्रियजय है। इन्द्रियजय को छोड़कर राज्य और अर्थ की कल्पना चाणक्य नहीं कर सकते हैं। चाणक्य सूत्र में जिस सत्य का उन्होंने प्रतिपादन किया है वह उनका समन्वित दृष्टिकोण है।

महावीर ने जिस समाज की कल्पना की, उसमें अर्थव्यवस्था के सारे सूत्र फलित होते हैं। अर्थव्यवस्था के अनेक सिद्धान्तों का प्रतिपादन होता है। यह समाज भौतिकवादी तथा अध्यात्मवाद का समन्वय है। न कोरा भौतिकवाद और न कोरा एकांगी दृष्टिकोण वरन् अनेकान्त का दृष्टिकोण, भौतिकवाद और अध्यात्मवाद की समन्विति।

केनिज के अनुसार आधुनिक अर्थशास्त्र का विकास भौतिकवाद के आधार पर हुआ है। जिसकी कठिनाई है उसका एकांगी दृष्टिकोण। इसी वजह से वर्तमान में आर्थिक अपराध, आर्थिक प्रतिस्पर्धा, उत्पादन और वितरण में विषमता आदि समस्याएं पैदा हुई हैं। केनिज कहते हैं कि हमें अपने लक्ष्य को प्राप्त करना है, सबको धनी बनाना

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

है। इस रास्ते में नैतिक विचारों का हमारे लिए कोई मूल्य नहीं है। जब अर्थशास्त्र की मूल धारणा में नैतिकता बाधक है तो फिर समस्या पैदा होती है तो उसमें आश्चर्य किस बात का हो सकता है? अर्थात् नैतिकता के अभाव में बुराइयों को उभरने का अवसर तो प्राप्त होगा ही।

वर्तमान अर्थशास्त्र के तीन मुख्य आधार हैं—इच्छा, आवश्यकता और मांग। इच्छा बढ़ाओ, आवश्यकता बढ़ाओ और मांग को बढ़ाओ। यदि महावीर के अर्थशास्त्र के तत्त्वों पर विचार किया जाए तो आधुनिक अर्थशास्त्र में निम्न बातें और जोड़ देनी चाहिए—सुविधा, वासना, आसक्ति या मूर्च्छा, विलासिता और प्रतिष्ठा।

सुविधा को सर्वथा अस्वीकार नहीं किया जा सकता है, इसीलिए कि मनुष्य के भीतर कामना है। कामना के रहते हुए ही सुविधा भी अनिवार्य बन जाती है। विलासिता न आवश्यक है और न अनिवार्यता, न सुविधा है और न कोरा मनोरंजन। यह केवल भोगवृत्ति का उच्छृंखल रूप है। विलासिता केवल भोग का पोषण है। इसमें कामना और अहम् की वृत्तियां काम करती हैं। महावीर ने कहा है—'इच्छा हु आगाससा अणंतया' अर्थात् इच्छा आकाश के समान अनंत होती है इसलिए इच्छा का संयम करो। आवश्यकता को समाप्त करने की बजाय इसका सीमाकरण करो।

12.4.3 अर्थव्यवस्था के पैरामीटर

वर्तमान अर्थव्यवस्था से हिंसा, तनाव, मानसिक अशांति तथा विश्वशांति के लिए भी खतरा बढ़ा है। वैयक्तिक तथा पारिवारिक जीवन में समस्याएं बढ़ी हैं। हत्या, आत्महत्या आदि बातें आम हो गई हैं। ऐसी स्थिति में व्यक्ति को सोचने के लिए मजबूर होना पड़ रहा है कि कहीं न कहीं अर्थव्यवस्था में त्रुटि अवश्य है जिससे इतनी समस्याएं खड़ी हो रही हैं। यदि नई अर्थव्यवस्था का प्रवर्तन चल रहा है तो उसके कुछ पैरामीटर भी सामने रखने होंगे—

1. विश्वशांति में सहयोगी बने,
2. अपराधों में कमी लाए,
3. हिंसा को प्रोत्साहन न दे,
4. शोषण विहीन अर्थव्यवस्था हो।

12.4.3.1 विश्वशांति में सहयोगी बने

जो व्यक्ति अकेला ही बढ़ना चाहेगा वह व्यक्ति समाज या राष्ट्र के लिए खतरा पैदा करता है। पर्यावरण का सूत्र है—तुम अपने अकेले के लिए कुछ करो तो सोचो कि मेरे इस व्यवहार का पूरे विश्व पर क्या प्रभाव पड़ेगा? यदि व्यक्ति यह चिंतन कर ले तो समस्या ही पैदा नहीं होगी लेकिन यही व्यक्ति की भूल है कि वह ऐसा नहीं सोचता है। यदि ग्लोबल इकोनामी की नीति का निर्धारण किया जाए तो इस बात का ध्यान रखना होगा कि यह अर्थनीति विश्व के लिए खतरा न बने, व्यक्ति की शांति के लिए खतरा न बने। जो व्यक्ति की शांति के लिए बाधक है वह विश्वशांति के लिए भी खतरा बनेगी। इसके विपरीत जो अर्थव्यवस्था विश्वशांति को खंडित करेगी वह व्यक्ति को भी खंडित करेगी। आवश्यकता इस बात कि है कि अर्थव्यवस्था व्यक्ति तथा विश्वशांति के लिए सहायक हो।

12.4.3.2 अपराधों में कमी लाए

नई अर्थव्यवस्था में अपराधों में कमी लाए। वर्तमान में जो अपराध हो रहे हैं वे अहेतुक नहीं हैं। इस आर्थिक अवधारणा ने व्यक्ति में इतनी लालसा पैदा कर दी कि इतना विकास होना चाहिए। आधुनिक व्यक्ति अपना जीवन स्तर बनाना चाहता है। जिन्हें ये साधन सुलभ हैं वे बड़े अपराध करते हैं वे शोषण और व्यावसायिक अपराध करते हैं, राजनीतिक अपराध करते हैं किंतु गरीब व्यक्ति साधनों के अभाव में छोटे अपराध करते हैं। गरीब व्यक्ति संपन्नता की चकाचौंध को देखकर उन साधनों को किसी न किसी तरह से प्राप्त करने का प्रयास करता है। यह मनोवृत्ति इसलिए पनपती है कि साधन शुद्धि, नैतिक मूल्यों पर और अर्थनीति पर कोई विचार नहीं किया गया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

यदि अर्थव्यवस्था के साथ समाज की मनोवृत्ति पर ध्यान नहीं दिया जाएगा तो पूरा आर्थिक विकास हो जाने पर भी समाधान नहीं होगा।

12.4.3.3 हिंसा को प्रोत्साहन न मिले

हिंसा जीवन के साथ जुड़ी हुई है। हिंसा को सर्वथा छोड़ा तो नहीं जा सकता है लेकिन उसका अल्पीकरण किया जा सकता है। अनावश्यक हिंसा न हो, आक्रामक हिंसा न हो। ऐसी अर्थनीति हो जो इन्हें प्रोत्साहन न दे। वर्तमान में विचार के क्षेत्र में एक भ्रांति काम कर रही है। विकास की दृष्टि से व्यक्ति अन्य प्राणियों से श्रेष्ठ है। इस आधार पर यह मान लिया गया कि व्यक्ति के लिए सब कुछ खाद्य है। वह किसी पशु को मारे या किसी पक्षी को मारे। मांसाहार हेतु करोड़ों पशु-पक्षियों की हत्या हो रही है। उपभोग हेतु वह अनावश्यक हिंसा कर रहा है। इसके बावजूद भी क्या वह श्रेष्ठ कहा जा सकता है? श्रेष्ठता का जो दुरुपयोग हुआ है तथा इस धारणा ने व्यक्ति को जितना भटकाया है, निरंकुश बनाया है शायद उतना पहले कभी न हुआ हो।

12.4.3.4 शोषण विहीन अर्थव्यवस्था हो

ऐसी अर्थव्यवस्था हो जिसमें कोई किसी का शोषण न करे, किसी पर अपनी वैचारिक या व्यावसायिक प्रभुसत्ता स्थापित न करे। यदि मनुष्यकृत इन व्यवस्थाओं को समन्वित किया जाए तो समाधान मिल सकता है। यदि एक ओर अर्जन की भावना हो तो दूसरी ओर विसर्जन की भावना भी हो। मात्र एक ही स्वर से समाधान नहीं होगा। दोनों स्वरों का समावेश होगा तो नई अर्थव्यवस्था समाधान देने वाली, कार्यकर तथा सार्थक होगी जिसमें व्यक्ति सुख की सांस ले सकेगा।

वर्तमान में प्रत्येक क्षेत्र में हिंसा को एक हथियार के रूप में उपयोग में लाया जा रहा है। इस अस्त्र का उपयोग केवल राजनीति और उद्योग ही नहीं वरन् शिक्षा की पवित्र भूमि भी इससे अछूती नहीं है। हिंसा को समस्या का समाधान मानना एक बड़ी भूल है। जो मनुष्य जाति ही नहीं वरन् प्राणी जाति के लिए भयावह स्थिति उत्पन्न करने में सहायक बनती है। शस्त्र निर्माण तथा हिंसा प्रशिक्षणों पर जितना जोर दिया जा रहा है उतना जोर यदि निःशस्त्रीकरण तथा अहिंसा प्रशिक्षणों पर दिया जाता है तो प्राणी जाति सुख की सांस लेती। परमाणु अस्त्रों की विभीषिका से सभी चिंतनशील व्यक्ति चिंतित हैं। परमाणु शस्त्र रहित शांतिपूर्ण विश्व व्यवस्था के लिए मिखाइल गोर्वाच्योव तथा तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गांधी द्वारा दस सिद्धान्तों का जो घोषणा-पत्र बना, जिसे दिल्ली घोषणा-पत्र कहा गया, उसके दस सूत्र निम्न हैं—

1. शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व को अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों का आधार बनाया जाए।
2. मानव जीवन को अमूल्य माना जाए।
3. अहिंसा को सामाजिक जीवन का आधार माना जाए।
4. भय और संदेह की जगह सद्भाव और विश्वास का वातावरण बने।
5. हर देश के राजनीतिक और आर्थिक आजादी के अधिकार को मान्यता दी जाए तथा इसका सम्मान किया जाए।
6. सैनिक हथियारों पर खर्च होने वाले साधनों का इस्तेमाल सामाजिक और आर्थिक विकास के लिए किया जाना चाहिए।
7. प्रत्येक व्यक्ति के संपूर्ण विकास के वातावरण को सुनिश्चित किया जाए।
8. मानव जाति की भौतिक और बौद्धिक क्षमता का उपयोग विश्व की समस्याओं को हल करने में किया जाए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

9. आतंक के संतुलन की जगह व्यापक अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा को स्थान दिया जाए।

10. परमाणु हथियार मुक्त और अहिंसक विश्व बनाने के लिए तुरन्त ठोस कार्रवाई की जाए।

इस घोषणा-पत्र में अहिंसा को सामाजिक जीवन का आधार बनाने तथा अहिंसक विश्व के निर्माण का जो संकल्प व्यक्त हुआ, वह सचमुच आश्चर्यजनक है। वर्तमान में विश्व को अभयदान की जरूरत है।

बोध प्रश्न 1:

---

1. सामाजिक समस्या के कारणों पर प्रकाश डालें।

2. अर्थ हिंसा का कारण कैसे है? समझायें।

3. शोषणविहीन अर्थव्यवस्था का क्या अर्थ है?

12.5 राजनैतिक व्यवस्था

व्यक्ति समस्या और समाधान—दोनों के बीच जी रहा है। फिर भी उसका यही प्रयत्न रहता है कि वह समस्या से मुक्त रहे और समाधान अधिक से अधिक हो। इसी दिशा में प्रयत्न करने से ही लोकतंत्र का उदय हुआ। इस तंत्र में सब समान हैं। न जाति की, न रंग की और न सम्प्रदाय की कोई बाधा है। प्रत्येक व्यक्ति को इसमें समान अधिकार प्राप्त हैं। यही समानता लोकतंत्र का प्राण तत्त्व है, यही उसका मूल आधार है। इसी समानता के कारण लोकतंत्र को इतना महत्त्व प्राप्त हुआ है कि वह प्रत्येक व्यक्ति को प्रिय है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति समानता की भूमिका में रहना पसंद करता है। थोड़ी-सी असमानता होने पर कई समस्याएं पैदा हो जाती हैं। लोकतंत्र में जहां सबके लिए अच्छाई है वहीं उसकी अपनी कई समस्याएं भी हैं। अच्छा होते हुए भी लोकतंत्र परिपूर्ण नही है। परिपूर्णता के अभाव में ही समस्या और समाधान साथ-साथ चलते हैं।

12.5.1 लोकतंत्र की समस्याएं

वर्तमान में लोकतंत्र में निम्न समस्याएं हैं—

12.5.1.1 अक्षमता

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में समानता की बात जहां पर आयेगी वहां व्यक्ति का ध्यान संख्या पर अधिक केन्द्रित होगा, गुणवत्ता पर कम। व्यक्तियों का यह चिंतन प्रबल रहेगा कि संख्या में व्यक्ति ज्यादा हों। यदि चुनाव में गुणवत्ता को गौण कर दिया जाए तो वहां अक्षम भी सक्षम बन जाता है। जहां दस सक्षम व्यक्ति शासन को भली प्रकार चला सकते हैं वहीं सौ अक्षम व्यक्ति शासन को सही प्रकार से नहीं चला सकते हैं। लोकतंत्र के साथ अक्षमता का अभिशाप संख्या के कारण जुड़ा है। गुणवत्ता के लिए वहां कोई अवकाश नहीं है। यह लोकतंत्र की एक दुर्बलता है, यही समस्या है।

12.5.1.2 विकेन्द्रित उत्तरदायित्व

वर्तमान लोकतंत्र की समस्या है कि लोकतंत्र में समस्या पर शीघ्र निर्णय नहीं लिया जाता है। यदि सही समय पर सही निर्णय नहीं लिया जाता है या उसमें अनावश्यक देरी लगा दी जाती है तो यह भी एक समस्या है।

12.5.1.3 भ्रष्टाचार

लोकतंत्र में भ्रष्टाचार के लिए काफी अवकाश है। जहां आश्वासनों के आधार पर चुनाव किए जाते हैं लेकिन चुनाव जीतने के बाद व्यक्ति ऐसे कार्य करता है जो अकरणीय हों, निन्दनीय हों। इसलिए भ्रष्टाचार को पनपने का काफी अवसर प्राप्त है। लोकतंत्र की रीढ़ है—चुनाव। चुनाव की रीढ़ है—घोषणापत्र। गरीबी हटाओ, महंगाई पर नियंत्रण करो आदि-आदि नारे लगाए जाते हैं। इनका आश्वासन दिया जाता है। फिर भी समस्या वैसी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

की वैसी ही रहती है। आश्चर्य की बात यह है कि जो व्यक्ति आश्वासन लेकर सत्ता में जाते हैं, सत्तारूढ़ होने पर वे व्यक्तिगत अहम् की लड़ाइयों में उलझ जाते हैं। राजनेताओं का ध्यान अपनी सत्ता को बचाने में लगा रहता है। उन्हें राष्ट्रीय समस्याओं पर ध्यान केन्द्रित करने का अवकाश नहीं मिलता है। राजनीति में महत्वाकांक्षा की महत्ता अधिक है, क्षमता की नहीं। इसीलिए राजनीति देश की समस्याओं का समाधान नहीं कर पा रही है।

12.5.1.4 चारित्रिक समस्याएं

ऐनेक्सी (संसदीय-शोध) में प्रवचन करते हुए आचार्यश्री तुलसी ने कहा था—बहुत बड़ा आश्चर्य है कि विधान सभा और लोकसभा के सदस्यों के लिए कोई चारित्रिक कसौटियां निर्धारित नहीं हैं। प्रशासन के क्षेत्र में शैक्षिक कसौटियां निर्धारित हैं किंतु सांसदों के लिए। वहीं यदि इतने बड़े राष्ट्र को चलाने वाले नेतृत्व का चरित्र यदि उदात्त न होता क्या उसके उज्ज्वल भविष्य की कल्पना की जा सकती है। अहिंसा में आस्था, अर्थ का संयम, अपने आवेशों पर नियंत्रण की क्षमता, सामाजिक न्याय के प्रति हार्दिक समर्पण, समन्वय और सापेक्षता का दृष्टिकोण, बौद्धिक क्षमता और मानसिक संतुलन आदि मुख्य तत्त्व हैं जिन्हें कसौटी बनाकर किसी भी राजनेता के चारित्र को परखा जा सकता है। क्या चारित्रिक कसौटियों को पूरा न करने वाला व्यक्ति लोकतंत्र के लिए कल्याणकारी सिद्ध हो सकता है या नहीं। यदि गहराई से चिंतन किया जाए तो ऐसा राजनेता सफल नहीं हो सकता है। यदि राजनेता अपने कार्य को सही ढंग से नहीं कर सकता है तो समस्या बढ़ेगी ही, कम नहीं होगी। प्रत्येक व्यक्ति में आर्थिक लोलुपता, प्रतिशोध लेने की वृत्ति, मानसिक असंतुलन आदि दुर्बलताएं स्वाभाविक रूप से होती हैं जिनका परिष्कार करने से ही चरित्र उदात्त बन सकता है। यदि देखा जाए तो क्या राजनेताओं ने इसके परिष्कार की विधि का विकास किया है, क्या लोकतंत्र के रथ को हांकने की विधि से राजनेता भलीभांति परिचित हैं, क्या उन्हें कोई प्रशिक्षण दिया गया है? नहीं ऐसा कुछ भी नहीं हुआ है। वर्तमान में सरकार चलाने वाले व्यक्ति आंख मूंदकर अपना कार्य कर रहे हैं। वास्तव में सरकार चलाने के लिए तीन आंखों की आवश्यकता है। अन्तर्दृष्टि के अभाव में राष्ट्र की समस्याओं का समाधान नहीं हो पाएगा। इसी दृष्टि के अभाव में समस्या समाधान का एक ही उपाय है—भौतिक दृष्टिकोण। व्यक्ति इसी के आधार पर पदार्थों का उपयोग करता है। व्यक्ति स्वयं पौदगलिक न होकर चेतन है। चेतन की समस्याओं के समाधान के लिए पदार्थ के द्वारा समाधान नहीं हो पाता है किंतु कई समस्याएं मानसिक हैं जिनका समाधान मानसिक प्रशिक्षण के आधार पर ही संभव हो सकता है।

लोकतंत्र ने सत्ता को इतना गतिशील बनाया है कि वह जाति, संप्रदाय, गरीबी आदि से ऊपर उठकर किसी भी योग्य व्यक्ति का चुनाव कर सकती है। यह लोकतंत्र का सबसे उजला पक्ष है लेकिन समस्या यह है कि लोकतंत्र को चलाने वाले लोग योग्यता की कसौटी निश्चित नहीं कर पाए हैं। योग्यता की दो कसौटियां हैं—चरित्रबल तथा बौद्धिक क्षमता। क्या कारण है कि इन दोनों कसौटियों में मैत्री संबंध स्थापित नहीं हो पा रहा है। राजनेताओं की क्रियाओं से ऐसा प्रतीत होता है कि उनका चरित्रबल उन्नत नहीं है। लोकतंत्र के अर्जुन को सारथि की खोज है। महाभारत जारी है पर अर्जुन को सारथि नहीं मिल पा रहा है।

शासक को इन्द्रिय विजयी होना चाहिए। चाणक्य के इस सूत्र को वर्तमान पदार्थवादी व सुविधावादी युग में बहुत मूल्य नहीं दिया जाता है लेकिन इसकी सच्चाई को नकारा नहीं जा सकता है। सब शासक विदेह जनक की प्रतिमूर्त्ति नहीं हो सकते लेकिन शासक में त्याग के कुछ बीजों का अंकुरण हो, इस भावना को आधार भूमि से शून्य नहीं किया जा सकता है। लोकतंत्र के शासक और प्रशासक के हाथ में असीम अधिकार है लेकिन त्याग की आंच के बिना उन्हें पकाया नहीं जा सकता है। वर्तमान का अपना एक आदर्श होना चाहिए, उनके अनेक नैतिक मूल्य होने चाहिए। यह चिंतन सामूहिक होना चाहिए। राज्य का कार्य काम और अर्थ की व्यवस्था करना ही नहीं अपितु काम और अर्थ के प्रभाव से उत्पन्न होने वाली विकृतियों को दूर करना भी है। भारतीय प्राचीन राजनीतिज्ञों ने काम और अर्थ की व्यवस्था को जितना आवश्यक बतलाया उतना ही आवश्यक बतलाया शासक के लिए काम, क्रोध आदि शत्रुओं पर विजय प्राप्त करना। जो राष्ट्र सिर्फ भौतिक संसाधनों का विकास करता है, मानवीय

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

संसाधनों पर ध्यान नहीं देता है वह राष्ट्र पतन के गर्त मे गिर जाता है। उसका उत्थान संभव नहीं हो सकता है। सम्राट अशोक ने चरित्र विकास हेतु स्वतंत्र मंत्रालय प्रस्थापित किया था। आचार्यश्री तुलसी ने पं. नेहरू को यह सुझाव दिया था कि आपके अनेक मंत्रालयों में राष्ट्र के चरित्र निर्माण का भी कोई मंत्रालय हो सकता है। वर्तमान में भौतिक संसाधनों की दौड़ में चरित्र निर्माण की बात गौण हो गई है। जिस प्रकार सरकार रोटी, कपड़ा और मकान की व्यवस्था करती है, चिंता करती है, इसी तरह उसे इस बात की चिंता करनी चाहिए कि राष्ट्र के नागरिक का चरित्र कैसा होना चाहिए। यदि वह ऐसा सोचती है तो यह मानना चाहिए कि वह अपने दायित्व का सम्यक् निर्वहन कर रही है।

12.6 व्यवस्थाएं एवं धर्म

धर्म सामाजिक व्यक्ति के लिए कुछ कर्त्तव्यों का निर्धारण होता है। समाज के सामने यक्ष प्रश्न कर्त्तव्यों का होता है। धर्म कर्त्तव्य होता है किंतु सब कर्त्तव्य धर्म नहीं हैं। आचार्य भिक्षु का वाक्य है—'ए संसार तणो किरतब जाणो' अर्थात् सांसारिक कर्त्तव्य का अर्थ है—सामाजिक कर्त्तव्य। यदि इतिहास देखें तो ऐसा प्रतीत होता है कि सामाजिक कर्त्तव्य में ह्रास हो रहा है, उनके प्रति जागरूकता में कमी आयी है। श्रम एक स्वस्थ सामाजिक कर्त्तव्य है। वर्तमान का चिंतनशील व्यक्ति भिखारीपन को सामाजिक अपराध मानता है। भिखारी होना ही सामाजिक अपराध है। वह समाज ही अच्छा नहीं है जहां भिखारी होते हैं और कोई दान देता हो। भिखारी को यदि श्रम में लगाकर रोटी दी जाए तो यह सामाजिक कर्त्तव्य है। प्राचीनकाल में धर्म शब्द का प्रयोग विधि और व्यवस्था के लिए भी होता था इसी आधार पर कर्त्तव्य को धर्म भी कहा जाता था। यदि समाज व्यवस्था, समाज धर्म तथा राष्ट्र व्यवस्था राष्ट्र धर्म द्वारा संचालित हों तो समस्या का समाधान आसान हो जाता है। ये दोनों धर्म द्वारा संचालित न होकर धर्म के द्वारा प्रभावित हैं। महात्मा गांधी का कथन है कि मैं नहीं मानता कि आध्यात्मिक नियम अपने स्वतंत्र क्षेत्र में काम करते हैं वरन् वे जीवन के सामान्य कार्यों द्वारा ही व्यक्त होते हैं। इस प्रकार वे आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्रों को प्रभावित करते हैं। समाज धर्म प्रत्येक सदस्य के लिए समान तथा राष्ट्र धर्म राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक के लिए समान होना चाहिए। सबसे अच्छा विकल्प यही है कि समाज और राष्ट्र की व्यवस्था नैतिकता और चरित्रधर्म से प्रभावित हो, उसमें आने वाली विकृतियों और उच्छृंखलताओं पर अंकुश रहे, वे मानव के लिए दमनकारी व शोषणकारी न होकर कल्याणकारी बनें।

राष्ट्र संचालन के लिए राजनीति का मूल्य है तो पवित्र राष्ट्रीय वातावरण के लिए धर्म का बहुत मूल्य है। गांधी जी ने कहा कि "जो व्यक्ति यह कहता है कि धर्म का राजनीति के साथ कोई संबंध नहीं है तो वह धर्म को नहीं जानता। ऐसा कहने पर मुझे कोई संकोच नहीं होता है और न ऐसा कहने में मैं कोई अविनय मानता हूं।" राजनीति राष्ट्र की व्यवस्था के लिए है तो धर्म नैतिक अथवा चरित्र पक्ष के विशुद्धीकरण हेतु। राज्य को धर्म के नैतिक अथवा चरित्र धर्म से प्रभावित होना चाहिए। वर्तमान की अपेक्षा है—राजनीति के धर्म की एक आचार संहिता निर्मित की जाए। इस अपेक्षा की पूर्त्ति अणुव्रत की आचार-संहिता से की जा सकती है। राज्य का धर्म हो सकता अणुव्रत, जो कि नैतिकता और चरित्र का धर्म है। प्रत्येक राष्ट्र के विकास हेतु कि वह समाज में ईमानदारी, श्रमनिष्ठा, नैतिकता, अहिंसा आदि गुणों का संवर्द्धन करे।

12.7 बुद्धिजीवियों का दायित्व

स्वस्थ समाज संरचना में बुद्धिजीवियों का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। यदि बुद्धिजीवी वर्ग मौन रहे तो समस्या का समाधान कैसे संभव होगा? इसलिए बुद्धिजीवी वर्ग का यह दायित्व होता है कि वह समाज में रहते हुए समाज की गतिविधियों के प्रति जागरूक रहे। समाज व्यवस्था में अपना योगदान बनाए रखे। राजा राममोहनराय,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

महात्मा गांधी, रवीन्द्रनाथ टैगोर, बंकिम चन्द्र चटर्जी आदि ने अपने कृत्यों से, अपनी लेखनी से समाज को एक नया रूप दिया। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में ऐसा कम देखने को मिलता है। आवश्यकता है बुद्धिजीवी अपनी बुद्धि का सदुपयोग समाज संरचना के लिए करें। समाज में नया निर्माण करें, नई दिशा दें जिसमें सुख शांति निहित हो।

बुद्धिजीवी वर्ग की न कोई बिरादरी होती है और न उनका कोई आर्थिक वर्ग ही होता है। बुद्धिजीवी वह होता है जो मूल्यों के प्रति प्रतिबद्ध होकर उनकी बहुआयामी स्थितियों पर रचनात्मक ढंग से सोचे, चिंतन करे और उनके विकास में योगदान दे। बुद्धिजीवी में सापेक्ष बुद्धि, संतुलित विवेक, गतिशील दृष्टि तथा सजग चेतना होती है। वह समाज की नाना समस्याओं में मानसिक स्तर पर भाग लेता है और सत्य-असत्य का निर्णय कर सबके समक्ष रखता है। वह समाज की दृष्टि होता है जो मूलत: वर्तमान से असंतुष्ट तथा भविष्य के प्रति आस्थायुक्त होता है। बुद्धिजीवी गतिशीलता का समर्थक होता है। वह व्यवस्था में निरन्तर परिवर्तन करता है। सुकरात ने अपने तर्क बल के आधार पर सत्-असत् का विश्लेषण किया तथा समाज, राज्य तथा व्यक्ति के अंधविश्वासों को कुचल कर विवेक के आलोक में उसका असली प्रतिबिम्ब प्रस्तुत किया। रूसो, वाल्टेयर वैचारिक क्रांतिदूत थे। मार्क्स, गांधी, आचार्य तुलसी ने भी समाज को नए ढंग से जीवन जीने की अभिप्रेरणा दी।

वर्तमान समय में देश संक्रमण के दौर से गुजर रहा है। सामाजिक, आर्थिक और वैचारिक सभी प्रकार के संक्रमण हैं। सामाजिक और आर्थिक विघटन के साथ मूल्यों का ह्रास हो रहा है। ऐसे समय में बुद्धिजीवी विशेष योगदान दे सकते हैं। वर्तमान व्यवस्था का विश्लेषण सही ढंग से होना चाहिए। समाज में व्याप्त हिंसा, भ्रष्टाचार, दुराचार एवं अन्यान्य बुराइयों को खत्म कर जन-जन को सजग करना होगा, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर शांति की बात सोचनी होगी तथा प्राणीमात्र के अस्तित्व की रक्षा करनी होगी। बुद्धिजीवी का समाज के प्रति निश्चित कर्त्तव्य है—सत्यान्वेषण। वह व्यक्ति-व्यक्ति के मन में आस्था एवं भावुकता की उर्वरता भर सकता है। उसका यह भी कर्त्तव्य है कि नई पीढ़ी में महान् कर्त्तव्य की भावना भर दे जो वर्तमान के अनुरूप तथा अतीत के अनुरूप हो। बुद्धिजीवी संवेदनशील होता है। इसलिए वह व्याप्त बुराइयों को दूर कर शांति स्थापित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जब समाज बुद्धिजीवी के विचारों को ग्रहण करने की शक्ति खो देता है तब समस्या उत्पन्न होती है। बुद्धिजीवी परिवर्तन का अग्रदूत होता है। वही समाज स्वस्थ समाज माना जाता है जो बुद्धिजीवी के विचारों का पालन करे। जब समाज उसके विचारों को समझने और परखने में असमर्थ हो जाता है तो वह समाज पतन और विनाश के गर्त में चला जाता है। जब-जब समाज में युगद्रष्टा की हत्या करने की कोशिश की गई तो समाज में एक ठहराव आ गया। इससे स्पष्ट होता है कि बुद्धिजीवी समाज में कितना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

बुद्धिजीवी वैयक्तिक स्तर पर भी वैश्विक चेतना का वाहक होता है। वह व्यक्तिगत स्तर पर नहीं अपितु मानव मात्र के प्रति बेचैन रहता है। जीवन के क्रूर यथार्थों का सामना करना ही उसकी नियति होती है। समाज की मूल संरचना में बुद्धिजीवी की महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है। बुद्धिजीवी का सबसे बड़ा सामाजिक दायित्व है—समाज को आदर्श पथ पर ले जाना। बुद्धिजीवी समाज की नस को पहचान कर उसकी निष्प्राण धमनियों में रक्त का संचार करता है। समाज की ग्रहणशीलता पर निर्भर करता है कि समाज से कितना ग्रहण करता है और वह समाज को कितना दे सकता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि यदि बुद्धिजीवी वर्ग एकजुट होकर समाज, राष्ट्र तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर व्याप्त हिंसा, अपराध आदि समस्याओं को खत्म करने के लिए प्रतिबद्ध हो तो प्राणीमात्र सुख-शांति से जी सकता है।

12.8 अहिंसा प्रशिक्षण

अहिंसा प्रशिक्षण का सूत्र है—हिंसा के बीजों को सुप्त बनाकर अहिंसा के बीजों को जागृत करना। वर्तमान में चारों ओर हिंसा का वातावरण बना हुआ है। यदि हिंसा के बीज का वपन नहीं होता तो यह समस्या पैदा नहीं होती है। जैसा बीज बोया जाएगा उसी अनुरूप फल प्राप्त होगा। यदि अहिंसा के बीज बोने हैं तो अहिंसा का प्रशिक्षण आवश्यक है। सिर्फ सामाजिक व्यवस्था, आर्थिक व्यवस्था, राजनीतिक व्यवस्था करने से समाधान नहीं होता। ये तो

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

निमित्त हैं। इनका भी योगदान हिंसा अहिंसा के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण है। लेकिन बाह्य कारणों का समाधान ही पूर्ण समाधान नहीं होता है। इसके साथ-साथ आन्तरिक परिवर्तन बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। हिंसा व अहिंसा के बीज व्यक्ति के भीतर रहते हैं। उनको निमित्त जैसा मिलता है उसी प्रकार उनका पोषण होता है। इसलिए निमित्तों को सुधारने के बाद अहम् बात है बीज कैसा है। बीज यदि हिंसा का है तो उसकी जगह अहिंसा के बीज का वपन करना। व्यक्ति में हिंसा का बीज विद्यमान है, क्रूरता है, धन लोलुपता है, अपनी शक्ति और सत्ता का दुरुपयोग करने की वृत्ति है इसीलिए समय-समय पर समस्याएं विकराल रूप लेकर सामने आती हैं। बौद्धिक दृष्टि से व्यक्ति ने बहुत विकास किया है। चिंतन शक्ति का विकास किया है लेकिन भावनात्मक स्तर पर उसने बहुत विकास किया है यह कहना पूर्ण रूप से सत्य नहीं है। चिंतनशील व्यक्ति जब भावना के स्तर पर निम्न स्तर का जीवन जीता है तो ऐसा प्रतीत होता है कि वैज्ञानिक युग का व्यक्ति मन के खेल से आगे नहीं जा सका है।

अहिंसा का संबंध विचार की अपेक्षा निर्विचार की भूमिका से अधिक है। इस निर्विचारिता की अवस्था में ही अहिंसा का स्रोत अधिक प्रस्फुटित हो सकता है। निर्विचार का अर्थ है विचार का विकास न होना और दूसरा अर्थ है मन का विलय होना। इस अवस्था में आन्तरिक चेतना जागृत होती है और हिंसा को प्राण देने वाले तत्त्वों का विघटन हो जाता है। सिर्फ पदार्थ संबद्ध चेतना के आधार पर अहिंसा के विकास की संभावना नहीं की जा सकती है। जब तक हिंसा के आन्तरिक निमित्तों की जानकारी न हो, उसे निरस्त करने के प्रयोग न हों तब कैसे संभव हो सकता है कि हिंसा से अहिंसा की ओर प्रस्थान होगा। अहिंसा को विकसित करना है तो एक नये मार्ग की, नये प्रस्थान की आवश्यकता है जिससे अहिंसा का दीप प्रज्ज्वलित होगा और चारों ओर सुख शांति की रोशनी फैलेगी।

अहिंसा प्रशिक्षण का उपाय—अहिंसा प्रशिक्षण के दो उपाय हैं—1. सैद्धान्तिक बोध और प्रायोगिक बोध। सम्यक् बोध और सम्यक् दर्शन के द्वारा अवधारणाओं को परिष्कार का अवसर मिलेगा तथा साथ में प्रायोगिक पक्ष भी आन्तरिक शोधन में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करेगा। केवल सिद्धान्त ही पर्याप्त नहीं है। साथ में आन्तरिक प्रशिक्षण भी आवश्यक होता है। मन को बीच की स्थिति में रखना—न बाहर की ओर न भीतर की ओर। बाहर से इन्द्रियों का दबाव मन पर पड़ता है तो भीतर से कषायों का दबाव पड़ता है। इससे मन चंचल एवं कमजोर हो जाता है। प्रशिक्षण में इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि मन की चंचलता कम हो। परिवर्तन का पहला सूत्र यहीं से प्रारंभ होता है। मानसिक चंचलता अधिक हो तो दु:ख का कारण बनती है, मन की संवेदना का कारण बनती है। हिंसा भी इसी स्थिति में होती है। आन्तरिक परिवर्तन के लिए ध्यान का प्रयोग महत्त्वपूर्ण माना जाता है। इसके बिना आन्तरिक शोधन संभव नहीं होता है। जब भीतर से शोधन और बाहर से इन्द्रियों का प्रत्याहार—दोनों साथ में होगा तो अहिंसा प्रशिक्षण सफल हो सकता है। वर्तमान में आन्तरिक शोधन को नकार दिया गया जिसके परिणाम व्यक्ति के सामने हैं। आवश्यकता है धर्म की ओर प्रस्थान की अर्थात् इन्द्रियों पर एक सीमा तक नियंत्रण, आन्तरिक वृत्तियों का शोधन। अहिंसा प्रशिक्षण का यही धर्म है। व्यवस्था एवं कानून का अपना मूल्य है तो आन्तरिक शोधन का अपना मूल्य। सिर्फ बाह्य व्यवस्था तथा कानून को ही सर्वथा अधिक मूल्य दिया जाए तो पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं हो सकती है। अहिंसा प्रशिक्षण के लिए आवश्यक होगा कि इस भूल का परिष्कार किया जाए।

12.8.1 अहिंसा प्रशिक्षण की भूमियां

अहिंसा प्रशिक्षण की दो भूमियां हैं—प्रयोग भूमि और आधार भूमि।

12.8.1.1 अहिंसा प्रशिक्षण की प्रयोग भूमि

अहिंसा प्रशिक्षण का कोई भी प्रयोग प्रभावशाली नहीं बन सकता जब तक कि वह व्यावहारिक न हो। एक उपाय है तो दूसरी होती है प्रयोग भूमि। इसमें सबसे पहली प्रयोग भूमि है—परिवार। पारिवारिक वातावरण में अहिंसा है तो वह भूमिका सफल हो जाती है। दूसरी प्रयोगभूमि है समाज। सामाजिक समस्याओं का निराकरण भी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

आवश्यक है। साथ में आन्तरिक शोधन की प्रक्रिया भी शामिल है। यदि इन सबको समन्वित किया जाए तो समस्या का समाधान सरल हो जाता है। इन सबके लिए प्रमुख आधार है—शिक्षा। जब तक शिक्षा के साथ अहिंसा प्रशिक्षण नहीं जुड़ेगा तब तक व्यापक स्वरूप सामने नहीं आएगा। इसलिए आवश्यक है कि शिक्षा सर्वांगीण विकास में सहायक बने।

1. पारिवारिक जीवन और अहिंसा—पारिवारिक जीवन में हिंसा की घटनाएं होती रहती हैं जिससे मानसिक अशांति होती है। पारिवारिक जीवन में शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व का होना आवश्यक हो जाता है। सहिष्णुता और संयम का अभ्यास, सामंजस्य, महत्त्वाकांक्षाओं का परिसीमन आदि प्रयोग पारिवारिक जीवन में अहिंसा को विकसित करते हैं। इन सबके लिए सहयोग है अनेकान्त का प्रशिक्षण। उसमें स्वतंत्रता मान्य है किंतु सापेक्षता को छोड़कर नहीं, सह-अस्तित्व मान्य है किंतु प्रतिकारात्मक शक्ति को छोड़कर नहीं, समानता मान्य है किंतु क्षमतात्मक असमानता को छोड़कर नहीं। शांति का आधार स्तंभ इतना कमजोर न हो ताकि भिन्नता के एक झोंके से ही चरमरा जाए। अनेकान्त के प्रशिक्षण में भिन्नता मान्य है लेकिन उसके एक ओर अभिन्नता भी होनी चाहिए। इसी अभिन्नता और भिन्नता के संगम की चेतना जगाना अहिंसक समाज संरचना की दिशा में नया प्रस्थान होगा।

2. सामाजिक जीवन और अहिंसा—सामाजिक जीवन में हिंसा के मजबूत आधार बने हुए हैं जिन्हें लम्बे समय से मान्यता मिली हुई है। जातिवाद, गरीबी, क्षेत्रवाद आदि तत्त्व हिंसा में ईंधन डालने का काम करते हैं। जातिवाद और रंगभेद से छुटकारा पाने के लिए मानवीय एकता का प्रशिक्षण अपेक्षित है। गरीबी की समस्या जटिल है क्योंकि उपभोग सामग्री कम है और उपभोक्ता अधिक हैं। समाज में व्यक्तिगत सुविधा और संग्रह की भावना प्रबल है। इस समस्या से छुटकारा पाने के लिए संविभाग का प्रशिक्षण बहुत आवश्यक है।

3 विश्व स्तर एवं अहिंसा—राष्ट्र की भौगोलिक इकाई की उपयोगिता को मान्य करते हुए भी यह ध्यान रखना आवश्यक है कि विश्व की मौलिक एकता का मूल्य कम न हो। अहम् एवं महत्त्वाकांक्षा का टकराव विश्व की एकता में बाधक बनते हैं। इसलिए भौगोलिक सीमाओं के अस्तित्व के साथ मानवीय एकता का धागा टूटे नहीं।

12.8.1.2 अहिंसा प्रशिक्षण की आधार भूमि

अहिंसक समाज संरचना में शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक स्वास्थ्य महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं क्योंकि कहा जाता है कि हिंसा पहले मस्तिष्क में लड़ी जाती है। इसका अर्थ है कि समस्या का कारण भीतर विद्यमान रहता है। बाहर तो निमित्त मात्र है। व्यक्ति में क्रोध, लोभ, अहंकार, प्रतिष्ठा, आसक्ति आदि जितनी भी वृत्तियां हैं वे ही व्यक्ति की समस्या का कारण बनती हैं। इसलिए इन वृत्तियों का परिष्कार आवश्यक है।

अहिंसा प्रशिक्षण व्यक्ति के स्तर पर होता है और प्रयोग समाज के स्तर पर होता है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि अहिंसा प्रशिक्षण की प्रयोग भूमि है—समाज और आधार भूमि है व्यक्ति। वैयक्तिक स्तर पर अहिंसा प्रशिक्षण के निम्न सूत्र हैं—

1. शारीरिक प्रशिक्षण के सूत्र—शारीरिक प्रशिक्षण के लिए निम्न सूत्र उपयोगी हैं—

आसन—पद्मासन, शशांकासन, योगमुद्रा, वज्रासन, सर्वांगासन, मत्स्यासन, गोदोहिकासन आदि आसन ऐसे हैं जिनसे नाड़ीतंत्र और ग्रंथितंत्र प्रभावित होते हैं। इन आसनों द्वारा हिंसा के शारीरिक उत्पादक तत्त्वों को क्षीण किया जा सकता है।

प्राणायाम—प्राणायाम में अनुलोम-विलोम, चंद्रभेदी, नाड़ी शोधन, उज्जाई और शीतली आदि द्वारा शरीर में उपस्थित हिंसा के बीजाणुओं का विरेचन किया जा सकता है।

2. मानसिक प्रशिक्षण के सूत्र—ध्यान, कायोत्सर्ग, दीर्घश्वास प्रेक्षा, समवृत्ति श्वास प्रेक्षा आदि ध्यान के

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रयोग मानसिक एकाग्रता के विकास में सहायक बनते हैं।

3. भावात्मक प्रशिक्षण—चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा और आभामंडलीय लेश्याध्यान के द्वारा भावनात्मक स्वास्थ्य को प्राप्त किया जा सकता है। अनुप्रेक्षा के प्रयोग शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक तीनों प्रशिक्षण पदों के लिए उपयोगी हैं।

समस्या का समाधान तभी संभव हो सकता है जब भौतिक पक्ष एवं अध्यात्म का समन्व किया जाए। अर्थशास्त्रियों और समाजशास्त्रियों ने सारा भार व्यवस्था परिवर्तन पर डाला तो धार्मिकों ने सारा भार वृत्तियों के परिवर्तन पर डाल दिया। ये दोनों ही एकान्तिक बातें हैं। अनेकान्त दृष्टि से विचार किया जाए तो वृत्तियों का परिवर्तन तथा व्यवस्था परिवर्तन दोनों ही आवश्यक हैं। प्रेक्षा के द्वारा वृत्तियों का परिष्कार करना होगा। ध्यान आकाशीय उड़ान नहीं है। वह एक यथार्थ है। वह समस्याओं का समाधान है। सामाजिक समस्याओं से कटकर ध्यान की बात भी आकाशीय उड़ान बन जाएगा। जीवन की जो परम समस्याएं हैं—सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक; इनके संदर्भ में प्रेक्षा को समझने का प्रयत्न करना होगा तथा यह जानना होगा कि प्रेक्षा से इनका क्या संबंध है? एक तरफ ध्यान चलता है तो दूसरी तरफ समस्या। इन दोनों का क्या संबंध है, क्या सामंजस्य है? ध्यान की प्रक्रिया से, आन्तरिक प्रेक्षा से इन बाहरी समस्याओं का समाधान मिल सकता है। तब ध्यान की सच्चाई को भी समझा जा सकेगा और समस्याओं की यथार्थता को तथा यह भी जाना जा सकेगा कि किस प्रकार से आन्तरिक परिवर्तनों के द्वारा बाहरी जगत् में परिवर्तन संभव हो सकता है।

बोध प्रश्न 2:

---

1. चारित्रिक समस्याओं के लिए आचार्य तुलसी ने क्या कहा था?

2. अहिंसा प्रशिक्षण का सूत्र क्या है?

3. शारीरिक प्रशिक्षण से आप क्या समझते हैं?

12.8.2 अहिंसा और अणुव्रत

अणुव्रत एक व्यावहारिक प्रयोग है। यह हिंसा के अल्पीकरण का सूत्र देता है। यदि व्यक्ति अणुव्रत को अपने व्यावहारिक जीवन में उतार ले तो हिंसा जैसी समस्या नहीं रहेगी। पूर्ण अहिंसा संभव नहीं भी तो हिंसा का अल्पीकरण तो हो सकता है। विरोधजा और संकल्पजा हिंसा से तो बचा जा सकता है तथा आरंभजा हिंसा का अल्पीकरण किया जा सकता है। सामाजिक क्रांति, जीवन-विकास और अस्तित्व की स्थिरता हेतु हिंसा का अल्पीकरण आवश्यक है। हिंसक व्यवहार व्यक्ति को महाहिंसा की ओर ले जाता है। प्राचीन संस्कृतियों के विलोपन एवं ह्रास में हिंसक व्यवहार का हाथ रहा है। हिंसा का अल्पीकरण केवल सैद्धान्तिक दृष्टि से ही मूल्यवान् न होकर सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से भी मूल्यवान् है। इसलिए हिंसा की सघनता को तोड़ना अपेक्षित है। हिंसा के परिणामों के आधार पर ही अणुव्रत ने उसके विरोध में हिंसा के अल्पीकरण का स्वर उठाया है। कुछ राजनैतिक पद्धतियां तथा धार्मिक मंच वैचारिक स्तर पर हिंसा को मान्यता देते हैं। इन विचारों को यदि अस्वीकार किया जाए तो व्यक्ति को निरस्त भी किया जा सकता है। अणुव्रत की दृष्टि में स्वस्थ समाज संरचना हेतु उपरोक्त दोनों ही तथ्य अवांछनीय हैं। वैचारिक स्तर पर हिंसा की अनिवार्यता स्वीकार करना हिंसा को ही बढ़ाना है।

हिंसा के अल्पीकरण का सिद्धांत साधन-शुद्धि के सिद्धांत का विकास है। जिस समाज में हिंसा का अल्पीकरण होगा वहां दुर्भावना और दुश्चिन्ता स्वयं क्षीण हो जाएंगी। क्रूर व्यवहार और प्राणवध जैसी घटनाओं को प्रोत्साहन नहीं मिलेगा। अणुव्रत हिंसा को जीवन का आधार कभी नहीं मान सकता। समता, मैत्री, सौहार्द एवं सामंजस्य ये सब हिंसा के अल्पतर और अल्पतम होने से ही घटित हो सकते हैं। अणुव्रत का प्रारंभिक लक्ष्य

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

वर्तमान समाज में संशोधन करने का रहा है। अणुव्रत ने समाज को विकृत करने वाले तत्त्वों, भ्रष्ट आचरणों, अंधविश्वासों व अर्थहीन रुढ़-परंपराओं का विरोध किया और समाज में एक नैतिक चेतना का वातावरण बनाया। अणुव्रत का आधार संयम है। वह प्रत्येक समस्या का समाधान संयम से सुलझाना चाहता है। उसका विश्वास है कि संयम द्वारा ही व्यक्ति शांतिपूर्ण जीवन जी सकता है। यदि समाज को शोषणमुक्त करना है तो संयम को प्रधानता देनी चाहिए।

शोषण विहीन समाज के स्वरूप के लिए अणुव्रत के सामने रेखाएं स्पष्ट हैं—

1. समाज की अल्पेच्छा और अल्प परिग्रह को प्रथम स्थान देना।
2. सत्ता का केन्द्रीकरण व्यक्तिगत या राष्ट्रीय स्तर पर मान्य नहीं होगा।
3. समाज में श्रम और स्वावलंबन की प्रतिष्ठा होगी।
4. संग्रह करने वाले को सामाजिक प्रतिष्ठा नहीं मिलेगी।
5. समाज का आधार अहिंसा होगा।

12.8.3 अहिंसक व्यवहार के लाभ

व्यक्ति अपने जीवन में अहिंसा को महत्त्व देता है, उसको व्यवहार में उभारता है तो ऐसा व्यक्ति व्यक्तिगत रूप से तो सुखी रहता ही है साथ में सामाजिक व्यवस्था एवं मूल्यों की प्रतिष्ठा बनी रहती है। ऐसा व्यक्ति सामज के लिए प्रेरणास्रोत होता है। जब व्यक्ति अहिंसा को सही अर्थों में समझ जाता है तो उसका जीवन सद्‌गुणों से निष्पन्न बन जाता है। व्यक्ति अनेक बुराइयों से बच जाता है। अहिंसक व्यवहार व्यक्ति में विधायक भावों को पैदा करता है। सबके प्रति करुणा, मैत्री, ऋजुता, अभय आदि का विस्तार उसके भीतर होता है। व्यक्ति अपने जीवन में इन्हीं मूल्यों को दूसरे से चाहता है। यदि वह दूसरों के प्रति संवेदनशील है, उन्हें अभयदान देता है तो दूसरों से भी उसे कोई खतरा नहीं हो सकता है। यदि व्यक्ति दूसरों के अस्तित्व को स्वीकार करता है तो उसका अस्तित्व भी बना रहता है। उसकी यही भावना समाज, राष्ट्र तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर समस्याओं का समाधान करती है। यही नहीं प्राणीमात्र के प्रति उसका सकारात्मक पक्ष रहता है। अहिंसक व्यवहार में आत्मौपम्य की भावना विकसित होती है। जैसा मैं हूं, वैसे ही दूसरे भी हैं, मेरा अस्तित्व है तो दूसरों का भी अस्तित्व है, मुझे दुःख अप्रिय है तो दूसरों को भी दुःख अप्रिय है, मुझे सुख-शांति प्रिय है तो दूसरों को भी सुख-शांति प्रिय है आदि प्रतिपक्षी विचार व्यक्ति को न जाने कितनी ही बुराइयों से दूर ले जाते हैं। इन्हीं भावनाओं के अभाव में व्यक्ति व्यक्ति के लिए समस्या का कारण बनता है। प्राणी के लिए समस्या का कारण बनता है। यदि व्यक्ति अहिंसा को अपने व्यवहार का अंग बना ले तो व्यक्ति के सामने समस्याओं को प्रश्रय नहीं मिलेगा। मनुष्य जाति के साथ सद्‌भाव तो बना ही रहेगा साथ ही प्राणी जाति को भी खतरा नहीं होगा। भय, आतंक, क्रूरता, अपराध, शोषणवृत्ति आदि बुराइयों को समाज में स्थान नहीं मिलेगा। इसी में मानव जीवन की सुख-शांति निहित है।

मनुष्य जाति से अलग अन्य प्राणियों के अस्तित्व को स्वीकार करने पर संतुलन की अवस्था स्थापित हो सकेगी। पर्यावरण ह्रास एवं प्रदूषण जैसी भयावह समस्याओं का समाधान हो सकेगा। यह समस्या विश्वस्तर पर चिंता का विषय बनी है। इस समस्या का समाधान व्यक्ति ही कर सकता है। उसकी भोगवादी, सुविधावादी वृत्तियों पर अंकुश लग सकता है तो वह अहिंसा के व्यवहार द्वारा ही संभव हो सकता है। भगवान् महावीर का यह कथन है कि अहिंसा सबके लिए कल्याणकारी है। इसका अनुभव व्यक्ति स्वयं कर सकता है। अहिंसक व्यवहार व्यक्ति को सत्य से जोड़ता है तथा पूर्वाग्रह से दूर रखता है। जो व्यक्ति सत्य को जानने लग जाता है तो वह प्रत्येक वस्तु को यथार्थ रूप से देखता है। इसी यथार्थता के कारण व्यक्ति अपने जीवन में आध्यात्मिक विकास कर सकता है। अपने

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जीवन में असीम शांति एवं आनन्द को प्राप्त कर सकता है।

12.9 प्रश्नावली

निबंधात्मक प्रश्न

1. अहिंसक व्यवहार हेतु व्यवस्था परिवर्तन किस प्रकार से सहायक है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. अहिंसा का क्या महत्त्व है?
2. आंतरिक परिवर्तन हेतु परिवर्तन की प्रक्रिया क्या है?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. व्यवस्थाएं कैसी होनी चाहिए?
2. जीवन का परम आदर्श क्या है?
3. कर्त्तव्यों का निर्धारण कौन करता है?
4. अहिंसक व्यवहार से क्या होता है?
5. मानव की सुख-शांति किसमें निहीत है?
6. परिवर्तन के सारे प्रयोग .... हुए हैं।
7. अहिंसा .... मूल मंत्र है।
8. अहिंसा की मूल संरचना में .... रहती है।
9. जब व्यक्ति अहिंसा को .... निष्पत्र बन जाता है।
10. अहिंसक व्यवहार .... दूर रखता है।

12.10 संदर्भ पुस्तकें

1. महावीर का अर्थशास्त्र—आचार्य महाप्रज्ञ
2. अहिंसा के अछूते पहलु—आचार्य महाप्रज्ञ
3. अहिंसा एवं शांति—आचार्य महाप्रज्ञ
4. नया व्यक्ति नया समाज—आचार्य महाप्रज्ञ
5. अहिंसा सिद्धान्त और प्रशिक्षण विधि—मुनि धर्मेश, मुनि प्रशांत कुमार
6. आधुनिक हिन्दी निबन्ध—एच.एल. पाण्डेय

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

संवर्ग–4 वैज्ञानिक अनुसंधान की प्रकृति एवं समस्याएं

इकाई : 13 अनुसंधान की परिभाषाएं एवं प्रमुख विशेषताएं

संरचना

13.0 प्रस्तावना

13.1 उद्देश्य

13.2 वैज्ञानिक अनुसंधान का परिचय एवं अर्थ

13.2.1 अनुसंधान

13.2.2 वैज्ञानिक अनुसंधान

13.2.3 अनुसंधान की परिभाषाएं

13.2.4 अनुसंधान की सामान्य प्रकृति

13.3 वैज्ञानिक अनुसंधान की प्रक्रिया के पद

13.4 अनुसंधान के विकास का ऐतिहासिक काल

13.5 अनुसंधान एक वैज्ञानिक पद्धति है

13.6 अनुसंधान का महत्व एवं उपयोगिता

13.6.1 अनुसंधान मनुष्य के ज्ञान की अभिवृद्धि करता है

13.6.2 विभिन्न विज्ञानों की प्रगति में सहायक

13.6.3 व्यावहारिक समस्याओं के समाधान में सहायक

13.6.4 मानव कल्याण में सहायक

13.6.5 सामाजिक उन्नति में सहायक

13.6.6 सामाजिक समस्याओं के समाधान में उपयोगी

13.6.7 प्रशासनिक सेवाओं में उपयोगी

13.6.8 भविष्य कथन में सहायक

13.6.9 सैद्धांतिक उपयोगिता

13.6.10 व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास में सहायक

13.7 मनोवैज्ञानिक अनुसंधान की विशेषताएं

13.8 मनोवैज्ञानिक अनुसंधान की प्रकृति

13.8.1 यह एक वैज्ञानिक उपागम है

13.8.2 R=F (S.O.E) सूत्र का प्रयोग

13.8.3 इसमें वैज्ञानिक विधियों और वैज्ञानिक प्रविधियों का उपयोग होता है

13.8.4 अन्तर–अनुशासनात्मक उपागम

13.8.5 मनोवैज्ञानिक अनुसंधान का व्यापक क्षेत्र

13.8.6 मात्रात्मक मापन

13.8.7 वस्तुनिष्ठता

13.8.8 प्रामाणिकता

13.8.9 भविष्य कथन का गुण

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

13.8.10 सार्वभौमिकता
13.9 प्रश्नावली
13.10 संदर्भ ग्रंथ

13.0 प्रस्तावना

अनुसंधान विज्ञान का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। किसी भी विज्ञान का अध्ययन करने, नये सिद्धांतों की खोज करने एवं निष्कर्ष निकालने के लिए अनुसंधान एक प्रमुख प्रायोगिक अध्ययन होता है। जीवन विज्ञान, प्रेक्षाध्यान एवं योग विषय के विद्यार्थियों के लिए वैज्ञानिक अनुसंधान एक नया विषय हो सकता है परन्तु, चूंकि जीवन विज्ञान भी एक वैज्ञानिक विषय है और इसके वैज्ञानिक अध्ययन के लिए वैज्ञानिक अनुसंधान की प्रक्रियाओं को जानना भी अत्यावश्यक है। अत: अनुसंधान की प्रारम्भिक जानकारी और अनुसंधान की प्रमुख विशेषताओं की जानकारी भी आपको लेनी आवश्यक है। वैज्ञानिक अनुसंधानों के बारे में जानकारी प्राप्त करने से ज्ञान की वृद्धि होती है। इस विषय के अध्ययन के पश्चात् भविष्य में आपकी योजनाएं इस विषय क्षेत्र में अनुसंधान या शोध करने की हो सकती है। अत: वैज्ञानिक अनुसंधान का अध्ययन आपके भविष्य की योजनाओं को साकार करने में अत्यन्त लाभदायक सिद्ध होगा।

13.1 उद्देश्य

1. इस पाठ का उद्देश्य वैज्ञानिक अनुसंधान का परिचय और अर्थ स्पष्ट करना है।
2. इस अध्याय का उद्देश्य अनेक वैज्ञानिकों और मनोवैज्ञानिकों द्वारा अनुसंधान के विषय में दी गई विभिन्न परिभाषाओं का परिचय करवाना है।
3. अनुसंधान की सामान्य प्रकृति एवं वैज्ञानिक अनुसंधान की प्रक्रिया के पदों के बारे में भी जानकारी आप इस पाठ से प्राप्त करेंगे।
4. अनुसंधान के विकास के ऐतिहासिक विकास काल के बारे में भी जानकारी आप इस अध्याय के अध्ययन से प्राप्त कर सकेंगे।
5. वैज्ञानिक अनुसंधान के महत्त्व एवं उपयोगिता के बारे में भी आप इस अध्याय में अध्ययन करेंगे।
6. अन्त में मनोवैज्ञानिक अनुसंधान की विशेषताओं और इसकी प्रकृति के बारे में भी जानकारी प्राप्त करेंगे।
7. इस अध्याय के अध्ययन के बाद आप अनुसंधान संबंधी विभिन्न प्रश्नों का उत्तर दे पाएंगे।

13.2 वैज्ञानिक अनुसंधान का परिचय एवं अर्थ (Meaning and Introduction of Scientific Research)

13.2.1 अनुसंधान (Research)

हम अपने जीवन के दृष्टिपथ में आने वाली प्रत्येक वस्तु को सहज भाव से देखते हैं परन्तु जब किसी वस्तु, गोचर या परिदृश्य को विशेष प्रयोजन से देखते हैं तब वह देखना वैज्ञानिक निरीक्षण कहलाता है। उदाहरणस्वरूप, जब हम किसी कविता को सहज ही न पढ़कर उसमें निहित काव्य-सौन्दर्य का विश्लेषण करने लगते हैं तब हम वैज्ञानिक अध्ययन की ओर प्रवृत्त होते हैं। आप उसके भाव पक्ष, कला पक्ष, भाषा, छन्द एवं अलंकार आदि की परीक्षा करते हैं। वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाते हुए जब हम किसी वस्तु की तह में जाते हैं तो इस प्रक्रिया को अन्वेषण या अनुसंधान कह देते हैं।

मुख्य रूप से अनुसंधान शब्द का अर्थ एक अन्वेषण (Enquiry) से रहता है, परन्तु समयानुसार इसके रूप और अर्थ में निरन्तर संशोधन तथा विकास होता गया। अनुसंधान की उत्पत्ति एक ऐसे शब्द से है, जिसका अर्थ है 'सब दिशाओं में जाना' (to go around), शोध करना अथवा खोज करना होता है (The word research

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

has its origin in a term which means to go around or to explore........)। अनुसंधान को अंग्रेजी में रिसर्च (Research) कहते हैं। जो दो शब्दों Re तथा Search से बना है। ''रि'' का अर्थ आवृति और गहनता है जबकि ''सर्च'' से तात्पर्य खोज करना है। इस प्रकार रिसर्च का अर्थ प्रदत्तों की आवृत्यात्मक और गहनता से खोज करना हुआ। दूसरे शब्दों में प्रदत्तता की गहराई में जाकर कुछ निष्कर्ष निकालना एवं नये सिद्धांतों की खोज करना और उन प्रदत्तों का स्पष्टीकरण करना 'रिसर्च' की प्रक्रिया के अन्तर्गत आता है।

अनुसंधान की प्रकृति के संबंध में विचार करने से पूर्व हमें इसी अर्थ में प्रयुक्त होने वाले दो अन्य शब्दों को भी देख लेना उचित होगा, वे शब्द हैं—'शोध' और 'गवेषणा'। शोध शब्द का अर्थ एक प्रकार की शुद्धि, संस्कार या संशोधन से है। प्रदत्तों या आंकड़ों के सारणीयन, विश्लेषण और स्पष्टीकरण के लिए 'शोध' शब्द का प्रयोग किया जा सकता है। वर्तमान परिपेक्ष्य में हम 'गवेषणा' शब्द का प्रयोग किसी वस्तु, पदार्थ या किसी नवीन तथ्य की खोज के लिए कर सकते हैं।

13.2.2 वैज्ञानिक अनुसंधान (Scientific Research)

वैज्ञानिक अनुसंधान एक ऐसा व्यवस्थित तथा नियंत्रित अध्ययन है जिसके अन्तर्गत संबंधित चरों व घटनाओं के पारस्परिक संबंधों का अन्वेषण तथा विश्लेषण उपयुक्त सांख्यिकीय तथा वैज्ञानिक विधि के द्वारा किया जाता है तथा प्राप्त परिणामों से वैज्ञानिक निष्कर्षों, नियमों तथा सिद्धांतों की रचना, खोज एवं पुष्टि की जाती है।

13.2.3 अनुसंधान की परिभाषाएं

अनुसंधान की कई परिभाषाएं कई वैज्ञानिकों एवं मनोवैज्ञानिकों द्वारा दी गई हैं। यहां हम कुछ प्रमुख मनोवैज्ञानिकों द्वारा प्रस्तुत अनुसंधान की परिभाषाएं दे रहे हैं।

(1) **पी. एम. कुक के अनुसार** ''अनुसंधान एक ऐसा निरपेक्ष, व्यापक तथा बौद्धिक अन्वेषण है, जिसमें एक दी गई समस्या से संबंधित तथ्यों तथा अर्थों अथवा संबंधों का अध्ययन किया जाता है।''[1]

(2) **जे. डब्लू. बेस्ट के अनुसार** ''अनुसंधान से अधिकतर विवेचन की वैज्ञानिक पद्धति के उपयोग के नियमबद्ध, क्रमबद्ध तथा गहन प्रक्रम का पता लगता है, इसमें अन्वेषण के लिए एक अधिक व्यवस्थित संरचना अन्तर्निहित रहती है, जिसके कारण उसमें अध्ययन की प्रक्रियाओं तथा परिणामों अथवा निष्कर्षों के प्रतिवेदन का एक प्रकार का नियमबद्ध अभिलेख रहता है।''[2]

(3) **सामाजिक विज्ञानों के विश्व कोष के अनुसार** ''अनुसंधान वस्तुओं, प्रत्ययों तथा संकेतों आदि को कुशलतापूर्वक व्यवस्थित करना है, जिसका उद्देश्य सामान्यीकरण द्वारा ज्ञान का विकास, परिमार्जन अथवा सत्यापन होता है, चाहे वह ज्ञान व्यवहार में सहायक हो अथवा कला में।''[3]

(4) **एल. वी. रेडमेन** तथा अन्यों ने 'रोमांस ऑफ रिसर्च' में अनुसंधान की परिभाषा देते हुए लिखा है कि ''अनुसंधान नवीन ज्ञान प्राप्त करने के लिए एक व्यवस्थित प्रयत्न है।''

(5) **करलिंगर के अनुसार** ''वैज्ञानिक अनुसंधान एक ऐसा व्यवस्थित, नियंत्रित, आनुभाविक तथा सूक्ष्म अन्वेषण है, जिससे प्राकृतिक घटनाओं में व्याप्त अनुमानित सम्बन्धों का अध्ययन परिकल्पनात्मक तर्क-वाक्यों द्वारा किया जाता है।''

(6) **पी. वी. यंग के अनुसार** ''अनुसंधान एक ऐसी व्यवस्थित विधि है जिसके द्वारा नवीन तथ्यों की खोज तथा प्राचीन तथ्यों की पुष्टि की जाती है तथा इनके अनुक्रमों, पारस्परिक संबंधों, कारणात्मक व्याख्याओं तथा प्राकृतिक नियमों का अध्ययन करती है जो प्राप्त तथ्यों को निर्धारित करती है।''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

(7) **ट्रेवर्स के अनुसार** ''शैक्षणिक अनुसंधान वह क्रिया है, जो शैक्षिक परिस्थितियों में एक व्यवहार संबंधी विज्ञान के विकास की ओर अग्रसर होती है।''

(8) **डॉ. एम. वर्मा के अनुसार** ''अनुसंधान एक बौद्धिक प्रक्रिया है जो नये ज्ञान को प्रकाश में लाती है अथवा व्यवस्थित रूप में वर्तमान ज्ञान-कोष में वृद्धि करती है।''

(9) **डब्ल्यू. एस. मनरो के अनुसार** ''अनुसंधान की परिभाषा उन समस्याओं के अध्ययन के रूप में की जाती है जिनका अपूर्ण अथवा पूर्ण समाधान तथ्यों के आधार पर ढूंढा जाता है। अनुसंधान के लिए व्यवहार सामग्री, तथ्य, लोगों के मतों के कथन, ऐतिहासिक तथ्य, लेख अथवा अभिलेखों से प्राप्त फल, प्रश्नावली के उत्तर अथवा प्रयोगों से प्राप्त हो सकती है।''

(10) **सी. सी. क्रोफोर्ड के अनुसार** ''अनुसंधान किसी समस्या के सही समाधान के लिए क्रमबद्ध तथा विशुद्ध चिन्तन एवं विशिष्ट उपकरणों के प्रयोग की एक परिष्कृत विधि है।''

(11) **डी. एन. श्रीवास्तव (1992) के अनुसार** ''विस्तृत अर्थों में मनोवैज्ञानिक समस्याओं की विवेचना में वैज्ञानिक विधि का व्यवस्थित और विद्वतापूर्ण उपयोग के रूप में मनोवैज्ञानिक अनुसंधान को परिभाषित किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में कोई भी व्यवस्थित वैज्ञानिक अध्ययन जो मनोविज्ञान की उन्नति के लिए किया गया हो उसे मनोवैज्ञानिक अनुसंधान कहते हैं।''

13.2.4 अनुसंधान की सामान्य प्रकृति (General Nature of Research)

1. अनुसंधान एक उद्देश्यपूर्ण बौद्धिक प्रक्रिया है।
2. इसमें किसी सैद्धांतिक अथवा व्यावहारिक समस्या के समाधान का प्रयास होता है।
3. अनुसंधान की समस्या सीमांकित (Terminal) होती है।
4. इसके अन्तर्गत किसी नये सत्य की खोज, पुराने सत्यों का नये ढंग से प्रस्तुतीकरण अथवा प्रदत्तों मे व्याप्त नये सम्बन्धों का स्पष्टीकरण होता है।
5. अनुसंधान की प्रक्रिया वैज्ञानिक होती है।
6. इसमें प्रदत्तों को प्राप्त करने के लिए विश्वसनीय (Reliable), वैध (Valid) तथा वस्तुनिष्ठ वैज्ञानिक उपकरणों का प्रयोग होता है।
7. अनुसंधान में प्राक्कल्पनाओं का निर्माण तथा उनका परीक्षण वैज्ञानिक ढंग से होता है।
8. प्राप्त निष्कर्ष पूर्ण रूप से प्रदत्तों के विश्लेषण पर ही आधारित होते हैं।
9. सम्पूर्ण प्रक्रिया का वास्तविक प्रतिवेदन प्रस्तुत किया जाता है जिससे अन्य लोग भी उसकी परीक्षा एवं सत्यापन कर सकें।

13.3 वैज्ञानिक अनुसंधान की प्रक्रिया के पद (Steps of Scientific Research)

अनुसंधान एक क्रमिक प्रक्रिया है। जिसको कुछ विशिष्ट पदों में अथवा क्रमानुसार संचालित किया जाता है। समस्त अनुसंधान प्रक्रिया में कई क्रियाओं का समावेश होता है। अनुसंधान प्रक्रिया को निश्चित पदों के रूप में किया जा सकता है। जाहोदा ने अनुसंधान प्रक्रिया में निम्न पद सुझाये हैं।

(1) समस्या के रूप में अनुसंधानकर्ता द्वारा अध्ययन के उद्देश्य का वर्णन (A Statement of purpose is made in the form of formulating the problem)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(2) अनुसंधान के अध्ययन अभिकल्प का वर्णन। (Description of the study design)

(3) प्रदत्त संकलन की विधि का वर्णन (Narration of the method of data collection)

(4) अनुसंधान के परिणामों को प्रस्तुत करना (Presentation of results)

(5) इन परिणामों को सार्थक करना एवं उचित निष्कर्ष निकालना (Drawing of conclusions and interpretation from these results)

13.4 अनुसंधान के विकास का ऐतिहासिक काल

आदिकाल में मानव कुछ आश्चर्यजनक प्राकृतिक घटनाओं की व्याख्या जादू की क्रियाओं के आधार पर करता था। इसके पश्चात् उनकी व्याख्या सम्भवत: दैविक इच्छा के आधार पर की गई और धीरे-धीरे इन नई-नई कल्पनाओं व धारणाओं से मानव ज्ञान अर्जन की विधि को दार्शनिक (Philosophical) विचारधाराएं मिली और चिंतन में निगमनात्मक तर्क (Deductive Logic) का उदय हुआ। परन्तु इस विचारधारा में भी आगे चलकर परिवर्तन आया और संशयवाद जागृत हुआ, जिससे परम्परागत धार्मिक शास्त्र-पद्धति (Religion Ritualism) तथा ईश्वर परक हठमतों (Theological Dogmas) को बहुत बड़ा धक्का लगा और इसका परिणाम यह हुआ कि मानव चिन्तन में इन्द्रियानुभववाद (Empiricism) का युग आया। मानव के ज्ञान के अर्जन के इतिहास में यह पुनर्जागरण (Renaissance) का समय था इससे उसके चिंतन में एक नवीन बौद्धिक चेतना (Intellectual Consciousness) तथा जागृति (Awakening) आयी और प्रकृतिवादी उपागम (Naturalistic Approach) का उद्‌गम हुआ।

यह युग विज्ञान की प्रगति का युग था। इसमें ही डार्विन के विकासवाद के सिद्धान्त (Evolutionary Theory) ने मानव चिन्तन और अन्वेषण पद्धति को एक नई दिशा प्रदान की और परिकल्पना-आधारित निगमनात्मक विधि (Hypo-deductive Method) का विकास हुआ। इस विचारधारा से प्रभावित होकर अगस्त काम्टे ने समाज विज्ञान के अध्ययन में प्रत्यक्षवाद (Positivism) को अपनाया। इमाइल दुर्खीम (Durkheim) ने समाज विज्ञान में विषय परक अध्ययन पद्धति को प्रधानता प्रदान की। मनोविज्ञान के क्षेत्र में व्यवहारवादी (Behaviouristic) विचारधारा का प्रवेश हुआ। मनोविश्लेषणवादी सिद्धांत ने मानव व्यवहार के विश्लेषण में नियतत्ववाद के नियम (Law of determinism) को प्रतिपादित किया। ये सब नवीन तथा प्रबल पद्धतियां मानव के चिंतन, अध्ययन व अनुसंधान के जगत् में वैज्ञानिक विचारधारा की प्रतीक थीं और यह विचारधारा इस शताब्दी के आरंभ में अत्यधिक जोर पकड़ चुकी थी। अनुसंधान के क्षेत्र में इस चिन्तन पद्धति का यह प्रभाव पड़ा कि अन्वेषण के प्रक्रम में वैज्ञानिक उपागम (Scientific Approach) तथा वैज्ञानिक पद्धति (Scientific Method) पर बल दिया जाने लगा। इसके परिणामस्वरूप सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक घटनाओं का अध्ययन मात्रात्मक विधि (Quantitative Method) के आधार पर होने लगा।

अनुसंधान के क्षेत्र में प्रायोगिक अभिकल्पों (Experimental Designs) को स्थान देने का श्रेय फिशर (Fisher), फिने (Finney), एडवर्डस् (Adwards) तथा मेक्गुईगन (Mc Guigan) को है। इसी प्रकार सामाजिक विज्ञानों के अनुसंधानों में सांख्यिकीय विधियों (Statistical Methods) को उपयोग में लाने में जहोदा (Jahoda), युंग (Young) तथा गुडे व हैट (Goode and Hatt) का विशेष योगदान है। अनुसंधान जगत् में प्रायोगिक विधि की अनुप्रयुक्ति से ही वैज्ञानिक अनुसंधान की उत्पत्ति हुई है।

कठोर वैज्ञानिक मापदण्डों पर आधारित प्रायोगिक पद्धति को ही वैज्ञानिक पद्धति कहते हैं परन्तु कुछ विज्ञान ऐसे होते हैं जिनकी विषय-सामग्री प्रायोगिक (Experimental) अध्ययन के बिना प्राय: उपयुक्त नहीं होती,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

परन्तु फिर भी, उनमें उच्च श्रेणी के वैज्ञानिक अध्ययन होते रहते हैं। उदाहरणार्थ, शिक्षा तथा समाजशास्त्र ऐसे विज्ञान हैं जिनमें प्रायोगिक पद्धति का उपयोग व्यापक रूप से नहीं होता, परन्तु फिर भी इन क्षेत्रों के अध्ययनों में वैज्ञानिक विधि-तंत्र का यथासंभव कठोरतापूर्वक अनुसरण किया जाता है व इनमें उपयुक्त वैज्ञानिक नियंत्रण (Appropriate Scientific Control) अवश्य रहता है तथा संबंधित आंकड़ों का संकलन व विश्लेषण भी विशुद्ध सांख्यिकीय विधियों पर आधारित रहता है। अत: अनुसंधान की ऐसी पद्धति को कठोर वैज्ञानिक मापदण्ड पर, वैज्ञानिक पद्धति न कहकर वैज्ञानिक उपागम ही कहा जाता है।

13.5 अनुसंधान एक वैज्ञानिक पद्धति है (Research is a Scientific Method)

प्रत्येक विज्ञान के अध्ययन की अपनी एक अलग वैज्ञानिक पद्धति होती है। अत: साधारणतया प्रत्येक व्यवस्थित, नियंत्रित तथा वस्तुनिष्ठ अध्ययन पद्धति वैज्ञानिक कहलाती है। मैक्गुईगन के शब्दों में भी वैज्ञानिक पद्धति एक ऐसा क्रमबद्ध प्रक्रम है, जिसके माध्यम से समस्त विज्ञान अपने प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करते हैं। परन्तु परम्परागत एवं व्यावहारिक रूप से, केवल प्रायोगिक पद्धति को ही वैज्ञानिक पद्धति कहना एक कठोर व संकुचित दृष्टिकोण को ही प्रस्तुत करना है। वास्तव में अनुसंधान साहित्य में वैज्ञानिक पद्धति से न केवल एक अध्ययन पद्धति का बोध होता है, बल्कि एक दार्शनिक विचारधारा का भी पता लगता है जिसमें कुछ अध्ययन संबंधी विशेष तत्त्व अन्तर्निहित रहते हैं, जैसे लुण्डबर्ग के शब्दों में, वैज्ञानिक विधि के अन्तर्गत आंकड़ों का क्रमबद्ध प्रेक्षण, वर्गीकरण तथा विवेचन निहित है। इसी प्रकार कार्ल पीयरसन के शब्दों में वैज्ञानिक पद्धति में निम्नलिखित विशेषताएं स्पष्ट रूप से पायी जाती हैं—

I. तथ्यों का सावधानीपूर्ण तथा यथार्थ वर्गीकरण,

II. तथ्यों में व्याप्त सह-संबंध व अनुक्रम का अवलोकन,

III. सृजनात्मक कल्पना द्वारा वैज्ञानिक नियमों की खोज,

IV. उनकी अध्ययनकर्त्ता द्वारा स्वयं आलोचना तथा

V. ऐसी सर्वोत्तम कसौटी की रचना करना जो कि समस्त सामान्य व्यक्तियों के लिए समान रूप से वैध रहती है।

टाऊन सैण्ड के शब्दों में, ''वैज्ञानिक पद्धति से अभिप्राय चिंतन व व्यवहार के उन कठोरतम प्रत्यक्ष तथा प्रबल साधनों से है, जिनके माध्यम से तथ्यों को संकलित तथा संगठित किया जाता है।

उपरोक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता है कि, वैज्ञानिक पद्धति एक ऐसा क्रमबद्ध प्रक्रम है जिसमें एक समस्या पर आधारित परिकल्पना से संबंधित आंकड़ों का संकलन, व्यवस्थापन व विश्लेषण उपयुक्त सांख्यिकीय पद्धति द्वारा इस आशय से किया जाता है जिससे परिकल्पना की सत्यता की जांच कठोरतम तथा वस्तुनिष्ठ मापदण्ड पर की जा सके तथा उपलब्ध परिणाम के आधार पर एक वैज्ञानिक तथ्य की स्थापना अथवा पुष्टि की जा सके।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि वैज्ञानिक पद्धति का स्वरूप स्थायी नहीं होता, बल्कि गतिशील (Dynamic) रहता है। इसके स्वरूप में जैसे-जैसे परिशुद्धता व कठोरता की मात्रा में वृद्धि होती जाती है, वैज्ञानिक पद्धति का स्वरूप स्थायी और अधिक विशुद्ध होता चला जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

13.6 अनुसंधान का महत्त्व एवं उपयोगिता

अनुसंधान की उपयोगिता को निम्न बिन्दुओं के आधार पर समझा जा सकता है—

13.6.1 अनुसंधान मनुष्य के ज्ञान की अभिवृद्धि करता है (Research advances the frontiers of human knowledge)

अनुसंधान से ज्ञान बढ़ता है एवं अज्ञानता समाप्त होती है। मनोवैज्ञानिक अनुसंधान के आधार पर नये वैज्ञानिक तथ्यों की खोज होती है जिससे नये नियमों और सिद्धांतों की रचना और प्रतिपादन होता है। पूर्व स्थापित नियमों और सिद्धांतों का भी परिमार्जन होता है अथवा पुष्टि होती है। इन सबसे मनुष्य का ज्ञान भण्डार विकसित होता है। कई प्रकार की भ्रान्तियों, साम्प्रदायिकता, प्रान्तीयता, जातिवाद, क्षेत्रवाद, वर्गवाद, भाषावाद आदि के विषय में अज्ञानता दूर करने में अनुसंधान का ज्ञान उपयोगी है।

13.6.2 विभिन्न विज्ञानों की प्रगति में सहायक (Helpful in advancement of different Sciences)

वैज्ञानिक अनुसंधानों के ज्ञान के आधार पर सामाजिक विज्ञानों, शिक्षाशास्त्र, मनोविज्ञान, राजनीतिशास्त्र आदि की प्रगति होती है। इन अनुसंधान अध्ययनों से जो ज्ञान, नियम, सिद्धांत और प्रत्यय प्राप्त होते हैं और यदि वे सर्वमान्य होते हैं तो यह उस सामाजिक विज्ञान की विषय सामग्री में जुड़ जाते हैं।

13.6.3 व्यावहारिक समस्याओं के समाधान में सहायक (Helpful in solving the practical problems)

मनोवैज्ञानिक अनुसंधान की एक महत्त्वपूर्ण उपयोगिता यह है कि, मनोवैज्ञानिक अनुसंधानों की सहायता से मनुष्य के जीवन से संबंधित अनेक व्यावहारिक समस्याओं का समाधान किया जा सकता है। बाल मनोविज्ञान, बाल विकास मनोविज्ञान, औद्योगिक मनोविज्ञान, समाज मनोविज्ञान, पर्यावरण मनोविज्ञान, राजनैतिक मनोविज्ञान, शिक्षा मनोविज्ञान जैसी मनोविज्ञान की शाखाओं में जो अध्ययन सामग्री है उस अध्ययन सामग्री का अधिकांश भाग व्यावहारिक समस्याओं के समाधान से संबंधित है। मनोविज्ञान की इन शाखाओं में अनेक ऐसे प्रत्यय, नियम और सिद्धांत हैं जिनके उपयोग के आधार पर अनुसंधानकर्ता संबंधित व्यावहारिक समस्याओं का समाधान करते हैं।

13.6.4 मानव कल्याण में सहायक (Helpful in human welfare)

मनोविज्ञान मानव व्यवहार का अध्ययन करता है। जब तक किसी व्यक्ति के व्यवहार को और उसके कारणों को भली प्रकार नहीं समझा जाता तब तक उसकी व्यवहार संबंधी समस्याओं का समाधान नहीं किया जा सकता। मनोवैज्ञानिक अनुसंधान मानव व्यवहार को समझने, मानव व्यवहार के कारणों को समझने और मानव व्यवहार की समस्याओं के समाधान में अत्यंत सहायक हैं।

13.6.5 सामाजिक उन्नति में सहायक (Helpful in social progress)

मनोवैज्ञानिक अनुसंधान के ज्ञान के आधार पर न केवल व्यक्ति को बल्कि समाज को भी उन्नत बनाया जा सकता है। मनोवैज्ञानिक अनुसंधान के ज्ञान के आधार पर समाज में सुधार और प्रगति संबंधी अपेक्षित परिवर्तन अधिक सार्थक ढंग से किए गए हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

13.6.6 सामाजिक समस्याओं के समाधान में उपयोगी (Useful in solving social problems)

मनोवैज्ञानिक अनुसंधानों से प्राप्त ज्ञान के आधार पर समाज में फैली विभिन्न सामाजिक बुराइयों के कारणों का पता लगाने के साथ-साथ समाज में व्याप्त सामाजिक बुराइयों को कम या दूर भी किया जा सकता है। आधुनिक समाज में भ्रष्टाचार, अनुशासनहीनता, वैश्यावृत्ति, जनसंख्या विस्फोट, मादक द्रव्य व्यसन, निर्धनता, बेरोजगारी, दहेज और अपराध आदि ऐसी कई सामाजिक समस्याएं एवं बुराइयां हैं जो व्यक्ति, समाज और राष्ट्र की प्रगति में बाधक हैं। इन समस्याओं के समाधान में मनोवैज्ञानिक अनुसंधान के ज्ञान का अधिक महत्त्व है।

13.6.7 प्रशासनिक सेवाओं में उपयोगी (Useful in administrative services)

मनोवैज्ञानिक अनुसंधानों से संबंधित ज्ञान का उपयोग प्रशासन से संबंधित अधिकारियों और सामाजिक तथा राजनैतिक नेताओं के लिए भी है। मनोवैज्ञानिक अनुसंधानों द्वारा प्रशासन की समस्याओं, उनके कारणों और समाधान के संबंध में ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है जिसके आधार पर कुशल प्रशासन किया जा सकता है। सामाजिक, राजनैतिक और समाज सुधारक नेता अपनी प्रभावशाली भूमिका का निर्वाह इसके ज्ञान के आधार पर कर सकते हैं।

13.6.8 भविष्य कथन में सहायक (Helpful in prediction)

आधुनिक युग में मनोवैज्ञानिक अनुसंधान की प्रकृति दिन-प्रतिदिन वैज्ञानिक होती जा रही है। वैज्ञानिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक अनुसंधानों की सहायता से यदि किन्हीं सामाजिक घटनाओं, सामाजिक जीवन, सामाजिक व्यवहार और सामाजिक व्याधियों का अध्ययन किया जाता है तो वैज्ञानिक अध्ययनों के परिणामों के आधार पर यह भविष्यवाणी की जा सकती है कि भविष्य में अध्ययन की जाने वाली सामाजिक घटना, सामाजिक जीवन, सामाजिक व्यवहार और सामाजिक व्याधि का क्या स्वरूप होगा, इससे क्या-क्या लाभ और क्या-क्या हानियां होंगी। इस ज्ञान के आधार पर लाभों को प्राप्त किया जा सकता है एवं हानियों से बचा जा सकता है।

13.6.9 सैद्धांतिक उपयोगिता (Theoretical Utility)

मनोवैज्ञानिक अनुसंधान की सैद्धांतिक उपयोगिता भी है। मनोविज्ञान की विभिन्न शाखाओं में जो अनुसंधान कार्य हो रहे हैं उनके आधार पर नये-नये प्रत्ययों, नियमों और सिद्धान्तों का प्रतिपादन हुआ है, पुराने सिद्धान्तों के निर्माण और प्रतिपादन से मनोविज्ञान की विषय-सामग्री प्रतिदिन तेजी से बढ़ रही है।

13.6.10 व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास में सहायक (Helpful in development of human personality)

मनोवैज्ञानिक अनुसंधान से व्यक्ति की चिन्तन शक्ति, कल्पना शक्ति, विश्लेषण शक्ति और सृजनात्मक योग्यता का विकास होता है अर्थात् व्यक्तित्व के बौद्धिक पक्ष के विकास में मनोवैज्ञानिक अनुसंधान सहायक है।

13.7 मनोवैज्ञानिक अनुसंधान की विशेषताएं (Characteristics of psychological Research)

(1) मनोवैज्ञानिक अनुसंधान एक विस्तृत अन्वेषण है जिसको अनुसंधान समस्या के समाधान के आधार पर प्रस्तुत किया जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

(2) मनोवैज्ञानिक अनुसंधान निश्चित वैज्ञानिक विधि के सिद्धान्तों पर आधारित होता है।

(3) मनोवैज्ञानिक अनुसंधान एक व्यवस्थित, नियंत्रित, अनुभवसिद्ध तथा तार्किक अन्वेषण है।

(4) मनोवैज्ञानिक अनुसंधान प्राकृतिक घटनाओं में संबंधों का अध्ययन परिकल्पनात्मक तर्क वाक्यों एवं सिद्धान्तों के द्वारा किया जाता है।

(5) मनोवैज्ञानिक अनुसंधान में नवीन तथ्यों का अन्वेषण किया जाता है। इससे प्राचीन तथ्यों या सिद्धान्तों की सम्पुष्टि भी की जाती है।

(6) मनोवैज्ञानिक अनुसंधान में तथ्यों को निर्धारित करने वाले कारकों के पारस्परिक संबंधों का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है।

(7) मनोवैज्ञानिक अनुसंधान के अध्ययन में विभिन्न प्रकार के उपकरणों, यन्त्रों और प्रविधियों का उपयोग होता है। इसमें अनुसंधान योजना (Research Plan) या अनुसंधान नीति (Research Strategy) बनाई जाती है। अनुसंधान नीति का निर्धारण मनोवैज्ञानिक अनुसंधानकर्ता प्राय: स्वयं करता है। परन्तु इसके लिए वह उपलब्ध अनुसंधान अभिलेखों की भी सहायता ले सकता है।

(8) मनोवैज्ञानिक अनुसंधान में मात्रात्मक मापन होते हैं तथा आंकड़ों का सांख्यिकीय विश्लेषण किया जाता है जिससे अध्ययन के शुद्ध परिणाम प्राप्त होते हैं।

(9) मनोवैज्ञानिक अनुसंधान में कार्य-कारण सम्बन्ध का अध्ययन तथा चरों के प्रभावों का अध्ययन नियंत्रित दशाओं में किया जाता है। इसमें परिकल्पनाओं या उपकल्पनाओं की जांच कर शुद्ध एवं विश्वसनीय परिणाम प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है।

(10) मनोवैज्ञानिक अनुसंधान में अनुसंधानकर्ता की यह मान्यता होती है कि जीव का व्यवहार जैविक चरों (Organism variable), उद्दीपक चरों (Stimulus variable) और वातावरण सम्बन्धी चरों (Envirnonmental variable) से प्रभावित होता है। अत: मनोवैज्ञानिक अनुसंधानकर्ता R=Responser, F=Function of Stimulus Variables (O.S.E.) सूत्र अपनाते हुए शोध करता है।

(11) मनोवैज्ञानिक अनुसंधानों का स्तर उच्च वैज्ञानिक स्तर का होता है।

(12) मनोवैज्ञानिक अनुसंधानों में पूर्व अनुसंधानों के संबंधित चरों का प्रहस्तन (Manipulation) सम्भव है।

(13) मनोवैज्ञानिक अनुसंधानों में प्रबल प्रायोगिक अभिकल्पों (Research Design) को निर्मित या विकसित कर उच्च स्तर का अध्ययन किया जाता है।

बोध प्रश्न :

---

1. अनुसंधान का अर्थ बताएं।

2. अनुसंधान वैज्ञानिक पद्धति कैसे है?

3. मनोवैज्ञानिक अनुसंधान की विशेषताएं लिखें।

13.8 मनोवैज्ञानिक अनुसंधान की प्रकृति (Nature of psychological research)

13.8.1 यह एक वैज्ञानिक उपागम है (It is a scientific approach)

मनोवैज्ञानिक अनुसंधान का आधार वैज्ञानिक उपागम है। मनोवैज्ञानिक अनुसंधान के अन्तर्गत वैज्ञानिक विधि का उपयोग करते हुए मनोवैज्ञानिक समस्याओं का अध्ययन किया जाता है। यह एक सर्वमान्य सत्य है कि प्रयोगात्मक विधि का उपयोग कर जो अनुसंधान किया जाता है उससे प्राप्त होने वाले परिणाम विशुद्ध,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

विश्वसनीय और वैध होते हैं। मनोवैज्ञानिक अनुसंधान में कार्य-कारक संबंधों के अध्ययन का विशेष महत्त्व है। प्राकृतिक विज्ञानों के साथ-साथ मनोवैज्ञानिक अनुसंधान में भी अन्तःक्रियात्मक अध्ययन किया जाता है।

13.8.2 R=F (S.O.E) सूत्र का प्रयोग

मनोवैज्ञानिक अनुसंधानकर्ताओं का मानना है कि तीन प्रकार के चर मानव की प्रतिक्रियाओं अथवा अनुक्रियाओं को प्रभावित करते हैं। ये हैं-

(i) उद्दीपक चर (Stimulus variables),

(ii) जैविक चर (Origanismic variables),

(iii) वातावरणीय चर (Environmental variables)।

इन तीनों चरों का प्रभाव मानव व्यवहार पर पड़ता है। यहां R का तात्पर्य अनुक्रिया या व्यवहार (Response) से है। अर्थात् R=function of stimulus variable (S), organismic variable (O), and environmental variable (E).

13.8.3 इसमें वैज्ञानिक विधियों और वैज्ञानिक प्रविधियों का उपयोग होता है (Scientific methods and scientific techniques are used)

मनोवैज्ञानिक अनुसंधान के अन्तर्गत विभिन्न समस्याओं के अध्ययन हेतु जिन वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग किया जाता है उनमें प्रयोगात्मक विधि सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। इस विधि के अतिरिक्त नियंत्रित निरीक्षण विधि, सांख्यिकीय विधि, मापनी विधि आदि का प्रयोग किया जाता है। मनोमित विधि अथवा मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का उपयोग मनोवैज्ञानिक समस्याओं से संबंधित आंकड़ों के संग्रहण हेतु किया जाता है। अनुसंधानकर्ता अपने अध्ययन को वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान करने के लिए दो या दो से अधिक वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग करता है। मनोविज्ञान में प्रयोग की जाने वाली प्रत्येक वैज्ञानिक विधि के साथ सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग होता है।

13.8.4 अन्तर-अनुशासनात्मक उपागम (Inter-disciplinary approach)

मनोविज्ञान की समृद्धि हेतु किये जा रहे अनुसंधानों में अन्तर-अनुशासनात्मक उपागम के उपयोग के महत्त्व मे बढ़ोतरी हो रही है। वर्तमान में जिन समाज विज्ञानों में मानव व्यवहार से संबंध रखने वाली समस्याओं का अध्ययन वैज्ञानिक विधियों से किया जा रहा है उन्हीं विधियों का उपयोग मनोवैज्ञानिक समस्याओं के अध्ययन में भी हो रहा है। मनोविज्ञान विभिन्न विद्वानों एवं समाजशास्त्रों के विद्वानों के द्वारा मानव व्यवहार से संबंधित समस्याओं के अध्ययन हेतु अन्तर-अनुशासनात्मक उपागम के प्रयोग को महत्त्व दिया जा रहा है।

13.8.5 मनोवैज्ञानिक अनुसंधान का व्यापक क्षेत्र (Wide scope of psychological research)

ज्यों-ज्यों मनोविज्ञान ने विभिन्न क्षेत्रों में प्रगति की है उसी के साथ-साथ मनोवैज्ञानिक अनुसंधान के कलेवर का भी विस्तार हुआ है। मनोवैज्ञानिक अनुसंधान के अन्तर्गत व्यावहारिक तथा सैद्धांतिक दोनों प्रकार की समस्याओं का अध्ययन होता है। मनोवैज्ञानिक अनुसंधान में केवल मनुष्य ही नहीं अपितु पशुओं और पक्षियों के व्यवहार का भी अध्ययन किया जाता है। मनोवैज्ञानिक अनुसंधान में न केवल मनुष्य के जन्म से लेकर मृत्यु तक की समस्याओं का अध्ययन होता है अपितु मृत्यु उपरान्त से संबंधित समस्याओं का अध्ययन भी इसके अन्तर्गत किया जाता है। मृत्युपरान्त समस्याओं के अध्ययन हेतु मनोविज्ञान की ही एक शाखा परामनोविज्ञान (Para-

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

Psychology) के नाम से कार्यरत है। वर्तमान में बाल-मनोविज्ञान, नैदानिक मनोविज्ञान, औद्योगिक मनोविज्ञान, सैन्य मनोविज्ञान, समाज मनोविज्ञान आदि मनोविज्ञान की सभी शाखाओं में मनोवैज्ञानिक अनुसंधान किया जाता है।

13.8.6 मात्रात्मक मापन (Quantitative measurement)

मनोवैज्ञानिक अनुसंधानों में चरों का मापन मात्रात्मक रूप मे होता है। चरों का मात्रात्मक मापन करने से सांख्यिकीय विश्लेषण करने में सरलता रहती है। आंकड़ों का उच्च सांख्यिकीय विश्लेषण करके ही परिणाम की शुद्धता प्राप्त की जा सकती है। मनोवैज्ञानिक अनुसंधानों में वस्तुपरक परीक्षण और मापनियों द्वारा आंकड़ों को अंकों में प्राप्त किया जाता है और उनका उच्च सांख्यिकीय विश्लेषण किया जाता है।

13.8.7 वस्तुनिष्ठता (Objectivity)

मनोवैज्ञानिक अनुसंधान में परिणाम वस्तुनिष्ठ होते हैं। किसी भी अनुसंधान के परिणामों की प्रामाणिकता के लिए वस्तुनिष्ठता का गुण बहुत ही आवश्यक है। मनोविज्ञान की समस्याएं चाहे किसी भी व्यावहारिक क्षेत्र से संबंधित क्यों न हो, मनोवैज्ञानिक अनुसंधानकर्ता इन समस्याओं का अध्ययन निष्पक्षता से करने का प्रयास करता है। जिससे वस्तुनिष्ठता का गुण अनुसंधान में आ जाता है।

13.8.8 प्रामाणिकता (Verifiability)

मनोवैज्ञानिक अनुसंधानों में प्रामाणिकता का गुण पाया जाता है अर्थात् इन अनुसंधानों से प्राप्त परिणाम प्रामाणिक होते हैं। प्रामाणिकता के गुण से तात्पर्य यह है कि परिणामों और निष्कर्षों की कितनी ही बार जांच की जाए हर बार एक ही प्रकार के परिणाम होते हैं।

13.8.9 भविष्य कथन का गुण (Quality of prediction)

इन अनुसंधानों में प्राप्त परिणामों के आधार पर जीवों के बारे में उनके व्यवहार संबंधी भविष्यकथन किया जा सकता है। किसी प्राणी के व्यवहार के अध्ययन के बाद उसके परिणामों के आधार पर यह भविष्य कथन किया जा सकता है कि भविष्य में वह प्राणी कैसा व्यवहार करेगा। जब अध्ययन पूर्णरूपेण वैज्ञानिक हो तब ही इस प्रकार का भविष्य कथन किया जा सकता है।

13.8.10 सार्वभौमिकता (Universality)

सभी वैज्ञानिक विषयों के सिद्धान्त और नियम सर्वदा सार्वभौमिक होते हैं और ये किसी भी देश और काल में खरे उतरते हैं। मनोवैज्ञानिक अनुसंधानों से प्राप्त परिणामों, नियमों एवं सिद्धान्तों में भी सार्वभौमिकता के गुण पाए जाते हैं क्योंकि इन अनुसंधानों में भी वस्तुनिष्ठता, प्रामाणिकता और भविष्यवाणी की योग्यता होती है। मनोवैज्ञानिक अनुसंधान भी किसी भी देश, काल, स्थिति में खरे उतरते हैं, अतः यह कहा जा सकता है कि इन अनुसंधानों में सार्वभौमिकता का गुण होता है।

13.9 प्रश्नावली

1. कोई चार परिभाषाएं देते हुए अनुसंधान का अर्थ स्पष्ट कीजिए।
2. अनुसंधान की प्रकृति एवं विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3. जहोदा ने वैज्ञानिक अनुसंधान प्रक्रिया में कितने पद बताए हैं—

(1) चार (2) सात (3) पांच (4) तीन

4. समाज विज्ञान में विषय परक अध्ययन पद्धति को प्रधानता देने का श्रेय है—

(अ) अगस्ट कान्टे को (ब) फ्रायड को (स) इमाईल दुर्खिम को (द) एडवर्ड्स को

13.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. डॉ. आर. एन. त्रिवेदी एवं डा. डी. पी. शुक्ला—रिसर्च मैथ्योलॉजी, कॉलेज बुक डिपो, जयपुर।
2. डॉ. डी. एन. श्रीवास्तव—सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक अनुसंधान, साहित्य प्रकाशन, आगरा।
3. डॉ. एच. के. कपिल—अनुसंधान विधियां, हरप्रसाद भार्गव पुस्तक प्रकाशन, कचहरी घाट, आगरा।
4. Dr. B. P. Gaur, Personality and Transcendental Meditation-A Jainsons Publication, East of Kailash-New Delhi.

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई : 14 वैज्ञानिक अनुसंधान प्रक्रिया के चरण तथा मनोवैज्ञानिक अनुसंधान का वर्गीकरण

संरचना

14.0 प्रस्तावना
14.1 उद्देश्य
14.2 अनुसंधान प्रक्रिया विभिन्न चरण
14.2.1 अनुसंधान विषय का चयन
14.2.2 अनुसंधान संबंधित साहित्य का सर्वेक्षण
14.2.3 अध्ययन हेतु समस्या बनाना
14.2.4 शोध अध्ययन के लिए परिकल्पनाओं या उपकल्पनाओं की रचना
14.2.5 अनुसंधान प्रविधि या पद्धति तंत्र का चयन
14.2.5.1 अनुसंधान या शोध का प्रकार
14.2.5.2 अनुसंधान अभिकल्प
14.2.5.3 प्रतिदर्श
14.2.5.4 परीक्षण उपकरण या यंत्र
14.2.5.5 प्रक्रिया
14.2.6 आंकड़ों का संकलन
14.2.7 आंकड़ों का व्यवस्थापन एवं सांख्यिकीय विश्लेषण
14.2.8 परिकल्पनाओं का सत्यापन
14.2.9 निष्कर्ष एवं सामान्यकरण
14.2.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची
14.2.11 शोध प्रतिवेदन का प्रस्तुतिकरण
14.3 मनोवैज्ञानिक अनुसंधान के प्रकार
14.3.1 ऐतिहासिक अनुसंधान
14.3.2 वर्णात्मक अनुसंधान
14.3.3 प्रायोगिक अनुसंधान
14.3.4 बौद्धिक और व्यवहारिकता के आधार पर अनुसंधान के प्रकार
14.3.4.1 मूलभूत अनुसंधान
14.3.4.2 व्यवहृत या व्यवहारिक अनुसंधान
14.3.5 नेशनल साईंस फाउन्डेशन के अनुसार अनुसंधान के प्रकार
14.3.5.1 सर्वेक्षण अनुसंधान
14.3.5.2 व्यावहारिक अनुसंधान
14.3.5.3 प्रविधि अनुसंधान
14.3.5.4 आलोचनात्मक या सूक्ष्म अनुसंधान
14.3.6 करलिंगर के अनुसार अनुसंधान के प्रकार
14.3.6.1 प्रयोगात्मक अनुसंधान

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

14.3.6.2 घटनोत्तर अनुसंधान

14.3.6.3 सर्वेक्षण अनुसंधान

14.4 प्रश्नावली

14.5 संदर्भ ग्रंथ

14.0 प्रस्तावना

गत अध्याय में हमने वैज्ञानिक अनुसंधान की विभिन्न परिभाषाओं का अध्ययन किया। इसके अतिरिक्त आपने अनुसंधान की सामान्य प्रकृति एवं अनुसंधान के विकास के ऐतिहासिक काल के बारे में भी जानकारी प्राप्त की। अनुसंधान का महत्त्व एवं उपयोगिता के बारे में भी हमने पिछले अध्याय में चर्चा की है और अन्त में मनोवैज्ञानिक अनुसंधान की प्रकृति के बारे में संक्षेप में जानकारी दी है।

प्रस्तुत अध्याय में हम मनोवैज्ञानिक अनुसंधान के विभिन्न चरणों का अध्ययन करेंगे। इसके अतिरिक्त अनुसंधानों के प्रकार या उनके वर्गीकरण के बारे में भी अध्ययन करेंगे।

14.1 उद्देश्य

1. इस पाठ का उद्देश्य आपको अनुसंधान प्रक्रिया के वैज्ञानिक चरणों के बारे में जानकारी देना है।
2. अनुसंधान के विभिन्न प्रकारों की जानकारी प्रदान करना भी इस पाठ का उद्देश्य है।
3. इस पाठ के अध्ययन के बाद आप वैज्ञानिक अनुसंधान के बारे में जान सकेंगे।
4. विभिन्न वैज्ञानिकों द्वारा वर्गीकृत किये गये अनुसंधानों का ज्ञान भी आप प्रस्तुत अध्याय का अध्ययन करने के पश्चात् प्राप्त कर सकेंगे।

14.2 अनुसंधान प्रक्रिया के विभिन्न चरण (Various Steps of Research)

किसी भी प्रकार के सामाजिक या मनोवैज्ञानिक अनुसंधान करने के लिए अनुसंधान कर्ता को कुछ निश्चित वैज्ञानिक और मानकीकृत चरणो से गुजरना पड़ता है। अनुसंधान की प्रारम्भिक अवधारणा, इसकी प्रकृति तथा प्रकार की विधिवत् व्याख्या करने के पश्चात् अनुसंधानकर्ता, अनुसंधान को किस तरह आयोजित करना चाहिए, इसके विषय में एक निश्चित प्रक्रिया अपनाने का प्रयत्न करता है। कई अनुसंधानकर्ता, अनुसंधान की अवधारणा से परिचित तो होते हैं परन्तु उसकी वैज्ञानिक प्रक्रिया से अनभिज्ञ होते हैं। एक अच्छे शोधकर्ता को अनुसंधान की समस्या, उससे संबंधित परिकल्पनाओं, तथ्यों का संकलन करने की विधियों, तथ्यों का वर्गीकरण एवं विश्लेषण करने की आवश्यक एवं संपूर्ण जानकारी होनी चाहिए। मनोवैज्ञानिक एवं सानाजिक अनुसंधान की प्रक्रिया अनेक चरणों में होती है। अलग-अलग शोध विद्वानों ने अनुसंधान की प्रक्रियाओं के विभिन्न चरणों का अलग-अलग ढंग से उल्लेख किया है। कुछ विद्वानों द्वारा सुझाए गये अनुसंधान की प्रक्रिया के चरणों को संक्षेप में आगे प्रस्तुत किया जा रहा है—

श्रीमती पी. वी. यंग ने अनुसंधान की प्रक्रिया के छः प्रमुख चरणों का उल्लेख किया है—

1. अध्ययन विषय का चयन या सूत्रीकरण (Selection of Problem),
2. परिकल्पनाओं का निर्माण (Formulation of Hypotheses),
3. वैज्ञानिक प्रविधियों द्वारा समस्या का अवलोकन एवं अन्वेषण (Investigation and Observation of the Problem through Scientific Methods),
4. तथ्यों का आलेखन (Recording of Data),
5. आलेखित तथ्यों का वर्गीकरण एवं सारणीकरण (Classification and Tabulation of Recorded Data) तथा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

6. परिणामों का वैज्ञानिक सामान्यकरण (Scientific Generalization of Results)।

ईगल डार्नर (Eigela Darner) ने अपनी पुस्तक "इन्वेस्टीगेशन ऑफ बिजनेस प्राब्लम" (Investigation of Business Problem) में सामाजिक अनुसंधान के पांच मुख्य चरणों का उल्लेख किया है जो इस प्रकार हैं—

1. अनुसंधान संबंधी समस्या की व्याख्या करना तथा अनुसंधान को दिशा देने के लिए प्रस्तावित उपकल्पनाओं का निर्माण (Explaining the research problem and formulation of proposed hypotheses),
2. तथ्यों का संकलन (Collection of Data),
3. तथ्यों का वर्गीकरण एवं सारणीकरण (Classification and Tabulation of Data),
4. निष्कर्ष निकालना (Drawing Conclusion) तथा
5. निष्कर्षों की परीक्षा लेना (Testing the Conclusions)।

जार्ज लुण्डबर्ग (George Lundberg) ने अपनी पुस्तक 'सोशियल रिसर्च' (Social Research) में अनुसंधान की प्रक्रिया के चार चरणों का उल्लेख किया है—

1. प्रस्तावित उपकल्पनाओं का निर्माण (Formation of Proposed Hypotheses),
2. तथ्यों का अवलोकन तथा संकलन (Observation and collection of Data),
3. प्राप्त तथ्यों का वर्गीकरण तथा संगठन (Classifying and Organizing the Collected Data) तथा
4. सामान्यकरण (Generalization)।

समाजशास्त्री आर. जी. फ्रांसिस (R. G. Francis) ने अपनी पुस्तक 'नेचर ऑफ साईन्टिफिक रिसर्च' (Nature of Scientific Research) में अनुसंधान प्रक्रिया के बारह प्रमुख चरण बताए हैं, जो इस प्रकार हैं—

1. अनुसंधान समस्या के क्षेत्र का चयन (Selection of the Field of Research Problem),
2. समस्या क्षेत्र के बारे में नवीनतम ज्ञान एवं सिद्धांत की जानकारी (Information of Recent Knowledge and Principle Regarding the Field of the Problem),
3. समस्या को परिभाषित करना (Defining the Problem),
4. उपकल्पनाओं का निर्माण (Formation of Hypotheses),
5. औपचारिक तर्कों का निर्माण (Formation of Formal Logics),
6. तथ्यों के स्त्रोतों का सीमांकन करना (Delimitation of the Sources of Data),
7. अनुसंधान के उपकरणों एवं यंत्रों का निर्माण (Construction of Tools and Instruments for Research),
8. कल्पित् तर्कों का लेखन (Writing the Imaginary Logics),
9. अनुसंधान के उपकरणों की जांच एवं उनमें संभावित संशोधन करना (Testing and Correcting the Tools of Research),
10. आंकड़ों को व्यवस्थित रूप से एकत्रित करना (Systematic Collection of Data),

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

11. प्राप्त आंकड़ों का विश्लेषण (Analysis of Data) तथा

12. प्राप्त निष्कर्षों को लिखना (Writing the Obtained Conclusions)।

डॉ. आर. एन. त्रिवेदी एवं डॉ. डी. पी. शुक्ला ने अपनी पुस्तक 'रिसर्च मैथ्डोलॉजी' (Research Methodology) में अनुसंधान प्रक्रिया के 10 निम्न चरणों का उल्लेख किया है—

1. अध्ययन समस्या का चयन एवं प्रमुख पक्षों का निर्धारण (Selection of Study Problem and Determination of Major Aspects),
2. विषय से सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन (Study of the Related Literature of the Problem),
3. उपकल्पना का निर्माण (Formation of Hypothesis),
4. सम्बोधों को परिभाषित करना (Defining the Concepts),
5. कार्यकारी परिभाषाओं की स्थापना (Establishment of Workable Definitions) ,
6. तथ्य संकलन की विधि का चुनाव (Selection of Method of Data Collection),
7. निदर्शन का चुनाव (Selection of Sampling),
8. तथ्यों का संकलन (Collection of Data),
9. तथ्यों का वर्गीकरण (Classification of Facts) तथा
10. सामान्यकरण (Generalization)।

विभिन्न विद्वानों द्वारा अनुसंधान प्रक्रम के चरणों को विभिन्न प्रकार से प्रस्तुत किया गया है। अनुसंधान प्रक्रिया का स्वरूप सभी विज्ञानों में एक समान नहीं होता। अलग-अलग विज्ञानों के अलग-अलग क्षेत्रों में भी प्रक्रियाओं का स्वरूप भिन्न-भिन्न हो जाता है। भौतिक विज्ञान, जीव-विज्ञान आदि विज्ञानों में इनकी प्रक्रियाओं के चरण भिन्न-भिन्न होते हैं और सामाजिक विज्ञानों से भी इनका प्रक्रम भिन्न होता है। चूंकि सामाजिक विज्ञानों में व्यक्तियों के व्यवहार का अध्ययन होता है इसलिए इस क्षेत्र में अनुसंधान के लिए एकमत से इन चरणों का उपयोग होता है। ये चरण हैं—

1. अनुसंधान विषय का चयन (Selection of the Topic of Research),
2. अनुसंधान संबंधित साहित्य का सर्वेक्षण (Survey of Research Related Literature),
3. अध्ययन हेतु समस्या बनाना (Raising the Problem for Study)
   (i) अध्ययन संबंधी समस्या का युक्तिसंगत आधार प्रस्तुत करना (Rationalizing the research Related Problem),
   (ii) शोध-अध्ययन से संबंधित सम्प्रत्ययों तथा निर्मितों को परिभाषित करना (Defining the Concepts and Constructs of the Research Study),
   (iii) शोध-अध्ययन के उद्देश्यों को स्पष्ट करन (Exaplaining the Objectives of the Research Study),
   (iv) शोध अध्ययन के क्षेत्र को स्पष्टत: सीमाबद्ध करना (Delimitation of the field of Research)।
4. शोध अध्ययन के लिए परिकल्पनाओं की रचना (Formulation of Hypotheses for the Research Study),
5. अनुसंधान प्रविधि या पद्धति तन्त्र का चयन (Selection of Methodology)
   (i) अनुसंधान का प्रकार (Type of Research),
   (ii) अनुसंधान अभिकल्प (Research Design),

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

(iii) प्रतिदर्श (Sample),

(iv) परीक्षण या यन्त्र (Tests Apparatus or Tools),

(v) प्रक्रिया (Procedure)।

6. आंकड़ों का संकलन (Collection of Data),
7. आंकड़ों का व्यवस्थापन एवं सांख्यिकीय विश्लेषण (Arranging and Statistical Analysis of the Data),
8. परिकल्पनाओं का सत्यापन (Verification of Hypotheses),
9. निष्कर्ष एवं सामान्यकरण (Conclusion and Generalization),
10. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References) तथा
11. शोध प्रतिवेदन का प्रस्तुतीकरण (Presentation of Research Report) ।

उपरोक्त चरणों का हम आगे विस्तार से वर्णन कर रहे हैं—

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

14.2.1 अनुसंधान विषय का चयन (Selection of the Topic of Research)

किसी भी वैज्ञानिक अनुसंधान को करने के लिए सर्वप्रथम एक निश्चित समस्या का निर्धारण करना आवश्यक होता है। अनुसंधानकर्ता सर्वप्रथम उस विषय एवं क्षेत्र का चयन करता है जिसमें वह अनुसंधान करना चाहता है। इस स्थिति में अनुसंधानकर्ता को प्राय: अपनी शोध समस्या का स्पष्ट ज्ञान नहीं होता परन्तु अनुसंधानकर्ता यह निश्चित करता है कि उसे अमुक क्षेत्र में कार्य करना है। जब उसे अपने शोध क्षेत्र का सही ढंग से ज्ञान हो जाता है तब उस क्षेत्र से संबंधित अपने विषय का चयन करता है। इसमें अनुसंधानकर्ता को यह ध्यान रखना होता है कि जिस विषय का वह चयन कर रहा है उस विषय से संबंधित उसे और उसके निर्देशक को पर्याप्त ज्ञान हो।

14.2.2 अनुसंधान संबंधित साहित्य का सर्वेक्षण (Survey of Research Related Literure)

अनुसंधान के दूसरे चरण में अनुसंधानकर्ता को अपनी शोध समस्या से संबंधित पूर्व अनुसंधानों का सावधानी पूर्वक सर्वेक्षण एवं अध्ययन करना होता है ताकि वह यह समझ सके कि पूर्व अनुसंधानों में क्या कमियां रही हैं। अनुसंधानकर्ता को पूर्व अनुसंधानों की प्रविधियों आदि का भी अध्ययन करना होता है और यदि उनमें किसी प्रकार का दोष दिखाई देता है या कोई अभाव, या कोई निष्कर्षों संबंधी दोष मिलते हैं तो उनको अपने अनुसंधान में दूर करना होता है। इस चरण में अनुसंधानकर्ता को अपने विषय से संबंधित अन्य साहित्यों जैसे—पुस्तकें, शोध पत्रिकाएं आदि का अध्ययन करना होता है।

14.2.3 अध्ययन हेतु समस्या बनाना (Raising the Problem for Study)

इस चरण में अनुसंधानकर्ता साहित्य के सर्वेक्षण के आधार पर तथा पूर्व अनुसंधानों के सर्वेक्षण के आधार पर अपनी एक शोध समस्या उठाता है या बनाता है और उसके युक्तिसंगत आधार को प्रस्तुत करता है। शोधकर्ता अपनी शोध संबंधी समस्या के उन सैद्धांतिक निर्मितों (Constructs) तथा संप्रत्ययों (Concepts) को भी स्पष्ट करता है, उनकी व्याख्या करता है, जिनका उपयोग वह अपने अनुसंधान में कर रहा है। इसके अतिरिक्त इस चरण में वह अपनी समस्या के उद्देश्यों को स्पष्ट करता है तथा अपने अध्ययन के क्षेत्र को भी स्पष्ट और सीमित करता है। इससे शोध-कार्य की गति एक निश्चित दिशा में और सही ढंग से होती है।

14.2.4 शोध अध्ययन के लिए परिकल्पनाओं या उपकल्पनाओं की रचना (Formulation of Hypotheses for the Research Study)

इस चरण में शोधकर्ता को अपनी शोध समस्या के आधार पर एक या एक से अधिक उपयुक्त परिकल्पना की रचना करनी होती है जिससे कि अध्ययन आनुभविक (Emperical) तथा मात्रात्मक रूप से संभव हो सके। ये परिकल्पना या परिकल्पनाएं उठाई गयी समस्या का प्रस्तावित समुचित उत्तर होती हैं। वैज्ञानिक अनुसंधान में उपकल्पनाओं का कार्य विशिष्ट तथ्यों के सम्बन्ध में स्पष्टीकरण प्रस्तुत करना होता है। इसके अतिरिक्त परिकल्पनाएं अन्य तथ्यों के लिए भी शोधकर्ता का मार्गदर्शन करती हैं। परिकल्पनाओं के निर्माण से शोधकर्ता को शोध करने की निश्चित दिशा प्राप्त होती है। उपकल्पना का निर्माण अनुसंधान कार्य को नियंत्रित करता है तथा अनावश्यक तथ्यों के संकलन को भी रोकता है। उपकल्पना, जांचयोग्य एवं निश्चित होनी चाहिए। उपकल्पनाओं के भिन्न-भिन्न प्रकार होते हैं तथा ये घटनाओं की आवृत्ति एवं विभिन्न चरणों के बीच संबंधों को स्पष्ट करती हैं। उपकल्पनाओं का निर्माण कई स्रोतों से हो सकता है। इस प्रकार एक सफल अनुसंधान के लिए कार्यकारी उपकल्पना का निर्माण अति आवश्यक एवं प्राथमिक आवश्यकता है। परिकल्पना के अभाव में वैज्ञानिक अध्ययन संभव नहीं है, क्योंकि परिकल्पना का वैज्ञानिक तथ्यों से बहुत गहरा संबंध है।

परिकल्पना मुख्यत: दो प्रकार की होती है—1. प्रायोगिक, तथा 2. अप्रायोगिक। प्रायोगिक परिकल्पनाओं के भी अनेक प्रकार हैं। जैसे—सांख्यिकीय परिकल्पना, अस्तित्व परक परिकल्पना, निराकरणीय परिकल्पना, नकारात्मक एवं घनात्मक परिकल्पना। इसी तरह अप्रायोगिक परिकल्पना के भी कुछ प्रकार होते हैं, जिनमें मुख्यत: सामान्य स्तर की परिकल्पना, विषम स्तर की परिकल्पना और सूक्ष्मतर या विशेष स्तर की परिकल्पनाएं मुख्य हैं।

शोध-कार्यों में परिकल्पना ऐसी बनानी चाहिए कि उसका परीक्षण हो सके तथा यह सामान्यत: अपने अनुसंधान क्षेत्र से संबंधित होनी चाहिये। उपकल्पना या परिकल्पना अल्प अर्थ व्यय वाली, अल्प समय व्यय वाली और अल्प साधनों वाली श्रेष्ठ होती है। उपकल्पना का स्वरूप यथासंभव विधि निर्धारित होना चाहिये।

14.2.5 अनुसंधान प्रविधि या पद्धति तंत्र का चयन (Selection of Methodology)

अनुसंधान प्रक्रिया का यह चरण बड़ा महत्त्वपूर्ण होता है। इसमें शोध-कर्ता यह तय करता है कि वह अनुसंधान कैसे करेगा, उसका अनुसंधान किस प्रकार का होगा तथा उसमें किस प्रकार के शोध अभिकल्प (Research Design) का उपयोग करेगा। उसके शोध-कार्य में समष्टि क्या होगी। प्रतिदर्श या न्यादर्श (Sample) का चयन कैसे होगा। चरों (Variables) की प्रकृति क्या होगी तथा उनका मापन किस प्रकार से और किन उपकरणों और यंत्रों की सहायता से होगा। कौनसे चरों को नियंत्रित करना होगा, कौनसे चर अनियंत्रित रहेंगे, आदि का निर्धारण अनुसंधान कर्ता को करना होता है। इस प्रक्रिया विधि के संबंध में कुछ विशेष बिन्दुओं का हम संक्षेप में वर्णन नीचे कर रहे हैं।

14.2.5.1 अनुसंधान या शोध का प्रकार (Type of Research)

इसमें अनुसंधान कर्त्ता अपनी अनुसंधान समस्या के आधार पर यह निश्चित करता है कि विभिन्न प्रकार के अनुसंधानों जैसे ऐतिहासिक अनुसंधान (Historical Research), घटनोत्तर अनुसंधान (Ex-Post-Facto Research), सर्वेक्षण अनुसंधान (Survey Research), क्रियात्मक अनुसंधान (Action Research), या प्रयोगात्मक अनुसंधान (Experimental Research) में से वह किस प्रकार की अनुसंधान पद्धति के द्वारा अनुसंधान करेगा। अर्थात् उसका अनुसंधान उपरोक्त अनुसंधानों में से किस प्रकार का होगा। जिस प्रकार की अनुसंधान पद्धति का अनुसरण अनुसंधान कर्ता करता है उसे उस प्रकार की ही अनुसंधान की प्रक्रिया विधि को अपनाना होता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

14.2.5.2 अनुसंधान अभिकल्प (Research Design)

अनुसंधान अभिकल्प एक प्रकार से अनुसंधान का पूर्ण ढांचा (Skeleton) होता है। यह एक प्रकार से, किसी शोध की पूर्व निश्चित योजना है। भिन्न-भिन्न प्रकार के अन्वेषण की समस्याओं के अध्ययन के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के अभिकल्प उपलब्ध हैं। सही अभिकल्प का चुनाव कर शोध समस्याओं का सफलतापूर्वक अध्ययन किया जा सकता है। अनुसंधान समस्या के अनुरूप शोध अभिकल्प (Research Design) तैयार की जाती है। शोधकर्ता को अपनी शोध समस्या के अनुरूप सटीक शोध अभिकल्प तैयार करना चाहिए क्योंकि अभिकल्पों की सहायता से किये गये अध्ययन ही वैज्ञानिक अध्ययन होते हैं।

14.2.5.3 प्रतिदर्श (Sample)

शोध अभिकल्प बनाने के पश्चात् शोधकर्ता प्रतिदर्श (Sample) का चयन करता है। पूरी समष्टि पर शोध करना बहुत खर्चीला एवं अनियंत्रित होता है, अत: समष्टि में से वह अपने शोध कार्य के अनुरूप प्रतिदर्श का चयन करता है। प्रतिदर्श चयन की कुछ निश्चित विधियां होती हैं, जिनको अपनाते हुए प्रतिदर्श का चयन किया जाता है। प्रतिदर्श चयन में समष्टि और प्रयोज्यों (Subjects) की सीमाओं को ध्यान में रखा जाता है। शोध समस्या के अनुरूप प्रतिदर्श का चयन किया जाता है। जैसे शोध-कर्ता किस आयुवर्ग के, शैक्षणिक स्तर के, सामाजिक स्तर के एवं किस आर्थिक स्तर के प्रयोज्यों पर शोध करना चाहता है उसके अनुरूप समष्टि के प्रतिदर्श का चयन करता है।

14.2.5.4 परीक्षण उपकरण या यंत्र (Test Apparatus or Tools)

अनुसंधान में समस्या का अध्ययन करने के लिए एवं आंकड़े एकत्र करने के लिए कुछ परीक्षणों, उपकरणों एवं यंत्रों की आवश्यकता होती है। शोधकर्ता अपनी अनुसंधान समस्या के अनुसार इन परीक्षणों, उपकरणों एवं यंत्रों का चुनाव करता है। शोधकर्ता इस बात का ध्यान रखता है कि उपयोग में लिए जाने वाले ये उपकरण, यंत्र एवं परीक्षण मानकीकृत (Standarized) होने चाहिए। इन परीक्षणों, उपकरणों एवं यंत्रों का उपयोग करने से पहले इनकी पूर्व जांच कर लेनी चाहिए कि ये अनुसंधान के अन्तर्गत चरों के मापन के योग्य हैं या नहीं और ये चरों का सही-सही मापन करते हैं या नहीं।

14.2.5.5 प्रक्रिया (Procedure)

अनुसंधान को किस तरह संचालित करना है? किन चरों का प्रभाव किन चरों पर देखना है? किन चरों को नियंत्रित करना है? इन सारी बातों का स्पष्टीकरण प्रक्रिया के अन्तर्गत किया जाता है। अनुसंधान को प्रभावित करने वाले या बाधित करने वाले चरों को सार्थक चर या संगत चर (Relavent Variables) कहते हैं। इनको नियंत्रित करते हुए अनुसंधान-कर्ता अध्ययन करता है तथा आंकड़े एकत्रित करता है। यदि इन चरों को नियंत्रित नहीं किया जाए तो जिन चरों का प्रभाव अनुसंधानकर्ता देखना चाहता है उनके सार्थक प्रभाव स्पष्ट नहीं हो पायेंगे। अत: अध्ययन में शुद्धता नहीं रह पाएगी। सार्थक चर या संगत चर मुख्य रूप से तीन प्रकार के होते हैं—

- —प्रयोज्य संगत चर (Subject Relavent Variable)
- —स्थिति संगत चर (Situation Relavent Variable)
- —अनुक्रमिक संगत चर (Sequence Relavent Variable)

उपर्युक्त चरों का मनोवैज्ञानिक अनुसंधान में नियन्त्रण करने के लिए कुछ विधियों का उपयोग किया जाता है। जिनमें मुख्य रूप से निष्कर्षण विधि (Method of Removel), स्थिरता विधि (Constancy of Conditions), संयोगीकरण विधि (Randomization Method) आदि का प्रयोग विशेष रूप से होता है। इन विधियों द्वारा चरों का नियन्त्रण करके वैज्ञानिक ढंग से आंकड़ों को एकत्रित किया जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

14.2.6 आंकड़ों का संकलन (Collection of Data)

आंकड़ों का संकलन मनोवैज्ञानिक अनुसंधान की एक महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है। आंकड़ों का संकलन जितना ही मात्रात्मक एवं शुद्ध ढंग से होता है, अनुसंधान अध्ययन के परिणाम उतने ही वैज्ञानिक होते हैं। आंकड़ों का संकलन करते समय शोध-कर्ता को यह प्रयत्न करना चाहिए कि आंकड़ों के संकलन में उसकी व्यक्तिगत अभिनति, पक्षपातों एवं अभिवृत्तियों का प्रभाव न पड़े। इससे सही आंकड़े प्राप्त हो सकते हैं। अनुसंधान कर्ता को आंकड़ों का संकलन उसी रूप में करना चाहिए जिस रूप में वह अनुसंधान अध्ययन इकाइयों में प्रस्तुत किया गया है।

14.2.7 आंकड़ों का व्यवस्थापन एवं सांख्यिकीय विश्लेषण (Arranging and Statistical Analysis of the Data)

आंकड़ों का संकलन करने के बाद शोधकर्ता आंकड़ों को विभिन्न वर्गों में वर्गीकृत करता है। विभिन्न सारणियां बनाकर आंकड़ों को व्यवस्थित किया जाता है और उनका सांख्यिकीय विश्लेषण किया जाता है। सांख्यिकीय विश्लेषण अनुसंधानकर्ता, अनुसंधान योजना के अनुसार या अनुसंधान अभिकल्प के अनुसार करता है। प्रचलन स्तर के आंकड़ों (Parametric Data) का सांख्यिकीय विश्लेषण करने के लिए प्राय: सेण्डलर्स 'ए' परीक्षण, 'टी' परीक्षण, 'एफ' परीक्षण और 'जेड' परीक्षण का उपयोग किया जाता है। अप्राचलन स्तरीय आंकड़ों (Non-Parametric Data) का सांख्यिकीय विश्लेषण करने के लिए प्राय: काय स्क्वायर परीक्षण (Chi-Square Test, X-Square), मध्यांक परीक्षण (Median Test), चिन्ह परीक्षण (Sign Test) आदि का उपयोग किया जाता है।

14.2.8 परिकल्पनाओं का सत्यापन (Verification of Hypotheses)

अनुसंधान कर्ता सांख्यिकीय विश्लेषण के आधार पर अपने मनोवैज्ञानिक अनुसंधान की परिकल्पनाओं की जांच करता है। विभिन्न सांख्यिकीय परीक्षणों की सहायता से अपनी परिकल्पनाओं का सत्यापन करता है। वह इस बात की जांच करता है कि अनुसंधान के परिणाम उसके द्वारा पूर्व में बनाई गई परिकल्पनाओं को सत्यापित (Veryfy) करते हैं या उनको नकारते (Refutre) हैं।

14.2.9 निष्कर्ष और सामान्यकरण (Conclusion and Generalization)

इस चरण में शोध-कर्ता परिकल्पना के स्वीकृत या अस्वीकृत किये जाने के आधार पर परिणामों का निष्कर्ष निकालता है और उनका विश्लेषण एवं व्याख्या करता है। वह अपने परिणामों की तुलना अन्य मनोवैज्ञानिकों द्वारा किये गये शोध अध्ययन के परिणामों से करता है तथा यह जानने का प्रयत्न करता है कि उसके परिणामों और अन्य वैज्ञानिकों के शोध परिणामों में क्या समानताएं हैं और क्या असमानताएं हैं। यदि उनके परिणामों में समानता है तो उसके क्या कारण हैं और यदि असमानता है तो उसके भी क्या कारण हैं इस प्रकार से वह अपने अनुसंधान अध्ययन के परिणामों की व्याख्या करता है। अन्त में वह अपने परिणामों का सामान्यकरण करने का प्रयास करता है।

14.2.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची (References)

संदर्भ ग्रन्थ-सूची में अनुसंधान कर्ता उन संदर्भ ग्रन्थों की सूची देता है जिनका उपयोग एवं सहायता उसने अपने अनुसंधान कार्य में ली है। संदर्भ ग्रन्थ सूची में उन शोधपत्रों का भी विवरण होता है जिनका उपयोग या संदर्भ शोधकर्ता ने अपने शोध-कार्य में लिया है। संदर्भ ग्रन्थ सूची में शोधकर्ता, अनुसंधानकर्ता या लेखक का नाम, शोधपत्र का नाम, प्रकाशन का वर्ष, उसके संस्करण की संख्या और पृष्ठ संख्या आदि लिखता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

14.2.11 शोध प्रतिवेदन का प्रस्तुतिकरण (Presentation of Research Report)

शोधकर्ता ने जो कुछ भी अनुसंधान में किया है उस पर वह एक प्रतिवेदन तैयार करता है। इसे शोध-प्रतिवेदन (Research Report) कहते हैं। इस प्रतिवेदन में उपरोक्त सभी अनुसंधान पदों को लिखते हुए अनुसंधान कर्ता इसको तैयार करता है। इस प्रतिवेदन को किसी मान्य शोध-संस्थान को प्रस्तुत किया जाता है तथा शोध-पत्रिकाओं में भी प्रकाशित करवाया जा सकता है अथवा शोध-ग्रन्थ के रूप में भी इसे तैयार करवाया जा सकता है।

14.3 मनोवैज्ञानिक अनुसंधान के प्रकार (Types of Psychological Research)

विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने मनोवैज्ञानिक अनुसंधान को विभिन्न वर्गों में विभाजित किया है। मनोवैज्ञानिक अनुसंधान विभिन्न घटनाओं से संबंधित तथ्यों, चरों तथा संबंधों का निम्न तीन स्थितियों में अध्ययन करता है—

1. पूर्व या अतीत में उनका स्वरूप क्या था अर्थात् What was,
2. वर्तमान में उनका स्वरूप क्या है अर्थात् What is और
3. भविष्य में उनका स्वरूप क्या होगा अर्थात् What will be ।

इन तत्त्वों के आधार पर अनुसंधानों को प्रमुखतः निम्न तीन वर्गों में बांटा जाता है—

1. ऐतिहासिक अनुसंधान (Historical Researches),
2. वर्णनात्मक अनुसंधान (Descriptive Researches) और
3. प्रायोगिक अनुसंधान (Experimental Researches)।

14.3.1 ऐतिहासिक अनुसंधान (Historical Researches)

अतीत की घटनाओं, संगठनों, समूहों, संस्थाओं एवं परम्पराओं आदि का विवेचन, अन्वेषण तथा विश्लेषण, ऐतिहासिक अनुसंधानों के अन्तर्गत आते हैं। इन अनुसंधानों में अभिलेखों, मौलिक प्रमाणों तथा प्रारम्भिक घटनाओं की सहायता ली जाती है। किसी व्यक्ति का अध्ययन, व्यक्ति वृत्त का अध्ययन (Case History) भी इसी प्रकार के अनुसंधान के अन्तर्गत आते हैं। नैदानिक अनुसंधान (Diagnostic Research) भी इसी प्रकार के अनुसंधान के अन्तर्गत आते हैं। इस प्रकार के अनुसंधान में अतीत से लेकर अब तक हुए विकास का अध्ययन किया जाता है।

14.3.2 वर्णनात्मक अनुसंधान (Descriptive Researches)

विवरणात्मक अनुसंधान के अन्तर्गत वर्तमान के तथ्यों, घटनाओं, परिदृश्यों एवं संबंधों के अध्ययन को अधिक महत्त्व दिया जाता है। और यह ज्ञात करने का प्रयत्न किया जाता है कि उनका वर्तमान स्वरूप क्या है, कैसा है। इस प्रकार के अनुसंधान कार्य क्षेत्र अध्ययन (Field Observation) वाले होते हैं तथा इनमें साक्षात्कार (Interview), प्रश्नावली (Questionnaire), अनुसूची (Schedule), आदि अध्ययन की विधियां उपयोग में ली जाती हैं।

14.3.3 प्रायोगिक अनुसंधान (Experimental Researches)

प्रायोगिक अनुसंधान कठोर वैज्ञानिक मापदण्डों पर संचालित किये जाते हैं। ऐसे अनुसंधानों में प्रकार्यात्मक संबंधों (Functional Relations) का अध्ययन कठोर नियंत्रित स्थितियों के अन्तर्गत किया जाता है। इस प्रकार के

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अनुसंधानों के अन्तर्गत चरों (Variables) के पारस्परिक संबंधों में कार्य-कारण के संबंधों (Casual Relationship) का अन्वेषण किया जाता है। इनमें अनुसंधान अध्ययन के प्रकार के अनुसार विभिन्न प्रायोगिक अभिकल्पों को विकसित किया जाता है और उनके अनुसार अनुसंधान किया जाता है।

बोध प्रश्न :

---

1. ईगल डार्नर के अनुसार अनुसंधान प्रक्रिया के कितने चरण हैं?

2. अनुसंधान में उपकल्पना की रचना क्यों की जाती है?

3. वर्णनात्मक अनुसंधान किसे कहते हैं?

14.3.4 बौद्धिक और व्यावहारिकता के आधार पर अनुसंधान के प्रकार.

बौद्धिक और व्यावहारिक कारणों के आधार पर अनुसंधानों को दो भागों में विभक्त किया जाता है—

1. मूलभूत अनुसंधान (Pure or Basic or Theoratical or Fundamental Research)
2. व्यवहृत या व्यावहारिक अनुसंधान (Applied Research)

14.3.4.1 मूलभूत अनुसंधान (Pure or Basic Research)

मूलभूत अनुसंधान में प्राकृतिक परिदृश्यों या प्रपंचों (Phenomenon) का अध्ययन किया जाता है और इनका मूल उद्देश्य नयी प्रचनाओं या निर्मितों (Constructs) का निर्माण करना है। इस प्रकार के अनुसंधानों में प्राय: वैज्ञानिक तथ्यों, नियमों तथा सिद्धांतों का व्यापक अन्वेषण किया जाता है। अर्थात् इनमें सैद्धांतिक ज्ञान की खोज पर अधिक बल दिया जाता है। इस प्रकार के सैद्धान्तिक ज्ञान की उपयोगिता भविष्य के लिए हो सकती है। इस प्रकार के अनुसंधानों का वर्तमान की समस्याओं से कोई संबंध नहीं होता।

14.3.4.2 व्यवहृत या व्यावहारिक अनुसंधान (Applied Research)

इस प्रकार के अनुसंधानों का सम्बन्ध व्यावहारिक समस्याओं का वर्तमान समय के समाधान से रहता है। यह अनुसंधान प्राय: उपयोगितावादी होते हैं। अर्थात् इनके परिणामों को तुरन्त ही उपयोग मे लाया जा सकता है। इस प्रकार के अनुसंधानों में सामाजिक अनुसंधान (Social Researches), औद्योगिक अनुसंधान (Industrial Researches), मनोचिकित्सा अनुसंधान (Psychetric Research), क्रियात्मक अनुसंधान (Action Researches) आदि आते हैं।

14.3.5 नेशनल साईंस फाउन्डेशन के अनुसार अनुसंधान के प्रकार

नेशनल साईन्स फाउन्डेशन (National Science Foundation) ने अनुसंधान का वर्गीकरण तीन वर्गों में किया है—

1. मूलभूत अनुसंधान (Fundamental Research), 2. व्यावहारिक अनुसंधान (Applied Research) तथा
3. प्रायोगिक अनुसंधान (Experimental Research)।

14.3.6 एडवर्ड और क्रॉनबैक के अनुसार अनुसंधान के प्रकार

एडवर्ड और क्रॉनबैक (1952) ने अनुसंधानों की समस्या की प्रकृति के आधार पर अनुसंधानों को चार भागों में विभक्त किया है—

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1. सर्वेक्षण अनुसंधान (Survey Research), 2. व्यावहारिक अनुसंधान (Applied Research),
3. प्रविधि अनुसंधान (Technique Research) तथा 4. आलोचनात्मक या सूक्ष्म अनुसंधान (Critical Research)।

14.3.6.1 सर्वेक्षण अनुसंधान (Survey Research)

यह अनुसंधान अन्वेषणात्मक प्रकृति का होता है। किसी बड़े अनुसंधान को करने की प्रारम्भिक स्थिति में इस प्रकार के अनुसंधान बड़े उपयोगी सिद्ध होते हैं। इस प्रकार के अनुसंधानों में साधारण घटनाओं से संबंधित चरों का अध्ययन किया जाता है। जैसे सड़क पर होने वाली दुर्घटनाओं में, सड़क की दशाओं और चालकों की नशाप्रवृत्ति का क्या संबंध है। जनमत सर्वेक्षण, समुदाय सर्वेक्षण, वर्तमान में जन प्रवृत्ति आदि का अध्ययन करने के लिए इस प्रकार के अनुसंधान किये जाते हैं।

14.3.6.2 व्यावहारिक अनुसंधान (Applied Research)

इस प्रकार के अनुसंधान वर्तमान की समस्याओं का समाधान करने के लिए किये जाते हैं। किसी संस्थान, प्रशासन तंत्र, किसी विशेष क्षेत्र की व्यावहारिक समस्या का वैज्ञानिक अध्ययन करने के लिए व्यावहारिक अनुसंधान किए जाते हैं।

14.3.6.3 प्रविधि अनुसंधान (Technique Research)

इस प्रकार के अनुसंधानों में अनुसंधान कर्त्ता किसी समस्या को हल करने के लिए किसी विधि या प्रविधि को विकसित करता है। जैसे धार्मिक या सामाजिक अभिवृत्ति मापनी (Attitude Scale) की रचना करना, किसी अध्ययन विधि का विकास करना या उनमें संशोधन करना आदि।

14.3.6.4 आलोचनात्मक या सूक्ष्म अनुसंधान (Critical Research)

इस प्रकार के अनुसंधान में पूर्व में हुए किसी अनुसंधान के परिणामों की, सिद्धान्तों की या पूर्व में स्थापित नियमों की वैद्यता की जांच की जाती है। अर्थात् इस प्रकार के अनुसंधान द्वारा पूर्व में स्थापित सिद्धांतों की आलोचनात्मक विधि से जांच की जाती है।

14.3.7 करलिंगर के अनुसार अनुसंधान के प्रकार

प्रख्यात अनुसंधानवेत्ता करलिंगर (Kerlinger) ने अनुसंधान को तीन वर्गों में बांटा है—

1. प्रयोगात्मक अनुसंधान (Experimental Research),
2. घटनोत्तर अनुसंधान (Ex-Post-Facto Research) तथा
3. सर्वेक्षण अनुसंधान (Survey Research)।

14.3.7.1 प्रयोगात्मक अनुसंधान (Experimental Research)

इस प्रकार के अनुसंधान कठोर वैज्ञानिक मानदंडों के आधार पर किये जाते हैं। इनमें समस्या से संबंधित चरों का संबंध कठोर वैज्ञानिक मानदंड और नियंत्रित स्थितियों पर देखा जाता है। इस प्रकार के अनुसंधान में स्वतंत्र चर (Independent Variables) या चरों के प्रभावों का अध्ययन आश्रित चरों (Dependent Variables) पर किया जाता है। यह अनुसंधान दो प्रकार का होता है— 1. प्रयोगशाला प्रयोग (Laboratory Experiment) और 2. क्षेत्र प्रयोग (Field Experiment)।

अ. प्रयोगशाला प्रयोग (Laboratory Experiment) इस प्रकार के अनुसंधान व्यवस्थित प्रयोगशाला में किये जाते हैं। इसमें अनुसंधानकर्ता स्वतंत्र चर (Independent Variable) का प्रयोग संगत चरों (Relavent

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

Variables) को नियंत्रित करते हुए, आश्रित चरों (Dependent Variables)पर करता है। प्रयोग की प्रकृति के अनुसार अनुसंधान कर्ता स्वतंत्र चर का प्रहस्तन (Manipulation of Independent Variable) आवश्यकतानुसार कर सकता है। प्रयोगशाला प्रयोग में अनुसंधान कठोर वैज्ञानिक नियंत्रण के अन्तर्गत किए जाते हैं। इस प्रकार के अनुसंधानों का परिणाम परिशुद्ध मिलता है।

ब. क्षेत्र प्रयोग (Field Experiment)—इस प्रकार के अनुसंधान में होने वाले प्रयोग, प्रयोगशाला में न होकर अनुसंधान से संबंधित क्षेत्र की वास्तविक स्थिति में होते हैं। इसमें भी अनुसंधान कर्ता एक, दो या अधिक संगत चरों (Relavent Variables) पर नियन्त्रण रखता है। तथा अध्ययन में स्वतंत्र चर के प्रभाव को देखने के लिए उसका प्रहस्तन (Manipulation) करता है।

प्रयोगात्मक अनुसंधान, चाहे वह प्रयोगशाला में हो या क्षेत्र में हो, में तीन बातों का विशेष रूप से ध्यान रखा जाता है। करलिंगर (1983) ने इन तीन बातों को मेक्स (Max), मिन (Min) और कॉन (Con) का सिद्धांत कहा है जिसका तात्पर्य है—

(1) क्रमबद्ध प्रसरण का वृद्धिकरण—(Maximization (Max.) of Systematic or Experimental Variance)

(2) अशुद्धि प्रसरण का न्यूनीकरण—(Minimizition (Min.) of Error Variance)

(3) क्रमबद्ध बाह्य प्रसरण का नियंत्रण—(Control (Con.) of Systametic Extraneous Variance)

14.3.7.2 घटनोत्तर अनुसंधान (Ex-Post-Facto Research)

घटनोत्तर अनुसंधान प्राय: ऐसे अनुसंधान हैं जो किसी घटना के घटित होने के बाद उस घटना के कारणों का पता लगाने के लिए किए जाते हैं। अर्थात् जिसमें स्वतंत्र चर कार्यशील या घटित हो चुका है, या स्वतंत्र चर के प्रभाव के कारणों से घटना घटित हो चुकी है। करलिंगर की घटनोत्तर अनुसंधान की परिभाषा को डा. डी.एन. श्रीवास्तव ने अपने शब्दों में इस प्रकार लिखा है-''घटनोत्तर अनुसंधान वह है जिसमें स्वतंत्र चर कार्यशील (घटित) हो चुका है, अनुसंधान कर्ता किसी आश्रित चर या चरों के निरीक्षण से अध्ययन प्रारम्भ करता है। तब वह स्वतंत्र चर का अध्ययन करके आश्रित चरों के रूप में प्रकट उसके प्रमाणों को और दोनों चरों के पारस्परिक संबंधों को खोजता है।''

इस प्रकार के अनुसंधान की विशेषता यह है कि अनुसंधानकर्ता घटना घटित होने के बाद घटना का अध्ययन करता है। और इसमें न तो चरों का प्रहस्तन हो पाता है और न ही प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से नियंत्रण।

14.3.7.3 सर्वेक्षण अनुसंधान (Survey Research)

जैसाकि हमने पूर्व में लिखा कि सर्वेक्षण अनुसंधान का स्वरूप अन्वेषणात्मक होता है और इसमें साधारण घटनाओं से संबंधित चरों का अध्ययन किया जाता है। सर्वेक्षण अनुसंधान के बारे में डा. हंस कुमार कपिल ने करलिंगर की परिभाषा को अपने शब्दों में इस प्रकार प्रस्तुत किया है, ''सर्वेक्षण अनुसंधान सामाजिक वैज्ञानिक अन्वेषण की तरह वह शाखा है जिसके अन्तर्गत व्यापक तथा कम आकार वाली जनसंख्याओं (अथवा समष्टियों) का अध्ययन उनमें से चयनित प्रतिदर्शों के आधार पर इस आशय से किया जाता है ताकि उसमें व्याप्त सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक चरों के घटनाक्रमों, विवरणों तथा पारस्परिक अन्त:संबंधों का ज्ञान उपलब्ध हो सके।''

14.4 अभ्यास के लिए प्रश्न

1. बहुवैकल्पिक प्रश्न

(i) मनोवैज्ञानिक अनुसंधान के मुख्य चरण हैं—

(अ) पांच (ब) सात (स) नौ (द) ग्यारह। ( )

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

(ii) करलिंगर ने अनुसंधानों को बांटा है—

(अ) तीन वर्गों में (ब) पांच वर्गों में (स) चार वर्गों में (द) छः वर्गों में ( )

2. लघुउत्तरीय प्रश्न

(i) अनुसंधान के विषय का चयन किस प्रकार किया जाता है?

(ii) परिकल्पनाओं की रचना क्यों आवश्यक है?

(iii) अनुसंधान प्रविधि क्यों आवश्यक है?

(iv) प्रयोगशाला आधारित प्रयोगों से आप क्या समझते हैं?

(v) सर्वेक्षण अनुसंधान से आप क्या समझते हैं?

3. निबंधात्मक प्रश्न

(i) मनोवैज्ञानिक अनुसंधान प्रक्रिया के विभिन्न चरणों का विस्तार से वर्णन कीजिए।

(ii) एडवर्ड एवं क्रॉनबेक के अनुसार अनुसंधान का वर्गीकरण कीजिए।

(iii) करलिंगर द्वारा प्रस्तुत अनुसंधान के वर्गीकरण को समझाइये।

14.5 संदर्भ ग्रन्थ

1. डॉ. आर. एन. त्रिवेदी एवं डॉ. डी. पी. शुक्ला-रिसर्च मैथ्डोलॉजी, कॉलेज बुक डिपो, जयपुर।
2. डॉ. डी. एन. श्रीवास्तव—सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक अनुसंधान, साहित्य प्रकाशन, आगरा।
3. डॉ.एच.के.कपिल—अनुसंधान विधियां, हरप्रसाद भार्गव पुस्तक प्रकाशक, कचहरी घाट, आगरा।
4. Dr. B. P. Gaur- Personality and Transcendental Meditation- A Jainsons Publication. East of Kailash- New Delhi.

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–15–समस्या की प्रकृति एवं परिभाषाएं तथा समस्या की विशेषताएं

संरचना

15.0 प्रस्तावना
15.1 उद्देश्य
15.2 समस्या क्या है और कैसे खोजी जाती है?
15.3 समस्या के तत्व
15.3.1 अनुसंधान, उपभोक्ता एवं अन्य सहभागी
15.3.2 आवश्यकता एवं उद्देश्य
15.3.3 आवश्यकता एवं उद्देश्य प्राप्ति हेतु वैकल्पिक साधन
15.3.4 अनुसंधान उपभोक्ता में संदेह
15.3.5 अनुसंधान समस्या से संबंधित वातावरण
15.4 समस्या की रचना एवं इसकी विशेषताएं
15.4.1 समस्या स्पष्ट एवं मूर्त हो
15.4.2 समस्या समाधान योग्य हो
15.4.3 समस्या का आकार और क्षेत्र सीमित हो
15.4.4 समस्या कम खर्चीली हो
15.4.5 अनुसंधान समस्या परीक्षण योग्य होनी चाहिए
15.4.6 अनुसंधान समस्या एवं आंकड़े
15.4.7 समस्या सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक दृष्टि से सार्थक हो
15.4.8 अनुसंधान समस्या ऐसी हो जिस पर पूर्व में उससे संबंधित कार्य हो चुका हो
15.4.9 समुचित निर्देशन की प्राप्ति
15.5 समस्या का चुनाव
15.5.1 शोधकर्ता की रूचि
15.5.2 शोधकर्ता की अभिरूचि
15.5.3 अनुसंधान समस्या का चुनाव मापन सीमा में हो
15.5.4 समस्या मितव्ययी हो
15.5.5 अनुसंधान समस्या असाध्य न हो
15.5.6 समस्या में नवीनता हो
15.5.7 समस्या नैतिक मूल्यों के विपरित न हो
15.6 समस्या की अभिव्यक्ति
15.6.1 ज्ञान में अवरोध या दरार
15.6.2 परस्पर विरोधी परिणाम
15.6.3 तथ्य की व्याख्या
15.7 प्रश्नावली

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

15.0 प्रस्तावना

प्रिय विद्यार्थियों, विगत पाठ में आपने अनुसंधान प्रक्रिया के चरण एवं मनोवैज्ञानिक अनुसंधान के वर्गीकरण के बारे में उठाई जाने वाली समस्याओं की प्रकृति, उनकी परिभाषाओं एवं विशेषताओं के बारे में जानकारी प्राप्त की थी। वैज्ञानिक अनुसंधानों में समस्याएं किस प्रकार की होती हैं, समस्याओं की खोज किस तरह की जाती है, इनका स्वरूप या प्रकृति कैसी होती है तथा इनकी प्रमुख विशेषताएं क्या-क्या होती हैं, इन सभी का विस्तारपूर्वक अध्ययन आप इस अध्याय में करेंगे।

15.1 उद्देश्य

1. इस पाठ के अध्ययन के पश्चात् आप अनुसंधान समस्या के संदर्भ में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
2. इस पाठ के अध्ययन के बाद आप, समस्या क्या है एवं वह कैसे खोजी जाती है, के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
3. विभिन्न विद्वानों के द्वारा अनुसंधान समस्या को किस प्रकार परिभाषित किया गया है, ये आप इस पाठ के अध्ययन के बाद जान पाएंगे।
4. समस्या की रचना एवं उसकी विशेषताओं के बारे में भी जानकारी आप इस पाठ के अध्ययन के पश्चात् जान पाएंगे।
5. इस पाठ के अध्ययन के पश्चात् आप यह जान पाएंगे की समस्या का चुनाव किस प्रकार किया जाता है एवं समस्या की अभिव्यक्ति किस प्रकार होती है।
6. इस पाठ के अध्ययन के पश्चात् आप अनुसंधान समस्या से सम्बंधित विभिन्न प्रश्नों के उत्तर दे पाएंगे।

15.2 समस्या क्या है और कैसे खोजी जाती है? (What is a problem and how to discover it)

किसी भी वैज्ञानिक अनुसंधान में समस्या उसका महत्त्वपूर्ण अंग है। समस्या वैज्ञानिक अनुसंधान का प्रथम पद है। किसी भी अनुसंधान को संचालित करने के लिए अनुसंधान कर्त्ता को उस विषय की समस्या का चुनाव करना होता है। किसी भी वैज्ञानिक अनुसंधान को संचालित करने में समस्या के चयन की एक विकट समस्या रहती है। अनुसंधान के इच्छुक शोधार्थी अनुसंधान के अनुभवी लोगों या निर्देशक के पास जाकर प्राय: यही प्रश्न पूछते हैं कि मैं किस विषय या समस्या पर शोधकार्य करूं। उनको अनुसंधान की समस्या की सूझ नहीं हो पाती और वे विभिन्न अनुसंधानकर्ताओं से अपने अनुसंधान की समस्या के बारे में प्रश्न करते रहते हैं। उनको अपने अनुसंधान विषय की समस्या के बारे में जानकारी नहीं हो पाती और वे प्राय: अपनी समस्या के बारे में निरूत्तर हो जाते हैं और अपनी अनुसंधान संबंधी समस्या का सही निर्धारण नहीं कर पाते। ऐसे शोधार्थियों को समस्यांध (Problem-blind) कहते हैं। ऐसे शोधार्थी दूसरों के कहने पर प्राय: ऐसी समस्याओं का चुनाव कर लेते हैं जिनके बारे में वे स्वयं अनभिज्ञ होते हैं। ऐसी स्थिति में उन्हें एक कुशल निर्देशक (Guide) की आवश्यकता होती है जो उनका सही निर्देशन करके सही समस्या के चुनाव में मार्गनिर्देशन कर सकें। यदि शोधार्थी समस्या के स्वरूप से परिचित हो जाता है तो शोध या अनुसंधान के आगे का कार्य बहुत कुछ सुगम हो जाता है। प्राय: यह कहा जाता है कि सुप्रस्तुत समस्या का आधा समाधान पहले ही हो जाता है (A problem well put is half solved)। अनुसंधानकर्ता को समस्या के स्वरूप से परिचित होने के लिए कुछ सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक बातों की जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

मनुष्य समाज में अपनी आवश्यकताओं की पूर्त्ति के लिए अनेक प्रकार के साधनों को अपनाता है। जब उसे आवश्यकता की पूर्त्ति हेतु साधन उपलब्ध नहीं हो पाते तो उसके समक्ष एक समस्या उत्पन्न हो जाती है। अतः इससे स्पष्ट है कि अपनी आवश्यकता की पूर्त्ति में उपस्थित बाधा ही समस्या है। जैसे ही साधन उपलब्ध हो जाता है यह बाधा दूर हो जाती है और समस्या वहीं समाप्त हो जाती है। इसे हम नीचे स्पष्ट कर रहे हैं—

आवश्यकता साधन उपलब्ध नहीं = समस्या

Need No Source = Problem

आवश्यकता + साधन = समस्या नहीं

Need + Resource = No Problem

15.3 समस्या के तत्त्व

किसी भी समस्या के लिए आवश्यकता और साधन दोनों महत्त्वपूर्ण है। आर.एल. एकौफ के अनुसार किसी भी समस्या के लिए पांच तत्त्वों की उपस्थिति आवश्यक है। उन्होंने समस्या के लिए अनुसंधान उपभोक्ता, अन्य सहभागी, आवश्यकता, आवश्यकता के साधन, संदेह और वातावरण को महत्त्वपूर्ण तत्त्वों के रूप में माना है। उन्होंने इन तत्त्वों को पांच भागों में बांटा है—

1. अनुसंधान, उपभोक्ता एवं अन्य सहभागी (Research, Consumer and other Participants)
2. आवश्यकता एवं उद्देश्य (Needs and Objectives)
3. आवश्यकता या उद्देश्य प्राप्ति हेतु वैकल्पिक साधन (Alternative means or sources for fulfilling the needs or objectives)
4. अनुसंधान-उपभोक्ता में संदेह (A state of doubt in research-consumer)
5. अनुसंधान समस्या से संबंधित वातावरण (Environment pertains to the research problem)

15.3.1 अनुसंधान, उपभोक्ता एवं अन्य सहभागी (Research, Consumer and other Participants)

कोई भी समस्या किसी न किसी प्रकार से किसी घटना, व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के समूह से संबंधित होती है। अनुसंधान के परिणामों का उपयोग करने वालों को उपभोक्ता तथा इसके प्रभाव में आने वाले सभी व्यक्तियों को सहभागी कहा जाता है।

15.3.2 आवश्यकता एवं उद्देश्य (Needs and Objectives)

अनुसंधान के उपभोक्ताओं की कुछ आवश्यकताएं होती हैं तथा उनका कोई लक्ष्य या उद्देश्य होता है जिन्हें वे प्राप्त करना चाहते हैं। जहां कोई उद्देश्य या लक्ष्य नहीं होता अथवा आवश्यकता तथा इच्छा नहीं होती वहां कोई समस्या नही होती है।

15.3.3 आवश्यकता या उद्देश्य प्राप्ति हेतु वैकल्पिक साधन (Alternative means or sources for fulfilling the needs or objectives)

शोधकर्ता उद्देश्य प्राप्ति के लिए अनुकूल साधनों या कोई भी अन्य साधन जो सामने हैं, उनको अपनाता है और उसके द्वारा अपनी समस्या का समाधान करने का प्रयत्न करता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

15.3.4 अनुसंधान-उपभोक्ता में संदेह (A state of doubt in research-consumer)

इसके अन्तर्गत शोधकर्ता या अनुसंधानकर्ता के मन में साधन या साधनों की उपयोगिता के विषय में संदेह भी होता है। यदि ऐसा न हो तो समस्या उत्पन्न ही नहीं होगी। अत: समस्या की उत्पत्ति के लिए सन्देह का होना आवश्यक है।

15.3.5 अनुसंधान समस्या से संबंधित वातावरण (Environment to which the research problem is related)

इसके अन्तर्गत प्रत्येक अनुसंधान समस्या से संबंधित एक विशेष वातावरण होता है। वातावरण में परिवर्तन करने से समस्या का समाधान प्रस्तुत हो जाता है। वातावरण के विस्तार क्षेत्र में अन्तर एवं भेद हो सकता है, जैसे कुछ समस्याएं विशेष वातावरण से संबंधित होती हैं तो कुछ सामान्य वातावरण से।

समस्या की गहनता आवश्यकता की प्रबलता पर निर्भर होती है। आवश्यकता जितनी प्रबल होगी और उसमें जितना तीव्र अवरोध होगा समस्या उतनी ही गहन होगी। समस्या किन्हीं दो या दो से अधिक चरों के सम्बंधों के बारे में होती है।

करलिंगर के अनुसार दो या दो से अधिक चरों में क्या संबंध हैं? शोधकर्ता इसी प्रश्न का हल ढूंढता है और यही वास्तव में अनुसंधान है। उदाहरण के लिए प्रेक्षाध्यान के अभ्यास का व्यक्ति की चिंताओं और कुण्ठाओं पर क्या प्रभाव पड़ता है? (What is effect of Preksha Maditation practice on anxiety and frustration of a person?)। इस समस्या में दो प्रकार के चर हैं। एक चर प्रेक्षाध्यान है और दूसरा व्यक्ति की चिंता एवं कुण्ठा। अनुसंधान में इस समस्या के दोनों चरों अर्थात् प्रेक्षाध्यान तथा चिंता एवं कुण्ठा में क्या संबंध है, यह ज्ञात किया जाता है। क्या प्रेक्षाध्यान का अभ्यास करने से व्यक्ति की चिंताओं और कुण्ठाओं में कमी आती है? यदि ऐसा होता है तो दोनों चरों में संबंध है। यहां प्रेक्षाध्यान एक स्वतंत्र चर के रूप में कार्य करता है इसलिए यह अनाश्रित चर (Independent Variable) कहलाता है। चिंता एवं कुंठा प्रेक्षाध्यान से प्रभावित होती है। इसलिए ये आश्रित चर (Dependent Variable) कहलाती हैं। इस तरह दो चरों के बीच में क्या संबंध हैं इसको हम समस्या द्वारा प्रस्तुत करते हैं।

15.4 समस्या की रचना एवं इसकी विशेषताएं (Formulation and characteristics of a problem)

किसी भी वैज्ञानिक अनुसंधान में समस्या की रचना करना एक अत्यावश्यक प्रक्रिया है। जहोदा ने समस्या की रचना के बारे में लिखा है कि समस्या की रचना इस प्रकार से हो जिसका कि वैज्ञानिक पद्धति द्वारा अन्वेषण किया जा सके। अनुसंधान की समस्या रचना में कुछ विशेषताएं होनी चाहिए, आगे हम समस्या रचना की कुछ विशेषताओं के बारे में जानकारी दे रहे हैं—

1. समस्या स्पष्ट (Explicit) एवं मूर्त्त (Concrete) हो।
2. समस्या समाधान योग्य (Solvable) हो।
3. समस्या का आकार और क्षेत्र सीमित हो।
4. समस्या कम खर्चिली हो।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

15.4.1 समस्या स्पष्ट (Explicit) एवं मूर्त्त (Concrete) हो

अनुसंधान समस्या की रचना करते समय अनुसंधानकर्ता या शोधकर्ताओं को यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि समस्या इस प्रकार रचित हो जिससे कि वैज्ञानिक विधि द्वारा जानकारी प्राप्त की जा सके एवं उसे हल किया जा सके। इसके लिए समस्या की रचना से पहले शोधकर्ता अपने अनुसंधान क्षेत्र के साहित्य का अध्ययन ठीक ढंग से कर लें। अनुसंधानकर्ता अपनी अनुसंधान विषयक सामग्री में अपने द्वारा किये हुए निरीक्षण तथा उस क्षेत्र के विद्वानों से समस्या पर चर्चा कर सहायता प्राप्त कर सकता है।

15.4.2 समस्या समाधान योग्य (Solvable) हो

किसी भी अनुसंधान में समस्या रचना में उस समस्या का समाधान योग्य होना आवश्यक है क्योंकि वैज्ञानिक दृष्टिकोण से केवल उन्हीं समस्याओं का अध्ययन संभव हो सकता है। जिनका समाधान हो सकता है। ऐसी समस्याओं की रचना नहीं करनी चाहिए जिनका समाधान न हो सकता हो। ऐसी समस्या की रचना भी नहीं करना चाहिए जिसके समाधान की आवश्यकता ही न हो। जैसे कोई अनुसंधानकर्ता इस प्रकार की समस्या की रचना करे कि ब्रह्मांड में कितने तारे हैं उसकी गिनती करना है। इस प्रकार की समस्या रचना से समस्या का समाधान होना संभव नहीं है।

अनुसंधान समस्या को समाधान योग्य बनाए रखने में अध्ययन के आकार का बहुत महत्त्व है। यदि अध्ययन क्षेत्र बहुत विस्तृत है, जैसा की ऊपर वाले उदाहरण में बताया गया है तो समस्या समाधान में कठिनाई खड़ी हो जाती है। इसके अतिरिक्त एक ही अनुसंधान में कई समस्याओं से युक्त अध्ययन से भी शोधकर्ता को कई प्रयासों के बाद भी उसकी उचित तथा उपयुक्त समाधान मिलने की सम्भावना बहुत कम रहती है। अत: एक अध्ययन के लिए एक ही समस्या का चयन कर उसका समाधान ढूंढना अधिक लाभदायक एवं सुविधाजनक होता है।

15.4.3 समस्या का आकार और क्षेत्र सीमित हो

किसी भी अनुसंधान समस्या का आकार (Size) तथा क्षेत्र सीमित (Delimit) रहना चाहिए। इससे अनुकूल एवं उपयुक्त परिकल्पना बनाई जा सकती है। समस्या रचना एवं परिकल्पना का गहरा संबंध होता है अत: समस्या रचना के साथ-साथ ही परिकल्पना या उपकल्पना का स्वरूप भी निश्चित होने लग जाता है। समस्या के आकार और क्षेत्र को सीमित कर लेने से परिकल्पनाओं के निर्माण में सरलता रहती है और समस्या का समाधान भी सरलता से हो सकता है क्योंकि समस्या का समाधान परिकल्पना पर ही निर्भर करता है। समस्या का आकार और क्षेत्र सीमित होने से समस्या के समाधान में सरलता रहती है और समय, धन एवं संसाधनों की आवश्यकता भी सीमित रहती है।

15.4.4 समस्या कम खर्चिली हो

किसी भी अनुसंधान समस्या का निर्धारण या उसकी रचना करने से पूर्व यह जान लेना चाहिए कि समस्या दो प्रकार से कम खर्चिली (Economic) हो—1. समस्या के हल में आवश्यकता से अधिक समय खर्च न हो (Time Economic) तथा 2. समस्या को हल करने में आवश्यकता से अधिक पैसा खर्च न हो (Money Economic)। कई बार अनुसंधानकर्ता अपने ज्ञान के अभाव में या गलत निर्देशन के कारण ऐसी समस्या की रचना अथवा चुनाव कर लेते हैं जिनको हल करने में आवश्यकता से अधिक समय लग जाता है तथा आवश्यकता से अधिक धन खर्च होता है फिर भी समस्या का समाधान संतोषजनक नही हो पाता।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

15.4.5 अनुसंधान समस्या परीक्षण योग्य होनी चाहिए (Problem should be testable)

अनुसंधान समस्या वैज्ञानिक दृष्टिकोण से परीक्षण योग्य होनी चाहिए। अनुसंधानकर्ता को अनुसंधान समस्या का चयन करते समय यह देख लेना चाहिए कि समस्या परीक्षण योग्य है या नहीं। जिस समस्या को लेकर अनुसंधान कर रहा है उस समस्या से संबंधित आंकड़ों को वह प्राप्त कर सकेगा अथवा नहीं। इसके अतिरिक्त समस्या के निहित चरों (Variables) के बारे में भी अनुसंधानकर्ता को सुक्ष्मता से जांच कर लेनी चाहिए कि इन चरों का मापन मानक परीक्षणों से हो पाएगा या नहीं अथवा चरों के मापन के लिए उपकरण या परीक्षण उपलब्ध हैं या नहीं। यदि उपकरण और परीक्षण उपलब्ध नहीं हैं तो ऐसी स्थिति में अनुसंधान समस्या के चरों के मापन के लिए परीक्षण उपकरण एवं सामग्री बनाई जा सकती है और उनसे मापन किया जा सकता है तो अनुसंधान समस्या परीक्षण योग्य कहलाएगी।

15.4.6 अनुसंधान समस्या एवं आंकड़े (Research problem and data)

किसी भी अनुसंधान के लिए अच्छी समस्या की विशेषता यह होती है कि उसका समाधान करने में मात्रात्मक आंकड़े (Quantitative data) प्राप्त हो। अर्थात् आंकड़े अंकों के रूप में प्राप्त हों। जिनका सांख्यिकीय विश्लेषण (Statistical analysis) किया जा सके। मनोविज्ञान एवं समाजशास्त्र के कई अनुसंधानों में बहुत-सी समस्याएं ऐसी भी होती हैं जिनके अध्ययन के समय आंकड़े शब्दों के रूप में प्राप्त होते हैं परन्तु बाद में इन शब्दरूपी आंकड़ों को अंकों में बदल लिया जाता है। इन आंकड़ों के सांख्यिकीय विश्लेषण से अनुसंधान के परिणाम वैध और विश्वसनीय हो जाते हैं। अत: अनुसंधानकर्ता को समस्या का निर्माण या चयन करते समय समस्या की इस विशेषता का पूरा ध्यान रखना चाहिए। वरना इस विशेषता के अभाव में समस्या का वैज्ञानिक अध्ययन, वैज्ञानिक अनुसंधान नहीं हो पाता है।

15.4.7 समस्या सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक दृष्टि से सार्थक हो (A Research problem should be theorotically and practically significant)

किसी भी अनुसंधान समस्या का चयन करते समय अनुसंधानकर्ता को यह देख लेना चाहिए कि अनुसंधान के लिए चयन की जाने वाली समस्या की जगत् में कोई उपयोगिता है या नहीं। उपयोगिता वाली समस्या श्रेष्ठ मानी जाती है। समस्या की उपयोगिता व्यावहारिक एवं सैद्धान्तिक भी हो सकती है। कई ऐसी समस्याएं भी हो सकती हैं जो व्यावहारिक एवं सैद्धान्तिक दोनों प्रकार से उपयोगी होती हैं। समस्या का महत्त्व उसकी उपयोगिता से ही आंका जा सकता है। समस्या का मूल्य भी उसकी उपयोगिता से मापा जा सकता है अर्थात् अनुसंधान समस्या जितनी उपयोगी होगी वह उतनी ही मूल्यवान् एवं महत्त्वपूर्ण होगी।

15.4.8 अनुसंधान समस्या ऐसी हो जिस पर पूर्व में उससे संबंधित कार्य हो चुका हो (A Research problem should be related to the field on which some work has already been done)

अनुसंधानकर्ता को ऐसी समस्या लेनी चाहिए जिससे संबंधित कुछ कार्य पूर्व में हो चुका हो। ऐसे क्षेत्र की समस्या का निर्माण भी नहीं करना चाहिए जिस क्षेत्र में पूर्व में कोई उससे संबंधित कार्य नहीं हुआ हो। परन्तु यदि अनुसंधानकर्ता अनुभवी है और अनुसंधान की पूर्ण जानकारी रखता है तो ऐसी समस्या का भी निर्माण कर सकता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

15.4.9 समुचित निर्देशन की प्राप्ति (Adequate guidance)

अनुसंधान समस्या के चुनाव में अनुसंधानकर्ता को विशेषकर नये अनुसंधानकर्ता को ऐसी समस्या का चुनाव करना चाहिए जिसका समाधान करने में अन्य विशेषज्ञों से समुचित निर्देशन प्राप्त हो सके।

15.5 समस्या का चुनाव (Selection of problem)

पूर्व में हमने समस्या की विशेषताओं के बारे में जानकारी प्राप्त की। समस्या की उपरोक्त विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए अनुसंधानकर्ता को समस्या का चुनाव करना चाहिए। जिज्ञासु अनुसंधानकर्ता के सामने अनुसंधान की अनेक समस्याएं हो सकती हैं परन्तु सभी समस्याओं पर एक साथ कार्य करना उसके लिए संभव नहीं है। अत: अनुसंधानकर्ता को इन समस्याओं में से किसी एक समस्या का चुनाव करना पड़ता है। समस्या का चुनाव करते समय कुछ निम्नलिखित विशेष बातों या सिद्धान्तों का ध्यान रखना चाहिए—

1. शोधकर्ता की रुचि (Interest of researcher),
2. शोधकर्ता की अभिरुचि (Apptitude of researcher),
3. समस्या का चुनाव मापन सीमा में हो (Research problem should be within measurable limit),
4. समस्या मितव्ययी हो (Prlblem should economic),
5. अनुसंधान समस्या असाध्य न हो (Research problem should not be impractical),
6. समस्या में नवीनता हो (Norelty in problem) तथा
8. समस्या नैतिक मूल्यों के विपरीत न हो (Problem should not be against the ethical Valres)।

15.5.1 शोधकर्ता की रुचि (Interest of researcher)

अनुसंधान या शोधकर्ता को अनुसंधान के लिए समस्या का चयन करते समय अपनी रुचि का ध्यान रखना चाहिए। अनुसंधान के जिस क्षेत्र में उसकी रुचि हो उसी क्षेत्र की समस्या का चयन करना चाहिए। समस्या के अध्ययन में उसकी कितनी रुचि है इसका भी प्रभाव अनुसंधान की प्रक्रिया पर पड़ता है। प्राय: यह देखा गया है कि अनुसंधान समस्या में अनुसंधानकर्ता की रुचि जितनी प्रबल होगी उतना ही उसका कार्य अच्छा होगा और वह समस्या के सम्बंध में गहन कार्य कर पाएगा। कई बार नये अनुसंधानकर्ता अपने निर्देशक या किन्हीं अन्य अनुसंधानकर्ताओं की बताई हुई ऐसी समस्या का चयन कर लेता है जिसमें वास्तव में उसकी रुचि नहीं होती। ऐसी स्थिति में समस्या का अध्ययन ठीक ढंग से और सुचारू रूप से नहीं हो सकता अत: समस्या चयन में शोधकर्ता की रुचि बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। अनुसंधान समस्या में अनुसंधानकर्ता की रुचि होने से उसका कार्य करने में मनोबल बना रहता है एवं वह अपने अनुसंधान को अच्छे से अच्छे तरीके से संचालित करने का प्रयत्न करता है।

15.5.2 शोधकर्ता की अभिरुचि (Apptitude of researcher)

अनुसंधानकर्ता को समस्या का चुनाव अपने अभियोग्यता या अभिक्षमता के अनुरूप करना चाहिए जिससे कि वह अपनी अभिक्षमताओं का पूरा उपयोग करता हुआ अपनी समस्या का ठीक ढंग से अध्ययन कर सके और अनावश्यक कठिनाइयों से बच सके।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

15.5.3 अनुसंधान समस्या का चुनाव मापन सीमा में हो (Research problem should be within measurable limit)

ऐसी समस्या का चुनाव करना चाहिए जिसका मापन और मूल्यांकन एक निश्चित सीमा में और सरलता से हो सके। समस्या का अध्ययन करने के लिए परीक्षणों, यंत्रों और साधनों की उपलब्धि सरलता से हो सके।

15.5.4 समस्या मितव्ययी हो (Problem should be economic)

जैसाकि हमने पूर्व में लिखा है कि समस्या समय और आर्थिक रूप से मितव्ययी होनी चाहिए। अत: समस्या के चयन के समय अनुसंधानकर्ता को इस बात का पता कर लेना चाहिए कि उसकी समस्या का अध्ययन सीमित समय और सीमित धन में पूर्ण हो जाए, ऐसी समस्या का ही वह चुनाव करे।

15.5.5 अनुसंधान समस्या असाध्य न हो (Research problem should not be impractical)

अनुसंधानकर्ता को ऐसी समस्या का चुनाव नहीं करना चाहिए जो असाध्य हो क्योंकि ऐसी समस्याओं के अध्ययन में अनावश्यक रूप से समय व धन खर्च होता है और परिणाम भी विश्वसनीय और सार्थक प्राप्त नहीं हो पाते।

15.5.6 समस्या में नवीनता हो (Novelty in problem)

अनुसंधानकर्ता को वर्तमान परिवेश से जुड़ी हुई नवीनतम समस्याओं का चयन करना चाहिए। अर्थात् समस्या में अधिक से अधिक नवीनता का गुण हो। नवीनतम गुण वाली समस्याओं के प्रति लोगों का उत्साह व झुकाव भी बहुत रहता है।

15.5.7 समस्या नैतिक मूल्यों के विपरीत न हो (Problem should not be against the ethical values)

अनुसंधानकर्ता को समस्या चयन में यह ध्यान रखना चाहिए कि उसकी अनुसंधान समस्या नैतिक मूल्यों के विपरीत न हो अर्थात् समस्या नैतिक मूल्यों का हनन करने वाली नहीं होनी चाहिए। समस्या का चुनाव करते समय समस्या के अध्ययन को जाति सूचक शब्दों एवं हिंसक शब्दावली से मुक्त रखना चाहिए।

बोध प्रश्न :

---

1. *आर. एल. एकौफ के अनुसार समस्या के कितने तत्त्व हैं?*
2. *समस्या का चुनाव कैसे किया जाता है?*

15.6 समस्या की अभिव्यक्ति (Manifestation of Problem)

जैसाकि पूर्व में लिखा जा चुका है, मैक्गुईगन (Mc Guigan) ने समस्या को समाधान योग्य प्रश्न बताया है। समस्या एक ऐसा प्रश्न है जिसका अध्ययन व्यक्ति की सामान्य क्षमताओं के उपयोग से किया जा सकता है। वस्तुत: समस्या एक समाधान योग्य प्रश्न है जिसमें अनुसंधान संबंधित दो या दो से अधिक प्रस्तावित चरों के संबंधों का वैज्ञानिक विधि द्वारा अध्ययन किया जाता है। मैकगुईगन ने समस्या की अभिव्यक्ति के तीन कारण माने हैं—

1. ज्ञान में अवरोध या दरार (Gap in knowledge),

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2. परस्पर विरोधी परिणाम (Contradictory results) तथा
3. तथ्य की व्याख्या (Explaining a fact)।

उपरोक्त तीनों कारणों का संक्षेप में वर्णन इस प्रकार है—

15.6.1 ज्ञान में अवरोध या दरार (Gap in Knowledge)

जब कोई अनुसंधानकर्ता किसी जानकारी की तर्कयुक्त ढंग से व्याख्या नही कर सके तब इस प्रकार की समस्या अभिव्यक्त होती है। यह परिस्थिति प्राय: उस समय उत्पन्न होती है जब व्यक्ति या अनुसंधानकर्ता में ज्ञान का पर्याप्त भंडार नहीं होता या वह अनुसंधान संबंधी घटना स्थिति की उचित व्याख्या नहीं कर पाता। उदाहरण के लिए नशामुक्ति के लिए कौनसी चिकित्सा प्रणाली सर्वोत्तम है? इस समस्या से यह स्पष्ट होता है कि शोधकर्ता को निश्चित प्रणाली का ज्ञान नहीं है अर्थात् उसके ज्ञान में वास्तव में कमी है या दरार है। इसी तरह उदाहरण के लिए, क्या यौगिक क्रियाएं व्यक्ति की ज्ञानेन्द्रियों की क्षमता का विकास करने में उपयोगी हैं। इस समस्या से यह स्पष्ट होता है कि अनुसंधानकर्ता इस बात से अनभिज्ञ है कि यौगिक क्रियाओं का ज्ञानेन्द्रिय क्षमताओं के विकास में कोई प्रभाव पड़ता है। अत: ज्ञान की कमी या दरार के कारण से समस्या की अभिव्यक्ति होती है।

15.6.2 परस्पर विरोधी परिणाम (Contradictory results)

जब किसी एक ही अनुसंधान क्षेत्र में तथ्यों के प्रति अलग-अलग या परस्पर विपरीत परिणाम प्राप्त होते हैं तब नई समस्या की अभिव्यक्ति होती है। एक ही तथ्य के परस्पर विरोधी परिणाम को पुन: जांचने के लिए अनुसंधान किया जाता है तथा इसमें यह देखा जाता है कि अनुसंधान के लिए किस प्रकार के प्रयोज्यों का चयन किया गया। प्रयोग अभिकल्प कैसा बनाया गया तथा संगत या असंगत चरों को कैसे नियंत्रित किया गया। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि अनुसंधान की एक ही समस्या पर विभिन्न अनुसंधानकर्ताओं के प्रयोगों द्वारा भिन्न-भिन्न परिणाम निकलते हैं। इसका मुख्य कारण अनुसंधानकर्ता या प्रयोगकर्त्ता के द्वारा अपने प्रयोग को उचित रूप से संचालित नही कर पाना है। प्रयोगकर्त्ता द्वारा या अनुसंधानकर्ता द्वारा अपने प्रयोग के बाह्य चरों (Extraneous Variables) को उचित प्रकार से नियंत्रण नहीं कर पाना, उचित अभिकल्प का चुनाव नहीं कर पाना भी कारण हो सकते हैं। अनुसंधान की ये त्रुटियां समस्या की अभिव्यक्ति का स्रोत बन जाती है।

15.6.3 तथ्य की व्याख्या (Explaining the fact)

जब अनुसंधानकर्ता अपने अनुसंधान में किसी नवीन तथ्य को खोज लेता है तब उस तथ्य का संबंध प्राय: वह किसी न किसी पूर्वस्थापित सिद्धान्त से स्थापित करना चाहता है तथा उसकी व्याख्या करना चाहता है। यदि अनुसंधानकर्ता अपने द्वारा खोजे गये नवीन तथ्य का संबंध पूर्व स्थापित सिद्धान्त से स्थापित करने में असफल रहता है तो उस तथ्य का स्वरूप वैज्ञानिक ज्ञान की परिधि से बाहर ही रहता है। परन्तु जब वह अपने नवीन तथ्य का संबंध पूर्व स्थापित सिद्धान्तों से जोड़ने में सफल हो जाता है तब यह कहा जा सकता है कि उसने इस नवीन तथ्य की व्याख्या कर दी है। यहां पर वैज्ञानिक समस्या की अभिव्यक्ति उस समय होती है जब वह अपने नवीन तथ्य की व्याख्या को पूर्व स्थापित सिद्धान्तों से संबंधित नहीं कर पाता।

15.7 अभ्यास के लिए प्रश्न

1. अनुसंधान समस्या क्या है और इसे कैसे खोजा जाता है?
2. एक अच्छी अनुसंधान समस्या की विशेषताएं बताइये।
3. समस्या के चुनाव में किन-किन बातों का होना आवश्यक है?
4. अनुसंधान समस्या की अभिव्यक्ति किस प्रकार सम्भव है?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–16 : प्रयोगात्मक तथा साक्षात्कार विधि

संरचना

16.0 प्रस्तावना
16.1 उद्देश्य
16.2 प्रयोगात्मक अनुसंधान
16.3 प्रयोगात्मक अनुसंधान का स्वरूप
16.4 प्रयोगात्मक अनुसंधान के उद्देश्य
16.4.1 व्यावहारिक उद्देश्य
16.4.2 सिद्धान्त प्रतिपादन संबंधि उद्देश्य
16.4.3 सिद्धान्त परिक्षण संबंधि उद्देश्य
16.5 प्रयोगात्मक अनुसंधान की विशेषताएं
16.5.1 स्वतंत्र चर में परिवर्तन
16.5.2 चरों के कार्यात्मक संबंधो का अध्ययन
16.5.3 त्रिआयामी नियंत्रण
16.5.3.1 स्वतंत्र चर को प्रभावित करने वाले चरों पर नियंत्रण
16.5.3.2 संगत चरों पर नियंत्रण
16.5.3.3 वातावरण से संबंधित चरों का नियंत्रण
16.5.4 स्वतंत्र चरों का प्रभाव परतंत्र चरों पर
16.5.5 परिकल्पना का निर्माण एवं परीक्षण
16.5.6 प्रामाणिकता
16.5.7 वस्तुनिष्ठता का गुण
16.5.8 पूर्व कथन या पूर्वानुमान
16.5.9 सार्वभौमिकता एवं सामान्यीकरण
16.5.10 वैध एवं विश्वसनीय परिणाम
16.6 प्रयोगात्मक अनुसंधानों के प्रकार
16.6.1 अन्डरवुड द्वारा वर्गीकरण
16.6.1.1 मुझे आश्चर्य है कि क्या होगा
16.6.1.2 मैं शर्त करता हूं कि यह होगा
16.6.2 मैक्गुईन द्वारा वर्गीकरण
16.6.2.1 खोज परक प्रयोग
16.6.2.2 सिद्ध प्रयोग
16.6.2.3 निर्णय परक या सूक्ष्म प्रयोग
16.7 प्रयोगशाला आधारित प्रयोगात्मक अनुसंधान के चरण
16.7.1 समस्या या प्रयोग का चयन
16.7.2 संबंधित साहित्य की समीक्षा
16.7.3 उद्देश्य एवं समस्या का कथन
16.7.4 परिकल्पना का निर्माण

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

16.7.5 प्रक्रिया विधि

16.7.5.1 अनुसंधान अभिकल्प

16.7.5.2 प्रयोज्य

16.7.5.3 उपकरण परीक्षणों एवं यंत्रों का चुनाव

16.7.5.4 चरों का नियंत्रण एवं मापन

16.7.5.5 प्रयोग प्रक्रिया

16.7.5.6 आंकड़ों का एकत्रिकरण एवं सांख्यिकीय विश्लेषण

16.7.5.7 परिणाम एवं निष्कर्ष

16.7.5.8 सामान्यीकरण

16.8 प्रयोगशाला आधारित प्रयोगों के लाभ

16.8.1 परिकल्पनाओं को जांचने की श्रेष्ठ विधि

16.8.2 चरों पर पूर्ण नियंत्रण

16.8.3 समय की बचत

16.8.4 कार्यकारण सम्बधों की स्थापना

16.8.5 प्राप्त परिणाम विश्वस्तरीय एवं वैध

16.8.6 वैज्ञानिक एवं मानकीकृत उपकरणों का उपयोग

16.8.7 वस्तुनिष्ठता एवं सार्वभौमिकता

16.8.8 पूर्वकथन की योग्यता

16.9 प्रयोगशाला आधारित प्रयोगों के दोष

16.9.1 कारकों या चरों पर नियंत्रण

16.9.2 कृत्रिम परिस्थितियां

16.9.3 प्राणियों का व्यवहार

16.9.4 प्रयोज्यों की समस्या

16.9.5 कृत्रिम परिस्थितियों को उत्पन्न कर पाना कठिन

16.10 प्रश्नावली

16.11 साक्षात्कार

16.12 साक्षात्कार क्या है?

16.13 साक्षात्कार की परिभाषाएं

16.14 साक्षात्कार की विशेषताएं

16.14.1 सामाजिक प्रक्रिया

16.14.2 आमने-सामने की प्रक्रिया

16.14.3 क्रमबद्ध या सुव्यवस्थित प्रविधि

16.14.4 अन्तर्वैयक्तिक प्रक्रिया

16.14.5 आंकड़ों का संकलन

16.15 अनुसंधान में साक्षात्कार के मुख्य उद्देश्य

16.15.1 प्रत्यक्ष सम्पर्क द्वारा सूचनाओं को प्राप्त करना

16.15.2 उपकल्पना का स्रोत

16.15.3 व्यक्तिगत एवं गुणात्मक तथ्यों को प्राप्त करना

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

16.15.4 प्रायोगिक अध्ययनों में योगदान
16.16 साक्षात्कार के प्रकार
16.16.1 साक्षात्कार प्रविधि का उद्देश्यों के आधार पर वर्गीकरण
16.16.1.1 निदानात्मक साक्षात्कार
16.16.1.2 उपचारात्मक साक्षात्कार
16.16.1.3 अनुसंधान साक्षात्कार
16.16.2 साक्षात्कार प्रविधि का संरचना के आधार पर वर्गीकरण
16.16.2.1 संरचित या निर्देशित साक्षात्कार
16.16.2.2 असंरचित या अनिर्देशित साक्षात्कार
16.16.2.3 अर्द्धसंरचित या केन्द्रित साक्षात्कार
16.16.3 साक्षात्कार प्रविधि का औपचारिकता के आधार पर वर्गीकरण
16.16.3.1 औपचारिक साक्षात्कार
16.16.3.2 अनौपचारिक साक्षात्कार
16.16.4 साक्षात्कार प्रविधि का उत्तरदाताओं की संख्या के आधार पर वर्गीकरण
16.16.4.1 वैयक्तिक या व्यक्तिगत साक्षात्कार
16.16.4.2 सामूहिक साक्षात्कार
16.16.5 साक्षात्कार प्रविधि का संपर्क स्वरूप के आधार पर वर्गीकरण
16.16.5.1 अल्पकालिक साक्षात्कार
16.16.5.2 दीर्घकालिक साक्षात्कार
16.16.5.3 पुनरावृत्ति साक्षात्कार
16.17 प्रश्नावली

16.0 प्रस्तावना

गत अध्याय में आपने समस्याओं के प्रकार और समस्याओं के कथन के बारे में विस्तार से अध्ययन किया। इस अध्याय में आप प्रयोगात्मक अनुसंधान-प्रयोगशाला आधारित अनुसंधान (Experimental Research–Laboratory Experiments) के बारे में विस्तार से पढ़ेंगे।

अनुसंधान कार्यों को करने के लिए भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार की अनुसंधान विधियां अपनाई जाती हैं। मनोवैज्ञानिक अनुसंधानों में प्राय: एवं मुख्य रूप से प्राणी के व्यवहार का अध्ययन किया जाता है। इनमें एक विशेष उत्तेजना के प्रति प्राणी की अनुक्रिया-व्यवहार क्या होता है, उसका मुख्य रूप से अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार अध्ययन करने के मनोविज्ञान प्रयोगात्मक अनुसंधान विधि को अपनाया जाता है। प्रयोगात्मक अनुसंधान दो प्रकार के होते हैं—

(1) प्रयोगशाला आधारित प्रयोगात्मक अनुसंधान,

(2) क्षेत्र आधारित प्रयोगात्मक अनुसंधान।

इस अध्याय में हम केवल प्रयोगशाला आधारित प्रयोगात्मक अनुसंधान की चर्चा करेंगे।

अनुसंधान की अन्य विधियों में साक्षात्कार भी एक विधि है, जिसका भी अध्ययन हम इस अध्याय के

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अन्तर्गत करेंगे।

16.1 उद्देश्य

(1) इस पाठ का उद्देश्य प्रयोगात्मक अनुसंधान के स्वरूप एवं इसके उद्देश्यों को स्पष्ट करना है।

(2) इस पाठ में प्रयोगात्मक अनुसंधान की विशेषताओं के बारे में आप जानकारी प्राप्त करेंगे।

(3) प्रयोगात्मक अनुसंधान के प्रकारों के बारें में भी जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

(4) प्रयोगशाला आधारित प्रयोगों को संचालित करने के लिए विशेष चरण होते हैं। इन चरणों के बारे में भी आप इस पाठ में अध्ययन करेंगे।

(5) प्रयोगशाला आधारित प्रायोगिक अनुसंधानों के लाभ और दोष के बारे में भी आप इसी पाठ के अन्तर्गत जानकारी प्राप्त करेंगे।

(6) इस अध्याय के अन्तर्गत साक्षात्कार क्या है, साक्षात्कार की विभिन्न परिभाषाओं एवं साक्षात्कार की विशेषताओं के बारे में भी अध्ययन करेंगे।

(7) साक्षात्कार के प्रकार के बारे में भी आप इस पाठ के अन्तर्गत अध्ययन करेंगे।

(8) इस पाठ के ठीक ढंग से अध्ययन के बाद आप प्रयोगशाला आधारित प्रायोगिक अनुसंधान के बारे में विभिन्न प्रश्नों के उत्तर दे पायेंगे।

(9) इस अध्याय का सुचारू अध्ययन करने के बाद अनुसंधान की साक्षात्कार की विधि के संबंध में विभिन्न प्रश्नों का उत्तर दे सकेंगे।

16.2 प्रयोगात्मक अनुसंधान (Experimental Research)

प्रयोगात्मक विधि की सहायता से किये जाने वाले अनुसंधान प्रयोगात्मक अनुसंधान कहलाते हैं। इस विधि के द्वारा जो परिणाम प्राप्त होते हैं वे विशुद्ध एवं वैज्ञानिक होते हैं। इसलिए इस विधि को विज्ञान की सर्वश्रेष्ठ विधि माना जाता है।

16.3 प्रयोगात्मक अनुसंधान का स्वरूप (Nature of Experimental Research)

मनोविज्ञान की वह शाखा जिसमें प्राणियों के व्यवहार का वर्णन एवं उनके व्यवहार के बारे में प्रयोगों के आधार पर भविष्यवाणी की जाती है, उसे प्रयोगात्मक मनोविज्ञान (Experimental Psychology) के नाम से जाना जाता है। मनोविज्ञान की इस शाखा के अन्तर्गत किये जाने वाले अनुसंधानों का प्रमुख उद्देश्य सैद्धांतिक तथा द्वितीयक उद्देश्य व्यावहारिक होता है। प्रयोगात्मक अनुसंधान वे अनुसंधान हैं जिनका अध्ययन प्रयोगात्मक विधि के द्वारा किया जाता है। वर्तमान में मनोविज्ञान की लगभग सभी शाखाओं के अन्तर्गत प्रयोगात्मक विधि के द्वारा अनुसंधान कार्य किये जाते हैं अत: यह कहा जा सकता है कि प्रयोगात्मक विधि के द्वारा किये जाने वाले प्रयोगात्मक अनुसंधानों का वर्तमान में अत्यधिक महत्त्व है।

कैण्डलेण्ड (1978) के अनुसार-''प्रयोगात्मक मनोविज्ञान का कार्य व्यवहार का वर्णन करना और व्यवहार के संबंध में पूर्व कथन करना है। यह दोनों कार्य प्रायोगिक सिद्धांत पर आधारित होते हैं।''

16.4 प्रयोगात्मक अनुसंधान के उद्देश्य (Objectives of experimental research)

जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है कि प्रयोगात्मक विधि के द्वारा किये जाने वाले अनुसंधानों का उद्देश्य जीवित

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

प्राणी का वर्णन, विवेचन उसके व्यवहार के बारे में भविष्य कथन तथा उनका सैद्धांतिकरण करना है। प्रयोगात्मक अनुसंधानों के द्वारा किसी सिद्धान्त अथवा सिद्धान्तों का प्रतिपादन तथा पूर्व में प्रतिपादित सिद्धान्तो का परीक्षण करना भी है।

कैण्डलेण्ड (D. K. Candland) के अनुसार प्रयोगात्मक अनुसंधान के तीन उद्देश्य हैं

(1) व्यावहारिक उद्देश्य (Applied aim),

(2) सिद्धान्त प्रतिपादन सम्बन्धी उद्देश्य (Theory oriented aim) तथा

(3) सिद्धान्त परीक्षण सम्बन्धी उद्देश्य (Theory testing aim)।

इन उद्देश्यों का संक्षेप में वर्णन नीचे दिया जा रहा है—

16.4.1 व्यवहारपरक उद्देश्य (Applied aim)

प्रयोगात्मक विधि के अन्तर्गत किये जाने वाले अनुसंधानों का उद्देश्य किसी प्रकार की व्यावहारिक समस्या का समाधान करना होता है। यद्यपि इस प्रकार के अनुसंधान या अध्ययन मनोविज्ञान की सैन्य एवं औद्योगिक शाखाओं के अन्तर्गत बहुतायत से किये जाते हैं किंतु इन अनुसंधानों का क्षेत्र मनोविज्ञान की इन दोनों शाखाओं से परे अन्य शाखाओं में भी है। यद्यपि उन शाखाओं के अन्तर्गत किये जा रहे प्रयोगात्मक अनुसंधानों का स्वरूप किंचित् भिन्न होता है।

16.4.2 सिद्धान्त प्रतिपादन उद्देश्य (Theory oriented aim)

प्रयोगात्मक अनुसंधानों एवं अध्ययनों से जो निष्कर्ष एवं परिणाम प्राप्त होते हैं उनके आधार पर नवीन नियमों और सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया जाता है। क्योंकि प्रयोगात्मक अनुसंधान की विधि सर्वोत्कृष्ट एवं वैज्ञानिक विधि है। इसलिए इस विधि के द्वारा प्राप्त होने वाले परिणामों तथा नियमों का प्रतिपादन करना अन्य विधियों की अपेक्षा सरल होता है।

16.4.3 सिद्धान्त परीक्षण संबंधी उद्देश्य (Aim related theory testing)

पूर्व अनुसंधानों एवं परीक्षणों के परिणाम स्वरूप जो भी सिद्धान्त एवं नियम प्रतिपादित हुए हैं उन सिद्धान्तों तथा नियमों का परीक्षण प्रयोगात्मक मनोविज्ञान के द्वारा किया जाता है। अधिकांशतया सिद्धांतों का प्रतिपादन करते समय उस सिद्धांत से संबंधित कुछ भविष्यवाणियां या भविष्य कथन भी किया जाता है तथा कुछ भविष्यवाणियों का स्पष्टीकरण भी किया जाता है। जिन सिद्धान्तों का स्पष्टीकरण ठीक प्रकार से नहीं होता है उनका परीक्षण प्रयोगात्मक अनुसंधान विधि के द्वारा किया जाता है। डॉ. एच. के कपिल ने अपनी पुस्तक ''अनुसंधान विधियां'' (Research method) में प्रयोगात्मक अनुसंधान के पांच उद्देश्यों का वर्णन किया है। ये निम्न प्रकार हैं—

1. चरों में यथार्थ संबंधों व अन्तर्सम्बन्धों की खोज (Discovering exact relationship and inter relationships among variables),
2. विभिन्न परिकल्पनाओं का परीक्षण (Testing of different hypotheses),
3. सिद्धान्त रचना (Theory construction),
4. कुशल भविष्य कथन (Efficient Prediction) तथा
5. आन्तरिक वैधता की स्थापना (Establishment of internal validity)।

16.5 प्रयोगात्मक अनुसंधान की विशेषताएं (Characteristics of experimental research)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

16.5.1 स्वतंत्र चर में परिवर्तन (Change in experimental variable)

प्रयोगात्मक अनुसंधान के अन्तर्गत निराश्रित चर में परिवर्तन अथवा प्रहस्तन करके उसके अनेक मूल्यों के प्रभावों का अध्ययन किया जाता है।

16.5.2 चरों के कार्यात्मक संबंधों का अध्ययन (Study of the functional relaionship of variables)

चरों का यथार्थ एवं विशुद्ध मापन करके चरों के मध्य कार्यात्मक सम्बन्धों का विशुद्ध एवं वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है। यह मापन (स्वतंत्र चर एवं परतंत्र चर का मापन) मात्रात्मक होता है न कि गुणात्मक। प्रयोगात्मक अनुसंधान में केवल उन्हीं चरों के कार्यात्मक संबंधों का अध्ययन किया जाता है जिनका मात्रात्मक मापन संभव होता है।

16.5.3 त्रिआयामी नियन्त्रण

प्रयोगात्मक अनुसंधान में अनुसंधानकर्ता को तीन प्रकार के नियंत्रणों का ध्यान रखना होता है—

16.5.3.1 स्वतंत्र चर को प्रभावित करने वाले चरों पर नियंत्रण

कुछ चर ऐसे भी होते हैं जो स्वतंत्र चर के साथ-साथ परतंत्र चर को भी समान रूप से प्रभावित करते हैं। अनुसंधान के अन्तर्गत स्वतंत्र चरों का अध्ययन न करके इनके प्रभावों को नियंत्रित करके अध्ययन किया जाता है जिससे कि इनका प्रभाव स्वतंत्र चर के साथ-साथ परतंत्र चर पर न हो। स्वतंत्र चर के शुद्ध प्रभावों का अध्ययन करने के लिए यह नियंत्रण आवश्यक है।

16.5.3.2 संगत चरों पर नियंत्रण

वे कारक जो परतंत्र चर को प्रभावित करते हैं, संगत चर कहे जाते हैं। आश्रित चर का शुद्ध मापन करने के लिए अनुसंधान कर्ता को प्रयोगात्मक अनुसंधान करते समय इन संगत चरों पर नियंत्रण करना आवश्यक है। जब तक किसी प्रयोगात्मक अनुसंधान में संगत चरों का सही ढंग से नियंत्रण नहीं हो पाता तब तक आश्रित चरों का मापन भी ठीक ढंग से नहीं हो पाता क्योंकि संगत चर आश्रित चरों को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते रहते हैं। आश्रित चरों को प्रभावित करने वाले चरों में प्रयोज्य से संबंधित (Subject relevent) संगत चर मुख्य है। अत: प्रयोज्य से संबंधित (Subject relevent) चरों पर नियंत्रण किया जाना आवश्यक है। दूसरे प्रकार के संगत चर प्रयोग परिस्थिति (Situation relevent) से संबंधित होते हैं। जिनका नियंत्रण प्रयोग परिस्थितियों को स्थिर या सम रखकर किया जा सकता है।

16.5.3.3 वातावरण से संबंधित चरों का नियंत्रण (Control of environmental variables)

प्रयोगात्मक अनुसंधान में वातावरण से संबंधित चरों का भी नियंत्रण करना अत्यावश्यक है। वातावरण से संबंधित चर जैसे तापक्रम, प्रकाश, शोरगुल तथा वातावरण में अन्य लोगों की उपस्थिति आदि भी अनुसंधान प्रयोगों के परिणामों को प्रभावित करते हैं। अत: इन चरों का सही ढंग से नियंत्रण करके ही स्वतंत्र चर का प्रभाव परतंत्र चर पर सही ढंग से देखा जा सकता है।

16.5.4 स्वतंत्र चरों का प्रभाव परतंत्र चरों पर (Influence of independent variables on dependent variables)

किसी भी प्रायोगिक अनुसंधान में अनुसंधानकर्ता कार्य-कारण संबंध (Cause and effect relation) का अध्ययन करता है। यहां कार्य परतंत्र या आश्रित चर है जबकि कारण स्वतंत्र चर के रूप में होता है। अर्थात् अनुसंधानकर्ता स्वतंत्र चरों और परतंत्र चरों के कार्यात्मक संबंधों का अध्ययन, नियंत्रित दशाओं में करता है।

16.5.5 परिकल्पना का निर्माण एवं परीक्षण (Formulation and testing of hypothesis)

प्रयोगात्मक अनुसंधान में किसी प्रयोग को संचालित करने के लिए कुछ परिकल्पनाओं का निर्माण किया

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जाता है और उनके परीक्षण के लिए आंकड़ों का संग्रह कर उनका सांख्यिकीय विश्लेषण किया जाता है। परिणामों के आधार पर परिकल्पना की सत्यता व असत्यता की जांच की जाती है। इसी के आधार पर प्रयोग का निष्कर्ष निकाला जाता है।

16.5.6 प्रामाणिकता (Verifiability)

प्रयोगात्मक अनुसंधान में वैज्ञानिक विधि द्वारा अध्ययन किया जाता है और उनसे प्राप्त परिणामों का सत्यापन किसी भी समय किया जा सकता है। अनुसंधान से प्राप्त किसी भी परिणाम की कितनी बार ही जांच की जाए, समान परिणाम ही प्राप्त होते हैं। अत: प्रामाणिकता का गुण प्रयोगात्मक अनुसंधान की प्रमुख विशेषताओं में है।

16.5.7 वस्तुनिष्ठता का गुण (Objectivity)

प्रयोगात्मक अनुसंधान की प्रमुख विशेषताओं में वस्तुनिष्ठता भी एक विशेषता है। प्रयोगात्मक अनुसंधान में वस्तुनिष्ठता का गुण पाया जाता है क्योंकि प्रायोगिक अनुसंधानों में परीक्षण भी वस्तुनिष्ठ होते हैं और प्रयोगकर्ता की अभिवृत्तियों या पक्षपातों का प्रयोग पर प्रभाव नहीं के बराबर रहता है।

16.5.8 पूर्व कथन या पूर्वानुमान (Prediction)

प्रयोगात्मक अनुसंधानों से किसी व्यवहार विशेष का पूर्व कथन किया जा सकता है या पूर्वानुमान लगाया जा सकता है। किसी व्यवहार विशेष के बारे में प्रयोगात्मक अनुसंधान द्वारा यह पता लगाया जा सकता है कि भविष्य में किसी व्यक्ति या किसी प्राणी का व्यवहार विशेष कैसा और क्या होगा।

16.5.9 सार्वभौमिकता एवं सामान्यीकरण (Universality and generalization)

प्रायोगिक अनुसंधान में प्राप्त परिणामों में सार्वभौनिकता के गुण पाये जाते हैं अर्थात् अनुसंधान द्वारा प्राप्त परिणामों और उनके आधार पर बने नियम या सिद्धांतों की जांच किसी भी देश-काल में की जा सकती है और परिणाम समान ही प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार इनके परिणामों का भी सामान्यकरण होता है।

16.5.10 वैध एवं विश्वसनीय परिणाम (Valid and reliable results)

प्रयोगात्मक अनुसंधानों के जो परिणाम एवं निष्कर्ष प्राप्त होते हैं, वे वैध एवं विश्वसनीय होते हैं। अर्थात् इनसे प्राप्त परिणाम शुद्ध एवं वैज्ञानिक होते हैं।

16.6 प्रयोगात्मक अनुसंधानों के प्रकार (Types of experimental researches)

अनुसंधान प्रयोगों के प्रकार के संबंध में मनोवैज्ञानिकों में भिन्न-भिन्न मत हैं। भिन्न-भिन्न मनोवैज्ञानिकों ने इनके प्रकारों का वर्गीकरण अपने-अपने ढंग से किया है। अन्डरवुड (1965) ने प्रयोगों को दो वर्गों में वर्गीकृत किया है जबकि मैकगुईगन (1969) ने प्रयोगों को तीन वर्गों में बांटा है। इन दोनों मनोवैज्ञानिकों के वर्गीकरणों को हम संक्षेप में आगे प्रस्तुत कर रहे हैं।

16.6.1 अन्डरवुड द्वारा वर्गीकरण (Classification by Underwood)

अन्डरवुड (1965) ने प्रयोगात्मक अध्ययनों को दो वर्गों में वर्गीकृत किया है—

(i) 'मुझे आश्चर्य है कि क्या होगा' ('I wonder what would happen'-type experiments)

(ii) 'मैं शर्त करता हूं कि यह होगा' प्रकार का प्रयोग ('I bat this would happen'- type experiment)

16.6.1.1 'मुझे आश्चर्य है कि क्या होगा' ('I wonder what would happen'-type experiments)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इस प्रकार के प्रयोग किसी भी अनुसंधान की प्रारंभिक अवस्था में किये जाते हैं। जब अनुसंधान कर्ता को स्वतंत्र और आश्रित चरों के संबंधों के बारे में स्पष्ट ज्ञान नहीं होता। अर्थात् स्वतंत्र चर का आश्रित या परतंत्र चर पर क्या प्रभाव पड़ सकता है इसका शोधकर्ता या प्रयोगकर्ता को ज्ञान नहीं होता और प्रयोगकर्ता प्रयोग के द्वारा उसका प्रभाव जानने का प्रयत्न करता है। अण्डरवुड के शब्दों में-In more technical language that I- Wonder-what would happen type of question is seeking to knew whether or not the factor in question is an effective stimulous variables, i.e. will it influence the response?' B. J. Underwood, (1965).

डॉ. डी. एन. श्रीवास्तव ने इस प्रकार के प्रयोग को 'मैं नहीं जानता कि क्या होगा-प्रकार के प्रयोग माना है। उन्होंने इस प्रकार के प्रयोगों को खोजपरक प्रयोग का भी नाम दिया है।

16.6.1.2 'मैं शर्त करता हूं कि यह होगा' प्रकार का प्रयोग ('I bat this would happen'-type experiment)

अनुसंधान में इस प्रकार के प्रयोगों में विशेष उपकल्पना की जांच की जाती है। प्रायः ये प्रयोग तथ्यों (Facts) और सिद्धांतों से संबंधित होते हैं। इसमें प्रयोग कर्ता एक विशेष परिणाम के प्रति आशान्वित रहता है तथा उसे पूर्ण विश्वास रहता है कि परिणाम किस प्रकार के आयेंगे। इस प्रकार के प्रयोगों को 'मुझे विश्वास है कि ऐसा ही होगा' प्रकार के प्रयोग भी कहा जाता है। डॉ. डी. एन. श्रीवास्तव ने अण्डरवुड के इस प्रकार के प्रयोग का वर्णन करते हुए लिखा है कि ''इस प्रकार के प्रयोगों में प्रयोगकर्ता किसी विशेष उद्दीपक चर के संबंध में परिकल्पना बनाकर उद्दीपक चर के परिवर्तनों के प्रभावों का अध्ययन करता है। (In other words, the experimental is making a shrewd guess, or if we dress the language up a bit, he is formulating a hypothesis as to effect or the variation on a certain stimulous rariables.' B. J. Underwood 1965) अण्डरवुड के इस प्रकार के प्रयोगों में प्रयोगकर्ता स्वतंत्र चर की प्रभावशीलता का अध्ययन करता है।

16.6.2 मैक्गुईगन द्वारा वर्गीकरण (1969) (Classfication by Mc Guigan)

जैसा कि पूर्व में लिखा जा चुका है कि मैक्गुईगन (1969) ने प्रयोगात्मक अनुसंधानों के प्रयोगों को तीन वर्गों में बांटा है—

(i) खोजपरक प्रयोग (Explorator Experiments),

(ii) सिद्ध प्रयोग (Confirmatory Experiments) तथा

(iii) निर्णय परक या सूक्ष्म प्रयोग (Crucial Experiments)।

16.6.2.1 खोजपरक प्रयोग (Explorator Experiments)

इस प्रकार के प्रयोग अन्डरवुड के ''मैं आश्चर्य करता हूं कि क्या होगा'' प्रकार के प्रयोगों के समान हैं। मैक्गुईगन के अनुसार खोजपरक प्रयोग वे प्रयोग हैं जिनकी समस्या के संबंध में प्रयोगकर्ता का ज्ञान सीमित होता है। मैक्युईगन[1] के शब्दों में किसी समस्या के बारे में यदि ज्ञान सीमित हो तो खोजकर्ता खोजपरक प्रयोगों को करता है। इस प्रकार के प्रयोगों में अनुसंधानकर्ता प्रयोग समस्या के संबंध में किसी निश्चित परिकल्पना का निर्माण नहीं कर पाता और न ही कोई ऐसा आधार बना पाता है जिससे वह यह स्पष्ट कर सके कि प्रयोग के निष्कर्ष क्या होंगे। अतः अनुसंधानकर्ता समस्या के समाधान की प्रारम्भिक खोज ही करता है। मैक्युईगन ने यह माना है कि इस प्रकार के प्रयोग अन्डरवुड द्वारा प्रस्तुत ''मैं नहीं जानता कि क्या होगा'' प्रकार के प्रयोगों के समान ही हैं।

16.6.2.2 सिद्ध प्रयोग (Confirmatory Experiments)

मैक्गुईगन के अनुसार इस प्रकार के प्रयोगों में प्रयोगकर्ता अधिक स्पष्ट परिकल्पना बना सकता है और इस परिकल्पना के आधार पर वह भविष्य कथन कर सकता है कि विशेष चर का प्रभाव विशेष ढंग से पड़ेगा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

मैक्गुईगन[1] के शब्दों में "प्रयोगकर्ता अधिक स्पष्ट रूप से परिकल्पना बनाने के योग्य हो जाता है। परिकल्पना के आधार पर यह पूर्व कथन कर सके कि अमुक घटना घटित हो सकती है, इस स्थिति में प्राप्त ज्ञान से वह सिद्ध प्रयोगों को करता है। प्रयोगकर्ता इस प्रकार के प्रयोगों में विभिन्न चरों के पड़ने वाले प्रभावों को जानने का प्रयत्न करता है। तथा दो चरों के कार्यात्मक संबंधों को निर्धारित करने का प्रयत्न करता है। जैसे किसी विशेष स्वतंत्र चर का परतंत्र चरों पर क्या और कैसा प्रभाव पड़ता है। मैक्गुईगन ने सिद्ध प्रयोगों को अन्डरवुड द्वारा प्रस्तुत 'मुझे पूर्ण विश्वास है कि ऐसा ही होगा'—प्रकार के प्रयोग के समान ही माना है।"

16.6.2.3 निर्णय परक या सूक्ष्म प्रयोग (Crucial Experiments)

इस प्रकार के प्रयोगों में प्रयोगकर्ता या शोधकर्ता एक या एक से अधिक विपरीत परिकल्पनाओं को जानता है। इसके लिए प्रयोग सूक्ष्म स्तर पर किये जाते हैं। मैक्गुईगन[2] के शब्दों में निर्णयपरक प्रयोग एक ऐसा प्रयोग है जिसका उद्देश्य एक ही समय पर एक अथवा अनेक विरोधी परिकल्पनाओं का परीक्षण करना होता है। इस प्रकार के प्रयोग में एक ऐसे निर्णायक प्रयोग अभिकल्प की रचना की जाती है, जिसमें दिये गये एक सिद्धान्त की पुष्टि हो सके और अन्य सभी वैकल्पिक सिद्धांतों को अस्वीकृत किया जा सके।

16.7 प्रयोगशाला आधारित प्रयोगात्मक अनुसंधान के चरण (Steps of laboratory experimental research)

प्रयोगशाला आधारित प्रयोगात्मक अनुसंधान को वैज्ञानिक विधि से संचालित करने के लिए प्राय: आठ चरणों को काम में लेते हैं। ये चरण हैं—

(1) समस्या या प्रयोग का चयन (Selection of problem),

(2) सम्बन्धित साहित्य की समीक्षा,

(3) उद्देश्य एवं समस्या का कथन,

(4) परिकल्पना का निर्माण,

(5) प्रक्रिया विधि (Methodology)—

- (a) अनुसंधान अभिकल्प एवं चरों का स्पष्टीकरण (Research design and clearification of variables),
- (b) प्रयोज्यों का चयन (Selection of subjects),
- (c) उपकरण, परीक्षणों एवं यंत्रों का चुनाव (Selection of apparutis, tests and tools),
- (d) चरों का नियंत्रण एवं मापन (Control over and measure ments of variables),
- (e) प्रयोग की प्रक्रिया (Procedure)।

(6) आंकड़ों का एकत्रीकरण एवं सांख्यिकीय विश्लेषण (Collection and analysis of data),

(7) परिणाम एवं निष्कर्ष (Result and conclusion) तथा

(8) सामान्यीकरण (Genealization)।

16.7.1 समस्या या प्रयोग का चयन

प्रायोगिक अनुसंधान में प्रयोगशाला में प्रयोग प्रारम्भ करने से पहले शोधकर्ता या प्रयोगकर्ता अपनी अनुसंधान संबंधी समस्या या विषय का चयन कर लेता है। जैसा कि हमने पूर्व में लिखा है समाधान के लिए प्रस्तावित प्रश्न ही समस्या है। प्रयोगकर्ता समस्या चुनते समय विशेष रूप से यह ध्यान रखता है कि चुनी हुई समस्या का अध्ययन प्रयोगात्मक विधि से हो सकता है अथवा नहीं। अनुसंधानकर्ता उसी समस्या का चुनाव करता है जिसका अध्ययन प्रयोगशाला में प्रयोगात्मक विधि से किया जा सके।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

16.7.2 सम्बन्धित साहित्य की समीक्षा

अनुसंधानकर्ता समस्या का चयन करने के बाद समस्या से संबंधित साहित्य का सर्वेक्षण और अध्ययन करता है। अनुसंधान संबंधित पुस्तको, पत्रिकाओं आदि से अपने अनुसंधान के अध्ययन के बारे में जानकारी प्राप्त करने का प्रयास करता है। अनुसंधानकर्ता संबंधित साहित्य के अध्ययन के द्वारा यह जानने का प्रयास करता है कि जिस क्षेत्र में वह अनुसंधान कर रहा है उस क्षेत्र में पूर्व में क्या-क्या शोध कार्य हो चुका है और किन-किन वैज्ञानिकों ने ये कार्य किये हैं और उनके क्या परिणाम प्राप्त हुए हैं।

16.7.3 उद्देश्य एवं समस्या का कथन

जब अनुसंधानकर्ता अपने अनुसंधान से संबंधित साहित्य का पूर्ण रूप से अध्ययन कर लेता है तब वह अपने अनुसंधान उद्देश्यों को स्पष्ट करता है। वह यह स्पष्ट करता है कि जो प्रयोग या अनुसंधान वह कर रहा है वह क्या है, और उसका उद्देश्य क्या है? उद्देश्य स्पष्ट करने के पश्चात् प्रयोगकर्ता अपनी समस्या का निर्माण करता है और स्पष्ट रूप से उसका कथन करता है। अनुसंधान में जिन तथ्यों का वह अध्ययन करता है उनका स्पष्टीकरण वह समस्या कथन में करता है।

16.7.4 परिकल्पना का निर्माण

इस चरण में अनुसंधानकर्ता अपनी समस्या के समाधान के लिए एक प्रस्तावित या संभावित उत्तर को चुनता है और उसको एक प्रतिबंध (Conditional) वाक्य के द्वारा व्यक्त करता है। अनुसंधानकर्ता इसमें प्राय: दो या दो से अधिक चरों में संभावित संबंधों को स्थापित करने का प्रयास करता है। परिकल्पनाएं कई प्रकार से व्यक्त की जा सकती हैं। और उनकी आकृति प्रयोग का संचालन करने पर निर्भर करती है।

16.7.5 प्रक्रिया विधि (Methodology)

प्रयोगशाला आधारित प्रयोगात्मक अनुसंधान को प्रयोगशाला में किस प्रकार संचालित किया जाएगा, इसको तय करने के लिए एक योजना बनाई जाती है। इस योजना के अन्तर्गत अभिकल्प तैयार किया जाता है। प्रयोज्यों का चयन, चरों का प्रहस्तन एवं नियंत्रण, परीक्षणों एवं उपकरणों का उपयोग आदि इस चरण के अन्तर्गत आते हैं जिनका संक्षेप मे वर्णन नीचे किया जा रहा है।

16.7.5.1 अनुसंधान अभिकल्प (Research design)

अनुसंधानकर्ता प्रयोग को संचालित करने के लिए किस प्रकार के अनुसंधान अभिकल्प का प्रयोग करेगा, इसका स्पष्टीकरण इसके अन्तर्गत करता है। अभिकल्प के अन्तर्गत वह यह स्पष्ट करता है कि स्वतंत्र चर का प्रहस्तन किस प्रकार किया जाएगा और संगत चरों का नियंत्रण किस प्रकार किया जाएगा। वह यह भी स्पष्ट करने का प्रयत्न करता है कि स्वतंत्र चर क्या है, परतंत्र चर क्या है। और स्वतंत्र चर का जो प्रभाव परतंत्र चर पर पड़ता है, उस पड़ने वाले प्रभाव में बाधक कौन-कौन-से चर हैं, जिनका नियंत्रण किया जाना आवश्यक है। संगत चर जैसे प्रयोज्य संबंधी (Subject relevant)] स्थिति संबंधी (Situation relevant) तथा क्रमबद्ध संबंधी (Sequence relevant) का नियंत्रण किस प्रकार किया जा सकता है इसका भी स्पष्टीकरण इसमें किया जाता है।

16.7.5.2 प्रयोज्य (Subject)

इस पद के अन्तर्गत अनुसंधानकर्ता अपने प्रयोग संबंधी प्रयोज्यों के बारे में पूरी जानकारी लेता है। वह यह स्पष्ट करता है कि उसके प्रयोग में लिए गए प्रयोज्य कैसे हैं, स्त्री हैं या पुरुष हैं अथवा दोनों प्रकार के हैं। उनकी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

आयु, सामाजिक स्तर, आर्थिक स्तर, शैक्षणिक स्तर आदि की जानकारी भी ली जाती है। यदि प्रयोगकर्ता प्रयोज्यों के समूह बनाता है तो समूह के बारे में पूर्ण जानकारी प्राप्त करता है कि समूह नियंत्रक है या प्रयोगात्मक है, आदि।

16.7.5.3 उपकरण परीक्षणों एवं यंत्रों का चुनाव

प्रयोगशाला आधारित प्रायोगिक अनुसंधान को संचालित करते समय चरों का मापन किया जाता है। चरों का मापन करने के लिए उपकरणों, मनोवैज्ञानिक परीक्षणों एवं यंत्रों की आवश्यकता पड़ती है। प्रयोगकर्ता यह निश्चित करता है कि चरों के मापन के लिए कौनसे उपकरणों, मनोवैज्ञानिक परीक्षणों एवं यंत्रों की उसको आवश्यकता रहेगी। प्राय: प्रयोगकर्ता मानकीकृत उपकरणों, परीक्षणों एवं यंत्रों का प्रयोग करता है।

16.7.5.4 चरों का नियंत्रण एवं मापन

अनुसंधानकर्ता या प्रयोगकर्ता अब यह तय करता है कि उसे किन-किन चरों का मापन करना है और किन-किन चरों का नियंत्रण करना है जिससे कि स्वतंत्र चर का प्रभाव स्पष्ट रूप से और शुद्धता के साथ प्राप्त किया जा सके। स्वतंत्र चर का प्रहस्तन (Manipulation) कितना करना है एवं कब करना है इसका भी निर्धारण किया जाता है।

16.7.5.5 प्रयोग प्रक्रिया

इस चरण में अनुसंधानकर्ता यह निर्धारित करता है कि प्रयोग को किस तरह संचालित करना है। किन चरों का प्रभाव किन चरों पर देखना है अर्थात् वह कौन-कौन-से स्वतंत्र चरों का उपयोग में लाना चाहता है तथा इनका प्रभाव किन-किन परतंत्र चरों पर देखना चाहता है प्रयोगकर्ता प्रयोग को किस प्रकार से संचालित करेगा, इसकी पूरी विधि की जानकारी इस चरण में दी जाती है।

16.7.5.6 आंकड़ों का एकत्रीकरण एवं सांख्यिकीय विश्लेषण

प्रयोग की प्रक्रिया के समय चरों का मापन मानकीकृत उपकरणों, परीक्षणों एवं यंत्रों से करने के बाद उनसे प्राप्त हुए आंकड़ों को एकत्रित किया जाता है। एकत्रित आंकड़ों का सारणीकरण किया जाता है एवं उनका विश्लेषण सांख्यिकीय विधियों से किया जाता है। सांख्यिकीय विधि द्वारा किये जाने वाले विश्लेषणों में कुछ सांख्यिकीय सूत्रों का उपयोग किया जाता है। इनसे प्राप्त परिणामों को सार्थकता की सारणी में देखा जाता है।

16.7.5.7 परिणाम एवं निष्कर्ष

प्रयोगशाला आधारित प्रायोगिक अनुसंधानों में आंकड़ों से प्राप्त सांख्यिकीय परिणामों को इस चरण में लिया जाता है। प्राप्त परिणामों के आधार पर अनुसंधानकर्ता पूर्व में बनाई गई अपनी परिकल्पनाओं की सत्यता को जांचने का प्रयत्न करता है। इसी के आधार पर वह निष्कर्ष निकालता है कि उसके शोधकार्य से पूर्व में किये गये विभिन्न विद्वानों के शोधकार्यों के परिणाम उसके परिणामों की संपुष्टी करते हैं या नहीं।

16.7.5.8 सामान्यीकरण

अनुसंधानकर्ता अपने अनुसंधान से प्राप्त परिणामों व निष्कर्षों के आधार पर अपने तथ्यों का सामान्यीकरण करने का प्रयत्न इस चरण के स्तर पर करता है।

16.8 प्रयोगशाला आधारित प्रयोगों के लाभ

प्रयोगशाला आधारित शोध प्रयोगों के कुछ लाभ हैं । जिनका वर्णन हम नीचे कर रहे हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1. परिकल्पनाओं को जांचने की श्रेष्ठ विधि।
2. चरों पर पूर्ण नियंत्रण।
3. समय की बचत।
4. कार्यकारण सम्बंधों की स्थापना।
5. प्राप्त परिणाम विश्वसनीय एवं वैध।
6. वैज्ञानिक एवं मानकीकृत उपकरणों का उपयोग।
7. वस्तुनिष्ठता एवं सार्वभौमिकता।
8. पुर्वकथन की योग्यता।

उपरोक्त लाभों का वर्णन संक्षेप में नीचे किया जा रहा है—

16.8.1 परिकल्पनाओं को जांचने की श्रेष्ठ विधि

प्रयोगशाला आधारित प्रयोगात्मक अनुसंधान का सबसे बड़ा लाभ यह है कि इसमें हम परिकल्पनाओं का परीक्षण बहुत ही अच्छे ढंग से कर सकते हैं क्योंकि इसमें प्राप्त आंकड़े स्वतंत्र चर के प्रहस्तन एवं कठोर नियंत्रित दशाओं में प्राप्त किये जाते हैं तथा इनका विश्लेषण कुछ सांख्यकीय विधियों द्वारा किया जाता है। अतः आंकड़ों के विश्लेषण के आधार पर परिकल्पना की जांच अच्छे ढंग से की जाती है।

16.8.2 चरों पर पूर्ण नियंत्रण

प्रयोगशाला अनुसंधानों में चरों पर पूर्ण नियंत्रण संभव है। प्रायः उन सभी संगत चरों पर पूर्ण नियंत्रण किया जाता है जो प्रयोग के परिणामों को प्रभावित कर सकते हैं। इससे स्वतंत्र चर के शुद्ध प्रभाव का अध्ययन अच्छी तरह से हो पाता है।

16.8.3 समय की बचत

प्रयोगशाला आधारित प्रयोगात्मक अनुसंधान का सबसे बड़ा लाभ यह है कि शोधकर्ता को निरीक्षण विधियों की तरह प्राकृतिक परिस्थितियों में घटित होने वाले व्यवहार की प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती है क्योंकि अनुसंधानकर्ता प्रयोगशाला में आवश्यकतानुसार कृत्रिम परिस्थितियों को उत्पन्न करके अनुसंधान का अध्ययन कर सकता है। इस तरह समय की बहुत बचत हो जाती है।

16.8.4 कार्यकारण सम्बंधों की स्थापना

प्रयोगशाला आधारित प्रायोगिक अनुसंधानों में शोधकर्ता स्वतंत्र चर या स्वतंत्र चरों का परतंत्र चरों पर पड़ने वाले प्रभावों का कठोर नियंत्रित परिस्थितियों में अध्ययन करता है। वह अपने अध्ययन में पूर्ण वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाता है एवं आंकड़ों का विश्लेषण भी उच्च सांख्यकीय स्तर पर होता है। अतः उपरोक्त परिस्थितियो के आधार पर कार्यकारणों के सम्बंध का अध्ययन (Stady of cause and effect relation) एवं स्वतंत्र एवं परतंत्र चर के प्रकार्यात्मक सम्बंधों (Funcational relation) का भी उच्च स्तरीय अध्ययन करता है।

16.8.5 प्राप्त परिणाम विश्वस्तरीय एवं वैध

प्रयोगशाला आधारित प्रायोगिक अनुसंधानों के परिणाम विश्वसनीय एवं वैध होते हैं क्योंकि ये परिणाम कठोर नियंत्रित स्थितियों में एवं मानकीकृत परीक्षणों से प्राप्त किये जाते हैं।

16.8.6 वैज्ञानिक एवं मानकीकृत उपकरणों का उपयोग

इस प्रकार के अनुसंधानों में चरों का मापन करने के लिए उच्च स्तरीय मानकीकृत परीक्षणों, उपकरणों एवं यंत्रों का उपयोग किया जाता है, जिससे शुद्ध परिणाम प्राप्त होने की पूरी संभावना बनी रहती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

16.8.7 वस्तुनिष्ठता एवं सार्वभौमिकता

इस प्रकार के अनुसंधानों पर अनुसंधानकर्ता की अभिनति, अभिवृत्तियों, पक्षपातों, भावनाओं एवं विचारों का प्रभाव नहीं पड़ता एवं अनुसंधानकर्ता निष्पक्ष अध्ययन करता है अत: ऐसे अनुसंधानों से प्राप्त परिणामों में वस्तुनिष्ठता का गुण होता है। इन अनुसंधानों के परिणामों में सार्वभौमिकता का गुण भी पाया जाता है क्योंकि इनसे प्राप्त परिणामों के आधार पर जो सिद्धान्त या नियम प्रतिपादित किये जाते हैं। उनकी पुन: जांच किसी भी देहाकाल में की जा सकती है और उनके परिणाम एक ही आते हैं। अत: प्रयोगशाला आधारित प्रायोगिक अनुसंधानों से प्राप्त परिणाम, सिद्धान्त और नियम विश्वव्यापी या सार्वभौमिक होते हैं।

16.8.9 पूर्वकथन की योग्यता

प्रयोगशाला पर आधारित प्रायोगिक अनुसंधानों से प्राप्त परिणामों के आधार पर किसी व्यवहार का पूर्वकथन या भविष्य कथन किया जाना संभव है क्योंकि इन अनुसंधानों से प्राप्त परिणाम विश्वसनीय एवं वैद्य होते हैं।

बोध प्रश्न 1:

---

1. *प्रयोगात्मक अनुसंधान के प्रकार बताएं।*
2. *प्रयोगात्मक अनुसंधान के चरण लिखें।*

16.9 प्रयोगशाला आधारित प्रयोगों के दोष

प्रयोगशाला आधारित प्रायोगात्मक अनुसंधान के कई दोष भी हैं। जिनमें से कुछ महत्त्वपूर्ण दोष निम्न हैं—

1. कारकों या चरों पर नियंत्रण (Control over variables),
2. कृत्रिम परिस्थितियां (Artificial atmosphere),
3. प्राणियों का व्यवहार (Behaviour of being),
4. प्रयोज्यों की समस्या (Problems of subjects) तथा
5. कृत्रिम परिस्थितियों को उत्पन्न कर पाना कठिन (Difficulty in developing the artificial atmosphere)।

16.9.1 कारकों या चरों पर नियंत्रण (Control over variables)

प्रयोगशाला आधारित प्रयोगात्मक अनुसंधान में प्राय: यह देखा गया है कि व्यवहार विशेष को प्रभावित करने वाले सभी चरों या कारकों का नियंत्रण करना कठिन होता है। कुछ कारकों को तो नियंत्रित किया ही नहीं जा सकता। अत: ऐसी स्थिति में परिणाम सही प्राप्त नहीं हो पाते हैं।

16.9.2 कृत्रिम परिस्थितियां (Artificial atmosphere)

इस प्रकार के अनुसंधानों में अध्ययन करते समय प्रयोगशाला में कृत्रिम परिस्थितियां उत्पन्न करनी होती हैं, परन्तु थोड़ी-सी भुल हो जाने पर इन कृत्रिम परिस्थितियों में प्रयोज्यों का व्यवहार भी वास्तविक न होकर कृत्रिम हो जाता है। जिससे अध्ययन के शुद्ध परिणाम प्राप्त नहीं हो पाते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

16.9.3 प्राणियों का व्यवहार (Behaviour of being)

प्रयोगाशाला आधारित अनुसंधानों के प्रयोज्य प्राय: बुद्धिजीवी प्राणी होते हैं और मानसिक योग्यताओं से युक्त होते हैं। तर्क, अन्तर्दृष्टि, स्मृति और कल्पना जैसी मानसिक योग्यताओं के कारण प्रयोज्य प्रयोग की समान परिस्थितियां होने पर भी भिन्न-भिन्न व्यवहार करते हैं। इससे अनुसंधान अध्ययन करने में कठिनाई तो होती ही है, साथ ही परिणाम भी दोषपूर्ण और अविश्वसनीय होते हैं।

16.9.4 प्रयोज्यों की समस्या (Problems of subjects)

प्रयोगशाला आधारित अनुसंधान जब लम्बी अवधि तक चलते हैं तब कई बार यह कठिनाई आती है कि प्रयोज्य प्रयोगकर्ता के साथ सहयोग नहीं कर पाता। इससे प्रयोग पूरा नहीं हो पाता और परिणाम भी शुद्ध प्राप्त नहीं हो पाते।

कई बार प्रयोगात्मक और नियंत्रित समूहों के लिए प्रयोज्यों के चुनाव में कठिनाई हो जाती है। कई बार दोनों समूहों में बिल्कुल समान गुण वाले प्रयोज्य नहीं मिल पाते। ऐसी स्थिति में प्रयोग करने से अशुद्ध परिणाम प्राप्त हो सकते हैं।

प्रयोगशाला आधारित प्रयोगात्मक अनुसंधानों में कई अध्ययन समस्याएं ऐसी होती हैं, जिनमें अधिक संख्या में प्रयोज्यों की आवश्यकता रहती है। जब तक पर्याप्त संख्या में प्रयोज्य नही मिल जाये तब तक शुद्ध परिणाम प्राप्त नहीं हो सकते।

16.9.5 कृत्रिम परिस्थितियों को उत्पन्न कर पाना कठिन (Difficulty in developing the artificial atmosphere)

इस प्रकार के अनुसंधानों में कई बार प्रयोगशाला में समस्या से सम्बंधित परिस्थितियों को उत्पन्न नहीं किया जा सकता। शिक्षाशास्त्र और समाजशास्त्र में बहुत-सी समस्याएं इतनी जटील हैं कि प्रयोगशाला में इन जटील समस्याओं से सम्बंधित परिस्थितियों को उत्पन्न नहीं किया जा सकता।

16.10 अभ्यास के लिए प्रश्न

1. प्रयोगात्मक अनुसंधान से आप क्या समझते हैं?
2. प्रयोगात्मक अनुसंधान के उद्देश्यों को स्पष्ट कीजिये।
3. प्रयोगात्मक अनुसंधान का अण्डरवुड के अनुसार वर्गीकरण कीजिए।
4. प्रयोगात्मक अनुसंधान का मैकगुईगन द्वारा प्रस्तुत वर्गीकरण कीजिए।
5. प्रयोगशाला आधारित प्रयोगात्मक अनुसंधान के चरणों को स्पष्ट कीजिए।
6. प्रयोगशाला आधारित प्रयोगात्मक अनुसंधान के लाभ एवं दोषों को स्पष्ट कीजिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

16.11 साक्षात्कार (Interview)

प्रिय विद्यार्थियों,

इस पाठ के पूर्व भाग में आपने प्रायोगिक अनुसंधान (Experimental Research) के बारे में अध्ययन किया। पाठ के इस भाग मे हम साक्षात्कार विधि के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे। साक्षात्कार क्या है? इसकी परिभाषाओं एवं इसके प्रकारों के वर्गीकरण के बारे में भी आप इस भाग के अन्तर्गत अध्ययन करेंगे।

16.12 साक्षात्कार क्या है? (What is an interview)

साक्षात्कार का सरल अर्थ है किसी विषय-वस्तु के बारे में व्यक्ति के विचार जानना। अर्थात् किसी विषय-वस्तु के बारे में व्यक्ति क्या सोचता है उसके अन्दर के भाव क्या हैं? चूंकि हम इस विधि द्वारा व्यक्ति के आन्तरिक विचारों का अवलोकन करते हैं, साक्षात्कार करते हैं इसलिए आन्तरिक विचारों को जानने की प्रक्रिया होने से हम इस प्रक्रिया या विधि को साक्षात्कार कहते हैं। आंग्ल भाषा में इसे Interview कहते हैं जो दो शब्दों से बना है Inter + view, Inter का तात्पर्य अन्दर या आन्तरिक एवं View का अर्थ देखना या अवलोकन करना। अत: इसका सम्मिलित शाब्दिक अर्थ है आन्तरिक अवलोकन करना। किसी विषय-वस्तु के बारे में जानकारी प्राप्त करने या दृष्टिकोण प्राप्त करने के लिए व्यक्ति का आन्तरिक अवलोकन करना। यह दो या अधिक लोगों के मध्य अन्त:क्रिया की एक प्रक्रिया है।

व्यावहारिक विज्ञान में साक्षात्कार को एक शोध प्रविधि या अनुसंधान प्रविधि के रूप में लिया जाता है। इसका उपयोग प्राय: समाज की समस्या, उनका निदान एवं उनके उपचार के अध्ययन हेतु किया जाता है। इसके अतिरिक्त व्यक्तियों के चयन, उनकी मनोभावनाओं, मनोवृत्तियों एवं अन्तस में उठने वाले विचारों को जानने के लिए भी साक्षात्कार विधि का उपयोग किया जाता है। अत: साक्षात्कार एक ऐसी प्रविधि है जिसके द्वारा हम किसी समस्या के प्रति व्यक्ति का दृष्टिकोण एवं भावनाओं को जान सकें।

साक्षात्कार के बारे में और विस्तृत में जानने के लिए हम कुछ समाजशास्त्रियों एवं मनोवैज्ञानिकों द्वारा दी गई परिभाषाओं को प्रस्तुत कर रहे हैं।

16.13 साक्षात्कार की परिभाषाएं (Definitions)

1. गुड एवं हाट (1952) ने साक्षात्कार को परिभाषित करते हुए लिखा है कि—''मूलत: साक्षात्कार सामाजिक अन्त:क्रिया की एक प्रक्रिया है।''

एच.पी. यांग (1956) की परिभाषा को स्पष्ट करते हुए डॉ. डी.एन. श्रीवास्तव ने लिखा है—''साक्षात्कार कार्यक्षेत्र की एक विशेष प्रविधि है जिसका उपयोग किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के व्यवहार को देखने, उनके कथनों को लिखने तथा सामाजिक या समूह अन्त:क्रिया के स्पष्ट परिणामों का अध्ययन करने के लिए किया जाता है।''

मेक्कोबी एवं मेक्कोबी (1959) के अनुसार—''साक्षात्कार का अभिप्राय एक ऐसी स्थिति से है जिसमें एक व्यक्ति (साक्षात्कार कर्ता), दूसरे व्यक्ति या व्यक्तियों (साक्षात्कार दाता) से आमने-सामने के पारस्परिक वाचिक (Verbal) आदान-प्रदान से सूचना या विचार तथा विश्वास व्यक्त करने को प्रेरित करने का प्रयास करता है।

पी.वी. यंग (1966) के अनुसार—''साक्षात्कार को एक सुव्यवस्थित प्रणाली माना जा सकता है, जिसके अन्तर्गत एक व्यक्ति (साक्षात्कार कर्ता) दूसरे व्यक्ति (साक्षात्कार दाता) के आन्तरिक जीवन में अधिक या थोड़ा, काल्पनिक रूप से प्रवेश करता है जो उसके लिए सामान्यत: तुलनात्मक रूप से अपरिचित है।''

एफ.एन. कर्लिंगर (1978) के अनुसार—''साक्षात्कार आमने-सामने की अन्तर्वैयक्तिक भूमिका की ऐसी स्थिति है जिसमें एक व्यक्ति (साक्षात्कारकर्ता), एक-दूसरे व्यक्ति से, जिसका साक्षात्कार किया जा रहा है (उत्तरदाता) से उन प्रश्नों के

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

उत्तर प्राप्त करना चाहता है जिनकी रचना संबंधित अनुसंधान समस्या के उद्देश्यों की पूर्त्ति के लिए की गई है।''

वी.एल. पामर के अनुसार—''साक्षात्कार दो व्यक्तियों के बीच एक सामाजिक स्थिति का निर्माण करता है जिसमें प्रयुक्त मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के अन्तर्गत दोनों व्यक्ति परस्पर प्रत्युत्तर देते हैं।''

उपरोक्त सभी परिभाषाओं के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि साक्षात्कार एक क्रमबद्ध, सुव्यवस्थित विधि या प्रविधि है जिसमें अन्तर्वैयक्तिक भूमिका विशेष रूप से होती है। इस प्रविधि में कम से कम दो व्यक्ति होते हैं। एक तो साक्षात्कारकर्ता और दूसरा साक्षात्कारदाता। ये दोनों आमने-सामने मौखिक रूप से विचारों का आदान-प्रदान करते हैं। विचारों के इस आदान-प्रदान में साक्षात्कारकर्ता कल्पनात्मक रूप से साक्षात्कारदाता के मन में प्रवेश करके अपनी संबंधित अनुसंधान समस्या के लिए सूचनाएं प्राप्त करता है।

16.14 साक्षात्कार की विशेषताएं (Characteristics of Interview)

साक्षात्कार की कई विशेषताओं मे से कुछ महत्त्वपूर्ण विशेषताओं को नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है।

16.14.1 सामाजिक प्रक्रिया (Social-process)

साक्षात्कार एक ऐसी सामाजिक प्रक्रिया (Social-process) है जिसके माध्यम से दो या अधिक व्यक्तियों मे वार्तालाप या निकट संबंधों की स्थापना होती है।

16.14.2 आमने-सामने की प्रक्रिया (Face-to-face process)

साक्षात्कार प्रक्रिया के अन्तर्गत साक्षात्कारकर्ता और साक्षात्कारदाता आमने-सामने होकर बातचीत करते हैं। इसमें साक्षात्कारकर्ता सूचना दाता से मैत्रीपूर्ण या सौहार्दपूर्ण संबंध स्थापित करता है और वार्तालाप द्वारा ही वह कल्पनात्मक रूप से सूचनादाता के मन में प्रवेश कर अपनी अनुसंधान समस्या के संबंध में सूचनादाता से सूचनाएं प्राप्त कर लेता है।

16.14.3 क्रमबद्ध या सुव्यवस्थित प्रविधि (Systematic technique)

साक्षात्कार एक सुव्यवस्थित प्रविधि है जिसके द्वारा साक्षात्कारकर्ता, सूचनादाता या साक्षात्कारदाता से अनुसंधान अध्ययन से संबंधित सूचनाएं प्राप्त करता है।

16.14.4 विशेष उद्देश्य (Specific aim)

साक्षात्कार प्रविधि का अनुसंधान कार्य के लिए विशेष उद्देश्य होता है। इसका मुख्य उद्देश्य शोधकार्य से सम्बंधित सूचना एवं तथ्यों को एकत्र करना होता है।

16.14.5 अन्तर्वैयक्तिक प्रक्रिया (Interpersonal process)

साक्षात्कार एक अन्तर्वैयक्तिक प्रक्रिया है जिसमें दो या दो से अधिक व्यक्तियों के बीच उनकी अपनी-अपनी भूमिका के अनुसार एक-दूसरे के साथ पारस्परिक क्रिया, प्रतिक्रिया होती है।

16.14.6 आंकड़ों का संकलन (Data collection)

साक्षात्कार विधि की विशेषता यह है कि इसमें अनुसंधान संबंधी समस्या के लिए आंकड़ों का संकलन भी किया जाता है। जिनका उपचार बाद में किया जाता है।

16.15 अनुसंधान में साक्षात्कार के मुख्य उद्देश्य (Main purposes of interview in research)

जैसाकि साक्षात्कार की विशेषताओं में स्पष्ट किया गया है कि साक्षात्कार किसी विशिष्ट उद्देश्य या उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु संचालित किये जाते हैं। साक्षात्कारकर्ता को इन उद्देश्यों का ज्ञान होना आवश्यक है जिससे की वह

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

निश्चित दिशा में चलकर साक्षात्कार प्रक्रिया का उचित संचालन कर सूचनाएं प्राप्त कर सके। साक्षात्कार के प्रमुख उद्देश्यों को आगे प्रस्तुत किया जा रहा है।

16.15.1 प्रत्यक्ष सम्पर्क द्वारा सूचनाओं को प्राप्त करना (Collecting informations through direct contact)

साक्षात्कार प्रक्रिया के माध्यम से साक्षात्कारकर्ता अपनी अनुसंधान समस्या के हल के लिए सूचनाओं एवं तथ्यों की प्राप्ति हेतु साक्षात्कारदाता से प्रत्यक्ष संबंध अथवा संपर्क स्थापित करता है। यह संबंध परस्पर मैत्री भावना (Rapport) पर आधारित होते हैं। इन संबंधों की स्थापना होने पर साक्षात्कारकर्ता, साक्षात्कारदाता के साथ स्पष्ट एवं खुली चर्चा करते हैं। इस चर्चा के माध्यम से साक्षात्कारकर्ता, साक्षात्कारदाता के मनोभावों, मनोवृत्तियों, इच्छाओं एवं अभिरुचियों के बारे में सूचना प्राप्त करता है।

16.15.2 उपकल्पना का स्रोत (Source of hypothesis)

साक्षात्कार प्रक्रिया द्वारा साक्षात्कारकर्ता को साक्षात्कारदाता के द्वारा कई महत्त्वपूर्ण जानकारियां प्राप्त होती हैं। इन जानकारियों के आधार पर वह साक्षात्कारदाता की मनोवृत्तियों एवं अभिरुचियों के बारे में ज्ञान प्राप्त करता है। परस्पर बातचीत से कई नवीन तथ्य उद्घाटित होते हैं। इन तथ्यों के आधार पर कई नवीन उपकल्पनाओं का सृजन किया जाता है।

16.15.3 व्यक्तिगत एवं गुणात्मक तथ्यों को प्राप्त करना (To obtain personal and qualitative fact)

साक्षात्कार के द्वारा किसी व्यक्ति (उत्तरदाता) के जीवन के बारे में कई सूचनाएं प्राप्त होती हैं जो कि उसकी नितान्त व्यक्तिगत सूचनाएं होती हैं। साक्षात्कारकर्ता का सामने वाले व्यक्ति के साथ जितना मधुर एवं सामंजस्यपूर्ण तालमेल रहता है उतनी ही गहराई तक वह सूचनादाता को प्रभावित करता है। इसके द्वारा प्राप्त होने वाली सूचनाएं महत्त्वपूर्ण होती हैं। साक्षात्कारकर्ता के द्वारा कई ऐसे प्रश्न किये जाते हैं जिनके प्रत्युत्तर में सूचनादाता अपने अन्दर के विचारों, भावनाओं एवं इच्छाओं को स्पष्ट कर देता है। सूचनादाता अपने अंदर की दबी कुण्ठाओं एवं इच्छाओं को भी उजागर कर देता है। इस प्रकार की सूचनाओं से व्यक्तिगत अध्ययन में पर्याप्त सहायता मिलती है।

16.15.4 प्रायोगिक अध्ययनों में योगदान (Contribution in experimental studies)

कुछ व्यावहारिक प्रायोगिक अध्ययनों जैसे वैयक्तिक बुद्धि परीक्षण, मनोभौतिक परीक्षण तथा अधिगम आदि में साक्षात्कार विधि के उपयोग का विशेष योगदान रहता है। वर्तमान की ज्वलंत समस्याओं के अध्ययनों में भी साक्षात्कार विधि का विशिष्ट योगदान रहता है।

16.16 साक्षात्कार के प्रकार (Types of Interview)

समाजशास्त्रियों एवं सामाजिक मनोवैज्ञानिकों ने साक्षात्कार के कई भेद एवं प्रकार बताए हैं। ये भेद एवं प्रकार साक्षात्कार के उद्देश्य, संरचना, औपचारिकता, उत्तरदाताओं की संख्या, साक्षात्कार के स्वरूप एवं अवधि के आधार पर बताए गए हैं। डॉ. डी.एन. श्रीवास्तव[1] साक्षात्कार को निम्न पांच वर्गों में वर्गीकृत किया है—

1. साक्षात्कार प्रविधि का उद्देश्यों के आधार पर वर्गीकरण (Classification of interview techniques on the basis of objects)
2. साक्षात्कार प्रविधि का संरचना के आधार पर वर्गीकरण (Classification of interview techniques on the basis of structure)
3. साक्षात्कार प्रविधि का औपचारिकता के आधार पर वर्गीकरण (Classification of interview techniques on the basis of formality)
4. साक्षात्कार प्रविधि का उत्तरदाताओं की संख्या के आधार पर वर्गीकरण (Classification of interview techniques on the basis of number of informants)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

चित्र–1

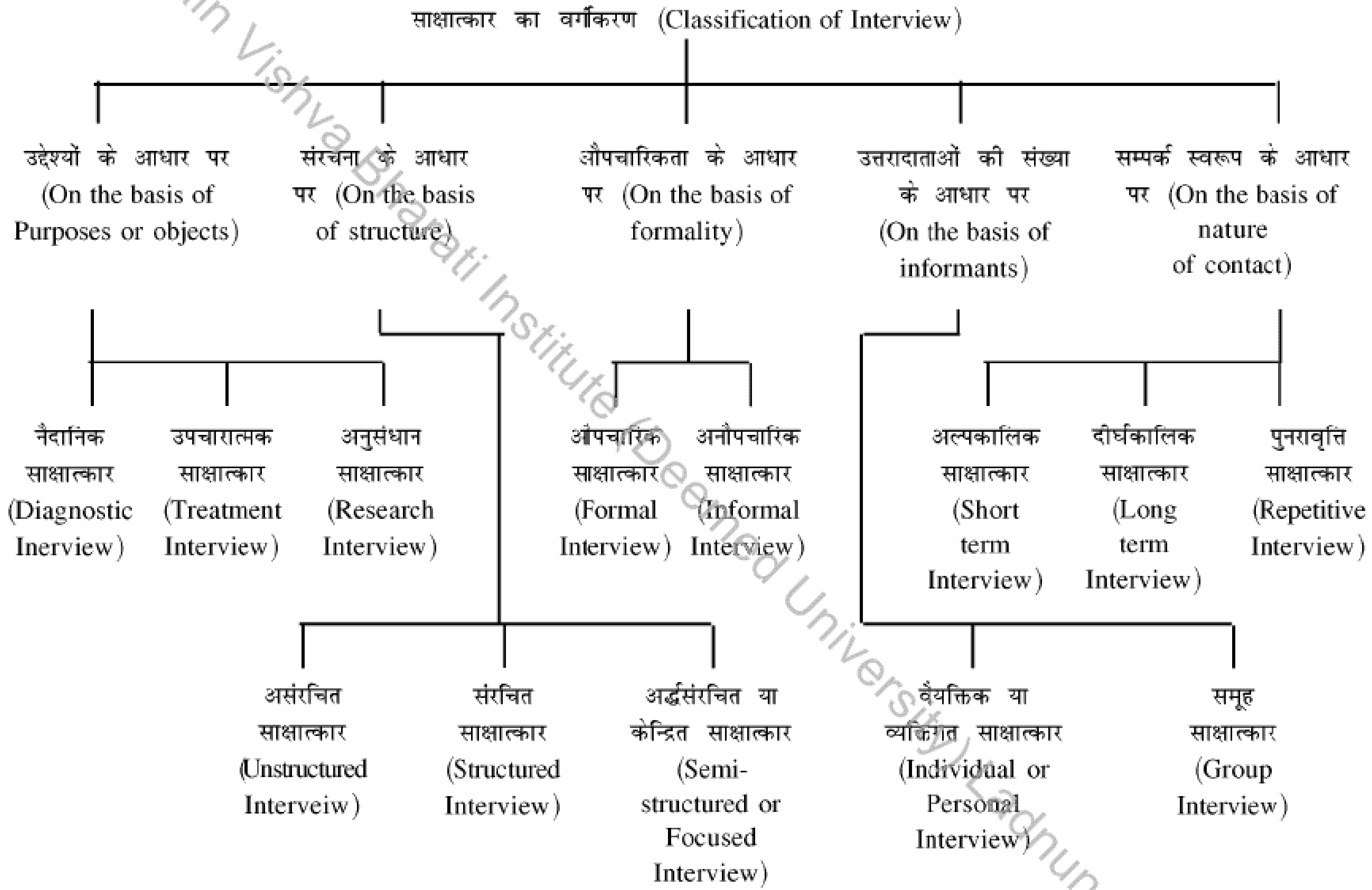

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

5. साक्षात्कार प्रविधि का संपर्क के स्वरूप के आधार पर वर्गीकरण (Classification of interview techniques on the basis of nature of contact)।

16.16.1 साक्षात्कार प्रविधि का उद्देश्यों के आधार पर वर्गीकरण (Classification of interview techniques on the basis of Objects)

उद्देश्यों के आधार पर साक्षात्कार तीन प्रकार के होते हैं—

1. निदानात्मक साक्षात्कार (Diagnostic Interview),
2. उपचारात्मक साक्षात्कार (Treatment Interview),
3. अनुसंधान साक्षात्कार (Research Interview)।

16.16.1.1 निदानात्मक साक्षात्कार (Diagnostic Interview)

इस प्रकार के साक्षात्कारों का उपयोग मानसिक व्याधि या सामाजिक व्याधि के कारणों को जानने के लिए किया जाता है। मानसिक व्याधियां जैसे उन्माद (हिस्टीरिया), मनोभाजन (स्क्रीजोफेनिया), मन:स्ताप आदि के कारणों का पता लगाने में ये साक्षात्कार उपयोगी है। इसी तरह सामाजिक व्याधियां जैसे चोर बाजारी, भ्रष्टाचार, घूसखोरी, शराबखोरी, बेरोजगारी एवं गरीबी आदि के कारणों को ज्ञात करने के लिए इस प्रकार के साक्षात्कारों का उपयोग होता है।

16.16.1.2 उपचारात्मक साक्षात्कार (Treatment Interview)

इस प्रकार के साक्षात्कार का प्रयोग उपरोक्त व्याधियों, जैसे मानसिक एवं सामाजिक व्याधि के कारणों के प्रभावों को दूर करने के लिए प्रभावी उपचारों को खोजने के लिए किया जाता है।

16.16.1.3 अनुसंधान साक्षात्कार (Research Interview)

अनुसंधान साक्षात्कारों का उद्देश्य किसी अनुसंधान समस्या का अध्ययन करना होता है। इन अनुसंधानों को पुन: तीन उपवर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है—

a. अनिर्देशित या असंरचित साक्षात्कार (Non-directive or Unstructured Interview)
b. निर्देशित या संरचित साक्षात्कार (Directive or Structured Interview)
c. अर्धसंरचित या केन्द्रित साक्षात्कार (Semi-structured or Focused Interview)

16.16.2 साक्षात्कार प्रविधि का संरचना के आधार पर वर्गीकरण (Classification of interveiw techniques on the basis of structure)

संरचना के आधार पर साक्षात्कार का वर्गीकरण तीन वर्गों में किया जा सकता है—

1. संरचित या निर्देशित साक्षात्कार (Structured or Directive Interview)
2. असंरचित या अनिर्देशित साक्षात्कार (Unstructured or Non-directive Interview)
3. अर्द्धसंरचित या केन्द्रित साक्षात्कार (Semi-structured or Focuse Interview)

इनका वर्णन संक्षेप में आगे किया जा रहा है—

16.16.2.1 संरचित या निर्देशित साक्षात्कार (Structured or Directive Interview)

इस प्रकार के साक्षात्कार को अन्य नामों से भी जाना जाता है, जैसे—मानकीकृत (Standarized), नियंत्रित साक्षात्कार (Controlled Interview) तथा मार्गदर्शी साक्षात्कार (Guided Interview)।

इस प्रकार के साक्षात्कार की विशेषता यह होती है कि यह पूर्ण रूप से नियंत्रित रहता है तथा साक्षात्कार की

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

संरचना पूर्व में ही निर्धारित कर ली जाती है। श्रीवास्तव (1990) ने इसे परिभाषित करते हुए लिखा है कि, ''संरचित साक्षात्कार वह साक्षात्कार है जिसमें साक्षात्कार की संरचना पूर्व निर्धारित होती है और साक्षात्कारकर्ता को अनुसंधान समस्या के संबंध में निर्धारित प्रश्नों के अतिरिक्त प्रश्न पूछने की स्वतंत्रता नहीं होती है तथा साक्षात्कारकर्ता को भी परिवर्तित करने की स्वतंत्रता नहीं होती है। साक्षात्कारकर्ता निर्धारित साक्षात्कार प्रक्रिया और निर्धारित प्रश्नों के द्वारा निश्चित समय में निष्पक्ष होकर साक्षात्कार को पूर्ण कर तथ्यों का संकलन करता है।''[1]

संरचित साक्षात्कार विधि में साक्षात्कारकर्ता साक्षात्कार करने से पहले ही अपने अनुसंधान संबंधी प्रश्नों का निर्माण कर लेता है तथा इसमें प्रश्नों को निश्चित क्रम में रखते हुए एक साक्षात्कार अनुसूची (Interview-Schedule) तैयार कर ली जाती है जिसमें अनुसंधान समस्या से संबंधित सभी प्रश्नों को सम्मिलित कर लिया जाता है। साक्षात्कार-अनुसूची से प्राप्त उत्तरों से मात्रात्मक आंकड़े प्राप्त कर लिये जाते हैं।

संरचित साक्षात्कार सुव्यवस्थित एवं क्रमबद्ध प्रक्रिया है। इसमें प्रश्नों का क्रम निश्चित कर लिया जाता है। इसके अतिरिक्त साक्षात्कार का स्थान, समय, सूचनादाता यह सब पूर्व में ही निर्धारित कर लिए जाते हैं अर्थात् इन सभी घटकों पर नियंत्रण रहता है।

इस प्रकार के साक्षात्कार में साक्षात्कारकर्ता के पक्षपाती होने या उसकी अभिनति के प्रभाव में कमी रहती है। इस प्रकार के साक्षात्कार वस्तुपरक होते हैं और ये ज्यादा विश्वसनीय परिणाम देने वाले होते हैं, क्योंकि इनमें अध्ययन नियंत्रित परिस्थितियों में होता है और इसी कारण मापन में परिशुद्धता रहती है। इस प्रकार के साक्षात्कार में परिणाम अंकों में प्राप्त होते हैं जो साक्षात्कारकर्ता के लिए उसके अनुसंधान में सहायक सिद्ध होते हैं।

इस प्रकार के साक्षात्कार का दोष यह है कि इसमें निष्क्रिय अध्ययन (Passive-study) होता है तथा वास्तविकता की कमी (Lack of reality) भी रहती है। इसके अतिरिक्त साक्षात्कार के प्रश्नों के निर्माण में भी कठिनाई रहती है। इस प्रक्रिया में प्राप्त उत्तर प्राय: कृत्रिम होते हैं जिससे वैद्यता में कमी रहती है।

16.16.2.2 असंरचित या अनिर्देशित साक्षात्कार (Unstructured or Non-directive Interview)

इस प्रकार के साक्षात्कार को अमानकीकृत (Unstandarized Interview), अमार्गदर्शी (Unguided Interview) तथा अनियंत्रित साक्षात्कार (Uncontrolled Interview) भी कहते हैं। इस प्रकार के साक्षात्कार पर किसी भी प्रकार का नियंत्रण नहीं होता तथा साक्षात्कार की संरचना भी पूर्व निर्धारित नही होती। इस प्रकार के साक्षात्कार को परिभाषित करते हुए श्रीवास्तव ने लिखा है कि, ''असंरचित साक्षात्कार वह साक्षात्कार है जिसमें साक्षात्कार की संरचना पूर्व निर्धारित नहीं होती है और साक्षात्कारकर्ता को अपनी अनुसंधान समस्या के संबंध में प्रश्न पूछने की पूर्ण स्वतंत्रता होती है तथा साक्षात्कारकर्ता को साक्षात्कार प्रक्रिया को परिवर्तित करने की भी स्वतंत्रता होती है। उत्तरदाता के मनोभावों और मनोदशाओं की आवश्यकता के अनुसार वह साक्षात्कार प्रक्रिया में आवश्यक परिवर्तनों के लिए स्वतंत्र होता है।''[2]

इस प्रकार के साक्षात्कार में साक्षात्कारकर्ता साक्षात्कार अनुसूची का निर्माण पूर्व में नहीं करता न ही वह साक्षात्कार की योजना का निर्धारण पूर्व में करता है। साक्षात्कारकर्ता ऐसी स्थिति में सूचनादाता या उत्तरदाता के मनोभावों एवं मनोदशाओं को देखते हुए आवश्यकतानुसार प्रश्नों को पूछता है।

इस प्रकार के साक्षात्कार में साक्षात्कारकर्ता को अनुभव एवं उच्चस्तरीय ज्ञान होना आवश्यक है। साक्षात्कार की इस तकनीक में कुशलता प्राप्त साक्षात्कारकर्ता ही सही ढंग से साक्षात्कार कर पाता है क्योंकि सूचनादाता के मनोभावों और मनोदशाओं को पहचानना सरल नहीं होता। अत: इस प्रकार का साक्षात्कार एक अनुभवी साक्षात्कारकर्ता ही कर सकता है।

असंरचित साक्षात्कार के लाभ यह हैं कि इसमें अनुसंधान समस्या के संबंध में विभिन्न प्रकार के प्रश्नों को पूछने की अनुसंधानकर्ता को पूरी-पूरी स्वतंत्रता रहती है। इसमें साक्षात्कार की प्रक्रिया को इच्छानुसार एवं सुविधानुसार बदलने की स्वतंत्रता रहती है। सूचनादाता की मनोदशाओं और मनोभावों के अनुसार अध्ययन करने से इस प्रक्रिया

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

के द्वारा गुप्त एवं आंतरिक सूचनाओं को भी प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार का अनुसंधान उच्च अध्ययन में भी सहायक होता है क्योंकि इस प्रकार के साक्षात्कार कुशल एवं अनुभवी साक्षात्कारकर्ता द्वारा किये जाते हैं। इसलिए इनसे प्राप्त परिणाम शुद्ध एवं विश्वसनीय होते हैं।

उपरोक्त लाभ के अतिरिक्त इस प्रकार के साक्षात्कार में कुछ दोष भी है इस प्रकार के साक्षात्कार में कुशल, अनुभवी एवं प्रशिक्षित साक्षात्कारकर्ता की आवश्यकता रहती है। यदि साक्षात्कारकर्ता प्रशिक्षित एवं कुशल नहीं है तो शुद्ध परिणाम प्राप्त होने में संदेह रहता है।

इस प्रकार के साक्षात्कार में प्राय: असंतुलित अध्ययन ही होता है तथा अनावश्यक तथ्यों का संकलन हो जाता है। इसमें साक्षात्कारकर्ता के पक्षपातपूर्ण व्यवहार या उसकी अभिनति का प्रभाव पड़ सकता है।

16.16.2.3 अर्द्धसंरचित या केन्द्रित साक्षात्कार (Semi-structured or Focus Interview)

अर्द्धसंरचित साक्षात्कार असंरचित एवं संरचित, दोनों का ही मिला-जुला रूप होता है। यह किसी विशेष घटना, अवस्था या परिस्थिति पर ही केन्द्रित होता है अत: इसको केन्द्रित साक्षात्कार कहते हैं।

इस प्रकार के साक्षात्कार में संरचित साक्षात्कार के गुण अधिक होते हैं। इस प्रकार के साक्षात्कार में चुने हुए उत्तरदात्ता सम्मिलित किये जाते हैं जो विशेष घटना, परिस्थिति या अवस्था से संबंधित होते हैं। इस प्रकार के साक्षात्कार में साक्षात्कार करने से पूर्व ही साक्षात्कार अनुसूची (Interview Schedule) बना ली जाती है। इस प्रकार के साक्षात्कार के लिए एक साक्षात्कार निर्देशिका (Interview Guide) बनाई जाती है। जिसमें साक्षात्कार करने के संबंध में संपूर्ण योजना लिखी रहती है। इस निर्देशिका के आधार पर साक्षात्कारकर्ता अपने अनुसंधान संबंधी साक्षात्कार प्रक्रिया को संचालित करता है।

16.16.3 साक्षात्कार प्रविधि का औपचारिकता के आधार पर वर्गीकरण (Classification of interview techniques on the basis of formality)

औपचारिकता के आधार पर साक्षात्कार को दो वर्गों में बांटा जा सकता है—

1. औपचारिक साक्षात्कार (Formal Interview) 2. अनौपचारिक साक्षात्कार (Informal Interview)

16.16.3.1 औपचारिक साक्षात्कार (Formal Interview)

इस प्रकार के साक्षात्कार में साक्षात्कारकर्ता की भूमिका मात्र औपचारिक रूप से होती है। साक्षात्कारकर्ता इस प्रकार के साक्षात्कार में निष्क्रिय रहता है। इस प्रकार के साक्षात्कार में संरचित या निर्देशित (Structured or Directive) साक्षात्कार के सभी गुण होते हैं।

16.16.3.2 अनौपचारिक साक्षात्कार (Informal Interview)

इस प्रकार के साक्षात्कार असंरचित या अनिर्देशित (Unstructured or Non-directive) साक्षात्कार के जैसे ही होते हैं। इनमें साक्षात्कारकर्ता की सक्रिय भूमिका रहती है। साक्षात्कारकर्ता उत्तरदाता से खुलकर बातचीत करता है एवं सूचना प्राप्त करने के लिए उससे घुल-मिल जाता है और उत्तरदाता से गुप्त सूचनाएं प्राप्त करने में सफल हो जाता है।

16.16.4 साक्षात्कार प्रविधि का उत्तरदाताओं की संख्या के आधार पर वर्गीकरण (Classification of interview techniques on the basis of number of informents)

इस प्रकार के साक्षात्कार को भी दो भागों में बांटा जाता है—

1. वैयक्तिक या व्यक्तिगत साक्षात्कार (Individual or Personal Interview),
2. सामूहिक साक्षात्कार (Group Interview)।

16.16.4.1 वैयक्तिक साक्षात्कार

इस प्रकार के साक्षात्कार में साक्षात्कारकर्ता एक-एक व्यक्ति का व्यक्तिगत रूप से साक्षात्कार करता है और

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अपने अध्ययन संबंधी सूचनाओं को एकत्र करता है इसलिए यह साक्षात्कार वैयक्तिक या व्यक्तिगत साक्षात्कार कहलाता है। इस साक्षात्कार में अधिक से अधिक सूचनाएं प्राप्त होती हैं। इसमें साक्षात्कारकर्ता सूचनादाता से उसकी व्यक्तिगत, गुप्त और आंतरिक सूचनाएं प्राप्त करने में सफल रहता है।

इस प्रकार के साक्षात्कार का प्रमुख लाभ यह है कि साक्षात्कारकर्ता चूंकि सूचनादाता से व्यक्तिगत रूप से संपर्क रखता है और सूचनादाता भी व्यक्तिगत रूप से सूचनाएं प्रदान करता है अत: प्राप्त सूचनाएं वैध एवं विश्वसनीय होती हैं।

यदि सूचनादाता को प्रश्न समझने में किसी प्रकार की समस्या होती है तो साक्षात्कारकर्ता उसे अच्छी तरह से स्पष्ट कर सकता है। संवेदनशील प्रश्नों के उत्तर के समय यदि सूचनादाता भावुक हो जाता है तो साक्षात्कारकर्ता उसे घुमा-फिरा कर अन्य तरीके से प्रश्न पूछने में सफल हो जाता है। प्राय: इस प्रकार के साक्षात्कार में प्रश्नों के उत्तर पूर्ण रूप से प्राप्त कर लिए जाते हैं।

उपरोक्त लाभों के अतिरिक्त इस प्रकार के साक्षात्कार में कुछ दोष भी है, जैसे—इस प्रकार के साक्षात्कार में एक समय में एक ही व्यक्ति से साक्षात्कार किया जा सकता है इससे साक्षात्कार प्रक्रिया में बहुत समय लगता है। इस प्रकार के साक्षात्कार में समय, धन, श्रम भी अधिक व्यय होता है।

इस प्रकार के साक्षात्कार में साक्षात्कारकर्ता व उत्तरदाता के बीच व्यक्तिगत संपर्क हो जाने से अभिनति एवं पक्षपातों का प्रभाव पड़ता है।

बोध प्रश्न 2:

---

1. साक्षात्कार का शाब्दिक अर्थ बताएं।

2. अनुसंधान में साक्षात्कार के महत्व को बताएं।

3. केन्द्रीत साक्षात्कार की व्याख्या करें।

16.16.4.2 सामूहिक साक्षात्कार (Group Interview)

इस प्रकार के साक्षात्कार में साक्षात्कारकर्ता सूचनादाताओं से सामूहिक रूप से साक्षात्कार करता है वह एक समय में दो से अधिक व्यक्तियों का अर्थात् समूह में साक्षात्कार करता है। इसमें साक्षात्कारकर्ता के प्रश्नों का उत्तर एक या अनेक व्यक्ति दे सकते हैं। इसमें साक्षात्कारकर्ता सभी लोगों को प्रश्नों के उत्तर देने का अवसर देता है। इस प्रकार के साक्षात्कार में सामूहिक समस्याओं का भी अध्ययन किया जाता है।

इस प्रकार के साक्षात्कार धन, समय व श्रम की दृष्टि से मितव्ययी होते हैं। कम समय में अधिक से अधिक लोगों से सूचनाएं एकत्र की जा सकती हैं। इस विधि में साक्षात्कारकर्ता की व्यक्तिगत भावनाओं, अभिवृत्तियों, पक्षपातों एवं विचारों का प्रभाव पड़ने की बहुत कम संभावना रहती है। इस विधि में चूंकी सूचनाएं सामूहिक रूप में प्राप्त होती हैं अत: वे अधिक विश्वसनीय व सत्य होती हैं।

इस विधि के कुछ दोष भी हैं, जैसे सूचनाओं में गोपनीयता नहीं रहती है तथा साक्षात्कार सामूहिक रूप से होने के कारण सूचनादाता अपनी गोपनीय बातों को स्पष्ट करने में संकोच करता है। संवेदनशील प्रश्नों में उत्तरदाता गोपनीयता भंग होने से बचने के लिए उत्तर देते समय 'पता नहीं' कहकर टाल देते हैं।

16.16.5 साक्षात्कार प्रविधि का संपर्क स्वरूप के आधार पर वर्गीकरण (Classification of interview techniques on the basis of the contect)

संपर्क स्वरूप के आधार पर साक्षात्कार को तीन वर्गों में बांटा जा सकता है—

1. अल्पकालिक साक्षात्कार (Short term Interview)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2. दीर्घकालिक साक्षात्कार (Long term Interview)

3. पुनरावृत्ति साक्षात्कार (Repetitive Interview)

16.16.5.1 अल्पकालिक साक्षात्कार (Short term or Short contact interview)

इस प्रकार के साक्षात्कार अस्थायी रूप से व कुछ समय के लिए होते हैं। इस प्रकार के साक्षात्कार में समय, स्थान पूर्व निर्धारित नही होते, जैसे—किसी व्यवसाय, उत्पादन के प्रति लोगों का रूची जानना।

16.16.5.2 दीर्घकालिक साक्षात्कार (Long term Interview)

दीर्घकालिक साक्षात्कार में अधिक समय लगता है। इस प्रकार के साक्षात्कार से समस्या का गहन अध्ययन किया जा सकता है। इस प्रकार के साक्षात्कार का उद्देश्य किसी समस्या के संबंध में विस्तृत जानकारी प्राप्त करना होता है। इस प्रकार के अनुसंधान चिकित्सा क्षेत्र में मानसिक रोगियों के उपचार के लिए किए जाते हैं। दीर्घकालिक साक्षात्कारों में गहन साक्षात्कार (depth interview), निदानात्मक साक्षात्कार (diagnostic interview) एवं नैदानिक साक्षात्कार (clinical interview) आते हैं।

16.16.5.3 पुनरावृत्ति साक्षात्कार (Repetitive interview)

इस प्रकार के साक्षात्कार ऐसी समस्याओं के अध्ययन के लिए उपयोगी होते हैं। जो समय के साथ-साथ परिवर्तित होती है अत: समस्या के स्वरूप में बार-बार परिवर्तन होने के कारण समस्याओं के प्रति सूचनाओं को प्राप्त करने के लिए साक्षात्कार भी बार-बार किए जाते हैं। इसलिए ऐसे साक्षात्कारों को पुनरावृत्ति साक्षात्कार कहा जाता है। इस प्रकार के साक्षात्कार में समय, धन और श्रम अधिक खर्च होता है।

16.17 अभ्यास के लिए प्रश्न

1. साक्षात्कार क्या है? इसकी विभिन्न परिभाषाएं दीजिए।
2. साक्षात्कार की विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।
3. साक्षात्कार के उद्देश्यों को स्पष्ट कीजिए।
4. साक्षात्कार के प्रकारों का वर्गीकरण कीजिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

संवर्ग 5 मनोवैज्ञानिक अनुसंधान की विधियां एवं परीक्षण

इकाई–17 : मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का अर्थ, परिभाषाएं तथा उद्देश्य

संरचना

17.0 प्रस्तावना
17.1 उद्देश्य
17.2 मनोवैज्ञानिक परिक्षणों का अर्थ एवं स्वरूप
17.3 मनोवैज्ञानिक परिक्षणों की परिभाषाएं
17.4 परीक्षण और मापन में अन्तर
17.5 मनोवैज्ञानिक परिक्षणों के उद्देश्य
17.5.1 भविष्य या पूर्वकथन
17.5.2 वर्गीकरण एवं चयन
17.5.3 मार्गोपदेशन
17.5.4 नैदानिक
17.5.5 तुलना
17.5.6 मूल्यांकन
17.5.7 अनुसंधान
17.6 मनोवैज्ञानिक परिक्षणों की उपयोगिता
17.6.1 शैक्षिक उपयोग
17.6.2 समूहों का अध्ययन करने में उपयोग
17.6.3 वैयक्तिक भिन्नताओं का अध्ययन
17.6.4 व्यवसाय एवं उद्योग के उपयोग
17.6.5 परामर्श में उपयोगी
17.6.6 मार्गोपदेशन में उपयोगी
17.6.7 नैदानिक उपयोग
17.6.8 सेना में उपयोगी
17.6.9 व्यवहारिक क्षेत्र में उपयोगी
17.6.10 अनुसंधान कार्यो में उपयोगी
17.7 प्रश्नावली

17.0 प्रस्तावना

गत अध्याय में आपने प्रयोगात्मक अनुसंधान (भाग-I) एवं साक्षात्कार विधि (भाग-II) के बारे में अध्ययन किया। प्रस्तुत अध्याय में आप मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के बारे में ज्ञान अर्जित करेंगे। इस अध्याय में मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का अर्थ, परिभाषाएं एवं उद्देश्यों का विस्तृत अध्ययन करेंगे।

17.1 उद्देश्य

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1. इस पाठ का उद्देश्य मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का अर्थ एवं स्वरूप के बारे में जानकारी प्रदान करना है।
2. इस पाठ के अन्तर्गत आप मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की परिभाषाओं एवं इसके उद्देश्यों के बारे में भी जानकारी प्राप्त करेंगे।
3. इस पाठ के अध्ययन के बाद आप मनोवैज्ञानिक परीक्षणों संबंधी विभिन्न प्रश्नों का उत्तर सरलता से दे पाएंगे।

17.2 मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का अर्थ एवं स्वरूप (Meaning and nature of psychological tests)

हम यह भलीभांती जानते हैं कि मनोविज्ञान का मुख्य उद्देश्य मानवीय व्यवहार का अध्ययन करना है। किसी व्यक्ति के व्यवहार का अध्ययन उसके व्यावहारिक पक्षों के विश्लेषण पर आधारित होता है। प्रत्येक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से भिन्न होता है। ये भिन्नता व्यक्ति के शारीरिक और मानसिक गुणों तथा विशेषताओं के आधार पर होती है। मनोविज्ञान की भाषा में इसे वैयक्तिक भिन्नता (Individual difference) कहा जाता है। जब हम व्यक्ति को किसी दूसरे व्यक्ति से भिन्न करना चाहेंगे तो निश्चित रूप से हमें यह जानना होगा कि हम किस आधार पर उस व्यक्ति को भिन्न कर सकते हैं। तब हम निश्चित रूप से यह कह सकते हैं कि अमुक व्यक्ति में अमुक-अमुक प्रकार के विशेष गुण हैं जो उसे दूसरे व्यक्तियों से भिन्न करते हैं। व्यक्ति के गुणों का मापन कर हम उसे गुणों के आधार पर दूसरे व्यक्ति से भिन्न करते हैं। गुणों का मापन करने के लिए हम कुछ मापदंड तैयार करते हैं। इन मापदंडों को हम परीक्षण कह सकते हैं। अत: व्यक्ति की योग्यताओं, प्रतिमाओं, क्षमताओं का मापन जिन मापदंडों के आधर पर करते हैं उन्हें हम मनोवैज्ञानिक परीक्षण कह सकते हैं। व्यक्तियों के मानसिक स्तर, योग्यताओं, रूचियों, क्षमताओं, उपलब्धियों तथा व्यक्तित्व गुणों आदि में असमानताओं को मापने के लिए मनोवैज्ञानिकों को कुछ उपकरणों एवं यंत्रों की आवश्यकता का अनुभव हुआ जिनके द्वारा वह व्यक्तियों में वैयक्तिक भिन्नताओं का स्तर ज्ञात कर सकें और उसके आधार पर उनके व्यक्तित्व समायोजन में सहायता कर सकें। विभिन्न परीक्षणों की सहायता से व्यक्तियों के मानसिक एवं शारीरिक दोनों पक्षों का मापन किया जा सकता है।

वैयक्तिक भिन्नताओं के प्रत्येक पहलू का अध्ययन करने के लिए कई अन्वेषण प्रारम्भ हुए, प्रयोगकार्य हुए और इनमें धीरे-धीरे परीक्षणों का प्रयोग होने लगा। परीक्षणों की सहायता से ही व्यक्तियों के शारीरिक एवं मानसिक दोनों पक्षों का मापन किया जाने लगा। समय की गति के साथ-साथ जैसे-जैसे वैयक्तिक भिन्नता के स्वरूप में जटिलता दिखाई देने लगी, वैसे-वैसे ही मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की आवश्यकता का अनुभव होने लगा। साधारणतया हम यह कह सकते हैं कि मनोवैज्ञानिक परीक्षण ऐसे परीक्षण हैं जो व्यक्ति के विभिन्न गुणों व योग्यताओं का मापन कर उसके व्यावहारिक पक्ष को उजागर करते हैं।

17.3 मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की परिभाषाएं (definitions of psychological tests)

भार्गव (1995) ने मनोविज्ञान शब्दावली के अनुसार मनोवैज्ञानिक परीक्षणों को इस प्रकार परिभाषित किया है—

''मनोवैज्ञानिक परीक्षण मानकीकृत एवं नियंत्रित स्थितियों का वह विन्यास (Set) है जो व्यक्ति से अनुक्रिया प्राप्त करने हेतु उसके सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है जिससे वह पर्यावरण की मांगों के अनुकूल प्रतिनिधित्व व्यवहार का चयन कर सके; आज हम बहुधा उन सभी परिस्थितियों एवं अवसरों के विन्यास को मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के अन्तर्गत सम्मिलित कर लेते हैं जो किसी भी प्रकार की क्रिया, चाहे उसका संबंध कार्य या निष्पादन से हो या नहीं,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

करने की विशेष पद्धति का प्रतिपादन करती है।''

आगे हम कुछ प्रमुख मनोवैज्ञानिकों के द्वारा प्रस्तुत मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की कुछ परिभाषाओं का उल्लेख कर रहे हैं—

1. एफ.एस. फ्रीमेन (F.S. Freeman, 1965) के अनुसार—''एक मनोवैज्ञानिक परीक्षण, मानकीकृत यंत्र है जिससे सम्पूर्ण व्यक्तित्व के एक या अधिक पक्षों का मापन शाब्दिक (Verbal) या अशाब्दिक (Non-verbal), अनुक्रियाओं (Responses) या अन्य किसी प्रकार के व्यवहार के माध्यम से किया जाता है।''

यहां फ्रीमेन ने मनोवैज्ञानिक परीक्षण को एक मानकीकृत यंत्र माना है और इस यंत्र द्वारा व्यक्ति के समस्त व्यक्तित्व के एक या एक से अधिक पक्षों का मापन करने की बात कही गई है।

2. मन (Munn, 1967) के मतानुसार—''परीक्षण एक परीक्षा है जो किसी समूह के व्यक्ति के सम्बंधित बुद्धि, व्यक्तित्व, अभिक्षमता एवं उपलब्धि को दर्शाता है।''

3. टाइलर (Tyler, 1969) के विचारों में—''परीक्षण एक मानकीकृत परिस्थिति है जिससे व्यक्ति का न्यादर्श व्यवहार प्रकट होता है।

4. ब्रॉउन (Brown, 1970) के अनुसार—''मनोवैज्ञानिक परीक्षण व्यवहार प्रतिदर्श के मापन की व्यवस्थित विधि है।''

5. क्रॉनबेक (Cronback, 1971) ने मनोवैज्ञानिक परीक्षण को इस प्रकार परिभाषित किया है—''परीक्षण दो या दो से अधिक व्यक्तियों के व्यवहार का तुलनात्मक अध्ययन करने की व्यवस्थित प्रक्रिया है।''

6. ऐनेस्टेसी (Anastasi, 1971), के अनुसार—''मनोवैज्ञानिक परीक्षण आवश्यक रूप से व्यवहार के न्यादर्श का एक वस्तुनिष्ठ तथा मानकीकृत मापन है।''

उपरोक्त सभी परिभाषाओं के अध्ययन के बाद यह स्पष्ट होता है कि मनोवैज्ञानिक परीक्षण एक वस्तुनिष्ठ एवं मानकीकृत साधन है जिसके द्वारा सम्पूर्ण व्यवहार के भिन्न-भिन्न मनोवैज्ञानिक पक्षों, जैसे योग्यताओं, उपलब्धियों, रुचियों, व्यक्तित्व, विशेषताओं तथा क्षमताओं का परिणात्मक एवं गुणात्मक अध्ययन होता है। अत: हम यह कह सकते हैं कि मनोवैज्ञानिक परीक्षण व्यक्ति को समझने एवं समूह में उसकी तुलना करने में भी सहायक होता है।

17.4 परीक्षण और मापन में अन्तर (Difference between test and measurement)

भार्गव (1995) ने परीक्षण एवं मापन में पांच भेद बताए हैं। उनके अनुसार—

1. परीक्षण का क्षेत्र संकुचित एवं सीमित होता है जबकि मापन का प्रयोग व्यापक रूप से विभिन्न मनोवैज्ञानिक अनुसंधानों में होता है।

2. परीक्षणों का सम्बंध प्राय: मानसिक एवं मनोवैज्ञानिक गुणों से होता है जबकि मापन के प्रयोग से हम व्यक्ति के भौतिक गुणों का अध्ययन कर सकते हैं।

3. परीक्षण के माध्यम से व्यक्ति के विषय के बारे में जानकारी प्राप्त की जाती है जबकि मापन में किसी सामान्य प्रश्न का उत्तर देने का प्रयास होता है। कभी-कभी मापन का प्रयोग परीक्षण रूप में भी किया जा सकता है।

4. परीक्षण में विभिन्न प्रकार के पद सम्मिलित होते हैं जिन्हें मानकीकृत कर प्रयोग में लाया जाता है वही मापन में वस्तुओं को नियमानुसार संख्यात्मक रूप देकर प्रयोग में लाया जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

5. परीक्षण का प्रयोग स्वयं उपकरण के रूप में किया जाता है वही मापन में भौतिक एवं मानसिक दोनों प्रकार के उपकरणों की आवश्यकता होती है।

17.5 मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के उद्देश्य (Objectives of psychological tests)

मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के कुछ विशिष्ट उद्देश्य होने के कारण इनका प्रयोग व्यापक रूप से किया जा सकता है। नीचे हम मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के कुछ विशिष्ट उद्देश्यों की व्याख्या कर रहे हैं—

1. भविष्य या पूर्वकथन (Prediction),
2. वर्गीकरण एवं चयन (Classification and Selection),
3. मार्गोपदेशन (Guidance),
4. नैदानिक (Diagnostic),
5. तुलना (Comparison),
6. मूल्यांकन (Evcluation) तथा
7. अनुसंधान (Research)।

17.5.1 भविष्य या पूर्वकथन (Prediction)

व्यावहारिक जगत् में किसी व्यक्ति के व्यवहार के बारे में पूर्वकथन प्राय: अपेक्षित होता है। व्यक्ति किस समय कैसा व्यवहार कर सकता है इसका पता लगाना मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का पहला उद्देश्य है। मनोवैज्ञानिक परीक्षणों द्वारा किसी व्यक्ति या कार्य के विषय में भविष्यकथन या पूर्वकथन किया जा सकता है। विभिन्न मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के माध्यम से हम व्यक्ति की सामान्य एवं विशिष्ट योग्यताओं का मापन कर उसके व्यवहार के बारे में पूर्व कथन कर सकते हैं। मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के माध्यम से व्यक्ति की रूचियों, बुद्धि-योग्यताओं, अभिक्षमताओं एवं व्यक्तित्व गुणों के संबंध में भी काफी कुछ कहा जा सकता है। जैसे किसी व्यक्ति की रूचि किसी विशेष विषय में है तो अभिक्षमता परीक्षणों एवं बुद्धि परीक्षणों एवं उपलब्धि परीक्षणों द्वारा उस छात्र के बारे में भविष्य कथन या पूर्व कथन किया जा सकता है कि, वह छात्र उस विषय में सफल होगा या नहीं, उन्नति करेगा या नहीं। अभिक्षमता परीक्षणों द्वारा व्यक्ति के किसी विशेष व्यवसाय में सफलता प्राप्त होगी अथवा नहीं यह पूर्व में ही ज्ञात किया जा सकता है। पूर्व कथन प्राय: वर्तमान क्षमताओं एवं योग्यताओं के आधार पर, जिनका मापन हम मनोवैज्ञानिक परीक्षणों से कर लेते हैं, के आधार पर किया जाता है।

पूर्व कथन या भविष्य कथन करने के लिए वैद्य एवं विश्वसनीय परीक्षणों का उपयोग किया जाता है।

17.5.2 वर्गीकरण एवं चयन (Classification and selection)

मनोवैज्ञानिकों एवं शिक्षाशास्त्रियों का यह मानना है कि व्यक्तियों में जिस प्रकार शारीरिक भिन्नताएं होती हैं उसी प्रकार उनकी मानसिक शक्तियों में भी भिन्नताएं होती हैं। कोई दो व्यक्ति मानसिक योग्यता में एक समान नहीं हो सकते। उनमें किसी-न-किसी प्रकार की भिन्नताएं अवश्य होती हैं।

गाल्टन के अनुसार—''प्रत्येक व्यक्ति अपनी अभिक्षमता, अभिवृत्ति, मानसिक योग्यता, रूचि, व्यक्तित्व, गुण आदि में दूसरे व्यक्ति से भिन्न होता है। इसी भिन्नता के आधार पर हम व्यक्तियों को अलग-अलग वर्गों में रखते हैं। इन्हीं भिन्नताओं के कारण व्यक्तियों का चुनाव विशेष क्षेत्रों के लिए विशेष रूप से होता है। परीक्षणों के आधार पर ही छात्रों का, सैनिकों का, कर्मचारियों का तथा मानसिक रोगियों का वर्गीकरण किया जा सकता है। मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की सहायता से न केवल व्यक्तियों का वर्गीकरण किया जा सकता है

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अपितु विभिन्न सेवाओं, व्यवसायों, संस्थाओं में उपर्युक्त व्यक्तियों का चयन भी किया जा सकता है। किस कार्य के लिए कौन-सा व्यक्ति उपयुक्त होगा और उसके कार्य में उसे कैसे सफलता मिलेगी इसका अध्ययन भी मनोवैज्ञानिक परीक्षणों द्वारा संभव है। खिलाड़ियों के चयन में और विशिष्ट समूह बनाने में व्यक्तियों का चयन करना भी मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के उद्देश्य हैं। अत: व्यक्तियों का वर्गीकरण एवं चयन करना मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का दूसरा उद्देश्य है।

17.5.3 मार्गोपदेशन (Guidance)

व्यक्ति को व्यक्तिगत मार्गनिर्देशन, व्यवसायिक एवं शैक्षिक क्षेत्रों में मार्गदर्शन करना मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का तीसरा उद्देश्य है। जैसे—किसी व्यक्ति में समायोजन की प्रक्रिया सही नहीं बन पा रही है या किसी विद्यार्थी को हम किसी कक्षा में प्रवेश दिलावा रहे हैं तो ऐसी स्थिति में मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का उपयोग कर व्यक्ति के समायोजन संबंधी एवं विद्यार्थी के प्रवेश संबंधी बाधाओं या समस्याओं को हल किया जा सकता है। इसी तरह कोई व्यक्ति किसी प्रकार के व्यवसाय का चयन करना चाहता है तो मनोवैज्ञानिक परीक्षण उसके अभिक्षमता एवं अभिरूचियों का पता लगा लेते हैं एवं उसके आधार पर उस व्यक्ति को व्यवसायिक चयन करने के लिए मार्गदर्शन दिया जा सकता है।

17.5.4 नैदानिक (Diognostic)

व्यक्ति में व्यक्तियों की समस्याओं एवं कमजोरियों का निदान भी मनोवैज्ञानिक परीक्षणों द्वारा संभव है। ऐसे मनोवैज्ञानिक परीक्षण जिनका मुख्य कार्य किसी विषय संबंधी समस्याओं, कठिनाइयों एवं कमजोरियों का निदान करना होता है, उन्हें नैदानिक परीक्षण भी कहते हैं। चिकित्सा क्षेत्र में भी इस प्रकार के परीक्षणों के माध्यम से समस्याओं का या कठिनाइयों का निदान किया जा सकता है एवं उनकी रोकथाम एवं निवारण दोनों के लिए ही मनोवैज्ञानिक परीक्षण बहुत सहायक होते हैं।

17.5.5 तुलना (Comparison)

मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का पांचवा उद्देश्य विभिन्न व्यक्तियों की तुलना व्यक्तियों के समूह से, समूह की समूह से करना है। चूंकि वैयक्तिक भिन्नताओं के कारण व्यक्ति सदैव ही मानसिक, शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक शील गुणों में एक दूसरे से भिन्न होते हैं। मनोवैज्ञानिक परीक्षणों से इन गुणों को ज्ञात कर हम उनकी तुलना कर सकते हैं। मनोवैज्ञानिक परीक्षणों से प्राप्त आंकड़ों का विश्लेषण करने के लिए सांख्यकीय विधियों का उपयोग किया जाता है और इन सांख्यकीय विधियों के आधार पर किसी एक समूह की किसी दूसरे समूह से या किसी एक व्यक्ति की किसी दूसरे व्यक्ति से तुलना की जा सकती है।

17.5.6 मूल्यांकन (Eveluation)

मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का छठवां उद्देश्य व्यक्ति के गुणों का, उपलब्धियों का एवं निष्पत्तियों का मूल्यांकन करना है। चूंकि मनोवैज्ञानिक परीक्षण मानकीकृत होते हैं और इनसे प्राप्त परिणाम वैद्य एवं विश्वसनीय होते हैं, इसलिए ये व्यक्ति का मूल्यांकन प्रभावी ढंग से कर सकते हैं। व्यक्ति स्वयं का व्यक्तिगत मूल्यांकन भी मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के द्वारा कर सकता है।

17.5.7 अनुसंधान (Research)

मनोवैज्ञानिक अनुसंधानों में, शैक्षिक अनुसंधानों में, व्यावहारिक अनुसंधानों में एवं औद्योगिक अनुसंधानों में परीक्षणों को उपकरण या यंत्र के रूप में काम में लिया जाता है। क्योंकि मनोवैज्ञानिक अनुसंधान भी एक

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

वैज्ञानिक अनुसंधान है अतः इनमें भी ऐसे यंत्रों एवं उपकरणों की आवश्यकता होती है जो परिशुद्ध परिणाम दे सकें। मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का उद्देश्य भी शोध कार्यों में परिशुद्ध परिणाम देना होता है। जैसाकि हमने ऊपर बताया है कि मनोवैज्ञानिक परीक्षण एक मानकीकृत यंत्र है जिनके परिणामों की वैद्यता और विश्वसनीयता सदैव बनी रहती है। वर्तमान में प्रायोगिक अनुसंधान कार्यों की महत्ता मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के ही पीछे है। जितने अधिक विश्वसनीय एवं वैद्य परीक्षणों का उपयोग अनुसंधान कार्यों में होगा उतने ही अनुसंधान कार्य ज्यादा विश्वसनीय एवं वैद्य होंगे।

अनुसंधान के विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार के मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का उद्देश्य भिन्न-भिन्न होता है। जैसे शिक्षा के क्षेत्र में उपलब्धि परीक्षण, रूची परीक्षण, अभिक्षमता परीक्षण इस क्षेत्र के अनुसंधान कार्य के क्षेत्र में बहुत उपयोगी होते हैं। इसी तरह चिकित्सा क्षेत्र में विभिन्न प्रकार के मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का उद्देश्य अनुसंधानों में व्यक्तियों का पता लगाने में सक्षम होते हैं।

17.6 मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की उपयोगिता (Utility of psychological tests)

आज के इस आधुनिक जीवन में जहां औद्योगिक क्षेत्र में विकास चरम सीमा पर है वहीं इन क्षेत्रों में मानव मात्र की सेवा भी अपेक्षित है। जिस-जिस क्षेत्र में व्यक्ति की सेवाएं अपेक्षित हैं, उस-उस क्षेत्र में मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का उपयोग है क्योंकि मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की उपयोगिता मानव के व्यावहारिक पक्ष से जुड़ी हुई है अतः जहां-जहां और जिस-जिस क्षेत्र में मानव कार्यरत है। उन सभी क्षेत्रों में मनोवैज्ञानिक परीक्षण उपयोगी हैं। प्रायः निम्नलिखित क्षेत्रों में मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का उपयोग अवश्यंभावी है—

1. शैक्षिक उपयोग (Educational Utility),
2. समूहों का अध्ययन करने में उपयोगी (Utility in studing the groups),
3. वैयक्तिक भिन्नताओं का अध्ययन (Study of individual differences),
4. व्यवसाय एवं उद्योग में उपयोगी (Utility in business and industry),
5. परामर्श एवं उपयोगी (Utility in counselling),
6. मार्गोपदेशन में उपयोगी (Utility in guidance),
7. नैदानिक उपयोग (Diagnostic utility),
8. सेना में उपयोग (Utility in army),
9. व्यावहारिक जीवन में उपयोगी (Utility in applied field) तथा
10. अनुसंधान कार्यों मे उपयोगी (Useful in research)।

17.6.1 शैक्षिक उपयोग (Educational utility)

मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का शिक्षा के क्षेत्र में बहुत उपयोग है। शिक्षकों के चयन से लेकर छात्रों की सभी प्रकार की व्यवस्थाओं एवं व्यवहार के अध्ययन के लिए मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का पर्याप्त उपयोग होता है। शिक्षा जगत् के कुछ विशेष क्षेत्रों में भी मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का उपयोग होता है।

छात्रों के लिए विशेष विषयों के चयन हेतु परीक्षणों का उपयोग किया जाता है। इसी तरह विशेष विषयों में छात्रों की प्रवेश देने हेतु मनोवैज्ञानिक परीक्षण किया जाता है। इस प्रकार के चयनों में अभिक्षमता परीक्षण, बुद्धि परीक्षण अभिरूचि एवं कुछ अन्य परीक्षणों का उपयोग किया जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

छात्रों की उपलब्धियों एवं निष्पादन को जांचने के लिए भी मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का उपयोग किया जाता है। मनोवैज्ञानिक परीक्षणों द्वारा छात्रों की उपलब्धियों एवं कार्य निष्पादन क्षमता का पता लगाया जा सकता है।

छात्रों का विभिन्न समूहों में वर्गीकरण करने के लिए भी मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का उपयोग किया जाता है। छात्रों के खेल समूह बनाने, वाद-विवाद प्रतियोगिता, संगीत प्रतियोगिताओं के समूह बनाने के लिए भी मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का उपयोग किया जाता है। छात्रों के समायोजन को परखने के लिए भी मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का उपयोग किया जाता है एवं कुसमायोजित छात्रों को उपयोगी मार्गोपदेश देकर समायोजित किया जाता है। इसी तरह मनोवैज्ञानिक परीक्षणों द्वारा झगड़े छात्रों की समस्याओं को जानकर परामर्श एवं मार्गोपदेशन द्वारा उनको सुधारने का प्रयत्न किया जाता है।

मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की उपयोगिता छात्रों के व्यक्तित्व मापन में भी होती है। समय-समय पर छात्रों के व्यक्तित्व का मापन मनोवैज्ञानिक परीक्षणों द्वारा करके उनके व्यक्तित्व विकास के लिए योजनाएं बनाई जा सकती हैं। विद्यालयों में छात्रों के व्यक्तित्व मापन के लिए प्राय: केटल एवं एबर की व्यक्तित्व मापनियां उपयोग में ली जाती हैं। प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के व्यक्तित्व मापन के लिए चिल्डर्न पर्सनलिटी क्यूशनेयर (Children Personality Questionnaire—C.P.Q.), माध्यमिक स्तर के छात्रों के लिए हाई स्कूल पर्सनलिटी क्यूशनेयर (High School Personality Questionnaire—H.S.P.Q.) एवं विद्यालय स्तर के छात्रों के लिए 16 पर्सनलिटी फेक्टर क्यूशनेयर (16 Personality factors—16 PF) का उपयोग किया जाता है।

शिक्षा देने की नई-नई विधियों के विकास के लिए और उनका छात्रों पर प्रभाव देखने के लिए भी मनोवैज्ञानिक परीक्षण बहुत उपयोगी हैं।

शिक्षा के क्षेत्र में उपयुक्त शिक्षकों के चुनाव के लिए भी मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का उपयोग किया है। विषयों के अनुसार दक्ष शिक्षकों का चुनाव मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के कई मापदण्डों के आधार पर किया जाता है। इसी तरह शिक्षकों के समायोजन एवं चरित्र का भी परीक्षण मनोवैज्ञानिक परीक्षणों द्वारा किया जाता है।

शिक्षा के क्षेत्र में नये-नये अनुसंधान प्राय: हुआ करते हैं। क्रियात्मक अनुसंधानों (action research) द्वारा वर्तमान में शिक्षा प्रणाली स्थितियों पर अनुसंधान हुआ करते हैं। इस प्रकार के अनुसंधानों के प्रभावों की जांच मनोवैज्ञानिक परीक्षणों द्वारा की जाती है।

उपरोक्त सम्पूर्ण बातों से यह स्पष्ट होता है कि शिक्षा क्षेत्र में मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का उपयोग व्यापक है।

17.6.2 समूहों का अध्ययन करने में उपयोग (Utility in studing groups)

समाज के विभिन्न वर्गों के समूहों का अध्ययन करने के लिए मनोवैज्ञानिक परीक्षण बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं। समूहों के शैक्षिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, बौद्धिक एवं व्यावसायिक अध्ययन में भी मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की विशेष उपयोगिता होती है। विभिन्न जाति-समूहों, आयु-समूहों, बुद्धिमानों के समूहों, मूर्खों के समूहों, लिंग-समूहों, आय-समूहों, ग्रामीण एवं शहरी समूहों के विभिन्न प्रकार के अध्ययन एवं तुलना करने के लिए मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का व्यापक उपयोग होता है।

17.6.3 वैयक्तिक भिन्नताओं का अध्ययन (Study of individual differences)

विभिन्न व्यक्तियों में व्यक्तित्व गुणों में पायी जाने वाली भिन्नताओं को जानने के लिए मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का उपयोग विशेष रूप से होता है। व्यक्ति में पायी जाने वाली योग्यताओं, विशिष्ट योग्यताओं, क्षमताओं, रूचियों, अभिरूचियों एवं कार्य करने की कौशलताओं को मापने के लिए मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का व्यापक उपयोग होता है। वैयक्तिक भिन्नता के आधार पर ही हम एक व्यक्ति के व्यक्तित्व को दूसरे व्यक्ति के व्यक्तित्व से भिन्न कर पाते हैं और उसी के अनुरूप उन्हें कार्य सौंपा जा सकता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

17.6.4 व्यवसाय एवं उद्योग में उपयोग (Utility is business and industry)

व्यवसाय चयन एवं व्यवसाय के लिए परामर्श तथा मार्गोपदेशन में मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की अहम् भूमिका रहती है। व्यवसायिक रूचि प्रपत्र परीक्षण (Vocational Interest Record) से व्यक्ति की व्यवसायिक रूचि को जाना जा सकता है और उसको परखने के लिए अभिक्षमता परीक्षण, बुद्धि परीक्षण लिए जाते हैं। इन परीक्षणों के आधार पर व्यक्ति को व्यवसाय चुनाव करने के लिए परामर्श एवं मार्गोपदेशन दिया जाता है।

औद्योगिक क्षेत्र बड़ा व्यापक होता है और उसके अनुरूप ही मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की उपयोगिता का क्षेत्र भी व्यापक होता है। औद्योगिक क्षेत्र में कर्मचारियों का चुनाव, अधिकारियों का चुनाव, नेता का चुनाव, औद्योगिक मनोबल, कर्मचारी मनोबल, कर्मचारी परामर्श एवं मार्गोपदेशन, औद्योगिक संरचना, दुर्घटना के कारण, उत्पादन आदि सभी क्षेत्रों में मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का उपयोग आवश्यक रूप से होता है।

कर्मचारियों के चुनाव में, सही कर्मचारी के लिए सही कार्य एवं सही कार्य के लिए सही कर्मचारी का चुनाव करने के लिए मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का व्यापक उपयोग होता है। मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के कठोर मापदण्ड पर कर्मचारियों का चुनाव होने से औद्योगिक प्रगति होती है। इसी तरह अधिकारियों के चुनाव के लिए भी मनोवैज्ञानिक परीक्षण उपयोगी सिद्ध हुए हैं।

नेता के चुनाव के लिए भी मनोवैज्ञानिक परीक्षण होते हैं। सही नेता का चुनाव होने से कर्मचारियों एवं प्रबंधन के बीच सही ताल-मेल रहता है। कर्मचारियों का मनोबल मापने, औद्योगिक मनोबल ज्ञात करने, कर्मचारियों की समस्याओं के समाधान के लिए परामर्श एवं मार्ग-निर्देशन में भी मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है।

औद्योगिक दुर्घटनाओं को रोकने एवं औद्योगिक स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए कर्मचारियों के मानसिक स्वास्थ्य का परीक्षण समय-समय पर होता रहता है और इसमें मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की अहम् भूमिका रहती है।

बोध प्रश्न :

1. *मनोवैज्ञानिक परीक्षण किसे कहते हैं?*
2. *मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की उपयोगिता बताएं।*

17.6.5 परामर्श में उपयोगी (Utility in counselling)

व्यक्ति की समस्याओं को हल करने के लिए परामर्श प्रक्रिया बहुत ही उपयोगी होती है। इस प्रक्रिया को अपनाते समय परामर्शदाता मनोवैज्ञानिक परीक्षणों द्वारा व्यक्ति की समस्याओं का अध्ययन करता है और उसके अनुरूप उसको परामर्श देता है। अतः परामर्श प्रक्रिया में भी मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की उपयोगिता सहज है।

17.6.6 मार्गोपदेशन में उपयोगी (Utility in guidance)

मानव जीवन के कई क्षेत्रों में मार्गोपदेशन दिये जाते हैं। विशेष रूप से शिक्षा क्षेत्र, व्यावसायिक क्षेत्र, सामाजिक कार्य, स्वास्थ्य क्षेत्र एवं चरित्र निर्माण में मार्गोपदेशन की आवश्यकता रहती है। इन सभी क्षेत्रों में मार्गोपदेशन देने के पूर्व मार्गदर्शक मनोवैज्ञानिक परीक्षणों से व्यक्ति की स्थिति की जांच करता है, उसकी योग्यता एवं अन्य क्षमताओं का मनावैज्ञानिक परीक्षणों से अध्ययन करता है और इसके बाद व्यक्ति को उसके सम्बंधित क्षेत्र में मार्गोपदेशन प्रदान करता है। इस तरह मार्गोपदेशन में भी मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का व्यापक उपयोग होता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

17.6.7 नैदानिक उपयोग (Diagnostic utility)

व्यक्ति के जीवन की विभिन्न समस्याओं का पता लगाने, उनके निवारण एवं समाधान हेतु मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का उपयोग होता है। व्यक्ति की व्यक्तिगत समस्याएं, व्यवहार की समस्याएं एवं समायोजन की समस्याओं के निदान हेतु मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का व्यापक उपयोग होता है। इसी तरह मनोरोगों को समझने एवं मानसिक रोगियों के लक्षणों को समझने में उनका निदान करने के लिए भी मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का उपयोग होता है और इनके आधार पर मनोचिकित्सक एवं मनोवैज्ञानिक रोगियों की चिकित्सा करते हैं।

17.6.8 सेना में उपयोगी (Utility in army)

सेना में सैनिकों का चयन, अधिकारियों का चयन एवं उनका वर्गीकरण करने के लिए मनोवैज्ञानिक परीक्षण मूल रूप से उपयोग में लिये जाते हैं। सेना के तीनों अंगों—जल, थल एवं वायु में सैनिकों की भर्ती एवं उनका वर्गीकरण करने के लिए मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का विशेष रूप से उपयोग होता है।

सेना में व्यक्तियों की भर्ती के लिए प्रथम विश्वयुद्ध में कुछ बुद्धि परीक्षणों का निर्माण किया गया। आंग्ल भाषा जानने वाले एवं अधिकारी वर्ग का चयन करने के लिए आर्मी एल्फा परीक्षण का निर्माण किया गया जबकि आंग्ल भाषा न जानने वाले एवं सैनिक वर्ग का चयन करने के लिए आर्मी बीटा बुद्धि परीक्षण का निर्माण किया गया। इसके अतिरिक्त सेना में सैनिकों का वर्गीकरण करने के लिए आर्मी जनरल क्लासीफिकेशन टेस्ट (Army General Clssification Test) का भी निर्माण किया गया। इनके अतिरिक्त योग्यता निर्धारण करने के लिए आर्म्ड फोर्सेज क्लासीफिकेशन टेस्ट (Armed Forces Qualification Test—AFQT) का भी निर्माण किया गया।

उपरोक्त परीक्षणों के उपयोग से सेना में सैनिकों, अधिकारियों का चुनाव एवं वर्गीकरण किया जाता है। अत: सेना में भी मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की अहम् भूमिका है।

17.6.9 व्यावहारिक क्षेत्र में उपयोगी (Utility in applied field)

व्यक्ति की दिन-प्रतिदिन की व्यावहारिक समस्याओं का अध्ययन करके उनका निदान एवं उपाय सुझाने के लिए भी मनोवैज्ञानिक परीक्षण बहुत उपयोगी हैं। पारिवारिक समस्या, वैवाहिक समस्या एवं व्यक्तिगत समस्याओं का अध्ययन करने, इनका निदान करने एवं उपचार करने के लिए भी मनोवैज्ञानिक परीक्षण महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

17.6.10 अनुसंधान कार्यों में उपयोगी (Useful in researches)

वर्तमान वैज्ञानिक युग में विश्व के वैज्ञानिक भौतिक जगत् में दिन-प्रतिदिन नये-नये अनुसंधान करते हैं। इन अनुसंधानों में मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की भूमिका भी विशेष रहती है। मनोवैज्ञानिक अनुसंधानों में तो मनोवैज्ञानिक परीक्षण इनके प्राण होते हैं। मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के अभाव में मनोवैज्ञानिक अनुसंधानों का संचालन करना कठिन ही नहीं असम्भव भी है। मनोवैज्ञानिक अनुसंधान चाहे जिस क्षेत्र में भी हो, जैसे—शिक्षा क्षेत्र, चिकित्सा क्षेत्र, औद्योगिक क्षेत्र, बैंक क्षेत्र, परिकलक (कम्प्यूटर क्षेत्र) आदि, इन सभी में मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की उपस्थिति आवश्यक है। मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के बिना अनुसंधान कार्यों की उपयोगिताओं को परखा नहीं जा सकता। अनुसंधान में चाहे हम व्यक्ति व्यवहार का अध्ययन करें या किसी चर (Variable) का प्रभाव देखना चाहे इन सभी के मापने के लिए मानकीकृत मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का उपयोग करना नितान्त आवश्यक है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इस तरह हम देखते हैं कि जहां-जहां और जिस-जिस क्षेत्र में व्यक्ति की व्यावहारिक क्रिया है वहां-वहां मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का उपयोग नितान्त आवश्यक है।

17.7 प्रश्नावली

1. मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का अर्थ एवं स्वरूप को स्पष्ट करें।
2. मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की परिभाषाएं दीजिए।
3. मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के उद्देश्यों को स्पष्ट कीजिए।
4. मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की उपयोगिताओं को स्पष्ट कीजिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–18 : मार्गोपदेशन एवं परामर्श में परीक्षणों का उपयोग

संरचना

18.0 प्रस्तावना
18.1 उद्देश्य
18.2 मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के प्रारूप
18.2.1 प्रशासन के आधार पर
18.2.2 मानकीकरण के आधार पर
18.2.3 फलांकन के आधार पर
18.2.4 रूप के आधार पर
18.2.5 माध्यम के आधार पर
18.2.6 शीलगुण की प्रकृति के आधार पर
18.2.6.1 योग्यता तथा कौशल मापन सम्बंधी परीक्षण
18.2.6.2 उपलब्धि मापन सम्बंधी परीक्षण
18.2.6.3 व्यक्तित्व विशेषताओं के मापन सम्बंधी परीक्षण
18.3 मार्गोपदेशन में मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का उपयोग
18.3.1 उपलब्धि-स्तर और प्रगति का मूल्यांकन
18.3.2 अभिक्षमता का मूल्यांकन
18.3.3 रूचियों का मूल्यांकन
18.3.4 समस्याओं का मूल्यांकन
18.3.5 समायोजन का मापन
18.3.6 मानसिक योग्यता का मूल्यांकन
18.3.7 अभिवृत्तियों का मापन
18.3.8 प्रतिभाओं का मूल्यांकन
18.3.9 विकास का मूल्यांकन
18.3.10 अनुसंधान में उपयोग
18.4 परीक्षण कार्यक्रम
18.4.1 कार्यक्रम के लाभ
18.5 प्रश्नावली
18.6 संदर्भ ग्रंथ

18.0 प्रस्तावना

गत अध्याय में आपने मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का अर्थ, परिभाषाएं एवं उद्देश्यों के बारे में अध्ययन किया। प्रस्तुत अध्याय में हम मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के प्रारूपों के बारे में अध्ययन करेंगे। इसके अतिरिक्त मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का मार्गोपदेशन में उपयोग के बारे में भी अध्ययन करेंगे।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

18.1 उद्देश्य

1. इस पाठ के अध्ययन के बाद आप मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के प्रारूपों के बारे में जान पाएंगे।
2. इस अध्याय के अध्ययन के बाद आप मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की मार्गोपदेशन (Guidence) में उपयोगिताओं के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
3. इस अध्याय के अध्ययन के बाद आप इस अध्याय से संबंधित विभिन्न प्रकार के प्रश्नों के उत्तर दे पाएंगे।

18.2 मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के प्रारूप (Types)

मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का वर्गीकरण एक जटिल समस्या है, फिर भी विभिन्न दृष्टिकोणों एवं आधारों के अनुसार हम समस्त मनोवैज्ञानिक परीक्षणों को कई प्रकार से वर्गीकृत कर सकते हैं—

18.2.1 प्रशासन के आधार पर

प्रशासन के आधार पर किसी भी मनोवैज्ञानिक परीक्षण को व्यक्तिगत एवं सामूहिक प्रकार में वर्गीकृत किया जा सकता है। व्यक्तिगत परीक्षण में एक समय में एक ही व्यक्ति के विषय में अध्ययन किया जा सकता है। इस प्रकार के परीक्षणों में परीक्षक के लिए यह नितांत आवश्यक-सा हो जाता है कि वह व्यक्ति विशेष के साथ उचित सम्बंध स्थापित करें। इस प्रकार के परीक्षणों के प्रयोग में प्रशिक्षित एवं कुशल परीक्षक की आवश्यकता होती है क्योंकि वह सामंजस्य बनाये रखने में सहायक होता है। इस प्रकार के परीक्षण शाब्दिक के साथ-साथ क्रियात्मक पद वाले भी होते हैं जिनके द्वारा व्यक्ति की कार्य-पद्धति, गुणात्मक पहलुओं तथा सामाजिक एवं संवेगात्मक अनुक्रियाओं का निरीक्षण सम्भव होता है। चूंकि यह व्यक्ति व्यवहार का गूढ़ एवं गहन अध्ययन करते हैं इसलिए इनकी विश्वसनीयता एवं वैधता भी अधिक होती है। छोटे बच्चों एवं समस्याजीवियों के अध्ययन तथा चैकित्सिक कार्यों में इनका प्रयोग सदैव हितकर होता है। इसके विपरीत, सामूहिक परीक्षण में एक ही समय में सैकड़ों व्यक्तियों का अध्ययन किया जाता है। आज के इस व्यस्त युग में समय की बचत, धन की बचत, प्रशिक्षित व्यक्तियों की कमी के कारण हम प्राय: मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का प्रशासन सामूहिक रूप से करते हैं। इस प्रकार से परीक्षणों के प्रयोग में धन एवं समय की बचत के अतिरिक्त निष्कर्ष भी अत्यधिक वस्तुनिष्ठ होते हैं। आज के युग में ऐसे परीक्षणों का प्रशासन भी सामूहिक रूप से होने लगा है जिनको केवल व्यक्तिगत रूप से ही प्रशासित किया जाता था। उदाहरणार्थ, प्रोजेक्टर या चलचित्रों के द्वारा हम कई व्यक्तियों पर एक साथ परीक्षण प्रशासित कर सकते हैं।

18.2.2 मानकीकरण के आधार पर

मानकीकरण के आधार पर भी परीक्षणों को वर्गीकृत किया जा सकता है। कुछ परीक्षण ऐसे होते हैं जिन्हें मनोवैज्ञानिकों, शिक्षाशास्त्रियों, अनुसंधानकर्ताओं एवं ब्यूरो के सहयोग से निर्मित कर उनको बहुत बड़े समूहों पर प्रशासित किया जाता है तत्पश्चात् उनकी विश्वसनीयता, वैधता एवं मानकों को ज्ञात किया जाता है, इन परीक्षणों को मानकीकृत परीक्षणों की संज्ञा दी जाती है। दूसरी ओर, ऐसे भी परीक्षण देखने में आते हैं जिनका निर्माण अध्यापक या व्यक्ति विशेष अपने प्रयोजन के लिए समय-समय पर कर लेते हैं। इन परीक्षणों को अमानकीकृत या अध्यापक निर्मित परीक्षणों से सम्बंधित किया जाता है। इस श्रेणी में निबंधात्मक, वस्तुनिष्ठ एवं निदानात्मक परीक्षणों को सम्मिलित किया जाता है। बहुधा ऐसे परीक्षणों का निर्माण स्थानीय प्रयोग के लिए किया जाता है। इसलिए इसका प्रयोग केवल उन्हीं स्थानों तक सीमित है जिसके लिए इनका निर्माण हुआ है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

18.2.3 फलांकन के आधार पर

परीक्षण का आत्मनिष्ठ या वस्तुनिष्ठ होना उसकी फलांकन विधि पर निर्भर करता है। यदि एक परीक्षण पर विभिन्न परीक्षकों द्वारा एक ही परीक्षार्थी को एक से अंक प्रदान किये जावें तो वह परीक्षण पूर्णतया वस्तुनिष्ठ है, दूसरी ओर यदि परीक्षण के फलांकन में प्रत्युत्तरों के मूल्यांकन करने के लिए परीक्षक के पास कुछ निर्णय हैं तो परीक्षण आत्मनिष्ठ कहलायेगा।

18.2.4 रूप के आधार पर

रूप के आधार पर परीक्षणों को गति-परीक्षण एवं शक्ति-परीक्षणों में विभक्त किया जा सकता है। गति परीक्षणों (Speed tests) में प्रश्न सामान्य कठिनाई स्तर के होते हैं लेकिन इनमें प्रश्नों की संख्या इतनी अधिक होती है कि कोई भी परीक्षार्थी किसी निश्चित समयावधि में उन्हें हल नहीं कर सकता। इस प्रकार से किसी निश्चित समय में उसने कितनी समस्याएं हल कीं, इससे गति का मापन हो जाता है। इसके विपरीत, शक्ति-परीक्षणों (Power tests) में प्रश्नों को कठिनाई स्तर के क्रम में रखा जाता है। इसमें प्रश्नों को हल करने का कोई निश्चित समय नहीं होता है बल्कि इनके द्वारा किसी निश्चित विषय-क्षेत्र में परीक्षार्थी के उत्तर देने की क्षमता का मापन किया जाता है।

रूप के आधार पर परीक्षणों को सार्विक-परीक्षण एवं उप परीक्षण की श्रेणी में भी विभक्त किया जा सकता है। सार्विक परीक्षण (Omnibus test) में संपूर्ण परीक्षा को एक निश्चित समय अवधि में समाप्त किया जाता है, बल्कि उप-परीक्षण (Sub-test) खण्डों में विभक्त होता है अर्थात् इस प्रकार के परीक्षण में कई उपपरीक्षाएं सम्मिलित होती हैं जिनके करने का समय भी अलग-अलग निर्धारित होता है।

18.2.5 माध्यम के आधार पर

परीक्षण के माध्यम के आधार पर परीक्षणों को पेपर-पेंसिल परीक्षण एवं निष्पादन परीक्षणों की श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है। बुद्धि-परीक्षणों का वर्गीकरण तो प्रायः माध्यम के आधार पर ही किया जाता है। पेपर-पेन्सिल परीक्षण (Paper-Pencil Test) में प्रत्येक प्रयोज्य को एक परीक्षण पुस्तिका दी जाती है जिसमें कुछ शाब्दिक या अशाब्दिक प्रकार के पद होते हैं तथा इनके उत्तर देने के लिए वह परीक्षण-पुस्तिका या उत्तर-पुस्तिका का प्रयोग करता है। आज ऐसे ही परीक्षणों के प्रयोग की व्यापकता है। निष्पादन परीक्षणों (Performance Tests) में व्यक्ति विभिन्न वस्तुओं, चित्रों, यांत्रिक उपकरणों, ब्लॉक आदि का प्रयोग करता है। इस प्रकार के परीक्षणों का दैनिक व्यावहारिक जीवन में विशेष महत्त्व होता है। इनका प्रयोग बहुधा कम ही किया जाता है क्योंकि ये वैयक्तिक होते हैं।

इसके अतिरिक्त भाषा के माध्यम के अनुसार भी परीक्षणों को भाषाबद्ध परीक्षणों एवं भाषा रहित परीक्षणों में विभक्त कर सकते हैं। भाषाबद्ध परीक्षण (Language test) में भाषा का प्रयोग किया जाता है इसलिए इनका प्रयोग केवल उस भाषा को समझने तथा जानने वाले व्यक्तियों तक ही सीमित होता है। इसके विपरीत भाषा-रहित परीक्षण (Non-language test) में चित्रों, आकृतियों आदि का प्रयोग होता है। इनका निर्माण अशिक्षित, छोटे बच्चों, विदेशी भाषा जानने वालों, बहरे एवं गूंगों के लिए किया जाता है। इस प्रकार का परीक्षण पेपर-पेंसिल एवं निष्पादन दोनों ही प्रकार का हो सकता है।

18.2.6 शीलगुण की प्रकृति के आधार पर

परीक्षण का सबसे उपयुक्त एवं सर्वमान्य वर्गीकरण इस आधार पर किया जाता है कि वह किन शीलगुणों (Traits) का मापन करता है अर्थात् उसका कार्य क्या है? आज हम सभी मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का वर्गीकरण

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

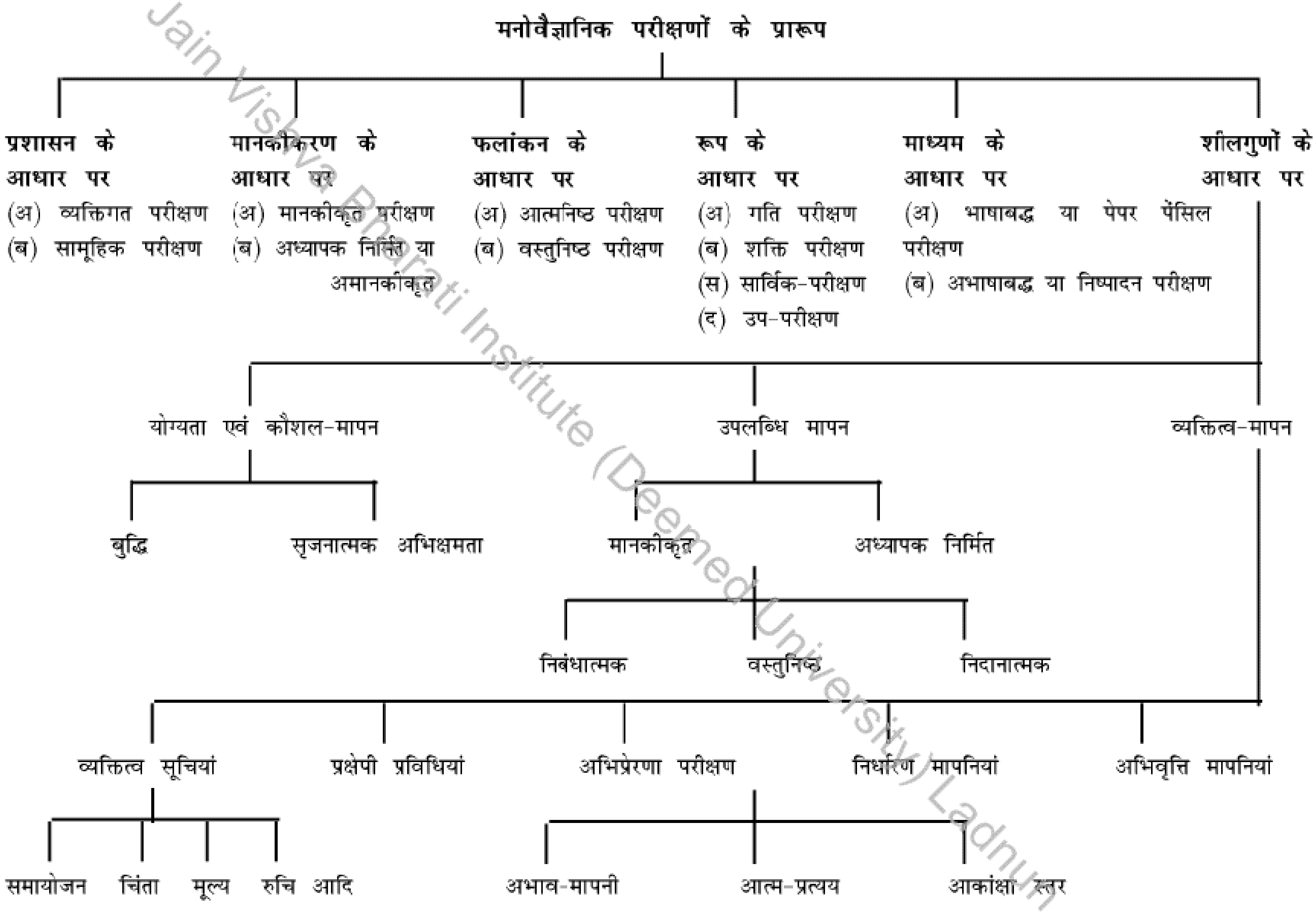
मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के प्रारूप
प्रशासन के आधार पर
(अ) व्यक्तिगत परीक्षण
(ब) सामूहिक परीक्षण
मानकीकरण के आधार पर
(अ) मानकीकृत परीक्षण
(ब) अध्यापक निर्मित या अमानकीकृत
फलांकन के आधार पर
(अ) आत्मनिष्ठ परीक्षण
(ब) वस्तुनिष्ठ परीक्षण
रूप के आधार पर
(अ) गति परीक्षण
(ब) शक्ति परीक्षण
(स) सार्विक-परीक्षण
(द) उप-परीक्षण
माध्यम के आधार पर
(अ) भाषाबद्ध या पेपर पेंसिल परीक्षण
(ब) अभाषाबद्ध या निष्पादन परीक्षण
शीलगुणों के आधार पर
योग्यता एवं कौशल-मापन
उपलब्धि मापन
व्यक्तित्व-मापन
बुद्धि
सृजनात्मक अभिक्षमता
मानकीकृत
अध्यापक निर्मित
निबंधात्मक
वस्तुनिष्ठ
निदानात्मक
व्यक्तित्व सूचियां
प्रक्षेपी प्रविधियां
अभिप्रेरणा परीक्षण
निर्धारण मापनियां
अभिवृत्ति मापनियां
समायोजन
चिंता
मूल्य
रुचि आदि
अभाव-मापनी
आत्म-प्रत्यय
आकांक्षा स्तर

इस दृष्टिकोण से करते हैं। प्रस्तुत पुस्तक के द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ एवं पंचम भाग में इसी वर्गीकरण के अनुसार समस्त प्रकार के मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का विस्तारपूर्वक उल्लेख किया गया है। प्राय: मापन के आधार पर परीक्षणों को हम तीन मुख्य श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं—

18.2.6.1 योग्यता तथा कौशल मापन सम्बंधी परीक्षण

इस श्रेणी के अन्तर्गत हम उन समस्त परीक्षणों को सम्मिलित करते हैं जो व्यक्ति की विभिन्न योग्यताओं का मापन करते हैं। बुद्धि परीक्षण, सृजनात्मक एवं अभिक्षमता-परीक्षण इसके उदारहण हैं।

(अ) **बुद्धि-परीक्षण**—इस प्रकार के परीक्षण व्यक्ति की सामान्य मानसिक योग्यता का मापन करते हुए उसके समायोजन की ओर इंगित करते हैं, जैसे—जलोटा साधारण मानसिक योग्यता परीक्षा, जोशी सामान्य मानसिक योग्यता परीक्षा, आहूजा सामूहिक बुद्धि-परीक्षण, नाफड़े अशाब्दिक बुद्धि-परीक्षण, जोशी एवं त्रिपाठी अशाब्दिक बुद्धि-परीक्षण, प्रकाश नारायण मेहरोत्रा मिश्रित प्रकार का सामूहिक बुद्धि परीक्षण, भाटिया निष्पादन परीक्षण माला आदि-आदि।

(ब) **सृजनात्मक परीक्षण**—यह व्यक्ति के आधारभूत कौशल (Basic skills) का मापन करता है। इसके माध्यम से व्यक्ति के सृजनात्मक चिंतन का मापन होता है।

(स) **अभिक्षमता परीक्षण**—अभिक्षमता परीक्षण विशिष्ट क्षेत्रों में व्यक्ति की विशिष्ट योग्यता का मूल्यांकन करते हैं। उदाहरणार्थ, ए.एन. शर्मा की यांत्रिक अभिक्षमता परीक्षणमाला (M.A.T.B.) द्वारा विभिन्न यांत्रिक योग्यताओं के सम्बंध में ज्ञात किया जाता है, इसी प्रकार किरन गुप्ता के लिपिक अभिक्षमता परीक्षण (C.A.T.) के माध्यम से विभिन्न लिपिक योग्यताओं के विषय में जाना जा सकता है।

18.2.6.2 उपलब्धि मापन सम्बंधी परीक्षण

इस वर्गीकरण के अन्तर्गत वे समस्त प्रकार के परीक्षण सम्मिलित किये जाते हैं जो किसी निश्चित समय में प्रशिक्षण देने के पश्चात् व्यक्ति की उपलब्धि का मापन करते हैं। इस श्रेणी में तीन-प्रकार के परीक्षण होते हैं—

(अ) **निबंधात्मक परीक्षण**—इस प्रकार के परीक्षण में एक निश्चित समय अवधि में कुछ विवरणात्मक या व्याख्या प्रश्नों को दिया जाता है और उनके दूसरों को निबंध के रूप में प्राप्त किया जाता है।

(ब) **वस्तुनिष्ठ परीक्षण**—वस्तुनिष्ठ परीक्षणों में कुछ पदों को एकत्रित करके हां, नहीं में उनके उत्तरों को जाना जाता है।

(स) **निदानात्मक परीक्षण**—इस प्रकार के परीक्षणों द्वारा किसी विषय में व्यक्ति की कठिनाइयों को ज्ञात कर उन्हें दूर करने का प्रयास किया जाता है।

18.2.6.3 व्यक्तित्व विशेषताओं के मापन सम्बंधी परीक्षण

इस श्रेणी में परीक्षण का एक विशाल समूह सम्मिलित है। विभिन्न प्रकार की व्यक्तित्व सूचियों, प्रविधियों, समायोजन सूचियों, चिंता, नैराश्य एवं स्नायुदौर्बल्य परीक्षण, मूल्य अध्ययन, रुचि परीक्षण, अभिप्रेरण परीक्षण तथा विभिन्न अभिवृत्ति मापनियों के माध्यम से व्यक्तित्व की विभिन्न विशेषताओं का मापन कर व्यक्तित्व के जटिल स्वरूप को समझने का प्रयास किया जाता है।

(अ) **व्यक्तित्व सूचियां**—प्राय: एक ओर ऐसे व्यक्तित्व परीक्षण मिलते हैं जिनसे व्यक्तित्व के एक-विमा या बहु-विमा वाले शीलगुणों का अध्ययन होता है तो दूसरी ओर ऐसी भी व्यक्तित्व सूचियां हैं जो स्वतंत्र रूप से एक या कई शीलगुणों का प्रत्यक्ष रूप से मापन करती हैं। उदाहरणार्थ, मासलो की सुरक्षा-असुरक्षा सूची, न्यूमैन कोसाल्ट की अन्तर्मुखी-बहिर्मुखी मापनी जहां व्यक्तित्व के एक-विमा वाले

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

शीलगुण का मापन करती है, वहीं कैटेल की सोलह व्यक्तित्व प्रश्नावली (16 P.F.) व्यक्तित्व के सोलह पक्षों का विमा के आधार पर मापन करती है। वर्नरिटर की व्यक्तित्व सूची व्यक्तित्व के 6 पक्षों का मापन करती है।

(ब) **स्वभाव अनुसूचियां** — मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्ति के स्वभाव के मापन हेतु भी परीक्षणों का निर्माण किया है। इस प्रकार की अनुसूचियों का निर्माण करने वालों में थर्स्टन तथा गिल्फर्ड-जिमरमैन का नाम उल्लेखनीय है।

(स) **प्रक्षेपी प्रविधियां** — व्यक्तित्व के कई पक्ष ऐसे जटिल तथा अज्ञात हैं जिनका मापन प्राय: असम्भव ही है क्योंकि व्यक्तित्व की आन्तरिक संरचना जटिल है। फिर भी मनोवैज्ञानिकों ने ऐसे जटिल पक्षों के मापन हेतु भी विभिन्न प्रक्षेपी प्रविधियों — शब्द साहचर्य विधि, चित्र-साहचर्य विधि, वाक्य-पूर्ति परीक्षण, रौर्शा स्याही धब्बों का परीक्षण, प्रसंगात्मक बोध परीक्षण (T.A.T.) तथा बालक बोध परीक्षण (C.A.T.) की रचना का कार्य सम्पन्न किया।

(द) **अन्य व्यावहारिक विधियां** — व्यक्तित्व के कई पक्ष ऐसे होते हैं जिनके मापन के लिए किसी भी प्रकार के परीक्षणों का प्रयोग करना प्राय: असम्भव ही है। अत: विभिन्न व्यावहारिक विधियों — साक्षात्कार, प्रश्नावली, अनुसूची, निरीक्षण विधि, निर्धारण मापनियों, व्यक्ति इतिहास विधि, परिवेशात्मक परीक्षण, आत्म-कथा आदि के माध्यम से व्यक्तित्व का मापन एवं मूल्यांकन किया जा सकता है।

(य) **रुचि एवं मूल्य-परीक्षण** — व्यक्ति की रुचियों एवं मूल्यों का अध्ययन करने के लिए विभिन्न रुचि एवं मूल्य-परीक्षणों की रचना हुई है। व्यक्तिगत क्षेत्र में रुचि के मापन के लिए चटर्जी का अभाषित प्राथमिक प्रपत्र 962 रूप, आर.पी. सिंह की व्यावसायिक एवं शैक्षिक रुचि-सूचियां तथा एस.पी. कुलश्रेष्ठ के व्यावसायिक एवं शैक्षिक रुचि-प्रपत्र तथा विभिन्न मूल्यों के अध्ययन हेतु ओझा का मूल्य-परीक्षण, एस.पी. कुलश्रेष्ठ का मूल्य अध्ययन, शैरी एवं वर्मा का व्यक्तित्व मूल्य प्रश्नावली अत्यंत उल्लेखनीय हैं।

(र) **समायोजन सूचियां** — जैसा कि मनोविज्ञान की आधुनिक परिभाषा समायोजन पर विशेष महत्त्व देती है, अतएव व्यक्तिगत मापन के क्षेत्र में समायोजन मापने के लिए विभिन्न समायोजन सूचियों का निर्माण किया गया जो व्यक्तित्व के सामान्य समायोजन या विभिन्न विशिष्ट क्षेत्रों में समायोजन की मात्रा को इंगित करती हैं। सामान्य समायोजन मापने के लिए प्रमोदकुमार एवं एच.एस. अस्थाना की समायोजन सूचियां तथा विशिष्ट क्षेत्रों में समायोजन मापने के लिए मधुसूदन लाल सक्सेना, वी.के. मित्तल, एम. डी. बेंगाली, ए.के.पी. सिन्हा एवं आर.पी.सिंह आदि की समायोजन सूचियां अत्यंत उल्लेखनीय हैं।

(ल) **नैराश्य, चिंता, स्नायुदौर्बल्य परीक्षण** — आज के इस व्यस्त जीवन में जहां एक ओर व्यक्ति की आवश्यकताओं, कल्पनाओं आदि में वृद्धि हो रही है वहीं दूसरी ओर विभिन्न मनोवैज्ञानिक पहलुओं — नैराश्य, चिंता, स्नायुदौर्बल्य आदि का जोर भी बढ़ता जा रहा है। अतएव इन पहलुओं के मापन हेतु भी मनोवैज्ञानिकों ने परीक्षणों की रचना की है। नैराश्य मापने के लिए उदय पारीक, बी.एम. दीक्षित एवं डी.एन. श्रीवास्तव तथा चिंता मापन के लिए दुर्गानन्द सिन्हा, ए.के.पी. सिन्हा, एल.एन.के. सिन्हा, टेलर एवं कैटिल एवं स्नायुदौर्बल्य मापने के लिए आर.बी. कैटिल आदि के प्रयास उल्लेखनीय हैं।

(व) **अभिवृत्ति मापनियां** — व्यक्तित्व के कुछ पहलुओं के मापन में अभिवृत्ति मापनियां अत्यंत सहायक होती हैं। इनके द्वारा हम अमुक व्यक्ति के विचारों को किसी विशेष व्यक्ति या वस्तु के प्रति जान सकते हैं।

इस प्रकार से हमने देखा कि मानसिक परीक्षणों का वर्गीकरण विभिन्न दृष्टिकोणों के आधार पर किया जा सकता है किंतु मनोवैज्ञानिक अंतिम वर्गीकरण को ही अत्यधिक महत्त्व देते हैं क्योंकि यह वर्गीकरण अत्यधिक

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

स्पष्ट होने के साथ-साथ मापन के आधारभूत उद्देश्य से सम्बंधित है। मनोवैज्ञानिक मापन का मुख्य उद्देश्य विभिन्न मानसिक शीलगुणों का अध्ययन करना होता है अतएव इन्हीं मापे जाने वाले शीलगुणों को आधार मानकर परीक्षणों का वर्गीकरण करना अत्यंत उपयुक्त एवं न्याय-संगत होगा। प्रस्तुत पाठ में भी इसी वर्गीकरण को आधार मानकर समस्त मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का उल्लेख करने का प्रयास किया गया है।

18.3 मार्गोपदेशन में मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का उपयोग (Use of psychological tests in guidance)

मार्गोपदेशन के तीन क्षेत्र हैं— 1. शैक्षिक मार्गोपदेशन (Educational Guidance), 2. व्यावसायिक मार्गोपदेशन (Vocational Guidance) तथा 3. व्यक्तिगत मार्गोपदेशन (Personal Guidance)। मार्गोपदेशन के इन तीनों क्षेत्रों में मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का उपयोग किया जाता है।

शैक्षिक मार्गोपदेशन में मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के प्रयोग से बालकों की योग्यताओं, क्षमताओं तथा विभिन्न मानसिक प्रक्रियाओं का विश्लेषण किया जाता है। तत्पश्चात् उन्हें उनकी आवश्यकताओं एवं योग्यताओं के अनुसार शिक्षा प्रदान की जाती है। शिक्षा ग्रहण करने वाले बालकों की मानसिक प्रक्रियाओं तथा व्यक्तित्व की रचना के विश्लेषण हेतु मनोवैज्ञानिकों ने विभिन्न प्रकार के परीक्षणों का निर्माण किया है। इनमें मुख्य हैं— 1. मानसिक योग्यता-परीक्षण (Tests of Mental Abilities), 2. बुद्धि-परीक्षण (Intelligence Tests), 3. अभिरुचि-परीक्षण (Aptitude Tests), 4. निष्पत्ति-परीक्षण (Achievement Tests), 5. रुचि-परीक्षण (Interest Tests), 6. व्यक्तित्व-परीक्षण (Personality Tests)।

इस प्रकार शिक्षा-सम्बन्धी समस्याओं के समाधान हेतु, पाठ्य-विषयों की कठिनाई की जानकारी के लिए तथा पिछड़े एवं मन्द-बुद्धि बालकों की योग्यताओं को समझने के लिए मानसिक परीक्षणों का उपयोग किया जाता है।

व्यावसायिक मार्गोपदेशन में मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का बहुत बड़ा हाथ है। प्रत्येक उद्योग की उन्नति उचित कर्मचारियों के चयन पर आधारित होती है। उद्योगों में मनोवैज्ञानिक परीक्षण दो प्रकार से उपयोग में लाये जाते हैं। एक पक्ष तो व्यक्ति-विश्लेषण (Individual Analysis) का और दूसरा पक्ष कार्य-विश्लेषण (Job Analysis) का है। पहले पक्ष में व्यक्ति की मानसिक योग्यताओं, बुद्धि, अभिरुचि, रुचि तथा व्यक्तित्व सम्बन्धी अनेक समस्याओं का विश्लेषण किया जाता है। दूसरे पक्ष के अन्तर्गत कार्य की आवश्यकताओं की जानकारी प्राप्त करने के लिए इन परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है, अर्थात् कार्य-विशेष के लिए किस प्रकार की बुद्धि, रुचि, अभिरुचि एवं व्यक्तित्व के व्यक्ति की आवश्यकता है।

व्यक्तिगत मार्गोपदेशन में मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के द्वारा व्यक्ति के उस व्यावहारिक पक्ष (असामान्य व्यवहार : Abnormal Behaviour) का अध्ययन किया जाता है, जिसके कारण वह अपने व्यवसाय तथा समाज में 'समायोजन' (Adjustment) स्थापित नहीं कर पाता है।

इसके अतिरिक्त मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के निम्नलिखित उपयोग हैं—

18.3.1 उपलब्धि-स्तर और प्रगति का मूल्यांकन

विभिन्न विषयों का अध्ययन करने के उपरान्त उनमें कितनी उपलब्धि प्राप्त हुई है? किस विषय में कितनी प्रगति हुई है? किस विषय में कहां तक बालक ने पूर्णत: सीखा है और कहां कमजोरी है? आदि बातों का पता उपलब्धि परीक्षण से सरलता से किया जा सकता है।

18.3.2 अभिक्षमता का मूल्यांकन

विभिन्न विषयों या कार्यों के लिए विभिन्न अभिक्षमताओं की आवश्यकता होती है। सामान्यत:

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

बालक-बालिकाओं की अभिक्षमताओं का ज्ञान अवलोकन मात्र से नहीं हो सकता बल्कि उपयुक्त अभिक्षमता परीक्षा से ही अभिक्षमताओं का मूल्यांकन करना सम्भव है। इनके निष्कर्षों के आधार पर ही छात्रों के अध्ययन के लिए वैकल्पिक विषयों या व्यवसाय के चयन के लिए परामर्श दिया जा सकता है। प्राप्त प्रदत्त से भविष्य में सफलता की भविष्यवाणी की जा सकती है।

18.3.3 रुचियों का मूल्यांकन

रुचि परीक्षणों का निर्माण विद्यालयीन और महाविद्यालयीन छात्र- छात्राओं की भिन्न-भिन्न प्रकार की रुचियों का मूल्यांकन करने के लिए किया जाता है। रुचि समूह ज्ञात होने पर उसके विकास के लिए उपयुक्त अवसर और प्रोत्साहन दिया जा सकता है। रुचिपूर्ण विषय का कार्य मिलने पर सफलता प्राप्त होने की पूरी सम्भावना होती है। रुचि के आधार पर छात्र-छात्राएं अपने उच्च अध्ययन की और व्यवसाय की योजना तैयार कर सकते हैं।

18.3.4 समस्याओं का मूल्यांकन

विभिन्न प्रकार की समस्याओं के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के परीक्षणों का उपयोग किया जा सकता है। समस्या के कारणों और निवारण का ज्ञान प्रदत्तों प्राप्तांकों के आधार पर किया जा सकता है।

18.3.5 समायोजन का मापन

सामाजिक विकास, सामाजिक एवं संवेगात्मक परिपक्वता, विभिन्न छात्रों में समायोजन का स्तर, समायोजन की कठिनाई आदि के सम्बंध में समायोजन परिसूची से जानकारी प्राप्त की जा सकती है। परीक्षण से प्राप्त फल के आधार पर समायोजन के लिए परामर्श दिया जा सकता है।

18.3.6 मानसिक योग्यता का मूल्यांकन

प्रत्येक क्षेत्र में सफलता के लिए अलग-अलग प्रकार की मानसिक योग्यता की आवश्यकता होती है। विभिन्न विषयों के अध्ययन एवं व्यवसाय के लिए विशेष मानसिक योग्यता होनी चाहिए, जैसे— अंक प्रवीणता, तर्क-योग्यता, भाषा-प्रवीणता, समस्या समाधान योग्यता, सामान्य बौद्धिक क्षमता आदि। बुद्धि-परीक्षण के आधार पर मानसिक योग्यता का मूल्यांकन कर उपर्युक्त विषय अध्ययन हेतु दिये जा सकते हैं। विशेष मानसिक योग्यता के अनुकूल व्यवसाय के लिए परामर्श दिया जा सकता है। अविकसित या अर्द्ध-विकसित मस्तिष्क वाले बालक-बालिकाओं की पहचान और उचित परामर्श के लिए भी बुद्धि-परीक्षण बहुत उपयोगी हैं।

18.3.7 अभिवृत्तियों का मापन

समुचित विकास के लिए सकारात्मक अभिवृत्तियां आवश्यक हैं। अभिवृत्ति जानी जा सकती है। अभिवृत्ति मापनी से प्राप्त प्रदत्त के आधार पर अभिवृत्ति में परिवर्तन लाने और वांछित अभिवृत्तियों के विकास में सहायता मिलती है।

18.3.8 प्रतिभाओं का मूल्यांकन

प्रायः छात्र स्वयं अपनी प्रतिभाओं से अनभिज्ञ होते हैं। यदि उन्हें अपनी प्रतिभाओं का ज्ञान करा दिया जाए तो वे उनके विकास और उपयोग के लिए स्वयं प्रेरित हो जाते हैं। प्रत्येक छात्र या छात्रा में कोई न कोई प्रतिभा, कौशल या विशेष योग्यता अवश्य होती है, केवल उनके मापन और मूल्यांकन द्वारा उन्हें उसका ज्ञान कराने की आवश्यकता है।

18.3.9 विकास का मूल्यांकन

शिक्षा का उद्देश्य छात्र-छात्राओं के व्यक्तित्व, सामाजिक, बौद्धिक, संवेगात्मक, नैतिक, चारित्रिक आदि विकास में सहायता देना है। कौन-सा छात्र किस क्षेत्र में कितनी प्रगति कर रहा है और कौन-सा छात्र कितना

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

पिछड़ा है, इसका मूल्यांकन उपर्युक्त परीक्षण से किया जा सकता है। प्रदत्त के अनुसार विकास हेतु उचित परामर्श दिया जा सकता है।

बोध प्रश्न :

---

1. रूप के आधार पर परीक्षण क्या होते हैं?

2. सृजनात्मक परीक्षण किस काम आते हैं?

3. मार्गोपदेशन के तीन सूत्र कौन कौन से हैं?

18.3.10 अनुसंधान में उपयोग

शिक्षा और शैक्षिक विधि को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए समय-समय पर अनुसंधान, अध्ययन और प्रयोग होते रहते हैं। इस प्रकार के अनुसंधान, अध्ययनों और प्रयोगों में परीक्षणों से विशेष सहायता मिलती है।

18.4 परीक्षण–कार्यक्रम

विद्यालय में मनोवैज्ञानिक परीक्षण की एक सुनियोजित योजना होनी चाहिए। कार्यक्रम की योजना सत्र के प्रारम्भ में ही तैयार कर लेनी चाहिए। व्यवस्थित कार्यक्रम छात्र-छात्राओं के बहुमुखी संवर्द्धन के लिए बहुत उपयोगी है। परीक्षण कार्यक्रम (Testing programme) के पांच मुख्य अंग हैं—1. परीक्षण देना, 2. मूल्यांकन करना, 3. अंकों का विश्लेषण करना, 4. प्राप्त फल के अनुसार मार्गदर्शन देना तथा 5. अनुवर्ती अध्ययन करना।

परीक्षण कार्यक्रम के लिए उपयोग में लाये जाने वाले परीक्षणों का चुनाव बड़ी सावधानी से करना चाहिए। चुनाव करने में निम्न बातें ध्यान में रखनी चाहिए—

1. विद्यालय एवं छात्रों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर परीक्षण चुनना चाहिए।

2. परीक्षण छात्र-छात्राओ की आयु, शिक्षा, पर्यावरण आदि के अनुकूल हो, अर्थात् जिन छात्र-छात्राओं पर परीक्षण का उपयोग करना हो उसी क्षेत्र के बालक-बालिकाओं पर वह परीक्षण मानकीकृत किया गया हो। इंग्लैण्ड और अमेरिका में बने परीक्षणों का भारतीय छात्र-छात्राओं पर प्रयोग करना उचित नहीं है।

3. अध्यापक या परामर्शक को परीक्षण की विधि अच्छी तरह से मालूम होनी चाहिए। इसके लिए उन्हें परीक्षण विधि में प्रशिक्षित होना चाहिए।

4. परीक्षण के सम्बंध में छात्र-छात्राओं को पूर्व में पूरी जानकारी दे देनी चाहिए।

5. परीक्षण की एक निश्चित समय-सारिणी होनी चाहिए और छात्र-छात्राओं को इसके बारे में पूर्व जानकारी होनी चाहिए।

6. परीक्षण का कक्ष शांत और सुविधाजनक हो। दूर-दूर बैठने के लिए पर्याप्त स्थान हो। कमरा स्वच्छ, हवादार और प्रकाशमय हो। फर्नीचर आदि आरामदेय एवं पर्याप्त हो। ब्लैक-बोर्ड आदि की व्यवस्था हो।

7. सामूहिक परीक्षण सदैव छोटे-छोटे समूहों में लेना चाहिए। एक समूह में अधिक से अधिक 25 से 30 छात्र ही रखे जाने चाहिए।

8. परीक्षण की विधि छात्रों को अच्छी तरह समझ में आ जानी चाहिए। कब प्रारम्भ करना, कब समाप्त करना, परीक्षण पुस्तिका का उपयोग और उत्तर-पत्रिका पर लिखने के स्थान आदि की विधि परीक्षण शुरु होने के पूर्व उन्हें अच्छी तरह समझा देनी चाहिए।

9. परीक्षण सम्बन्धी निर्देश स्पष्ट होने चाहिए। परीक्षण प्रारम्भ होने से पूर्व परीक्षक यह निश्चित कर ले कि सब छात्रों ने निर्देश अच्छी तरह से समझ लिये हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

10. मार्गदर्शन का आधार केवल एक ही परीक्षण का फल नहीं होना चाहिए। कम से कम दो परीक्षणों के फल की आपस में तुलना कर लेनी चाहिए। साथ ही अपरीक्षण विधि से प्रदत्त की भी सहायता लेनी चाहिए। छात्र के सम्बन्ध में निर्णय लेने के पूर्व अन्य स्रोतों से प्राप्त प्रदत्त का विश्लेषण कर मार्गदर्शन देना चाहिए।

18.4.1 कार्यक्रम से लाभ

1. मार्गदर्शन कार्यक्रम द्वारा वास्तविक प्रदत्त मिल जाने से परामर्श में सहायता मिलती है।
2. समय और परिश्रम की बचत होती है।
3. अभिरुचि और योग्यतानुसार विषय और कार्य मिल जाने से विकासएवं प्रगति की पूर्ण सम्भावना होती है।
4. समय पर परीक्षण फल मालूम हो जाने पर छात्र को तैयारी करने का अवसर मिल जाता है।
5. व्यवस्थित कार्यक्रम छात्र-छात्राओं और विषय की प्रगति में सहायक होता है।

18.5 अभ्यास के लिए प्रश्न

1. मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के प्रारूपों को समझाइये।
2. शिक्षा क्षेत्र में मार्गोपदेशन में उपयोगी परीक्षणों को समझाइये।
3. मार्गोपदेशन में उपयोगी महत्त्वपूर्ण परीक्षणों को स्पष्ट कीजिए।

18.6 संदर्भ ग्रंथ

1. आधुनिक मनोवैज्ञानिक परीक्षण एवं मापन—डॉ. महेश भार्गव, हरप्रसाद भार्गव, शैक्षिक प्रकाशक 4/230, कचहरी घाट, आगरा
2. व्यावहारिक मनोविज्ञान—डॉ. आर.के. ओझा, साहित्य प्रकाशन, आगरा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–19 मार्गोपदेशन एवं परामर्श में महत्त्वपूर्ण परीक्षण

संरचना

19.0 प्रस्तावना
19.1 उद्देश्य
19.2 मार्गोपदेशन एवं परामर्श में उपयोगी मनोवैज्ञानिक परीक्षण
19.3 बुद्धि परीक्षण
19.3.1 बुद्धि परीक्षणों का उपयोग
19.4 व्यक्तित्व परीक्षण
19.4.1 प्रश्नावलियां
19.4.2 परिसूचियां
19.4.3 निर्धारण मापनी
19.4.4 प्रक्षेपी परीक्षण
19.4.4.1 रोर्शा परीक्षण
19.4.4.2 प्रसंगात्मक बोध परीक्षण
19.4.4.3 शब्द परीक्षण
19.4.4.4 वाक्य–पूर्ति परीक्षण
19.4.5 व्यक्तित्व परीक्षणों का उपयोग
19.5 अभिक्षमता परीक्षण
19.5.1 अभिक्षमता परीक्षणों के उपयोग
19.6 रूचि परीक्षण
19.6.1 रूचि परीक्षणों का उपयोग
19.7 अभिवृत्ति परीक्षण
19.7.1 अभिवृत्ति मापनीयों का उपयोग
19.8 उपलब्धि परीक्षण
19.8.1 उपलब्धि परीक्षण के उपयोग
19.9 समायोजन परिसूचियां
19.10 निर्देशन एवं संदर्शन में प्राप्तांकों के उपयोग
19.11 प्रश्नावली
19.12 संदर्भ ग्रंथ

19.0 प्रस्तावना

प्रिय विद्यार्थियो, गत अध्याय में आपने मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का अर्थ परिभाषाएं एवं उद्देश्यों के बारे में अध्ययन किया। इसके अतिरिक्त गत अध्याय में आपने मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के मार्गोपदेशन में उपयोगिताओं के बारे में जानकारी प्राप्त की। इस अध्याय में आप मार्गोपदेशन एवं परामर्श में उपयोगी महत्त्वपूर्ण परीक्षणों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

19.1 उद्देश्य

1. इस पाठ के अध्ययन के बाद आप मार्गोपदेशन में उपयोगी महत्त्वपूर्ण मनोवैज्ञानकि परीक्षणों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

2. इस अध्याय के अध्ययन के बाद परामर्श में काम आने वाले महत्त्वपूर्ण परीक्षणों के बारे में अध्ययन कर पायेंगे। उपयोगिताओं के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

3. इस अध्याय के अध्ययन के बाद आप इस अध्याय से संबंधित विभिन्न प्रकार के प्रश्नों के उत्तर दे पायेंगे।

19.2 मार्गोपदेशन एवं परामर्श में उपयोगी मनोवैज्ञानिक परीक्षण (Psychological tests in guidance and conscelling)

1. कार्य : विविध कृत पाठ्यक्रम में छात्रों का वर्गीकरण करना।

परीक्षण : बुद्धि, अभिक्षमता, रूचि तथा उपलब्धि।

2. कार्य : पाठ्य सहगामी क्रियाओं में छात्रों का वर्गीकरण करना।

परीक्षण : बुद्धि, अभिक्षमता एवं रूचि।

3. कार्य : समायोजन में सहायता पहुंचाना।

परीक्षण : समायोजन एवं व्यक्तित्व।

4. कार्य : उच्च अध्ययन हेतु परामर्श देना।

परीक्षण : बुद्धि, अभिक्षमता एवं शैक्षिक अभिरूचि।

5. कार्य : व्यवसाय के चुनाव हेतु परामर्श देना।

परीक्षण : बुद्धि, अभिक्षमता, रूचि तथा व्यक्तित्व।

6. कार्य : समस्यामूलक छात्र की समस्या निवारण हेतु परामर्श।

परीक्षण : बुद्धि, समायोजन, व्यक्तित्व।

7. कार्य : कम शैक्षणिक उपलब्धि वाले छात्र के लिए परामर्श।

परीक्षण : बुद्धि, समायोजन एवं उपलब्धि।

8. कार्य : सर्वांगीण विकास के लिए मार्गदर्शन।

परीक्षण : बुद्धि, व्यक्तित्व, समायोजन और अभिवृति।

9. कार्य : विभिन्न कार्यों के समूह बनाने के लिए।

परीक्षण : विशेष मानसिक योग्यता, रूचि तथा अभिवृति।

10. कार्य : व्यक्ति-अध्ययन के लिए।

परीक्षण : बुद्धि, व्यक्तित्व, समायोजन, अभिक्षमता, रूचि आदि।

11. कार्य : शोध कार्य के लिए।

परीक्षण : विषय के अनुसार परीक्षण उपयोग में लाये जाने चाहिए।

19.3 बुद्धि-परीक्षण

मार्गदर्शन एवं परामर्श में बुद्धि-परीक्षणों का विशेष स्थान है। बुद्धि-परीक्षणों को सामान्य बुद्धि परीक्षण, विशिष्ट बुद्धि-परीक्षण, मानसिक-परीक्षण, मानसिक योग्यता परीक्षण आदि भी कहते हैं। आर्थर जोन्स का मत है कि

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

''प्रत्येक परीक्षण किसी न किसी रूप में मानसिक योग्यताओं का मापन करता है।'' जैसे—विद्यालय विषय सम्बन्धी परीक्षण केवल विषय की प्रगति या उपलब्धि परीक्षण ही नहीं होते किन्तु मानसिक-परीक्षण भी होते हैं, क्योंकि वे मानसिक योग्यता का भी मापन करते हैं। परन्तु जो परीक्षण केवल मानसिक योग्यता का मापन करने के लिए बनाये जाते हैं वे बुद्धि-परीक्षण कहलाते हैं।

मार्गदर्शन में बुद्धि-परीक्षण का उपयोग करने से पूर्व यह निश्चित करना आवश्यक होता है कि किस प्रकार की मानसिक योग्यता का मापन करना है। सामान्यत: बुद्धि-परीक्षण जन्मजात मानसिक योग्यता, सामाजिक योग्यता, तथा पर्यावरण के अनुकूल अपने व्यवहार में परिवर्तन लाने की क्षमता का मापन करने की दृष्टि से बनाये जाते हैं। बुद्धि-परीक्षण केवल वर्तमान मानसिक योग्यता या व्यवहार की क्षमता का ही मापन नहीं करते हैं किन्तु वे भविष्य का भी पूर्व-कथन करते हैं। बुद्धि-परीक्षण में समायोजन की क्षमता या समस्या हल करने की योग्यता का ही मूल्यांकन नहीं होता किन्तु भविष्य में विभिन्न परिस्थितियों में समायोजन की क्षमता या समस्या हल करने की योग्यता का भी ज्ञान हो जाता है। सामान्यत: बुद्धि-परीक्षण केवल वर्तमान परिस्थिति में कार्य-सम्पादन करने की कला का मूल्यांकन करते हैं। परीक्षण में जितने प्रकार की योग्यताओं या कार्य के क्षेत्र होंगे वह परीक्षण केवल उन क्षेत्रों में व्यक्ति को बौद्धिक योग्यता का मापन करने में समर्थ होगा। बुद्धि-परीक्षण तर्क-योग्यता, अंक प्रवीणता, अन्तर या समानता समझने की योग्यता, समस्या हल करने की योग्यता, शीघ्र निर्णय लेने की योग्यता, विभिन्न परिस्थितियों में समायोजन की योग्यता, नेतृत्व की योग्यता आदि का मापन करते हैं।

बुद्धि-परीक्षण का फल मानसिक आयु या बुद्धि-लब्धि के रूप में प्राप्त होता है। मानसिक आयु बालक की तुलनात्मक योग्यता दर्शाता है। बुद्धि-लब्धि मानसिक आयु और वास्तविक आयु का सम्बन्ध दर्शाता है। इससे यह भी ज्ञात हो जाता है कि बालक के प्राप्तांक उसी आयु के अन्य बालकों के प्राप्तांको से कम, बराबर या अधिक हैं। यदि उसकी बुद्धि-लब्धि 100 है तो उसकी बौद्धिक योग्यता अपनी आयु के औसत बालकों के समान है। यदि उसकी बुद्धि-लब्धि 110 है तो उसकी बौद्धिक योग्यता अन्य औसत बालकों से अधिक है और बुद्धि-लब्धि 90 है तो उसकी बौद्धिक योग्यता अन्य सम आयु के औसत बालकों से कम है। बुद्धि-लब्धि तुलनात्मक बौद्धिक योग्यता का सूचक है।

मार्गदर्शन एवं परामर्श में बुद्धि-परीक्षण का सबसे अधिक उपयोग होता है। परन्तु बुद्धि-परीक्षण से प्राप्त अंकों का विश्लेषण सावधानी से किया जाना चाहिए। कुछ लोग बुद्धि-लब्धि को मानसिक योग्यता मान लेते हैं, परन्तु यह गलत है। जैसे छ: वर्षीय बालिका जिसकी बुद्धि-लब्धि 140 है, उसमें 125 बुद्धि-लब्धि वाली बारह वर्षीय अन्य बालिका के समान मानसिक योग्यता नहीं हो सकती और न ही छ: वर्षीय बालिका बारह वर्षीय बालिका के समान समस्यामूलक प्रश्न हल कर सकती हैं। मानसिक आयु मानसिक योग्यता का सूचक है जबकि बुद्धि-लब्धि भावी मानसिक योग्यता (Ability expectancy) का सूचक है। बुद्धि-लब्धि के अंकों से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि यदि भविष्य में समुचित पर्यावरण और प्रशिक्षण मिला तो बालक की मानसिक योग्यता कितनी विकसित हो सकती है।

वैलमैन, स्कील्स तथा अन्य मनोवैज्ञानिकों ने प्रयोगों के आधार पर यह सिद्ध किया है कि उचित शिक्षा, पारिवारिक पृष्ठभूमि, सामाजिक स्तर, अच्छा स्वास्थ्य, पुष्ट और सन्तुलित भोजन, चिन्ताओं से मुक्त जीवन आदि से एक विशेष आयु तक बुद्धि-लब्धि का विकास सम्भव है। मार्गदर्शन के लिए बुद्धि-लब्धि का उपयोग करने के लिए मैकमुलिन ने एक विधि बतायी है। उनके अनुसार 12 वर्षीय बालक के बुद्धि-परीक्षण के प्राप्तांकों की तुलना अन्य आयु के बालकों के प्राप्तांकों से न कर उसी आयु के बालकों के प्राप्तांकों से करना चाहिए। इसे वे ''आयु निष्पादन मानक'' (Age performance norm) कहते हैं। बारह वर्षीय बालकों के सम्पूर्ण प्राप्ताकों को शतांश मानक (Centile norm) में रख लेना चाहिए। इस शतांश मानक से प्रत्येक 12 वर्षीय बालक की बौद्धिक योग्यता की तुलना करनी चाहिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

विद्धानों का अभिमत है कि देश, समूह, वर्ग, चरित्र, लिंग, जाति, जन्म के समय माता-पिता की आयु, विशेष दिन या माह में जन्म होना आदि से मानसिक योग्यता का कोई सम्बन्ध नहीं होता है। **हालिंगवर्ध** का कहना है कि 125 से लेकर 155 तक बुद्धि-लब्धि वाले बालक-बालिकाओं विभिन्न परिस्थितियों में सफलतापूर्वक समायोजन करने की अधिक क्षमता होती है। बुद्धि-लब्धि के आधार पर विद्यालयीन कार्य में सफलता की तीन बातें बतायी जा सकती हैं।

अ. विद्यालय में अध्ययन-काल— फैनगोल्ड ने अपने अध्ययन के आधार पर बताया कि 110 से अधिक बुद्धि-लब्धि वाले छात्र-छात्राएं अपनी पूर्ण शिक्षा प्राप्त कर ही विद्यालय या महाविद्यालय छोड़ते हैं जबकि 94 से कम बुद्धि-लब्धि वाले छात्र-छात्राएं अपनी शिक्षा बौद्धिक योग्यता कम होने के कारण पूरी नहीं कर पाते । 95 से 110 बुद्धि-लब्धि वाले छात्र-छात्राओं का अध्ययन पूरा करना अन्य परिस्थितियों पर भी निर्भर रहता है।

ब. परीक्षाओं में सफलता— किसी भी परीक्षा में शत-प्रतिशत छात्र-छात्राओं को समान सफलता प्राप्त करना सम्भव नहीं है। अनेक बातें समान होने पर भी छात्र-छात्राओं की असफलता का मूल कारण उनकी बुद्धि-लब्धि कम होना है। एक अध्ययन में वार्षिक परीक्षाओं में एक बार असफल 64 प्रतिशत छात्र-छात्राओं की बुद्धि-लब्धि 98 से कम पायी गयी और दो बार असफल छात्र-छात्राओं की बुद्धि-लब्धि 94 से भी कम थी।

स. शैक्षणिक उपलब्धि— अनेक अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि मानसिक योग्यता एवं शैक्षिक उपलब्धि आपस में सम्बन्धित हैं अर्थात् अधिक बुद्धि-लब्धि वाले छात्र-छात्राओं की शैक्षणिक उपलब्धि अधिक है तथा वे जटिल और अमूर्त विषयों के अध्ययन में भी सफल होते हैं।

डगलस और हालैण्ड (Douglas and Holland) का सुझाव है कि बुद्धि लब्धि के आधार पर मार्गदर्शन देते समय बालक की अन्य सम्बन्धित बातों, जैसे— अभिक्षमता, अभिरूचि, पारिवारिक पृष्ठभूमि, लगन, स्वास्थ्य, सामाजिक-आर्थिक स्तर आदि पर भी विचार करना आवश्यक है।

19.3.1 बुद्धि परीक्षणों का उपयोग

1. विविध पाठ्यक्रमों में छात्र-छात्राओं का वर्गीकरण करना।
2. विभिन्न कक्षाओं का वर्गीकरण करना।
3. विशेष स्तरों के विद्यालयों में प्रवेश देना।
4. छात्रवृति के लिए छात्र-छात्राओं का चयन करना।
5. मन्द बुद्धि, सामान्य बुद्धि, प्रखर बुद्धि बालक-बालिकाओं का उनकी बौद्धिक योग्यता के अनुसार पाठ्यक्रम चुनाव हेतु मार्गदर्शन देना।
6. विशिष्ट मानसिक योग्यताओं का पता लगाकर उनके विकास में सहायता पहुंचाना।
7. मानसिक योग्यता के अनुकूल व्यावसायिक चुनाव हेतु उचित परामर्श देना।
8. विभिन्न परिस्थितियों में समायोजन करने की क्षमता का विकास करने के लिए उचित मार्गदर्शन देना।

19.4 व्यक्तित्व परीक्षण

व्यक्तित्व, पर्यावरण के प्रभाव और जन्मजात प्रतिभाओं के पारस्परिक सम्बन्ध से उत्पन्न गत्यात्मक सम्पूर्ण व्यवहार है। यह व्यक्ति के वर्तमान और भविष्य में किए जाने वाले व्यवहार का सूचक है। इसके अन्तर्गत व्यक्ति की जन्मजात प्रतिभाएं, प्रेरक, अन्त:प्रेरणाएं, रूचियां, महत्वाकांक्षाएं, संवेगात्मक अभिवृतियां एवं बाह्य व्यवहार सम्मिलित हैं। इसलिए व्यक्तित्व में मनुष्य के समस्त शारीरिक एवं मानसिक लक्षण तथा योग्यताएं निहित हैं। व्यक्तित्व संबंधी गुण एक-दूसरे से इतने उलझे हुए हैं कि उन्हे अलग करना सम्भव नहीं है। सामान्यत: व्यक्तित्व का तात्पर्य व्यक्ति के उस व्यवहार से है, जो वह विभिन्न परिस्थितियों में दूसरे व्यक्तियों से करता है। यह मुख्यत: सामाजिक संप्रत्यय है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

मनुष्य के अन्दर कहीं ऐसा कुछ होता है जिसके कारण वह एक प्रकार का व्यवहार करता है, दूसरों को प्रभावित करता है तथा स्वयं में और पर्यावरण में सामायोजन करता है।

व्यक्तितत्व के अन्तर्गत व्यक्ति के गुण निहित हैं जिससे उसके विभिन्न परिस्थितियों में व्यवहार का आभास मिल जाता है: जैसे तत्परता, विश्वसनीयता, कार्यकुशलता, सहयोग, धैर्य आदि गुण यदि किसी एक परिस्थिति में परिलक्षित होते हैं तो आशा की जा सकती है कि वे गुण अन्य परिस्थितियों में भी प्रभावशाली ढ़ंग से दिखाई देंगे। सामान्यत: व्यक्ति कैसा दिखायी देता है? कैसे कपड़े पहनता है? किस प्रकार बातचीत करता हैं? कैसे चलता है? कैसे कार्य करता है? कार्य में कैसा कौशल प्रदर्शित करता है? कितना धैर्य रखता है? किस प्रकार समस्याएं हल करता है? किस प्रकार अपने साथियों से व्यवहार करता है? ये सब उसके व्यक्तितत्व के सूचक हैं।

19.4.1 प्रश्नावलियां (Questionnaires)

व्यक्तितत्व के विभिन्न गुणों के मापन के लिए अनेक प्रश्नावलियां तैयार की गई हैं, जैसे संवेगात्मक परिपक्वता, सामाजिक कौशल, भीरुता, निडरता, निराशा, सृजनता, स्पृहता आदि से सम्बन्धित सीधे प्रश्न पूछे जाते हैं। प्रश्नों के उत्तरों के आधार पर व्यक्तितत्व एवं सामयोजन का मापन हो जाता है।

उदाहरण—

1. क्या आपको अंधेरे मे जाने से डर लगता है? (हां, नहीं)
2. क्या आपको अपना विद्यालय बुरा लगता है? (हां, नहीं)
3. क्या मंच पर जाने से आप घबराते है? (हां, नहीं)
4. क्या आप नये मित्र बनाने में प्रसन्नता अनुभव करते हैं? (हां, नहीं)

19.4.2 परिसूचियां (Inventories)

परिसूचियां स्वयं निर्धारण मापनी के समान होती हैं। इनके द्वारा व्यक्ति अपने बाह्य व्यवहार और आन्तरिक भावों का स्वयं मूल्यांकन करता है। परिसूचियों से व्यक्ति को स्वयं अपने सम्बन्ध में, दूसरे के सम्बन्ध में, अपने पर्यावरण के सम्बन्ध में आन्तरिक भावों, जैसे चिन्ता, दु:ख, निराशा, भय, इच्छाएं आदि की जानकारी मिल जाती है। परिसूचियों से व्यक्ति के आन्तरिक गुणों का मापन हो जाता है जो सामान्यत: बाह्य निरीक्षण से सम्भव नहीं होता। प्राय: इन्हें निम्न भांति वर्गीकृत किया जा सकता है :

(अ) विशेष लक्षणों का आंकलन करने वाली, जैसे—प्रगतिशील रूढ़िवादी विचारधारा, आत्म-विश्वासी, स्वत:बोध आदि। (ब) विभिन्न पर्यावरण में समायोजन का मापन करने वाली, जैसे—परिवार, विद्यालय, समाज आदि (स) मन: रोगों की जानकारी देने वाली, जैसे—मनोविकृति, संभ्रान्ति, मनोविक्षिप्ति आदि। (द) नैदानिक समूहों में वर्गीकरण करने वाली, जैसे—मानसिक अस्वस्थ, शारीरिक अस्वस्थ, सामान्य आदि। (य) व्यक्तितत्व के गुणों की सूचक, जैसे—रुचि, अभिवृति, मूल्य आदि।

व्यक्तितत्व परिसूचियां प्राय: व्यक्तितत्व के एक या अनेक शीलगुणों (Traits) के मापन के लिए तैयार की जाती हैं। शीलगुण का अर्थ व्यक्ति के एक प्रकार के व्यवहार या प्रत्युत्तर की तत्परता है जो वह विशेष पर्यावरण में प्रदर्शित करता है। जैसे कक्षा में जब कोई छात्र प्रश्नों का उत्तर तत्परता और उत्साह से देता है तो इससे आत्मविश्वास का गुण लक्षित होता है जो उसके व्यक्तितत्व का एक शीलगुण है इसी प्रकार व्यक्तितत्व के गुणों के मापन के लिए परिसूचियां काम में लायी जाती हैं।

उदाहरण—

1. तुम्हें अच्छी नींद आती है।
2. दूसरे बालक तुम्हें अपने साथ खेलने देते है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

3. नये व्यक्तियों से बात करने में तुम्हें घबराहट तो नहीं होती है।

4. कोई नया कार्य करने में तुम्हें असफलता का भाव तो नहीं होता है।

किसी भी व्यक्ति के अनुभव, आयु, शिक्षा आदि के कारण व्यक्तित्व सम्बन्धी शीलगुणों, अभिवृत्तियों, विचाराधारा आदि में परिवर्तन होता रहता है इसलिए परिसूचियों से प्राप्त निष्कर्षों में अन्तर दृष्टिगत होते हैं।

19.4.3 निर्धारण मापनी (Rating Scales)

जब व्यक्ति अन्य व्यक्तियों के सम्पर्क में आकर उन पर अपना प्रभाव डालता है तो उसका मापन निर्धारण मापनी से किया जा सकता है। अन्य व्यक्ति उस व्यक्ति के व्यवहार, गुण, क्षमता, बुद्धि, अभिवृति, दक्षता, सामाजिक कौशल आदि का अपने प्रेक्षण एवं अनुभव के आधार पर मूल्यांकन करते हैं। अध्यापक, संदर्शक, अभिभावक, मित्र या अन्य व्यक्ति जिनसे उनका सम्पर्क रहता है। किसी भी एक छात्र के व्यक्तित्व का मूल्यांकन एक से अधिक व्यक्तियों द्वारा होना चाहिए।

व्यक्तित्व के विभिन्न गुणों के मापन के लिए निर्धारण मापनी बनायी जाती है, जैसे—बौद्धिक योग्यता, सामाजिकता, परिश्रम, ईमानदारी, संवेगात्मक नियन्त्रण, व्यक्तिगत दिखावा, कार्यपटुता, सहृदयता, कर्तव्यनिष्ठा, समय की पाबन्दी, आदि। मापनी मे सामान्यत: गुणों की सीमा के आधार पर इन दिये गये विकल्पों में से किसी विकल्प पर चिह्न लगाना पड़ता है। अंकित चिह्नों के आधार पर उसके गुणों का मापन किया जाता है।

उदाहरण—क्या आप सामाजिक उत्सवों में भाग लेते हैं ?

सदैव, अधिकांशत:, अनिश्चित, कभी-कभी, कभी नहीं

इन मापनियों के द्वारा छात्र के व्यवहार एवं व्यक्तित्व गुणों का वर्णन निर्णायकों द्वारा होता है अतएव यहां निर्णायकों की पूर्व धारणाएं, अभिवृतियां, मूल्य, कार्य करने का मापदण्ड आदि का प्रभाव पड़ता है। इसलिए यहां एक निर्णायक की अपेक्षा कई निर्णायकों द्वारा मूल्यांकन कराना चाहिए।

19.4.4 प्रक्षेपी परीक्षण (Projective Tests)

वर्तमान समय में व्यक्तित्व के विभिन्न गुणों के मूल्यांकन के लिए प्रक्षेपी परीक्षणों का महत्व बढ़ता जा रहा है प्रक्षेपी परीक्षण के द्वारा अर्थहीन, अस्पष्ट, अव्यवस्थित विषय वस्तु व्यक्ति के सम्मुख प्रस्तुत की जाती है। यहां व्यक्ति को अपने मनोभावों के अनुकूल इस विषय-वस्तु का अर्थ बताना पड़ता है। व्यक्तित्व के मूल्यांकन के लिए प्रभावशाली, परिसूची आदि की अपेक्षा प्रक्षेपी परीक्षण को अधिक उपयोगी और प्रभावशाली माना गया है। अब प्रमुख प्रक्षेपी परीक्षणों का संक्षिप्त में वर्णन किया जावेगा।

19.4.4.1 रोर्शा परीक्षण (Rorschach Test)

हरमेन रोर्शा द्वारा विकसित परीक्षण व्यक्तित्व के मूल्यांकन के लिए उपयोगी परीक्षण है। इस परीक्षण में दस स्याही से धब्बे वाले कार्ड होते है। इसकी परीक्षण विधि भी सरल है। व्यक्ति को एक-एक कार्ड बताया जाता है और कहा जाता है कि इन कार्डो मे दूसरे व्यक्तियों के भिन्न-भिन्न प्रकार के चित्र, वस्तु, स्थान आदि दिखायी देते हैं। आपको जो भी दिखायी दे आप उसका वर्णन कीजियें व्यक्ति को जो कुछ दिखता है या जो भाव आते हैं वह उसका वर्णन करता जाता है और परीक्षक उसके उत्तरों को लिखता जाता है। उत्तरों के साथ-साथ वह चेहरे के भावों, शारीरिक गतियों, मुंह से प्रकट किये शब्द आदि भी लिखता जाता है। इस परीक्षण से व्यक्ति की अन्त:दशा, मानसिक द्वन्द्व, आन्तरिक तनाव, नैराश्य या भय की भावना, अधीरता, अस्थिरता आदि का ज्ञान हो जाता है। रोर्शा परीक्षण द्वारा व्यक्ति के चरित्र और सृजनात्मक योग्यता के मुल्यांकन की विधि भी विकसित की

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

गई है। रोर्शा परीक्षण मानसिक रोगों का पता लगाने के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है। समायोजन के मापन में भी इसका उपायोग किया जा सकता है।

(ब) प्रसंगात्मक बोध परीक्षण (T.A.T)—मॉर्गन मरे (Murray) के द्वारा विकसित यह परीक्षण व्यक्तित्व के अनेक आन्तरिक गुणों के मूल्यांकन के लिए उपयोगी है। इसमें 30 चित्र कार्ड होते हैं। प्रत्येक चित्र में एक व्यक्ति विभिन्न पृष्ठभूमि में दिखायी देता है। परीक्षण देने वाले छात्र को चित्र कार्ड को देखकर एक कहानी बनानी पड़ती है। उससे कहा जाता है कि चित्र देखकर बताइए कि व्यक्ति कौन है? क्या सोच रहा है? उसका पृष्ठभूमि से क्या सम्बन्ध है? अन्य व्यक्ति या वस्तु के सम्बन्ध में उसके क्या भाव हैं? आदि। सामान्यत: छात्र चित्र वाले व्यक्ति से अपना तादात्म्य स्थापित कर अपने भावों, अभिवृत्तियों, इच्छाओं, विचारों, भय, तनाव, संघर्ष, कमजोरियों, आवश्यकताओं, घृणा आदि को चित्र की कहानी के माध्यम से प्रकट कर देता है। रोर्शा परीक्षण के समान इसका मूल्यांकन भी कठिन है। परीक्षक को इस परीक्षण के मूल्यांकन की विधि में प्रशिक्षित होना चाहिए।

छोटे बच्चों के लिए बालक बोध परीक्षण (C.A.T) का उपयोग किया जाता है। इसमें व्यक्ति के स्थान पर जानवरों के चित्र होते हैं। टी.ए.टी. और सी.ए.टी. का उपयोग छात्र-छात्राओं के मानसिक रोग, उद्विग्नता, मानसिक तनाव आदि के मापन के लिए किया जा सकता है।

19.4.4.2 शब्द साहचर्य परीक्षण (Word Association Test)

मानसिक अस्वस्थता के मापन के लिए शब्द-समूह परीक्षण का विशेष महत्व है। इस परीक्षण से संवेगात्मक जटिलता, अधीरता, मानसिक तनाव, अस्थिरता आदि का मूल्यांकन किया जा सकता है। शब्दों की सूची में से परीक्षक एक-एक शब्द कहता है और छात्र को शब्द सुनते ही मन में आये भाव को दूसरे शब्द द्वारा एकदम प्रगट करना पड़ता है। इसमें कोई गलत या सही उत्तर नहीं होता। परन्तु उत्तर में कहे गये शब्द से छात्र की मानसिक स्थिति का पता लगाया जाता है।

उदाहरण — मेज, अध्यापक, बगीचा, पिता, रात्रि, युद्ध आदि।

19.4.4.3 वाक्य-पूर्ति परीक्षण (Sentence Completion Test)

इस परीक्षण में छात्र को अधूरे लिखे वाक्यों वाली एक पुस्तिका दी जाती हैं। उसे वाक्यों को पूरा करना पड़ता है। सब वाक्यों को पूरा करने के लिए बहुत कम समय दिया जाता है। इसलिए छात्र को शीघ्र से शीघ्र वाक्य पूरे करने पड़ते हैं। प्राप्त उत्तरों से छात्र की अभिवृत्ति, विचार, भाव, इच्छाएं आदि ज्ञात हो सकती हैं। इस परीक्षण के मूल्यांकन के लिए भी प्रशिक्षक को प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। उदाहरण:

1. मैं सोचता हूं कि मेरे पिता..............................
2. जब मैं दु:खी होता हूं तब मैं..........................
3. मेरी आशा है कि.......................................

19.4.5 व्यक्तित्व परीक्षणों का उपयोग

1. व्यक्तित्व परीक्षण से उसके व्यक्तित्व विकास को जानकारी मिल जाती है।
2. स्वभाव सम्बन्धी गुण और सीमाओं का ज्ञान हो जाता है।
3. परामर्शक परीक्षण से प्राप्त अंकों के आधार पर उचित मार्गदर्शन दे सकता है।
4. समायोजन का ज्ञान हो जाता है या समायोजन के लिए परामर्श दिया जा सकता है।
5. समस्यामूलक बालक के जीवनवृत का अध्ययन करने में व्यक्तित्व परीक्षण का विशेष उपयोग होता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

6. अवांछित सामाजिक गुणों को दूर करने में सहायता दी जा सकती है।

7. विभिन्न व्यवसायों के लिए व्यक्तित्व के अनुसार व्यावसायिक मार्गदर्शन दिया जा सकता है।

8. व्यक्तित्व के द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में सफलताओं-असफलताओं का अनुमान लगाया जा सकता है।

19.5 अभिक्षमता परीक्षण

अभिक्षमताएं जन्मजात और अर्जित योग्यताओं और कौशलों का योग है जो इस बात का सूचक है कि व्यक्ति वर्तमान में क्या है और जिसके आधार पर यह बताया जा सकता है कि भविष्य में उसमें कौन-सी दक्षता या निपुणता आ सकती है। डाउनिंग के अनुसार अभिक्षमता व्यक्ति की किसी क्षेत्र में कार्य प्रतिभा प्रदर्शित करता है, जैसे-संगीत, वाद-विवाद, गायन, लेखन, अंक, यांत्रिक प्रतिभा आदि। सामान्यत: वे प्रतिभाएं जन्मजात होती हैं। परन्तु पर्यावरण का इनके विकास पर प्रभाव पड़ता है। बिंघम अभिक्षमता का उपयोग पूर्वानुमान के अर्थ में लेते हैं। उनके अनुसार किसी क्षेत्र में समुचित प्रशिक्षण के बाद सफलता पाने के लिए अभिक्षमता का होना आवश्यक है। इसमें तीन तत्व होते हैं : (अ) कौशल सीखने की योग्यता। (ब) सीखने की तत्परता। (स) कार्य से सन्तोष।

अभिक्षमता होने से किसी भी कार्य के करने में आनन्द का अनुभव तो होता ही है साथ ही साथ कार्य के पर्यावरण में समयोजन करने की योग्यता और इच्छा भी होती है। इसलिए अभिक्षमता का अर्थ प्रतिभा से अधिक महत्त्वपूर्ण है। इसका तात्पर्य कार्य के लिए उपयुक्तता (Fitness For The Job) है। तथा उसे सफलता की आशा (Success expectancy) भी कहा जा सकता है। अभिक्षमता के अन्तर्गत बुद्धि, कार्य क्षमता, योग्यता, व्यक्तित्व आदि अनेक गुण सम्मिलित हैं।

19.5.1 अभिक्षमता परीक्षणों के उपयोग

1. अभिक्षमता परीक्षणों से प्राप्त निष्कार्षों से भविष्य में प्राप्त होने वाली सफलता का ज्ञान हो जाता है।
2. शैक्षिक अभिक्षमता परीक्षणों के आधार पर वैकल्पिक विषयों पर पाठ्यक्रम छात्रों का वर्गीकरण करने में सहायता मिलती है।
3. अभिक्षमता परीक्षण शैक्षणिक योजना बनाने में सहायक होते हैं।
4. व्यवसाय के चुनाव में व्यावसायिक अभिक्षमता परीक्षण के आधार पर परामर्श दिया जा सकता है।
5. अभिक्षमता परीक्षण से छात्र-छात्राओं को स्वयं अपनी प्रतिभाओं, कौशलों और योग्यताओं का ज्ञान हो जाता है और वे उनके विकास में रुचि लेने लगते हैं।
6. अभिक्षमता परीक्षण के आधार पर छात्रों को उनके विकास हेतु उचित परामर्श दिया जा सकता है।
7. कुसमायोजित बालक की अभिक्षमताओं का मापन कर उसके समायोजन में सहायता दी जा सकती है।
8. शैक्षणिक क्षेत्र में कम प्रगति करने वाले छात्रों को उनकी अभिक्षमता के अनुकूल कौशल प्रदर्शन द्वारा उसे सम्मान दिलाया जा सकता है।
9. अभिक्षमता के अनुकूल स्वयं व्यवसाय (Self-employment) के लिऐ प्रेरित किया जा सकता है।
10. अभिक्षमता परीक्षणों के आधार पर छात्र-छात्राओं के सर्वांगीण विकास में सहायता पहुंचायी जा सकती है।

19.6 रुचि परीक्षण

रुचि व्यक्ति की ऐसी प्रवृति है जिसके वशीभूत होकर वह उसके अनुकूल कार्य करने को स्वयं प्रेरित होता है। किसी वस्तु, व्यक्ति या कार्य में रुचि रखने का अर्थ उसमें स्वयं को आत्मसात करना है। डीवी का कथन है कि क्रिया द्वारा अपने से उस वस्तु को आत्मसात कर लेना सच्ची रुचि है। रुचि कोई रहस्यमयी प्राकृतिक शक्ति नही है जो जन्म से प्राप्त हो वह तो

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

पर्यावरण में उत्पन्न एक प्रकार की इच्छा है जो किसी कार्य को एकाग्रचित्त होकर करने में सहायक है। मेक्डूगल ने ''रुचि को छिपा अवधान और अवधान को रुचि का क्रियात्मक रूप माना है।'' अर्थात् रुचि अवधान बनाये रखने में विशेष सहायक होती है। अवधानपूर्ण कार्य करने से कार्य में सफलता मिलना अधिक सरल और निश्चित होता है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से रुचि ऐसा संवेदन है जिससे कार्य की सिद्धि होती है। रुचि होने से कठिन कार्य भी सरल लगने लगता है इसलिए किसी कार्य के सीखने के लिए रुचि का होना आवश्यक होता है। किस बालक में किस विषय या कार्य के प्रति कितनी रुचि है इसका मापन एवं मूल्यांकन रुचि परीक्षणों द्वारा किया जा सकता है। गुडे ने रुचि परीक्षण को व्यक्ति की पसन्दी और नापसन्दी के मापन की एक विधि बताया है।

अभिरुचि परीक्षण से व्यक्ति के रुचि समूह का ज्ञान हो जाता है प्राप्तांकों से किसी कार्य या विषय के प्रति कम और अधिक रुचि मालूम हो जाती है। विभिन्न विषयों या व्यवसायों के प्रति रूचि के मापन के लिए अनेक रुचि परीक्षण और परिसूचियां तैयार की गयी हैं

उदाहरण—

1. गणित विषय मुझे अच्छा लगता है। (हां, नहीं)
2. गणित के पीरियड में मुझे असुरक्षा का भय बना रहता है। (हां, नहीं)
3. अवकाश के समय में मैं गणित की पहेली हल करता हूं। (हां, नहीं)

19.6.1 रुचि परीक्षणों का उपयोग

1. छात्र-छात्राओं की रुचियों के मापन में सहायता।
2. छात्र-छात्राओं को उनकी रुचियों के अनुकूल विषय या कार्य चुनने में सहायता।
3. रुचि के अनुकूल कार्य-योजना बनाने में सहायता।
4. विषय कार्य की सफलता के लिए अभिरुचि बढ़ाने में सहायता।
5. पाठ्य सहगामी क्रियाओं के चुनाव में सहायता।
6. रुचियों का ज्ञान हो जाने पर उनके विकास हेतु आवश्यक पर्यावरण निर्माण करने में सहायता।
7. अनावश्यक रुचियों को दूर करने में सहायता।
8. रुचिपूर्ण व्यवसाय दिलाने में सहायता।
9. अधिगम में प्रगति और अधिक उपलब्धि हेतु रुचि विकसित करने में सहायता।
10. जीवन की सफलता के लिए मनोरंजक रुचियां विकसित करने में सहायता।

19.7 अभिवृत्ति परीक्षण

अभिवृत्ति और रुचि एक-दूसरे से सम्बन्धित शब्द हैं। रुचि एक प्रकार की अभिवृत्ति है जो किसी व्यक्ति को किसी क्षेत्र में कार्य करने की प्रेरणा देती है। इसी प्रकार सकारात्मक अभिवृत्ति कार्य करने की रुचि को बढ़ाती है और नकारात्मक अभिवृत्ति उस कार्य को करने में बाधक होती है। अभिवृत्ति तत्परता का बोधक है। अभिवृत्ति होने पर व्यक्ति किसी कार्य को उत्साहपूर्वक करता है।

अभिवृतियां पर्यावरण और अनुभव से अर्जित की जाती हैं। कुछ अभिवृत्तियां परिवार, समाज या अन्य प्रभावशाली व्यक्तियों के द्वारा दूसरों में पहुंच जाती हैं। कुछ बालकों में बचपन से ही खेल, विद्यालय, अध्यापक, पुस्तकें, व्यक्ति, कार्य आदि के प्रति अभिवृत्तियां बन जाती हैं। सकारात्मक अभिवृत्ति अधिगम में सहायक होती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

यदि बालक के मन में अध्ययन के प्रति अभिवृत्ति है तो वह शीघ्र और कम परिश्रम से अधिक उपलब्धि पा सकता है। सकारात्मक अभिवृत्ति समस्त शक्तियों को केन्द्रित के कार्य की सफलता में सहायक बनती है। विषय, अध्यापक और विद्यालय के प्रति अनुकूल अभिवृत्ति वाले छात्र-छात्राएं शैक्षिक कार्य में सदैव सफल रहते हैं।

शिक्षा में असफलता का एक कारण शिक्षा के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति का अभाव भी है। डेनमार्क का मत है कि शिक्षा के प्रति बच्चों में बचपन से ही सकारात्मक अभिवृत्ति विकसित करना चाहिए। इसी प्रकार विद्यालय में कार्य, अनुशासन, समाज, देश आदि के प्रति अभिवृत्तियां विकसित की जा सकती हैं।

अभिवृति परीक्षण बालक-बालिकाओं की अभिवृत्तियों के विकास और विकास की सीमा के मापन में बहुत उपयोगी हैं। प्राय: अभिवृत्ति परीक्षण इन आधारों पर तैयार किये जाते हैं : (1) किसी विवादग्रस्त विषय के प्रति अभिवृत्ति का मापन। (2) किसी विषय के पक्ष या विपक्ष से अभिवृत्ति का मापन। (3) किसी विषय के प्रति अभिवृत्ति की सीमा का मापन।

अभिवृत्ति में किसी एक विषय या विषयों से सम्बन्धित कथन दिये रहते हैं। छात्र को कथन के सामने दिये विकल्पों में से केवल एक विकल्प चुनना होता है।

उदाहरण—

1. लड़के-लड़कियों को एक साथ पढ़ाने में कोई हानि नहीं है।

   (पूर्णत: सहमत/सहमत/तटस्थ/असहमत/पूर्णत: असहमत)

2. अन्तर्जातीय विवाह से सामजिक विकास होता है।

   (पूर्णत: सहमत/सहमत/तटस्थ/असहमत/पूर्णत: असहमत)

इस प्रकार विभिन्न विषयों पर तैयार किये गये अभिवृत्ति परीक्षण छात्र-छात्राओं की अभिवृत्ति के मापन के लिए उपयोग में लाये जा सकते हैं।

19.7.1 अभिवृत्ति मापनियों का उपयोग

1. अभिवृत्ति परीक्षण से छात्र-छात्राओं को किसी भी विषय-वस्तु, व्यक्ति, स्थान आदि के प्रति अभिवृत्ति का ज्ञान हो जाता है।
2. अवांछनीय अभिवृत्तियों को दूर करने और वांछनीय अभिवृत्तियों को विकसित करने में सहायता मिलती है।
3. सकारात्मक अभिवृत्तियां विकसित कर छात्र-छात्राओं को अच्छा नागरिक बनाने में सहायता पहुंचायी जा सकती है।

19.8 उपलब्धि परीक्षण

मानकीकृत उपलब्धि परीक्षणों से छात्र-छात्राओं की विभिन्न विषय-सम्बन्धी योग्यताओं और कमियों को पहचाना जा सकता है। अध्यापक को परीक्षक के द्वारा प्राप्त प्रदत्त के आधार पर अपने अध्यापन का कार्यक्रम बनाने और विधि निर्धारित करने में सहायता मिलती है। 'उपलब्धि' का तात्पर्य छात्र द्वारा विभिन्न विषयों में प्राप्त परिपूर्णता का स्तर (Level of accomplishment) है। परीक्षक से उपलब्धि का स्तर अंकों मे प्राप्त हो जाता है जिससे योग्यता का अर्थ समझने या व्याख्या करने में सरलता होती है।

अध्यापकों के द्वारा बनाये गये परीक्षणों की तुलना में मानकीकृत उपलब्धि परीक्षण अधिक उपयोगी और सरल होते हैं क्योंकि उनमें कुछ विशेषतायें निहित होती हैं : (1) विषय-वस्तु के सम्पूर्ण भाग पर बने होने के कारण पूर्ण रूप से विषय ज्ञान का मूल्यांकन होता है। (2) प्रत्येक विषय प्रश्न का एक ही उत्तर होने के कारण पूर्ण रूप से विषय

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

ज्ञान का मूल्यांकन होता है। (3) विषय सम्बन्धी ज्ञान की निश्चित उपलब्धि का मूल्यांकन होता है। (4) विभिन्न समय और विभिन्न व्यक्तियों द्वारा परीक्षा लेने पर भी परीक्षा के निर्देश एक से होते हैं।

इस प्रकार के उपलब्धि परीक्षण प्रयोग करने के बाद बनाये जाते हैं। इनके निष्कर्ष विभिन्न क्षेत्रों, विभिन्न प्रकार के छात्र-छात्राओं और विभिन्न स्तर के विद्यालयों से प्राप्त कर उन्हें मानकीकृत किया जाता है फिर आयु के अनुसार मानक (Norms) तैयार किये जाते हैं। इस प्रकार उपलब्धि परीक्षण से हम आभा और राखी की उपलब्धि की तुलना कक्षा की अन्य छात्राओं से कर सकते हैं या कक्षा 'अ' और 'ब' के छात्र-छात्राओं की प्रगति का मूल्यांकन कर सकते हैं। कक्षा में पढाये पाठ्यक्रम के मूल्यांकन के लिए सामान्य परीक्षा के साथ-साथ अध्यापक को उपलब्धि परीक्षण का भी उपयोग करना चाहिए। उपलब्धि परीक्षण की सहायता से विभिन्न कक्षा या विद्यालयों के छात्र-छात्राओं की शैक्षणिक प्रगति का मूल्यांकन किया जा सकता है तथा प्राप्त निष्कर्ष से यह जाना जा सकता है कि क्या छात्र इस विषय में उच्च अध्ययन की योग्यता रखते हैं या नहीं।

19.8.1 उपलब्धि परीक्षण के उपयोग

1. विभिन्न विषयों में छात्र-छात्राओं की शैक्षणिक उपलब्धि (Academic attainment) का मापन हो जाता है।
2. विभिन्न विषयों की क्षमता और कमियों का ज्ञान हो जाता है।
3. विषय सम्बन्धी विशेष योग्यता का ज्ञान हो जाता है।
4. विद्यालयीन कार्य करने की तत्परता निश्चित करने में सहायता मिलती है।
5. इनकी सहायता से विषय-वस्तु के चयन और इन्हें व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत करने में सहायता मिलती है।
6. अन्य बालकों की तुलना में अमुक बालक की कमियों का ज्ञान होता है।
7. इनकी सहायता से बालक-बालिकाओं के योग्यतानुसार समूह बनाये जा सकते हैं।

19.9 समायोजन परिसूचियां

प्रत्येक कक्षा में प्रायः कुछ कुसमायोजित बालक अवश्य होते हैं। इन बालकों से कक्षा का अनुशासन तो भंग होता ही है साथ-साथ इनके अवांछनीय व्यवहार से अन्य बालक और अध्यापक काफी परेशान होते हैं। कुछ बालक बाह्य व्यवहार से तो बहुत शान्त दिखायी देते हैं परन्तु अन्दर ही अन्दर वे अपने आपमें दु:खी, असुरक्षित और मानसिक तनाव का अनुभव करते है। उनके व्यवहार से उनके आन्तरिक भावों को समझना कठिन होता है।

अध्यापक की दृष्टि में चोरी, बेईमानी, अनुशासनहीनता, गृह कार्य न करना, लिंगीय अपराध करने वाले छात्र सबसे अधिक समस्यामूलक या कुसमायोजित बालक माने जाते हैं। परन्तु मनोवैज्ञानिकों ने असामाजिक, दु:खी, अधीर, निराश, दुष्ट प्रवृत्ति वाला, बदला लेने की भावना वाला, उदास, संकोची, शर्मीला, ईर्ष्यालु, दिवास्वप्नी, भयभीत, अस्थिर बुद्धि वाला आदि बालकों को सबसे अधिक कुसमायोजित एवं चिन्ताजनक बालक माना है।

अध्यापक एवं परामर्शक का एक महत्वपूर्ण कार्य कुसमायोजित बालक-बालिकाओं को उचित मार्गदर्शन देना है। सामान्यतः कुसमायोजित बालक-बालिकाएं अपने बाह्य व्यवहार से सरलता से नहीं पहचाने जा सकते। ऐसे छात्र छात्राओं को निरीक्षण, समाजमिति, व्यक्ति अध्ययन, समायोजन सूचियां, समस्या जांच सूची, परिस्थितिजनक परीक्षणों आदि के द्वारा जाना जा सकता है। हमारे देश में अब इस प्रकार के अनेक परीक्षण उपलब्ध हैं जिनके माध्यम से विद्यालय में अध्ययनरत छात्र-छात्राओं की समस्याओं एवं समायोजन का अध्ययन वैज्ञानिक ढंग से किया जा सकता है। एस. एल. चोपड़ा की समाजमिति विधि पर आधारित 'समान आयु बच्चों की सामाजिक स्वीकृति मापनी', निर्मल भाग्या की 'समस्या जांच सूची', मिथलेश वर्मा की 'युवक समस्या सूची', आर.सी. देवा की सामाजिक समायोजन सूची, ए.के.पी. सिन्हा एवं आर. पी. सिंह की 'विद्यालयीन विधार्थियों के लिए समायोजन सूची', 'मित्तल समायोजन सूची', 'सक्सैना व्यक्तित्व परख प्रश्नावली', एच. के. जंगीरा की 'स्कूल समायोजन तालिका' आदि

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

उल्लेखनीय हैं। व्यक्ति अध्ययन के लिए एल. एन. दुबे ने 'व्यक्ति अध्ययन प्रपत्र' तथा आर. पी. श्रीवास्तव ने 'नैदानिक व्यक्ति अध्ययन प्रपत्र की रचना की है जिनका उपयोग किया जा सकता है।

बोध प्रश्न :

1. उच्च अध्ययन हेतु किन मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का उपयोग किया जाता है?

2. प्रक्षेपी परीक्षण क्या होते हैं?

3. अभिवृत्ति परीक्षणों की उपयोगिता बताएं।

19.10 निर्देशन एवं संदर्शन में प्राप्तांकों के उपयोग

परीक्षा समाप्त होने के बाद उसका फल जानने की उत्सुकता सभी छात्रों को होती है। परन्तु प्रश्न यह उठता है कि क्या अन्य विषयों के परीक्षाफल के समान मनोवैज्ञानिक परीक्षाफल भी छात्रों को बता देना चाहिए। विद्वानों का मत है कि परीक्षाफल अंकों में बनने से लाभ से अधिक हानि की सम्भावना है। जैसे यदि बुद्धि परीक्षण के बाद छात्र या उसके अभिभावक को बुद्धि-लब्धि, शतत्मक-कोटि (Percentile rank) या बुद्धि-स्तर बता दिया जावे तो उससे प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। इसलिए अंकों के स्थान में परीक्षण की उपलब्धि वर्णात्मिक शैली मे बतानी चाहिए जिसे वह समझ सके तथा उससे उसके संवेगों को भी हानि न पहुंचे। जैसे प्रवर कक्षा का एक छात्र बुद्धि-परीक्षण के बाद परामर्शक से पूछता है, ''महोदय, मैंने परीक्षण कैसा किया? क्या मैं महाविद्यालय में अमुक विषयों में सफलता पा सकुंगा?'' चतुर परामर्शक छात्र से यह न कहकर कि उसकी बुद्धि-लब्धि 120 है या शतत्मक 95 है, वह कहता है कि आपने परीक्षण में बहुत अच्छा किया है, आपका परीक्षण फल बताता है कि आपमें अमुक विषयों में सफलता पाने की योग्यता है। सामान्यत: छात्र या अभिभावक को अंको में कोई रुचि नहीं होती, परन्तु वे केवल इतना जानना चाहते है कि अमुक विषय-समूह या पाठ्यक्रम सीखने की क्षमता है या नहीं। चूंकि परीक्षण से प्राप्त प्रदत यह बताता है कि बालक की शैक्षिक अभिक्षमता उच्चकोटि की है। इसलिए उससे निश्चयात्मक रूप से उसके द्वारा बनायी गयी शैक्षणिक योजना को कार्य रूप में बदलने का परामर्श दिया जा सकता है।

किसी भी परीक्षण-फल को बताते समय परामर्शक को अपने भावों, जैसे—प्रसन्नता, दु:ख, निराशा आदि को प्रकट नहीं करना चाहिए। इससे छात्र पर बुरा प्रभाव पड़ता है। यदि छात्र से कहा जाये कि ''तुम्हारे परीक्षण-फल को देखकर बड़ी निराशा हुई, तुम्हें औसत छात्र से भी कम अंक मिले हैं या तुम्हारा परीक्षण-फल देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई तो उसमें हीनता या बड़प्पन की भावना विकसित हो सकती है। परीक्षण-फल को चाहे वह कितना ही बुरा या अच्छा क्यों न हो, इस ढ़ंग से कहा जाये कि उसे स्वयं अपने आप से निराशा या आत्मग्लानि न हो जावे या वह अपने आपको बहुत होशियार न समझने लगे। परीक्षण-फल का प्रभाव संवेगों पर न पड़ने पाये। परामर्शक एक लड़की का पी. एस. एम. बुद्धि-परीक्षण में 92 शतत्मक आने पर प्रोंत्साहित करते हुए कहता है कि आपकी बौद्धिक योग्यता देखकर लगता है कि आपको विद्यालयीन विषयों में अच्छे अंक मिलने चाहिए। उससे उसे यह ज्ञात हो जाता है कि उसमें विषय-सम्बन्धी योग्यता या अभिक्षमता तो है परन्तु सन्तोषप्रद उपलब्धि नहीं मिली है। यदि वह थोड़ा ओर परिश्रम करे तो कक्षा में उसकी उपलब्धि बढ़ सकती है।

परामर्शक दूसरी लड़की जिसको शतत्मक केवल 46 है, को परामर्श देते हुए कह सकता है कि आपका परीक्षण-फल औसत से कुछ कम है फिर प्रोत्साहित करते हुए कहे कि थोड़ा और कठिन परिश्रम करके उपलब्धि बढ़ायी जा सकती है या आवश्यकतानुसार अध्ययन-विधि या विषय-समूह में परिवर्तन करने का परामर्श दे सकता है।

बुद्धि-परीक्षण-फल की अपेक्षा उपलब्धि परीक्षण-फल बताना अधिक सरल है। बुद्धि-परीक्षण-फल में कम अंक पाने से उसे स्वयं अपने आपसे निराशा होती है। जब उसे यह मालूम होता है कि वह अल्पबुद्धि या मन्दबुद्धि वाला है तो उसमें हीनता की भावना बढ़ जाती है। परन्तु उपलब्धि परीक्षण में कम अंक आने पर वह अधिक परिश्रम

करने के लिए कटिबद्ध हो जाता है। कम उपलब्धि का कारण वंशानुक्रम से सम्बन्धित न होकर पर्यावरण से ही सम्बन्धित होता हैं। यदि पर्यावरण में परिवर्तन कर दिया जाये तो उपलब्धि बढ़ सकती है।

परीक्षण-फल बताते समय छात्र की उसकी कक्षा या आयु-समूह के ही छात्रों से तुलना करनी चाहिए। जैसे एक नयी प्रवेश पायी छात्रा से कहना है कि आपने अन्य छात्राओं की अपेक्षा अधिक अंक पाये, की अपेक्षा यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि नयी प्रवेश पाने वाली लड़कियों के औसत अंक से आपकों अधिक अंक मिले हैं। इसी प्रकार 14 वर्षीय छात्र के अभिभावक से यह कहना कि छात्र की मानसिक आयु सोलह वर्ष की है, के स्थान पर यह कहना अधिक उचित होगा कि आपका बालक अपनी आयु-समूह के बालकों से अधिक बुद्धिमान है।

चतुर परामर्शक को तकनीकी शब्दावली का उपयोग नहीं करना चाहिए। परीक्षक-फल को सदैव सकारात्मक रूप से प्रस्तुत करना चाहिए जैसी व्यावसायिक अभिक्षमता परीक्षण के आधार पर यह कहने के स्थान पर कि यान्त्रिक व्यवसाय में आप बिल्कुल असफल रहेंगे कहना चाहिए कि यान्त्रिक व्यवसाय की अपेक्षा आपको सामाजिक व्यवसाय में कम परिश्रम से ही अधिक सफलता मिल सकेगी।

अभिरुचि परीक्षण के प्रदत की व्याख्या करते समय परामर्शक को छात्र के पिछले अनुभव और पृष्ठभूमि को ध्यान में रखना चाहिए जिसके कारण उसमें अभिरुचियां विकसित हुई हैं। डारले और हागेनाह का मत है कि रुचि परीक्षण का फल बताते समय रुचि सम्बन्धित व्यवसाय न बताकर केवल रुचियों का वर्णन करना चाहिए। जैसे छात्र से यह कहना कि आपमें वकील, सामाजिक कार्यकर्ता या अंकपाल के कार्य की रुचि है उचित नहीं है, बल्कि कहना यह चाहिए कि आप में सामाजिक कार्य या अंकों के कार्य की रुचि है।

मनोवैज्ञानिक परीक्षण का फल अभिभावकों को बताना चाहिए या नहीं इस पर विद्धानों में मतभेद है। परन्तु वे अपने बच्चों का परीक्षण-फल जानने के लिए उत्सुक होते हैं। रिक्स का कथन है कि प्रत्येक अभिभावक को परीक्षण-फल जानने का अधिकार है क्योंकि बालकों के पालन-पोषण, विकास एवं शिक्षा आदि की पूरी जिम्मेदारी उनकी है। वे अपनी जिम्मेदारी का निर्वाह तब अच्छी तरह कर सकते हैं जब उन्हें अपने बच्चों के सम्बन्ध में पूर्ण प्रदत प्राप्त हो। बुल्फले ने उदाहरण देकर बताया है कि यदि परामर्शक देखता है कि एक प्रतिभाशाली छात्र में कोई महत्वाकांक्षा नहीं है तब वह अभिभावक से मिलकर प्रतिभा की जानकारी देकर उस बालक में इच्छाओं और महत्वाकांक्षाओं के लिए प्रेरणा देने में सहयोग मांग सकता है। इसलिए अभिभावक को आवश्यकतानुसार परीक्षण-फल बताना उपयोगी होगा।

किसी भी बालक को शैक्षणिक, व्यावसायिक या व्यक्तिगत मार्गदर्शन देते समय केवल एक परीक्षण को आधार नही बनाना चाहिए। कई परीक्षणों से प्राप्त प्रदत्त का विश्लेषण कर मार्गदर्शन एवं परामर्श देना चाहिए।

19.11 प्रश्नावली

(1) बुद्धि परीक्षणों को संक्षेप में बताइये।
(2) बुद्धि परीक्षणों की उपयोगिताओं को समझाइये।
(3) व्यक्तित्व परीक्षणों को समझाइये।
(4) अभिक्षमता परीक्षण क्या होते हैं? इन परीक्षणों की उपयोगिताओं को समझाइये।
(5) रुचि परीक्षणों को समझाइये।
(6) अभिवृत्ति परीक्षणों को स्पष्ट कीजिए।
(5) रुचि परीक्षणों को समझाइये।

19.12 सन्दर्भ ग्रन्थ

(1) आधुनिक मनोवैज्ञानिक परीक्षण एवं मापन—डॉ. महेश भार्गव, हरप्रसाद भार्गव, शैक्षिक प्रकाशक, 4/230 कचहरी घाट, आगरा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जैन विश्वभारती संस्थान

(मान्य विश्वविद्यालय)

लाडनूँ-341306 (राजस्थान)

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय

एम.ए./एम.एस-सी. (उत्तरार्द्ध)

विषय - योग एवं जीवन विज्ञान

अष्टम पत्र : अनुप्रायोगिक जीवन-विज्ञान एवं अनुसंधान प्रविधियाँ

संवर्ग

संवर्ग–1	अहिंसा–सिद्धांत एवं प्रशिक्षण
संवर्ग–2	नशामुक्ति और जीवन विज्ञान
संवर्ग–3	जीवन विज्ञान और पुनर्वास प्रक्रिया
संवर्ग–4	वैज्ञानिक अनुसंधान की प्रकृति एवं समस्याएं
संवर्ग–5	मनोवैज्ञानिक अनुसंधान की विधियां एवं परीक्षण

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

विशेषज्ञ समिति

1. **प्रो. संग्रामसिंह नाथावत**
   आचार्य, मनोविज्ञान विभाग
   एमिटी विश्वविद्यालय, जयपुर (राज.)
2. **प्रो. ए.के. मलिक**
   पूर्व आचार्य, मनोविज्ञान विभाग
   जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर (राज.)
3. **प्रो. जे.पी.एन. मिश्रा**
   प्रो. एवं डीन, स्कूल ऑफ लाईफ साईंस,
   गुजरात केन्द्रीय विश्वविद्यालय, गांधीनगर
4. **डॉ. साधना दौनेरिया**
   सविभागाध्यक्ष, योग विभाग
   बरकत्तुल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)
5. **प्रो. समणी मल्लीप्रज्ञा**
   आचार्या, जीवन विज्ञान, प्रेक्षाध्यान एवं योग विभाग
   जैन विश्वभारती संस्थान लाडनूँ (राज.)
6. **डॉ. बी.पी. गौड़**
   पूर्व सहआचार्य जीवन विज्ञान, प्रेक्षाध्यान एवं योग विभाग
   जैन विश्वभारती संस्थान लाडनूँ (राज.)

लेखक

डॉ. बी.पी. गौड, डॉ. अनिल धर

डॉ. संजीव गुप्ता, डॉ. हेमलता जोशी

संपादक

प्रो. ए.के. मलिक, जोधपुर

कापीराइट

जैन विश्वभारती विश्वविद्यालय, लाडनूं

नवीन संस्करण : 2017

मुद्रित प्रतियां : 900

प्रकाशक

जैन विश्वभारती विश्वविद्यालय, लाडनूं–341 306 (राज.)

Printed at

M/s Nalanda Offsets, Jaipur

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अनुक्रमणिका

क्र. सं.	अध्याय	पृष्ठ संख्या
संवर्ग–1 :	**अहिंसा-सिद्धांत एवं प्रशिक्षण**	
इकाई 1	विभिन्न धर्म दर्शनों में अहिंसा का स्वरूप	1
इकाई 2	अहिंसा का व्यवहार	21
इकाई 3	अहिंसा प्रशिक्षण का आधार एवं स्वरूप	40
इकाई 4	अहिंसक व्यक्तित्व का निर्माण	57
संवर्ग–2 :	**नशामुक्ति और जीवन विज्ञान**	
इकाई 5	नशे की परिभाषा, प्रकृति और प्रकार	70
इकाई 6	नशे के कारण एवं प्रभाव	86
इकाई 7	नशा मुक्ति की अवधारणा	103
इकाई 8	प्रेक्षाध्यान और नशामुक्ति	113
संवर्ग–3 :	**जीवन विज्ञान और पुनर्वास प्रक्रिया**	
इकाई 9	दृष्टिकोण परिवर्तन की प्रक्रिया	124
इकाई 10	प्रेक्षाध्यान एवं व्यवहार परिवर्तन	145
इकाई 11	प्रेक्षाध्यान एवं हृदय परिवर्तन	162
इकाई 12	अहिंसक व्यवहार की प्रक्रिया एवं लाभ	178
संवर्ग–4 :	**वैज्ञानिक अनुसंधान की प्रकृति एवं समस्याएं**	
इकाई 13	अनुसंधान की परिभाषाएं एवं प्रमुख विशेषताएं	197
इकाई 14	वैज्ञानिक अनुसंधान प्रक्रिया के चरण तथा मनोवैज्ञानिक अनुसंधान का वर्गीकरण	209
इकाई 15	समस्या की प्रकृति एवं परिभाषाएं तथा समस्या की विशेषताएं	222
संवर्ग–5 :	**मनोवैज्ञानिक अनुसंधान की विधियां एवं परीक्षण**	
इकाई 16	प्रयोगात्मक तथा साक्षात्कार विधि	231
इकाई 17	मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का अर्थ, परिभाषा तथा उद्देश्य	254
इकाई 18	मार्गोपदेशन एवं परामर्श में परीक्षणों का उपयोग	264
इकाई 19	मार्गोपदेशन एवं परामर्श में महत्वपूर्ण परीक्षण	274

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun